MAHI - 13

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

भारत में किसान आन्दोलन (1818-1951)

MAHI - 13

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

भारत में किसान आन्दोलन (1818-1951)

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. भीम सेन शर्मा कुलपति(अध्यक्ष) कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा	प्रो. डी.सी. शुक्ला इतिहास विभाग जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर
डा. बृज किशोर शर्मा(संयोजक) सह-आचार्य एवं विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा	प्रो. एस.पी. गुप्ता इतिहास विभाग अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
प्रो. जे.पी. मिश्रा इतिहास विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी	प्रो. रविन्द्र कुमार शर्मा इतिहास विभाग कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
प्रो. विजय कुमार वशिष्ठ इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर	डा. कमलेश शर्मा सहायक आचार्य, इतिहास विभाग कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा
प्रो. एस.एन. दुबे इतिहास विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	डा. याकूब अली खान सहायक आचार्य, इतिहास विभाग कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

डा. पी.सी. जैन समाज शास्त्र विभाग राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर	डा. एम.पी. सिंह इतिहास विभाग यू.पी. कॉलेज, वाराणसी
डा. ललित पाण्डेय साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर	डा. एच.एम. सक्सेना विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग दयानन्द महाविद्यालय, अजमेर
डा. एल.पी. माथुर पूर्व सह-आचार्य, इतिहास विभाग मोहन लाल सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर	डा. जे.पी. मिश्रा इतिहास विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डा. पेमा राम विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली	डा. बृज किशोर शर्मा सह-आचार्य, एवं विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच कुलपति **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	**प्रो. एम.के. घड़ोलिया** निदेशक **संकाय विभाग**	**योगेन्द्र गोयल** प्रभारी **पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

पुनः उत्पादन- जनवरी 2011 ISBN No. : 13/978-81-8496-252-9

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

भारत में किसान आन्दोलन (1818-1951)

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	भारत में किसान आन्दोलनों का परिचय	6–26
इकाई - 2	अंग्रेजी शासनकाल के अन्तर्गत भारत में कृषीय संरचना	27–43
इकाई - 3	राजस्थान में जनजातियाओं के विद्रोह	44–62
इकाई - 4	संथाल विद्रोह(1855-56)	63–73
इकाई - 5	नील विद्रोह (1860 ई.)	74–84
इकाई - 6	पाबना एवं बोगरा क्षेत्रों में कृषकों का विद्रोह (1870-1873)	85–96
इकाई - 7	दक्षिण भारत में कृषक विद्रोह (1900-1913)	97–108
इकाई - 8	राजस्थान एवं गुजरात में जनजाति विद्रोह	109–128
इकाई - 9	चम्पारन, खेड़ा एवं बारदोली से किसान आन्दोलन	129–147
इकाई - 10	बिजोलिया में सामंती एवं उपनिवेशी शासन के विरुद्ध कृषक विद्रोह(1887-1930)	148–162
इकाई - 11	प्रथम विश्वयुद्धोतर कृषि समस्याएं और कृषीय जागृति	163–177
इकाई - 12	मोपला विद्रोह (1920-22 ई.)	178–189
इकाई - 13	यू.पी. के किसान आन्दोलन में कांग्रेस और किसान सभा की भूमिका	190–201
इकाई - 14	बिहार के किसान आंदोलनों में कांग्रेस और किसान सभा की भूमिका	202–209
इकाई - 15	बंगाल में तेभागा आन्दोलन (1946-1947 ई.)	210–221
इकाई - 16	शेखावटी का किसान आन्दोलन	222–236
इकाई - 17	श्री राम राजू का विद्रोह	237–247
इकाई - 18	मोतीलाल तेजवात के नेतृत्व में आदिवासी आन्दोलन	248–260
इकाई - 19	अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना और भारत के किसान आन्दोलन में 1951 तक उसकी भूमिका	261–282
इकाई - 20	तेलांगना में कृषकों का विद्रोह (1946 ई.-1951 ई.)	283–302

इकाई– 1

भारत में किसान आंदोलनों का परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 भूमि राजस्व तथा किसान असंतोष

1.2 1857 के पूर्व आदिवासी किसान विद्रोह

1.3 1857 के बाद के किसान संघर्ष

1.3.1 नील उत्पादक किसानों का आन्दोलन

1.3.2 पावना किसान आन्दोलन

1.3.3 महाराष्ट्र के किसान

1.3.4 बिरसामुंड़ा का विद्रोह

1.3.5 पंजाब का किसान आन्दोलन

1.4 गांधी तथा किसान आंदोलन

1.4.1 चंपारण किसान आन्दोलन

1.4.2 खेड़ा किसान आन्दोलन

1.5 असहयोग आंदोलन के दौरान एवं पश्चात किसान आन्दोलन

1.5.1 अकाली मोर्चा

1.5.2 मोपला विद्रोह

1.5.3 अवध का किसान आन्दोलन

1.5.4 वारदोली का किसान आन्दोलन

1.6 अखिल भारतीय किसान संगठन का गठन

1.7 प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें किसान समस्यायें, तथा किसान आन्दोलन

1.7.1 बकाश्त आन्दोलन

1.8 स्वतंत्रता की पूर्व संध्या पर किसान आन्दोलन

1.8.1 तेभागा आन्दोलन

1.8.2 तेलंगाना किसान आंदोलन

1.8.3 पुन्नप्रा–बायलार आंदोलन

1.9 जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के प्रयत्न

1.1O सारांश

1.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.12 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1.0 उद्देश्य : इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे:

(अ) भारत सदियों से कृषि प्रधान देश तथा कृषि पर आधारित उसकी अर्थव्यवस्था एवं विभिन्न कालों मे भूमि राजस्व की दरें।

(ब) 1857 के पूर्व के आदिवासी किसान विद्रोह जिसमें संथाल आदिवासी किसानों का विद्रोह प्रमुख है।

(स) नील आन्दोलन (1859–60) पावना आन्दोलन (1873–76) महाराष्ट्र का किसान आन्दोलन (1879) बिरसा मुड्डा का विद्रोह, पंजाब का किसान आंदोलन।

(द) गांधी का किसान आंदोलन मे हस्तक्षेप चंपारण तथा खेड़ा के किसान आंदोलन।

(य) 1920 के दशक के स्वत: स्पूर्त किसान आन्दोलन।

(र) विभिन्न प्रदेशों मे कार्यरत किसान संगठन तथा अखिल भारतीय किसान संगठन का गठन।

(ल) 1937 मे गठित कांग्रेस मंत्रिमण्डलों द्वारा किसान समस्याओं के समाधान का प्रयास, बकाश्त आन्दोलन।

(व) स्वतंत्रता की पूर्व संध्या (1945–46) पर किसान आन्दोलन-तेभागा, तेलंगाना तथा पुत्रप्रा–बायलार किसान आंदोलन।

1.1 भूमि राजस्व तथा किसान असंतोष:

भारत प्राचीन काल से एक कृषि प्रधान देश रहा है और उसकी अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर आधारित रही है। वैकल्पिक रोजगार के अवसरों और संगठित उद्योगो का अभाव इसका प्रमुख कारण था। भारत के गाँव आत्मनिर्भर थे और दस्तकारों का जीवन कृषि उत्पादों पर आधारित था जिन्हें वे अपनी बनायी गयी वस्तुओं के बदले वस्तु विनिमय प्रणाली द्वारा किसानों से प्राप्त करते थे । समस्त भूमि का स्वामी शासक होता था और वह भूमि राजस्व के बदले जमीन उत्पादन के लिए किसानों को देता था, जिसे अक्षमता या कम उत्पादन की स्थिति मे उनसे छीनकर दूसरे को देने का उसे अधिकार था। कुछ धर्म ग्रन्थों मे कहीं–कहीं भूमि पर पैतृक अधिकार का भी वर्णन मिलता है तथा दान पत्रों का विवरण भी, परन्तु दान पाने वाले ब्राह्मण भी भूमि राजस्व के बदले भूमि किसानों को ही देते थे। राजस्व व्यवस्था की अच्छाई -बुराई ही किसानों के संतोष या असन्तोष का कारण होती थी। मनुस्मृति के अनुसार राजा किसानों से भूमि राजस्व 1/6, 1/8 या 1/12 लेते, परन्तु युद्ध या अन्य आपत्ति की स्थिति मे राजा उत्पादन का 1/4 भी ले तो उसे दोष नहीं लगता। गौतम 1/6 या 1/8, वशिष्ठ बौद्धायन तथा नारद उत्पादन का 1/6 राजस्व का उल्लेख करते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार राज्यांश आमतौर पर 1/6 होता था परन्तु आपत्तिकाल मे राजा 1/3 या 1/4 भी ले सकता था। मुस्लिम शासन मे भी भूमि राजस्व 1/5 या 1/6 होता था। अलाउद्दीन खिलजी और गयासुददीन तुगलक अपवाद थे जो उत्पादन का क्रमश : 1/2 और 1/10 राजस्व के रूप मे वसूल करते थे। अकबर के शासन काल मे राजस्व की दरे सभी सूबों मे समान नहीं थी और वह 1/8 से 1/3 तक होती थी जो उसके

उत्तराधिकारियों के काल मे औरंगजेब तक कुछ परिवर्तनों के साथ कायम रही। ब्रिटिश शासन मे स्थायी भूमि प्रबन्ध के बाद ही राजस्व व्यवस्था का स्थिरिकरण सम्भव हो पाया और ब्रिटिश शासन मे अपने को अपनी अधिकृत समस्त भूमि का स्वामी मानते हुये अपने सहायक और सहयोगी वर्ग को भु–स्वामी बनाकर एक नये तरह के जमींदार वर्ग की सृष्टि की ओर विकास किया। यद्पि मुगलकाल मे भी जमीदारों, जागीरदारों, और बजहदारों आदि के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं जो किसानों से अपनी भूमि पर खेती करवाते थे। ब्रिटिश भारत मे प्रचलित भूमि राजस्व प्रणालियों और महालवाड़ी मे जिसमे किसान और सरकार के बीच सीधे सम्बन्ध का दावा किया जाता है ने भी बड़े भू–स्वामियों के एक वर्ग का विकास किया।

1.2 1857 के पूर्व आदिवासी किसान विद्रोह :

हमारे अध्ययन के काल खंड (1818–1951) मे किसान असन्तोष और तद्जनित आन्दोलनों की चर्चा के क्रम मे हम पहले 1857 के विद्रोह के पूर्व के किसान आंदोलनों की चर्चा करेंगे जो आदिवासी किसानों ने किए थे। भारत मे औपनिवेशिक अंग्रेजी साम्राज्य के विस्तार के साथ वे क्षेत्र भी उनके अधिकार मे आये जहाँ आदिवासी जनजातियां रहती थी। वे शेष समाज से अपने को अलग रखते थे और उनकी पूजा पद्धति तथा रीति रिवाज भी अलग थे। औपनिवेशिक शासन ने उनके कबीलों के सरदारों का सहयोग प्राप्त करने के लिए उन्हें जमींदार बना दिया और भूमि राजस्व की नयी प्रणाली लागू की और उनकी उत्पादित वस्तुओं पर नये तरह के कर लगाये। उनके बीच महाजनों, व्यापारियों तथा राजस्व वसूल करने वालों का एक वर्ग औपनिवेशिक शासन मे उन पर थोप दिया और उनके शोषण मे इन बिचौलियों का पूरा इस्तेमाल किया। इन बिचौलियों ने आदिवासियों की जमीन पर अधिकार कर लिया और वे धीरे–धीरे किसान से खेत मजदूर बनते गये। जंगल जिनपर वे अपना स्वाभाविक अधिकार समझते थे और जंगल साफ कर नयी जमीनों पर ' 'झूम " खेती थे अब कई कानूनों द्वारा उनसे छीने जाने लगे। स्थान परिवर्तन कर होने वाली खेती और जंगल की कटाई पर रोक लगा दी गयी। औपनिवेशिक शासन द्वारा थोपे गये शोषकों की पहचान आदिवासी समाज ने दिकू (बहिरागत) के रूप मे की। इन्हीं कारणों से आदिवासियों मे असन्तोष गहरा होता गया, यद्यपि ऐसे भी बाहरी लोग वहाँ बसे थे जिनकी उनकी अर्थव्यव्यवस्था मे सहायक भूमिका थी जैसे ग्वाले, बढ़ई, कुम्हार, धोबी आदि और उनसे आदिवासी समाज का गहरा सम्बन्ध था। आदिवासियों के धार्मिक नेताओं ने उन्हें आश्वस्त किया कि ईश्वर उनके साथ है और उनके पास चमत्कारिक शक्तियाँ है जिससे अंग्रेजों तथा दिकुओं की उनके सामने पराजय तय है।

आदिवासी किसानों का पहला संगठित विद्रोह भागलपुर से राजमहल के बीच के संथालों ने किया। 1854 मे ही असंतोष व्यापक रूप ले चुका था और विद्रोह की तैयारी प्रारम्भ हो गयी थी। जमींदारों और महाजनों को लूटने की छिटपुट घटनायें घटने लगी थी। जून 1855 के अन्त में भगनीडीह में आस–पास के लगभग 400 गाँवों के 6 हजार किसानों ने बैठक कर निर्णय किया कि विदेशी सत्ता और उनके सहायक दिकुओं को इस क्षेत्र से भगाने और खुला विद्रोह करने का समय आ गया है। उनके दो प्रमुख नेताओं कान्ह और सीदो ने उन्हें विश्वास दिलाया कि

ठाकुर जी ने उन्हें देश की आजादी के लिए हथियार उठाने का निर्देश दिया है उन्होंने सरकारी अधिकारियों से भी कहा कि ठाकुरजी ने कहा है कि देश गोरों का नहीं है और वे हमारी तरफ से लड़ेगे। आप साहब लोगों और सिपाहियों को खुद ठाकुर जी से लड़ना पड़ेगा । आदिवासी नेताओं ने गाँव मे ढोल नगाड़े बजाते जुलूस आयोजित किये और आदिवासियों से सशस्त्र संघर्ष का आहवान किया। शीघ्र ही लगभग 60 हजार सशस्त्र आदिवासी संघर्ष के लिए तैयार हो गये और जमींदारों, महाजनों पर हमले शुरू हो गये । उनके मकान, सरकारी दफ्तर, पुलिस थाने, रेलवे स्टेशन, डाकगाड़ियाँ आदि जला दिये गये औपनिवेशिक सत्ता और गैर आदिवासी पर चुन–चुन कर हमले किये गये । इस संगठित विद्रोह को दबाने के लिए सरकार ने सेना की 10 टुकड़ियाँ भेजी और अशांति ग्रस्त क्षेत्र मे मार्शल ला लागू कर दिया। लगभग 15 हजार संथाल किसान इस विद्रोह के दौरान मारे गये गाँव उजाड़ किये गये। अगस्त 1855 मे सीदो तथा फरवरी, 1856 में अन्य नेता कान्हू पकड़े गये और मार डाले गये। छोटा नागपुर मे कोल आदिवासी किसानों का विद्रोह 1820 से 1836 तक चलता रहा जिसमे हजारों आदिवासी मारे गये और सरकार के बहुत से सिपाही और जमींदारों, महाजनों को भी अपनी जान से हाथ धोना पड़ा।

1.3 1857 विद्रोह के बाद के किसान संघर्ष

1.3.1 नील उत्पादक किसानों का आन्दोलन

1857 के विद्रोह के बाद और बीसवीं शताब्दी के पहले दशक के पूर्व कई स्थानीय प्रकृति के किसान विद्रोह हुये, जिनकी चर्चा हम यहाँ करना चाहेंगे। इसमें सबसे पहला विद्रोह 1859 - 60 मे हुआ, नील आन्दोलन था जो बंगाल के नील उत्पादक किसानों का अपने शोषण के विरूद्ध सीधा संघर्ष था। नील उत्पादक जमींदार साधारणतया यूरोपियन थे जिनकी जमीनों पर खेती करने वाले किसान इच्छा हो या नहीं नील उगाने के लिए मजबूर थे। जमींदार उन्हें अग्रिम धन देकर नील उगाने के लिए एग्रीमेन्ट करा लेते थे जिनमें धोखा–धड़ी से नील की कीमतें कम तय की जाती थी। बंगाल के कई अंग्रेज उच्चाधिकारियों ने अपने पत्रों मे इस तरह के शोषण और धोखा–धड़ी को स्वीकार किया है। बाद में करार मे आने वाली अदालती झंझटों के कारण अब जमींदार किसानों को आतंकित कर उनकी फसलें तथा घर जला कर परिवारजनों की पिटाई कर उन्हें नील उगाने के लिए बाध्य करने लगे। यूरोपियन मजिस्ट्रेट भी जमींदारों का पक्ष लेते थे और प्रो॰बिपिनचन्द्र के अनुसार 1857 मे 29 नील उत्पादक जमींदारों को आनरेरी मजिस्ट्रेट बना दिया गया था और भक्षकों को ही रक्षक की भूमि का सौंप दी गयी थी।

1859 मे एक डिप्टी मजिस्ट्रट हेम चन्द्राकर ने एक सरकारी आदेश पढ़ने मे गलती कर 17 अगस्त को पुलिस के नाम आदेश जारी किया कि नील उत्पाद रैयतों से सम्बन्धित विवादों मे जमीन पर उनका कब्जा बना रहेगा और उस पर वे अपनी मरजी की फसल उगा सकेगें ।उन्होंने पुलिस को इस सन्दर्भ में किसी अन्य के हस्तक्षेप को रोकने का निर्देश भी दिया। उस से नील उत्पादक किसानों में जागृति की लहर फैल गयी और अधिकारियों के पास आवेदन भेजकर तथा प्रदर्शन कर शांतिपूर्ण संघर्ष शुरू किया परन्तु सितम्बर, 1859 में नदिया जिले के गोविंदपुर गाँव

में गये जमींदार के लगभग सौ लठैतों का ग्रामीणों ने सशस्त्र प्रतिरोध कर उन्हें भागने को मजबूर कर दिया। यह आन्दोलन शीघ्र ही अन्य क्षेत्रों में भी फैल गया। किसानों ने कई स्थानों पर अग्रिम लेने, एग्रीमेन्ट करने और नील उगाने से इन्कार किया। 1860 मार्च तक यह बंगाल के सभी नील उत्पादक क्षेत्रों में फैल गया। लठैतों पर हमले किये गये और नील के कारखानों को क्षति पहुँचाई गयी तथा पुलिस दमन के विरोध में कई पुलिस चौकियों पर भी हमले किये गये। जमींदारों द्वारा लगान बढ़ाने की धमकी के उतर में बहुत से किसानों ने राजस्व चुकाना बंद कर दिया। इस आंदोलन की प्रमुख विशेषता यह थी कि किसानों ने संघर्ष में, अनुकरणीय एकता, संगठन और अनुशासन का परिचय दिया तथा हिंदू और मुसलमान किसानों ने अप्रतिम एक जुटता का परिचय दिया। इस आंदोलन में बंगाल के मध्यमवर्गीय बुद्धजीवियों ने सक्रिय भूमिका निभाई और संघर्षशील किसानों के पक्ष में सशक्त अभियान चला कर माहौल बनाने में सहयोग दिया। 'हिंदू पैट्रियाट " के सम्पादक हरीश चन्द्र मुखर्जी का योगदान सबसे महत्वपूर्ण था। दीन बंधु मित्र के नाटक "नील दर्पण " में किसानों के इस शोषण का सूक्ष्म वर्णन किया गया है। आन्दोलन की सफलता इस बात से स्पष्ट है कि 1860 के अंत तक बंगाल में नील की खेती लगभग पूरी तरह समाप्त हो गयी क्योंकि सरकार ने नवम्बर, 1860 में यह अधिसूचना जारी की कि किसी भी रैयत को नील की खेती के लिय बाध्य नहीं किया जायेगा तथा विवादों का निबटारा केवल कानूनी ढंग से होगा।

1.3.2 पावना किसान आन्दोलन:

1870–80 के बीच जमींदारों ने राजस्व को कानूनी सीमा से अधिक बढ़ा दिया तथा अपने पुराने किसानों को जमीन से बेदखल कर दिया। अत्याचार और दमन के विरूद्ध किसानों का असंतोष बढ़ता गया और वे संघर्ष की तैयारी करने लगे। 1873 में पावना जिले के यूसुफ शाही परगने में एक किसान संघ की स्थापना की गयी। संघ ने गाँवों में जुलूस निकाल कर तथा सभाओं का आयोजन कर किसानों को अपने अधिकारों तथा उन पर हो रहे दमन के विरूद्ध चेतना पैदा करने का काम किया। इन सभाओं में शामिल होने वाले किसानों की संख्या कई हजार तक होती। कुछ समय बाद किसान संघ ने "लगान हड़ताल" का नारा दिया और किसानों ने बढ़ा हुआ लगान चुकाना बंद कर दिया। संघ ने किसानों की ओर से गैर कानूनी लगान वृद्धि के विरूद्ध जमींदारों पर मुकदमा कायम किया। धीरे–धीरे आन्दोलन पावना जिले में ही नहीं पूर्वी बंगाल के अन्य भागों में भी फैलता गया। किसान संघों की स्थापना तथा लगान देना बंद करना और जमींदारों के विरूद्ध मुकदमा कायम करने की प्रक्रिया लगभग सभी स्थानों पर दुहराई गयी। यह आंदोलन आमतौर पर अहिंसक और कानून की सीमाओं में था हिंसक घटनायें नही के बराबर हुई। कुछ पुलिस स्टेशनों तथा जमींदारों के घरों पर हुये आक्रमण, पुलिस तथा जमींदारों के दमन का प्रतिरोध मात्र थे। आन्दोलन की तीव्रता 1874 से 76 के बीच अधिक थी वैसे कृषक अशांति का दौर 1884 तक चलता रहा। इस आन्दोलन में बंगाली, बुद्धिजीवियों ने किसानों का समर्थन किया और बंगाल काश्तकारी विधेयक (1880– 81) बर बहस के दौरान सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, आनन्द

मोहन बोस आदि ने इंडियन एसोसियेशन के माध्यम से किसानों की माँगों का समर्थन किया तथा उनके समर्थन में नगरों में बड़ी सभाओं का आयोजन किया।

1.3.3 महाराष्ट्र के किसान आन्दोलन

पूर्वी बंगाल के किसान आंदोलन के समय ही महाराष्ट्र के पूना तथा अहमदनगर जिले के किसानों ने 1875 में राजस्व वृद्धि संगठित आन्दोलन चलाया। इन क्षेत्रों में रैयतवाड़ी प्राणाली लागू थी, जिसमें लगान किसान से सीधे वसूल किया जाता था परन्तु वह इतना अधिक था कि बिना गुजराती और मारवाड़ी महाजनों से कर्ज लीये वह उसे चुका पाने में भी असमर्थ थे। दूसरी ओर 1864 में अमरीकी गृह युद्ध समाप्त होने और वहाँ की कपास अंग्रेजी कपड़ा मिलों के उपयोग के लीये प्राप्त होने के कारण इस क्षेत्र के किसानों के कपास उत्पादन की कीमत जो काफी बढ़ गयी थी अब एका एक कम हो गयी और इसका किसानों पर बुरा प्रभाव पड़ा। इसी समय 1867 में सरकार ने भूमि राजस्व में 50 प्रतिशत की वृद्धि कर जैसे किसानों की कमर ही तोड़ दी। इस के लिये वे महाजनों से कर्ज लेने के लीये विवश हुये और बदले मे उनके घर तथा जमीन रह न हो गये।

दिसम्बर 1874 में सिरूर तालुके के कर डाह गाँव की घटना की किसानों के बीच चल रहे असन्तोष का विस्फोट कर दिया। एक कर्जदार किसान के विरूद्ध महाजन की अदालती डिक्री के बाद उसके घर पर कब्जा लेने जाने के बाद ग्रामीणों ने महाजनों का सामाजिक बहिष्कार प्रारम्भ कर दिया। सूदखोर महाजनों की दुकान से सामान खरीदना और उनके खेतों की जुताई बंद कर दी गयी ।गाँव कें लोगों के आग्रह पर नाई, धोबी, लुहार तथा मोची ने उनका काम बंद कर दिया। महाजनों को गाँव छोड्कर जाने के लिये उन्हें सवारिया तक नहीं मिली। सामाजिक बहिष्कार का यह आंदोलन पूना, अहमदनगर,सतारा तथा शोलापुर के अधिसंख्य गाँवों में फैल गया। इसका बहुत प्रभा वन होते देखकर किसानों ने सूपा गाँव के बाजार में एकत्र होने के बाद महाजनों के घरों, दुकानों पर आक्रमण कर दिया। करारनामें, पुरनोट, अदालत की डिक्रियाँ और कर्जो की बहियाँ जला दी गयी परन्तु इन उपद्रवों में भी हिंसा कम ही हुई। सरकार ने तत्काल इस के दमन का काम किया और एक महीने के भीतर ही आन्दोलन समाप्त हो गया। आन्दोलन के दबाव के कारण सरकार ने 1879 में दक्कन कृषक राहत अधिनियम पारित कर किसानों को महाजनों के शोषण के विरूद्ध सीमित संरक्षण प्रदान किया।

1.3.4 बिरसामुंडा का विद्रोह

1899–1900 में बिहार मे मुंडा आदिवासियों ने बिरसा मुंडा के नेतृत्व मे विद्रोह किया। एक आदिवासी सीमांत किसान परिवार में पैदा हुये बिरसा ने 1895 मे स्वयं को भगवान का दूत घोषित कर दिया और लोगों में यह विश्वास पैदा किया कि ईश्वर ने असीम ताकत देकर उनकी सामूहिक कृषि को समाप्त करने की कोशिश करने वाले राजस्व ठेकेदारों, बनियों तथा अन्य दिकुओं (बहिरागत शोषकों) को दंड देने के लिये भेजा है। उसने गॉव–गॉव घूमकर धार्मिक तथा राजनैतिक नारों के माध्यम सें खेतिहर मजदूरों को सशस्त्र विद्रोह के लिये तैयार किया। दिसम्बर

1899 में बिरसा ने मुंडा शासन की स्थापना के उद्देश्य से विद्रोह की घोषणा की और ठेकेदारों, राजाओं, अधिकारियों और ईसाइयों की हत्या का आहवान किया। उसने अपने अनुयायियों को विश्वास दिलाया कि वे सामूहिक शक्ति द्वारा कलयुग को समाप्त कर कलयुग लायेंगे और घोषणा की कि अब दिकुओं से हमारी सीधी हथियार बंद लड़ाई होगी और उनके खून से जमीन लाल झंडे की तरह लाल हो जायेगी। उसनें अपने समर्थकों से गरीब गैर आदिवासियों के विरुद्ध कोई कार्यवाही न करने को कहा। 10 हजार से अधिक मुंडा युवा परम्परागत हथियारों, तीर, तलवार, कुल्हाडी से अपने शत्रुओं पर हमला करने लगे। सरकार को इस विद्रोह के दमन के लिये सेना भेजनी पड़ी जिसने फरवरी 1900 में बिरसा तथा अन्य प्रमुख विद्रोही नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। विद्रोह कुलच दिया गया तथा 1900 में जेल में बिरसा मुंडा की मृत्यु हो गयी परन्तु मुंडा आदिवासी आज भी उसे भगवान का अवतार मानते है।

1.3.5 पंजाब का किसान आंदोलन

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक मे पंजाब के विभिन्न भागों मे किसान आंदोलन प्रारम्भ हो गये। इसका कारण 1906 के अंत मे भूमि राजस्व तथा सिंचाई आदि की दरों में सरकार द्वारा वृद्धि थी। पिछले एक दशक से फसलों की लगातार खराबी के कारण किसान की हालत दयनीय थी। सरदार अजीत सिंह (शहीद भगत सिंह के चाचा) ने देश भक्त नामक संस्था किसान समस्याओं पर विचार के लिये गठित की ।अप्रैल 1907 मे पंजाब के किसानों के असंतोष ने व्यापक रूप ले लिया। बारी,दोआब नहर के सिंचाई रेट के विरूद्ध 7 अप्रैल 1907 को लाहौर में 12 हजार किसानों की सभा हुई। इसी तरह की विशाल सभाये पंजाब में कई स्थानों पर हुई। अधिकारिक सूत्रों के अनुसार 1 मार्च से 1 मई के बीच पंजाब में किसानों की 28 बड़ी सभाये हुई।21 अप्रैल को रावलपिंडी में हुई सभा में पहली बार “पगड़ी सम्भाल जटा पगड़ी सम्भाल ओये " गीत गाया गया जो आगे चल कर किसान आंदोलन के प्रतीक जैसा बन गया। इस सभा में शामिल लोगों को पुलिस द्वारा आतंकित करने के विरुद्ध अगले दिन 3 हजार तथा 2 मई को 8 हजार लोगों ने जुलूस निकाला जिस के दमन के लिए सेना भी बुलानी पड़ी। इस से सेना के पंजाबी जवानों में असंतोष फैलने लगा जिस से सरकार चिन्तित थी। सरकार ने लाजपतराय और अजीत सिंह को गिरफ्तार कर बर्मा में निर्वासित कर दिया जिसका जगह–जगह हड़ताल कर किसानों तथा मजदूरों ने विरोध किया।

1.4 गाँधी तथा किसान आन्दोलन

बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में 1915 में दक्षिणी अफ्रीका से लौटने के बाद मोहनदास करमचन्द गाँधी का भारतीय राजनीति में प्रवेश हुआ। अपने मानस गुरु गोपाल कृष्ण गोखले की सलाह पर उन्होंने भारत का भ्रमण कर यहाँ की समस्याओं और जनजीवन को नजदीक से देखने और समझने का निश्चय किया। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में निष्क्रिय प्रतिरोध और सत्याग्रह की जो तकनीक विकसित की थी, उसका वे भारतीय परिस्थितियों में परीक्षण भी करना चाहते थे।

उन्होंने इसके लिए स्थानीय प्रकृति के किसानों तथा मजदूरों के तीन आन्दोलन इस परीक्षण के लिये संगठित किये जिनमें दो किसानों से संबंधित थे।

1.4.1 चंपारन किसान आन्दोलन:

इनमें सबसे पहला आंदोलन नील उत्पादक किसानों का था जो बिहार के चम्पारण जिले मे हुआ। चंपारण में अधिकतर अंग्रेज या यूरोपियन जमींदार थे जिन्होंने अपने किसानों से अनुबंध करा लिया था कि वे अपनी भूमि के 3/20 भाग पर नील अवश्य उगायेंगे भले ही शेष जमीन पर वे अपने परिवार के लिये खाने भर भी उत्पादन न कर पायें। इसे तीन कठिया पद्धति कहा जाता था। 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में जर्मनी के रसायनिक रंगो (डाई) के बाजार में प्रभुत्व के कारण नील की उपयोगिता कम या समाप्त प्राय: हो गयी थी ।जमींदारों ने किसानों को तीन कठिया पद्धति से मुक्त करने के बदले उनको खेती के लिये दी गयी जमीनों का राजस्व मन माने ढंग से बढ़ा दिया। किसानों ने यद्यपि 1908 में इसका मुखर विरोध किया परन्तु उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। नील की जबरन खेती कम या बन्द होने के बदले राजस्व की इस मनमानी वृद्धि की ओर चंपारण के किसान नेता राजकुमार शुक्ल ने गाँधी जी का ध्यान आकृष्ट किया और उनके आग्रह पर गाँधी जी ने स्वयं चंपारण जा कर समस्या समाधान करने का निश्चय किया।

गाँधी जी के चंपारण पहुँचते ही वहाँ के डिप्टी कमिश्नर ने उनसे चले जाने को कहा । गाँधीजी ने आज्ञा मानने से इनकार किया और कोई भी दंड भुगतने के लिए तैयार हो गये। भारतीय राजनीति में इस तरह की यह पहली घटना थी जिसमें सरकार के आदेश को मानने से सीधे इन्कार किया गया था। भारत सरकार डिप्टी कमिश्नर को अपना आदेश वापस लेने तथा गाँधी जी को अपना काम कर देने का आदेश दिया।

गाँधी जी ने अपने सहयोगियों डा० राजेन्द्र प्रसाद, ब्रज किशोर प्रसाद, आचार्य कृपलानी, मजहरूल हक आदि के साथ किसानों के बयान लेने शुरू किये। वे इस बात से आश्वस्त हो जाने पर कि किसान सच बोल रहे है उनका बयान दर्ज करते। बाद में सरकार ने गाँधी जी को इस मामले की जाँच के लिए बनाये गये आयोग का सदस्य स्वीकार किया परन्तु वे अलग से अपनी टीम के साथ किसानों से बात कर उनका बयान दर्ज करते रहे । करीब 8000 किसानों के बयान उन्होंने लिये और दर्ज किये । डा० राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार किसानों के बयान पूरे दिन लिये जाते रहे। इन किसानों का एक अन्तहीन रेला था कि 6.30 बजे सुबह से 6.30 बजे शाम तक कोई विश्राम नहीं था। बहुत से किसान शाम को वहीं ठहरे फिर भी उनका बयान अगले दिन भी नहीं लिया जा सका। गाँधी जी सरकारी आयोग को तीन कठिया पद्धति की कानूनी रूप से समाप्ति और इस के बदले बढ़ाये गये राजस्व को समाप्त करने के लिये सहमत कराने में सफल रहे। आयोग ने सिफारिश की कि नील न उगाने की अनुमति के बदले जो अधिक भूमि राजस्व किया गया है उसे जमींदार किसानों को वापस करें परन्तु जमींदार वसूले गये धन के 25 प्रतिशत से अधिक की वापसी को तैयार नहीं थे। गांधी जी भी 25 प्रतिशत की वापसी पर सहमत हो गये जिसकी कुछ लोगों ने आलोचना भी की ।किन्तु गाँधी जी का तर्क था कि वसूली गयी रकम का

25 प्रतिशत भी वापस करना जमींदारों के लिये बहुत बड़ी शर्मिंदगी थी। आयोग की सिफारिशों के आधार पर 29 नवम्बर, 1917 को बिहार, उड़ीसा कॉसिल में "चम्पारण एग्रेरियन बिल " रखा गया और तीन कठिया प्रथा को कानूनी रूप से समाप्त कर दिया गया।

1.4.2 खेड़ा किसान आन्दोलन

गाँधी जी ने जिस दूसरे किसान आन्दोलन मे हस्तक्षेप किया, वह गुजरात में खेड़ा जिले में हुआ। जिसमें गुजरात के प्रमुख बुद्धिजीवियों बल्लभ भाई पटेल, इन्दुलाल याज्ञिक, एन. एम. जोशी, शंकर लाल पारिख आदि ने किसानों का सहयोग किया। किसान, 1918 मे फसलों की बर्बादी के कारण 1919 का लगान स्थगित करने की मांग कर रहे थे। क्योंकि सरकारी राजस्व विभाग का एक नियम था कि यदि देवीं आपदा के कारण फसल एक चौथाई (4 आने) से कम हो तो उस वर्ष लगान स्थगित कर दी जायेगी। गाँधी जी की अध्यक्षता वाली गुजरात सभा में इस संबंध में एक ज्ञापन गवर्नर को दिया था जिसे बल्लभ भाई पटेल ने बम्बई कौंसिल में रखते हुए किसानों की माँग को उचित बताया तथा उस नियम को लागू करने का आग्रह किया। अधिकारियों का कहना था कि उनके मूल्यांकन के अनुसार फसल एक चौथाई से अधिक हुई है। इसलिए किसानों की लगान स्थगन की माँग का कोई औचित्य नहीं है ।महात्मा गाँधी तथा गुजरात सभा नें किसानों से सत्या ग्रह का आह्वान किया जिसके पूर्व 2 हजार किसानों ने शपथ ग्रहण कि ' 'हम इस वर्ष का लगान पूरा या आधा भी नहीं देगें और इसके बदले में जो भी संकट उठाने पड़े उठायेंगे यहाँ तक कि अपनी जमीन छोड़ने को तैयार रहेंगे। हममें ऐसे भी लोग है जो लगान दे सकते है वे भी इसलिए नहीं दे रहे है कि गरीब किसान अपने जानवर और जमीन बेच कर लगान अदा करने को विवश न किये जाये। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि जो लगान अदा कर सकते है वह भी अदा न करे।

सरकार द्वारा अधिकृत किये गये एक खेत से प्याज उखाड़ने के प्रतीक अपराध में कुछ लोगों को गिरफ्तार कर सजा दी गयी। किसानों की भारी भीड़ में इन सत्याग्रहियों को जेल तक पहुँचाया जिस पर प्रतिक्रिया करते हुये गाँधी जी ने लिखा कि इससे गुजरात के किसानों को राजनैतिक शिक्षा मिली है और उनमें एक नयी चेतना का विकास हो रहा है। किसानों ने सरकारी दमन और खेतों की कुर्की के आदेश के बावजूद लगान न देने का अपना निश्चय पूरा किया और सरकार समझौते के लिये बाध्य हो गयी। सरकारी अधिकारियों और किसान प्रतिनिधियों के बीच समझौता हुआ कि धनी पाटीदार अपना लगान चुका देंगे परन्तु गरीब किसानों को इससे छूट मिलेगी। इससे किसानों में अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करने की चेतना पैदा हुई। क्योंकि उन्हें अनुभव हुआ कि बिना लड़े वे विदेशी सत्ता से अपनी जायज माँगे पूरी नहीं करा सकते।

1.5 असहयोग आन्दोलन के दौरान एवं पश्चात् किसान आन्दोलन

1.5.1 अकाली मोर्चा

खिलाफत तथा असहयोग आन्दोलन के समानान्तर देश के विभिन्न भागों में स्थानीय प्रकृति के किसान आन्दोलन भी शुरू हो गये थे। यद्यपि उनके आन्दोलन मुख्य धारा से सीधा सम्बन्ध तो नहीं था परन्तु वे आन्दोलन और उसके नेता गाँधी जी से प्रेरित तथा प्रभावित अवश्य थे । इन स्थानीय आंदोलन मे प्रमुख पंजाब मे अकाली मोर्चा, मालाबार (केरल) में मोपला विद्रोह तथा वर्तमान उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र में किसानों का स्वत :स्फूर्त आन्दोलन थे। पंजाब में अकाली मोर्चा आन्दोलन गुरूदारों की जमीन के उपयोग सम्बन्धी अन्तर्विरोध के कारण प्रारम्भ हुआ था। गुरूदारों के अधिकार मैं बहुत अधिक भू–सम्पत्ति थी जिस पर सम्पूर्ण सिख समाज का अधिकार माना जाता था परन्तु आगे चल कर उनके महंत जो अधिसंख्य उदासी सम्प्रदाय के सिख व हिन्दू थे, जमींदारों की तरह व्यवहार करने लगे। अकाली आन्दोलन इसी विकृति के विरूद्ध संघर्ष के लिये पैदा हुआ था, परन्तु 1920 –21 में वह धार्मिक आन्दोलन के साथ ही राजनैतिक साम्राज्य विरोधी तथा जमींदार विरोधी आन्दोलन बन गया जिस में कांग्रेसियों, क्रातिकारियों तथा साम्यवादी कार्यकर्ताओं की भी सहभागिता थी। अकाली कार्यकर्ता गुरूद्वारों की जमीन पर कब्जा करने कें लिये आगे बड़े और महंतो ने पुलिस तथा किराये के गुंडो द्वारा इन्हें रोकने का प्रयत्न किया। फरवरी 1921 में लाहौर के निकट नानकाना में लगभग 200 निहत्थे सिख आन्दोलनकारियों को महंतों ने कत्ल करवा दिया। 1922 में अमृत सर से लगभग 10 किलोमीटर दूर "गुरु का बाग" में अकालियों और महंत के आदमियों में भीषण संघर्ष हुआ। पुलिस ने महंतों का पक्ष लेकर शांतिपूर्ण तथा निहत्थे लोगों गोली चलाई तथा बहुत से लोगों को गिरफ्तार किया। 1923 तक यह आंदोलन अपने अन्तर्निहित अन्तर्विरोधों के कारण विभाजित हो गया और धीरे–धीरे दब गया।

1.5.7 मोपला विद्रोह

1921 में ही वर्तमान केरल के मालाबार क्षेत्र में जो उस समय मद्रास प्रेसीडेंस का एक भाग था, में स्थानीय निवासी मोपला मुसलमान किसानों ने विद्रोह किया जिसे भ्रमवश साम्प्रदायिक संघर्ष समझा जाता है ।यहॉ तक कि गाँधी जी ने भी इसे "मोपला पागलपन" की संज्ञा दी, जब कि यह संघर्ष वास्तव में किसानों का सामंत विरोधी संघर्ष था, हां यह सच है कि अधिसंख्य जमींदार उच्च वर्ग के हिन्दू तथा किसान आम तौर पर मुसलमान थे। 1921 मालाबार निवासियों के लिये संकट का काल था। खाद्यान्न की कीमत बढ़ गयी थी तथा अकाल की स्थिति पैदा होने की आशंका थी। मालाबार में भी खिलाफत तथा असहयोग का आंदोलन प्रारम्भ हो गया था और मोपला किसान इसमें बड़ी संख्या में सक्रिय थे। अकाल की हालत, जमींदारों तथा ब्रिटिश शासकों के शोषण और स्वराज्य तथा खिलाफत के नारों ने किसानों के

व्यापक साम्राज्य तथा सामंत विरोधी आंदोलन को जन्म दिया जिस की प्रमुख माँगे राजस्व में कमी तथा भूमि व्यवस्था में परिवर्तन की थी।

अगस्त 1921 में कालीकाट के दक्षिण भाग मैं तिरूरंगादी कस्बे में खिलाफत आंदोलन बहुत तेज था जिसका नेतृत्व मोपला लोगो के सम्मानित धार्मिक तथा राजनैतिक नेता अली मुसालियर कर रहे थे। ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध बढ़ते असंतोष के दमन के लिये कालीकट स्थित सेना के प्रधान पुलिस के साथ तिरूरंगादी पहुँचे जहाँ गिरफ्तारी के भय से खिलाफत तथा किसान नेता मस्जिद में शरण लिये हुए थे। 20 अगस्त को सेना ने नेताओं की गिरफ्तारी के लिये मस्जिद में प्रवेश किया जिसके विरोध में लगभग 5 हजार लोगो ने मस्जिद को घेर लिया। सैनिकों ने मशीनगन से गोलियाँ चलाई परन्तु लगभग निहत्थे किसान अविचलित रहे। कुछ सैनिक तो जिला मजिस्ट्रेट के साथ कालीकट भाग गये परन्तु शेष मदद आने की आशा में लड़ते रहें। विद्रोहियों ने सड़कों पर कब्जा कर के चौकियाँ बैठा दी। शहर में बचे अंग्रेजों को मार डाला, टेलीग्राम के तार काट दिये, एरनाद और बल्लुवानाद तालुकों पर अधिकार कर खिलाफत राज्य की स्थापना की घोषणा कर सत्तर वर्षीय अली मुसालियर को शासक बनाया। अब तक शांतिपूर्ण रहा यह आंदोलन अब हिंसात्मक हो गया था। हिन्दू किसान जिनकी संख्या कम थी, ने भी मोपला विद्रोहियों का सहयोग किया तथा ब्रिटिश शासन के अधिकारियों तथा जमींदारों पर हमला किया तथा सरकार समर्थक मुसिलम शिक्षितों तथा जमीदारों पर भी हमले किये गये। सरकार ने प्रचार शुरू किया कि मोपला विद्रोही हिन्दुओं पर अत्याचार कर रहे है। 1921 अगस्त के अन्त तक सेना तिरूरंगादी पहुँची और मस्जिद को घेर लिया ।तीन दिन के प्रतिरोध के बाद मस्जिद में छिपे विद्रोहियों और उनके नेता अली गुसालियर ने आत्मसमर्पण कर दिया। अब विद्रोह का नेतृत्व पूर्व में हुये विद्रोह के आरोप में निर्वासन काट कर हाल में ही लौटे वेरियन कुत्राथ कुल अहमद हाजी ने सम्भाला। निर्वासन से लौटने के कुछ दिनों के बाद ही हाजी खिलाफत आंदोलन के प्रमुख नेताओं में से एक हो गये। अली मुसलियार के उत्तराधिकारी के रूप में उन्होंने मुक्त अंचलों का शासन सम्भाला। भोपाला के एक नेता चेबंसरी ईविंची कोया थंगल ने साम्प्रदायिक आधार पर ब्रिटिश शासकों के समर्थक होने का आरोप लगा कर 40 हिन्दू किसानों को मृत्युदंड दिया जिस से सरकार के साम्प्रदायिक प्रचार को विश्वसनीयता मिली। अंग्रेजी शासन ने मालावार क्षेत्र में मार्शल ला लागू कर विद्रोह के दमन के लिये गौरखा सैनिकों को बुलाया। मोपलों ने सैनिकों से छीने हथियायें तथा परम्परागत अस्त्रों से सेना का मुकाबला किया और भारी जनहानि के बावजूद आत्मसमर्पण करने से इंकार किया। दिसम्बर 1921 के अंत तक 30 हजार लोग गिरफ्तार किये गये।अंग्रेजी शासन ने विद्रोहियों से कितना कूर व्यवहार किया इसकी एक झलक पेदनूर की घटना से मिलती है। कैदियों के एक जेल से दूसरे में स्थानान्तरित करने के संदर्भ में 100 कैदियों को मालगाड़ी के एक डिब्बे में बन्द कर ताला लगा दिया गया जिस में हवा जाने का कोई रास्ता नहीं था । गाड़ी के पोदनूर पहुँचने तक 70 कैदियों की मालगाड़ी में ही मृत्यु हो चुकी थी। जिसे डाक्टरों ने दम घुटने से मृत्यु बताया। 8 जनवरी 1922 को कुल अहमद हाजी गिरफ्तार किये गये और 20 जनवरी को उन्हे गोली मार दी गयी। हिन्दू किसानों की हिस्सेदारी तथा मुसलमान जमींदारों तथा सरकार समर्थकों पर हमले

से स्पष्ट है कि विद्रोह का उद्देश्य साम्राज्यवाद और सामन्तवाद का विरोध और कृषि जन्य समस्याओं का समाधान खोजना था।जिन गाँवों पर लगभग 6 महीने तक विद्रोहियों का शासन था उसमें हिन्दू निवासियों की संख्या 4 लाख थी। गोपालन नायर के अनुसार मारे गये नागरिकों की संख्या 500 से 600 के बीच थी परन्तु इनमें से कितने मजहब के कारण मारे गये और कितने शत्रुओं की सहायता करने में, यह कहना कठिन है। आर्य समाजियों के अनुसार इस दौरान 2500 लोगों का धर्मांतरण कराया गया परन्तु यदि विद्रोहियों का उद्देश्य अगर हिन्दू धर्म को नष्ट करना होता तो 6 महीने अधिसंख्य मन्दिरों को नष्ट करने तथा हिन्दुओं का धर्मांतरण या हत्या करने के लिये पर्याप्त समय था।

1.5.3 अवध का किसान आदोलन

इस समय का सब से संगठित विस्तृंत तथा तीव्र आंदोलन वर्तमान उत्तरप्रदेश के अवध क्षेत्र में हुआ जिसमें जवाहर लाल नेहरू ने भी अपनी भागीदारी दर्ज की। इस समय तक 1918 फरवरी में उत्तर प्रदेश में मदन मोहन मालवींय, पुरूषोत्तम दास टंडन, गौरी शंकर मिश्र तथा इन्द्र नारायण दिवेदी के नेतृत्व में उतर प्रदेश किसान सभा का गठन हो चुका था और जून 1919 तक प्रदेश की 173 तहसीलों में इसकी 450 शाखायें गठित हो चुकी थी। 1918 में दिल्ली तथा 1919 में अमृतसर में हुए कांग्रेस अधिवेशन में उत्तरप्रदेश के किसानों में बड़ी संख्या में भाग लिया था।

उत्तरप्रदेश के अवध क्षेत्र में तालुकेदार और जमींदार लगभग सभी जमीनों के मालिक थे। ऐसे बहुत कम किसान थे जिनके पास अपनी जमीन थी।अधिसंख्य आसामी किसान थे जो जमींदार की भूमि पर खेती करते थे।उनसे मनमाना भूमि राजस्व तथा नजराना वसूल किया जाता था तथा बेगार करनी पड़ती थी। छोटे से कारण पर भूस्वामी की नाराजगी से उन्हें जमीन से बेदखल कर लिया जाता था ।चारागाह तथा सिंचाई के साधनो पर भी जमींदारों का अधिकार था। भूमिहीन मजदूरों की संख्या तेजी से बढ़ रही थी और 1911 में 19 प्रतिशत से बढ़कर 1921 मैं 26.5 प्रतिशत तक पहुँच गयी थी और यह किसानों की भूमि से बेदखली के कारण था।

1920 की गर्मियों में जहाँ राष्ट्रीय राजनीति में तेज सक्रियता थी किसान असंतोष भी बढ़ता जा रहा था और अवध क्षेत्र में ग्राम पंचायतों के तत्वावधान में किसान बैठकें बड़ी संख्या में आयोजित की जा रही थी जिन में झिंगुरी सिंह तथा दुर्गपाल सिंह नामक किसान नेताओं की प्रमुख भूमिका थी। इसके अतिरिक्त 1920 में ही एक साधु बाबा रामचन्द्र किसानों के प्रमुख नेता और संगठनकर्ता के रूप में उभर रहे थे ।बाबा रामचन्द्र महाराष्ट्र के ब्राह्मण थे और गिरभिटिया मजदूर के रूप में फीजी चले गये थे। वहाँ से 1909 में लौटने के बाद वे फैजाबाद में सन्यासी का जीवन बिता रहे थे। वे गाँवों मैं घूम कर राम चरित मानस का पाठ करते और उसके माध्यम से लोगों में अन्याय का प्रतिकार करने की चेतना जागृत कर रहे थे। किसानों में वह बहुत लोक प्रिय थे और उस क्षेत्र के परम्परागत अभिवादन जय सीताराम को उन्होंने युद्धघोष में बदल दिया। इसके ऊच्चारण से वे शीघ्र ही बहुत बड़ी संख्या में किसानों को अपनी

सभा में बुलाने में सफल हो जाते क्योंकि इस शब्द की प्रतिध्वनि सुनते ही किसान अपना काम तक छोड़कर सभा स्थल की ओर चल पड़ते थे। जून, 1920 में वे प्रतापगढ़ तथा जौनपुर के 200 किसानों के साथ इलाहाबाद जा कर जवाहर लाल नेहरू से भेंट कर उनसे किसानों की स्थिति स्वयं देखने का आग्रह किया। जून–अगस्त के बीच नेहरू नें कई बार इस क्षेत्र का दौरा किया और किसान नेताओं से सम्पर्क स्थापित किया। प्रतापगढ़ के डिप्टी कमिश्नर मेहता ने किसानों की शिकायतें सहानुभूति पूर्वक सुनी और उन्हें दूर करने का आश्वासन भी दिया। इससे उत्साहित किसानों ने 1 आना फीस देकर किसान सभा में अपने शिकायतें दर्ज करायी जिनकी संख्या लगभग 1 लाख थी। अगस्त, 1920 में मेहता के छुट्टी पर जाने के बाद तालुकेदारों और सरकारी अधिकारियों की मिली भगत से बाबा रामचन्द्र और 32 किसानों चोरी के झूठे आरोप में गिरफ्तार कर प्रतापगढ़ जेल भेज दिये। उनसे मिलने के लिये लगभग 5 हजार किसान जेल के बाहर पहुँच गये जो बहुत समझाने बुझाने के बाद ही वापस लौटे। 10 दिन बाद गाँधी जी को बाबा रामचन्द्र को छुड़ाने के लिये आने की अफवाहें फैली और 10 हजार से अधिक किसान जेल के बाहर पहुँच गये और तभी वापस लौटे जब उनसे कहा गया कि कल तक बाबा रामचन्द्र छोड़ दिये जायेंगे। किसान नदी किनारे इन्तजार करते रहे और उनकी संख्या बढ़कर 60 हजार तक हो गयी। वे तभी वापस लौटे जब बाबा ने उन्हें गन्ने के खेत में एक पेड पर चढ़कर दर्शन दिये। जनवरी 1921 में रायबरेली जिले के दक्षिणी भाग में किसानों का आंदोलन हिंसात्क था। जमींदारों की बोई गई फसल नष्ट कर दी गयी, गोदाम लूट लिये गये, कुछ स्थानों पर आगजनी की घटनायें भी हुई। ग्रामीण सूदखोर महाजन भी किसानों के आक्रोश का शिकार बने। फुरसतंगज बाजार में भी लूट–पाट की घटनायें हुई। वहाँ उपस्थित सरकारी मजिस्ट्रेट द्वारा सरकार को भेजी गयी रपट में किसानों की उत्तेजना तथा जमींदार–साहूकार विरोध का उल्लेख किया है और स्वीकार किया है कि पुलिस द्वारा गोली चलाने पर 4 व्यक्ति मारे गये। किसान नेता जानकीदास को छुड़ाने के लिये किसानों ने रायबरेली जेल को घेर लिया। किसानों का पुलिस के बल पर नदी के पुल तक पीछे हटा दिया गया परन्तु वे बिना नेताओं की रिहाई के वहाँ से लौटने से इन्कार किया। पुलिस ने गोली चलाई और कई किसान मारे गये। जवाहर लाल नेहरू इस घटना के प्रत्यक्षदर्शी थे और उन्होंने किसानों की सभा को नदीं के दूसरे किनारे पर संबोधित भी किया। उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव लैम्बर्स ने केन्द्रीय गृह सचिव को भेजी अपनी रिपोर्ट मे कहा "रायबरेली जिले का दक्षिणी भाग बहुत अस्त–व्यस्त अवस्था में है जो तेजी से अराजकता की और बढ़ रहा है। " जनवरी 1921 में डी किसानों ने एक नेता को रिहा कराने के लिये रेलगाड़ी रोक दी। मार्च 1921 तक आन्दोलन का विस्तार प्रतापगढ़, फैजाबाद और रायबरेली के साथ ही सुल्तानपुर जिले में भी हो गया। 18 अप्रैल 1921 को किसानों की भीड़ ने रायबरेली की कलक्टरी कचहरी को आशिक रूप से क्षतिग्रस्त कर दिया। सेना बुलाने और घोर दमन के बाद जून 1921 तक आन्दोलन धीमा पड़ गया 9 जून को भारत मंत्री को भेज तार में वायसराय ने स्वीकारा कि स्थिति बहुत अशान्त है तथा स्थायी शान्ति की वापसी की सम्भावनायें बहुत क्षीण है।

अवध में किसान आंदोलन का दूसरा दौर 1921 के अन्त और 1922 के प्रारम्भिक 6 महीनों में प्रारम्भ हुआ जिसका नेतृत्व एका संघ ने किया। इस संगठन के दो प्रमुख नेता मदारी पासी और शाहरेब कथित छोटी जातियों के किसान थे परन्तु उसमे असामी किसानों, भूमिहीनों के साथ छोटे जमींदार भी शामिल थे। इस दौर में आन्दोलन के केन्द्र मुख्यतः सीतापुर ,हरदोई और बहराइच जिले थे। किसानों की बैठक के पूर्व एक गडढा खोदकर उसमें पानी भर कर उसे गंगा मानकर किसानों को निर्धारित लगान से अधिक न देने, बेगार न करने, बेदखली पर भी जमीन न छोड़ने और पंचायत के फैसलों को मानने की शपथ खिलाई जाती थी। मार्च 1922 तक इस ने इस क्षेत्र में व्यापक किसान विप्लव का रूप ले लिया जिस में जमींदारों के घरों पर हमले भी किये गये तथा पुलिस ने किसानों पर गोली चलायी। सेना के हस्तक्षेप, फ्लैग मार्च और अघोषित मार्शल लॉ जैसे हालात पैदा कर देने के बाद ही आंदोलन का दमन सम्भव हो सका।

1.5.4 बारदोली का किसान आन्दोलन

सूरत जिले के बारदोली तालुके को गाँधी जी ने असहयोग आंदोलन के दिनों में ही परीक्षण के तौर पर लगान बंदी आंदोलन के लिये चुना था परन्तु चौरीचौरा की दुर्घटना के बाद आंदोलन स्थगित हो जाने के कारण यह सम्भव नहीं हो पाया। 30 जून 1927 को बम्बई सरकार ने इस क्षेत्र के राजस्व में 25 प्रतिशत की वृद्धि कर दी जिसके विरूद्ध बारदोली में किसानों का आंदोलन स्वतः स्फुर्त ढंग से प्रारम्भ हुआ। उन्होंने एक सभा करने के बाद अधिकारियों के पास अपना प्रतिनिधि मंडल भेज कर राजस्व न बढ़ाने की प्रार्थना की परन्तु इसका कोई फल नही हुआ। 7 सितम्बर 1927 को किसानों की दूसरी सभा में कई बड़े कांग्रेसी नेता और कौंसिल के सदस्य उपस्थित थे। किसानों ने बढ़ा हुआ लगान न देने का निर्णय किया । फरवरी 1928 तक किसानों ने इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय कर आन्दोलन के नेतृत्व के लिये बल्लभ भाई पटेल को आमंत्रित किया जो गाँधीजी की सहमति से तैयार हो गये।

12 फरवरी को कांग्रेस दारा आयोजित किसान सम्मेलन में क्षेत्र के गाँवों को समूहों में बाँटकर इनका नेतृत्व प्रमुख कार्यकर्ताओं को देने और अहिंसात्मक रूप से राजस्व वृद्धि का विरोध करने का निर्णय किया गया । इसके अतिरिक्त सरकारी अधिकारियों के किसी काम मे सहयोग न करने का फैसला किया गया। सम्मेलन के निर्णयों के अनुरूप किसानों ने लगान देना बंद कर दिया ।सरकार ने वसूली में कठोरता बरती और लगान न देने वालों की चल अचल सम्पत्ति कुर्क की जाने लगी ।किसानों को आतंकित करने के लिये पुलिस ने पठानों की सहायता ली और किसानों को अपमानित करना प्रारम्भ किया । इस दमन से क्षुब्ध केन्द्रीय विधान सभा के अध्यक्ष विट्ठल भाई पटेल ने इस्तीफा देने की धमकी दी ।बारदाली के आंदोलन तथा उसके बर्बर दमन ने सम्पूर्ण देश की भावनाओं को उत्तेजित किया । समाचार पत्रों तथा बुद्धिजीवीयों ने इसका विरोध करते हुये लगान कम करने तथा दमन बंद करने की अपील की। 12 जून 1928 को गाँधी जी की अपील पर संपूर्ण देश में बारदोली दिवस मनाया गया और सभायें आयोजित की गयी ।दमन के बावजूद किसानों की दृढ़ता से बम्बई का गवर्नर बहुत क्रुद्ध हुआ और पटेल आदि नेताओं को गम्भीर परिणामों की धमकी दी। अंततः सरकार को लगान की वृद्धि वापस लेनी पड़ी और

गिरफ्तार किसानों को छोड़ने और कुर्क सम्पत्ति वापस करने का वायदा करना पड़ा । इनके आधार पर जुलाई 1928 में कांग्रेस ने आन्दोलन की सफलतापूर्वक समाप्ति की घोषणा की । बारदोली के किसानों ने आन्दोलन के नायक बल्लभ भाई पटेल को सरदार की उपाधि दी तथा 11 –12 अगस्त को पूरे गुजरात में विजय दिवस मनाया गया। सरकार ने यद्यपि अपने वायदे पूरे नही कि ये बहुत से किसानों को काफी समय तक जेल में रखा गया और कुर्क की गयी सम्पत्ति भी वापस नहीं की गयी परन्तु लगान वृद्धि की वापसी किसानों की सरकार के विरूद्ध निर्णायक जीत थी।

1.6 अखिल भारतीय किसान संगठन का गठन

भारत के विभिन्न प्रदेशों में स्थानीय तथा प्रान्तीय स्तर के किसान संगठन काम कर रहे थे। टंडन जी के नेतृत्व वाली उत्तर प्रदेश किसान सभा की चर्चा पहले की जा चुकी है । इसी प्रकार के प्रदेश स्तर के संगठन बिहार में स्वामी सहजानन्द सरस्वती, बंगाल में मुज्जफर अहमद तथा काजी नजरूल इस्लाम, गुजरात में इन्दु लाल याज्ञिक, आंध्र में प्रो०एनजी. रंगा के नेतृत्व मे संगठित तथा कार्यरत थे ।इन संगठनों में कांग्रेस के समाजवादी और साम्यवादी विचारधारा के कार्यकर्ता अधिक सक्रिय थे और उनके प्रमुख नेता अखिल भारतीय स्तर के किसानों के वर्गीय संगठन की अनिवार्यता अनुभव कर रहे थे ।कांग्रेस समाजवादी पार्टी के मेरठ अधिवेशन में (जनवरी 1936) यह निश्चय किया गया कि अप्रैल 1936 में लखनऊ में कांग्रेस के विशेष सम्मेलन के अवसर पर 11 अप्रैल को अखिल भारतीय किसान कांग्रेस का अधिवेशन भी आयोजित किया जायेगा ।इसके लिये जो संगठन समिति बनायी गई उसके सदस्य स्वामी सहजानन्द, एन जी रंगा और मोहनलाल गौतम थे। किसान संगठन की अनिवार्यता को रेखांकित करते हुये स्वामी जी ने "मेरा जीवन संघर्ष " में लिखा "कांग्रेस और किसान सभा के दृष्टिकोण में मौलिक अन्तर है कि जहाँ कांग्रेस राजनैतिक आइने में अर्थनीति और रोटी को देखती है और राजनीति से ही उस पर आती है तथा उसे राजनीति का साधन समझ कर ही अपनाती है वहाँ किसान सभा अर्थनीति और रोटी के शीशे में ही राजनीति को देखती है और वहाँ पहुँचती है साधन समझकर । इसलिये स्वतंत्र किसान सभा अनिवार्य है।

अप्रैल 11, 1936 को लखनऊ के कांग्रेस अधिवेशन के विषय समिति के पंडाल में देश भर से आये किसान प्रतिनिधियों का सम्मेलन स्वामी सहजानन्द सरस्वती की अध्यक्षता में हुआ। अधिकारिक रूप से नवगठित संगठन का नाम अखिल भारतीय किसान कांग्रेस रखा गया जिसे बाद में बदल कर अखिल भारतीय किसान सभा कर दिया गया। कांग्रेस -अधिवेशन के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू ने इस सम्मेलन में भाग लेकर एक जुटता प्रदर्शित की। अध्यक्ष पद से बोलते हुये स्वामी जी ने कहा कि जमींदारी प्रथा ही समस्त बुराईयों की जड़ है । जिसके कारण किसान जो कुछ पैदा करता है अपने उपयोग के लिये बचा नहीं पाता । उससे समझौता करना सम्भव नहीं है। उन्होंने किसानों की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डाला और वर्तमान भूमि राजस्व प्रणाली की कटु आलोचना की ।सम्मेलन में अखिल भारतीय किसान कमेटी तथा इसकी कार्य समिति का चुनाव किया गया और स्वामी सहजानन्द को प्रथम अध्यक्ष तथा प्रो0 एन.जी. रंगा को इसका महासचिव चुना गया । इसके साथ ही इन्दुलाल याज्ञिक के संपादन में बम्बई से

किसान बुलेटिन पाक्षिक अंग्रेजी में प्रकाशित करने का निश्चय किया गया । अगस्त 1936 में बम्बई में किसान समिति की बैठक में पारित किसान घोषणा पत्र प्रकाशित किया गया । जिसमें 5 एकड़ से कम जोत वाले किसानों को सहकारी आधार पर कृषि के लिये जमीन देने, जमींदारों के कब्जे वाली 1/3 जमीन जिस पर वे कृषि कार्य नहीं कर पाते भूमिहीनों में वितरित करने, पुराने कर्जो को निरस्त करने तथा किसानों को साहूकारों के चंगुल से बचाने के लिये आसान शर्तो पर ऋण की व्यवस्था करने जैसी बुनियादी माँगे प्रमुख थी। इसी बैठक में समिति ने न्यूनतम माँगों का एक 35 सूत्रीय पत्रक भी तैयार किया।

1.7 प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें, किसान समस्यायें तथा आन्दोलन

अप्रैल 1936 में लखनऊ में अखिल भारतीय किसान सभा के गठन, के बाद दिसम्बर 1936 में फैजपुर में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के साथ ही किसान सभा का अधिवेशन आयोजित किया गया जिस में फैजपुर कृषि कार्यक्रम पारित हुआ । फरवरी 1937 में होने वाले केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान सभाओं के चुनाव में कांग्रेस ने इसे अपने चुनाव घोषणा पत्र का आधार बनाया। यद्यपि चुनाव में मतदान की पात्रता देश की जनसंख्या के केवल 4 प्रतिशत से भी कम लोगों की थी ।स्वाभाविक रूप से उनमें जमींदारों तथा बड़े किसानों की ही प्रधानता थी परन्तु किसान माँगों पर जोर देने के कारण कांग्रेस को 6 प्रान्तों में अपने दम पर बहुमत प्राप्त हुआ और जुलाई 1936 में कांग्रेस के नेतृत्व में मंत्रिमंडल का गठन हुआ । इन सरकारों से किसानों की अपेक्षायें बहुत अधिक थी परन्तु उनकी बड़ी सीमायें थी। कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने किसानों को राहत देने के प्रयत्न किया जिन में उतर प्रदेश की सरकार द्रारा दी गयी रियायतें सब से प्रमुख थी। उत्तर प्रदेश में 1936 में काश्तकारी अधिनियम पारित किया गया जिसमें आगरा तथा अवध के किसानों को अपनी जोतों पर पुश्तैनी अधिकार मिले जिन का लगान 10 वर्ष से पहले नहीं बढ़ाया जा सकता था। बेदखली बन्द कर दी गयी और लगान तथा ऋणों के बकाये की वसूली स्थगित कर दी गयी । बिहार में 1938 में ही काश्तकारी अधिनियम पारित हुआ और कांग्रेस सरकारों के काल में उड़ीसा, मद्रास, बम्बई और मध्य भारत में भी किसानों को राहत देने वाले कई कानून पारित हुये । अपनी सरकारों के इस सीमित राहत वाले कदमों से यद्यपि किसान संतुष्ट नहीं थे क्योंकि उन्हें उन से बहुत अधिक अपक्षाये थी । किसानों को अपेक्षाकृत अधिक स्थायी भूमि स्वामित्व के अधिकारों के साथ उन्हे सूदखोर महाजनों के चंगुल से बचाने के लिये कानून बनाने का प्रयास भी इन सरकारों ने किया परन्तु गवर्नर के असीमित अधिकारों, विधानपरिषद में सरकार समर्थक जमींदारों, व्यापारियों की उपस्थिति, अपने बहुवर्गीय चरित्र और अपने सदस्य जमींदार महाजनों के दबाव के कारण किसानों को राहत देने के बहुत सार्थक प्रयत्न वे नहीं कर पायी ।इसके लिये किसान सभा के नेतृत्व में हर प्रान्त में सभाओं तथा प्रदर्शनों का आयोजन किया गया और सरकारों पर किसान समस्याओं को हल करने के लिये दबाव भी डाला जाता रहा।

1.7.1 बकाश्त आन्दोलन।

कांग्रेस सरकारों के शासन काल में दौरान किसान सभा के तत्वावधान में चला ये गये किसान संघर्षो में सबसे संगठित थी प्रमुख बिहार का "बकाश्त " आन्दोलन था जिसका नेतृत्व किसान सभा के प्रथम अध्यक्ष स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने किया। बकाश्त की जमीन उसे कहते थे जिसे अपनी आर्थिक विफलता के कारण लगान देने में असमर्थता के कारण किसानों ने जमींदारों को दे दिया था । उन पर अब भी किसानों का अधिकार था और वे ही उस पर खेती भी कर रहे थे परन्तु अब उनकी हैसियत बटाईदारों की थी और उपज का आधे से अधिक उन्हें जमींदार को देना पड़ता था । पुराना लगान चुकाने पर भी जमींदार किसानों को पूर्व की तरह लगान अदा कर जमीन खेती के लिये देने को तैयार नहीं थे। बिहार किसान सभी जिसने 1935 में ही जमींदारी उन्मूलन का प्रस्ताव पारित किया था ने इस प्रश्न पर किसानों के समर्थन में पटना में 1938 में 1 लाख किसानों का प्रदर्शन आयोजित किया । किसान सभा के दबाव के कारण विधायिका के जमींदार सदस्यों की सहमति से बकाश्त जमीनों के लिये एक फार्मूला तैयार किया गया जिसमें कुछ खास वर्ग की जमीनों की छोड़ कर बकाश्त जमीनों का एक भाग किसानों को भूमि के नीलामी मूल्य के आधे भुगतान पर प्राप्त हो सकता था। किसान सभा के नेतृत्व को निश्चित ही यह फार्मूला स्वीकार नहीं था और उन्होंने इसके विरूद्ध आंदोलन का फैसला किया। 1938 में कार्यानन्द शर्मा के नेतृत्व में चल रहे मुंगेर जिले में बड़हिया ताल के संघर्ष के साथ ही बकाश्त आंदोलन प्रारम्म हुआ । गया जिले के रेवड़ में किसानों का नेतृत्व यदुनन्दन शर्मा ने किया और जिला मजिस्ट्रेट से विवादित 1000 एकड़ जमीन में से 850 एकड़ जमीन किसानों को केवल पुराना लगान अदा करने की शर्त पर वापस करवाने की घोषणा कराने में सफल रहे। इससे दूसरी जगहों के किसान प्रेरित हुये राधोंपुर, देकुल, सारन, अम्बवारी, पंडोल आदि में सहजानन्द सरस्वती, जमुना कार्यी और राहुल सांकृत्यायन के नेतृत्व में किसानों ने संघर्ष किया ।इसमें बकाश्त भूमि पर सत्याग्रह के साथ ही उस पर जबर्दस्ती फसलों की बुवाई तथा कटाई की गयी और कई स्थानों पर जमींदार के लठैतों और किसानों के बीच हिंसक संघर्ष भी हुये ।जमींदार के आदमी किसानों की सभायें भंग करने के साथ उन पर हमला कर के आतंक पैदा करते ।पुलिस भी किसानों तथा किसान सभा के कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर जमींदारों का साथ दे रही थी परन्तु किसानों का संघर्ष लगातार व्यापक होता जा रहा था। यह आंदोलन 1939 तक अपने शीर्ष पर था ।जिसका जनाधार लगातार बढ़ रहा था परन्तु अगस्त 1939 में सरकार द्वारा किसानों को कई सुविधाओं की घोषणा और लगभग 600 प्रमुख कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी के कारण धीरे–धीरे यह आंदोलन शिथिल हो गया परन्तु लगभग आधे से अधिक बकाश्त जमीनें बकाया लगान अदा करने पर किसानों को वापस मिल गयीं ।

1.8 स्वतंत्रता की पूर्व संध्या पर किसान आंदोलन:

अखिल भारतीय किसान सभा के गठन के पश्चात् उसके तत्वाधान में विभिन्न प्रान्तीय इकाइयों ने किसानों के स्थानीय तथा राष्ट्रीय सवालों पर कई आंदोलन किये परन्तु अधिकतर उनकी प्रकृति स्थानीय थी। किसान सभा ने आंदोलनात्मक गतिविधियों के अतिरिक्त अपने

कार्यकर्ताओं के विचारात्मक प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण शिविर आयोजित किये ।स्वतंत्रता की पूर्व संध्या पर आंध्र, केरल तथा बंगाल प्रान्तों में तीन व्यापक और संगठित किसान आंदोलन हुये जिन की चर्चा यहाँ की जायेगी।

1.8.1 तेभागा आंदोलन

यह आंदोलन मुख्यत : बंगाल के पूर्वी भाग में (वर्तमान बंगलादेश के क्षेत्र में) 1946 के उत्तरार्ध में हुआ और नवम्बर 1946 से फरवरी मार्च 1947 तक पूरी तीव्रता से चला। अब तक बहुत से आदिवासी किसान जमींदारों (जिनमें अधिकतर मुसिलम जमींदार थे) की जमीन पर बटाईदार के रूप में काम करते थे और उपज का आधा भाग जमीन के बदले जमींदारों को देते थे ।बंगाल किसान सभा के आहवान पर त्रिपुरा जिले के हसनाबाद के किसानों ने घोषणा की कि अब से वे उपज का आधा नहीं बल्कि एक तिहाई हिस्सा ही जमींदारों को देंगे और बटवारे के पहले फसल जमींदार के नहीं अपने खलिहान में रखेंगे ।इस घोषणा का दिनाजपुर, रंगपुर, जलापाईगुड़ी, मैमन सिंह, मिदनापुर तथा खुलना के किसानों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा और उन्होंनें भी इसके प्रति अपना समर्थन और प्रति बद्धता प्रकट की ।यह माँग करने वाले सब से पहले राजवंशी क्षत्रिय आदिवासी किसान थे परन्तु शीघ्र ही हजोगं, संथाल, उरॉव ताथ मुस्लिम किसानों ने भी इससे अपनी एकजुटता व्यक्त की ।हजोंग आदिवासी किसान लगान उपज के रूप में नहीं नगद लिये जाने की माँग भी कर रहे थे ।बंगाल के भूराजस्व आयोग (फ्लाउड कमीशन) की रिपोर्ट से भी इन किसानों को प्रोत्साहन मिला जिसने अपनी रिपोर्ट में आधे के स्थान पर एक तिहाई ही जमींदारों के हिस्से की सिफारिश की थी ।किसान सभा के नेतृत्व में किसानों ने उपज का दो तिहाई अपने पास रखने का प्रयत्न किया और जमींदारों के लठैतों का साहसपूर्वक प्रतिरोध किया ।पुलिस द्वारा जमींदारों का पक्ष लेने के कारण कई स्थानों पर संघर्ष ने हिंसात्मक स्वरूप भी ले लिया।

बंगाल की सुहरावर्दी के नेतृत्व वाली तत्कालीन मुस्लिम लीग सरकार ने 22 जनवरी 1947 कोलकत्ता गजट में ' बंगाल वर्गादार अस्थायी नियमन विधेयक " प्रकाशित किया ।इससे किसानों को अपने आंदोलन तथा अपनी माँगो की वैधानिकता में विश्वास पैदा हुआ और उन स्थानों में भी आंदोलन का प्रसार हुआ जहॉ अभी तक इसका कोई चिन्ह नहीं था । आंदोलन के व्यापक और उग्र होते जाने और साम्यवादियों का आंदोलन पर पूर्ण नियंत्रण होने के कारण सरकार की सहमति से पुलिस ने इस के दमन का निर्णायक प्रयास किया । आंदोलन के प्रसार वाले जिलों में कई स्थानों पर हिसक संघर्ष हुये । खानपुर में दमन का प्रतिरोघ करते हुये 20 किसान कार्यकर्ता मारे गये । नवम्बर से फरवरी 1947 तक तीव्रता से चलने वाले आंदोलन में फरवरी से ठहराव आने लगा और मार्च तक घोर दमन के बीच आंदोलन समाप्त हो गया ।इस आंदोलन के नेताओं में अवनी लाहिड़ी, भवानी सेन, मोनी सिंह, सुनील सेन, अनन्त सिंह आदि प्रमुख थे। 22 जनवरी 1947 को प्रकाशित विधेयक को पारित कराने में मुस्लिम लीग सरकार ने कोई रूचि नहीं ली। 1950 में कांग्रेस की सरकार ने वर्गादार विधेयक पारित किया जिस में इस आंदोलन की माँगों को वैधानिक स्वरूप दिया गया।

1.8.2 तेलंगाना किसान आन्दोलन

किसानों का सशस्त्र विद्रोह निजाम की हैदराबाद रियासत के तेलंगाना क्षेत्र में हुआ जिसकी जनसंख्या लगभग 80 लाख थी। जबर्दस्ती वसूली के विरूद्ध तेलगूभाषी किसानों का आंदोलन दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान शुरू हो गया था तथा 1946 तक नालगौडा जिले के बड़े भाग में फैल गया था ।किसान विद्रोह का तात्कालिक कारण गल्ला वसूली विरोधी आंदोलन तथा किसान सभा के प्रमुख कार्यकर्ता कमरथ्या की पुलिस द्वारा हत्या थी। उसके शव को लेकर किसानों ने एक बड़ा जुलूस निकाला जिस पर पुलिस और निजाम के अर्धसैनिक रजाकारों ने हमला किया जिसका किसानों नें प्रतिरोध किया ।संख्या में कम होने के कारण पुलिस और रजाकारों ने भाग कर जमींदार के घर शरण ली । उत्साहित किसानों ने विद्रोह कर सूर्यपेट तालुके के कई गाँवों पर अधिकार कर लिया और जमींदारों तथा उनके लठैतों पर हमले किये। प्रारम्भ में स्वत : स्फूर्त विद्रोह का नेतृत्व आंध्र महासभा के कम्यूनिस्ट कार्यकर्ताओं ने किया । निजाम सरकार ने विद्रोह दबाने के लिये सैनिक और रजाकार भेजे तथा किसानों ने आत्मरक्षा और जमींदारों के विरूद्ध सशस्त्र कार्यवाही के लिये "दलम " संगठित किये ।जमींदारों पर आक्रमण कर उन्हें मार भगाया गया और उनकी जमीन किसानों और भूमिहीनों खेत मजदूरों में बाँट दी गयी। 1947 में किसानों के इस विद्रोह ने और व्यापक स्वरूप ग्रहण कर लिया । जमींदारों को भगाने के बाद मुक्त कराये गये गावों में "दलम " के कार्यक्रर्ताओं ने प्रशासन के लिये पंचायतों की स्थापना की तथा सबको श्रम के अनुरूप उचित भाग देने की व्यवस्था की । अपनी वर्गीय माँगों के लिये संघर्ष करते हुए किसान विद्रोहियों ने हैदराबाद रियासत के भारतीय संघ में विलय की माँग की । हैदराबाद की पुलिस कार्यवाही के बाद संघ में विलय के बाद भी यह सशस्त्र आंदोलन लगातार विस्तृत और व्यापक होता गया और जमींदारों के लिए सुरक्षित अपने घरों में रहना भी कठिन हो गया। अन्तत : 1951 में तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने सेना की सहायता ली और इसका दमन करने में सफल हुई । सैकडों कम्यूनिस्ट कार्यकर्ता और किसान सशस्त्र संघर्ष में मारे गये और हजारों को गिरफ्तार कर लिया गया और प्रमुख नेताओं सी. राजेश्वर राव तथा सुदरैय्या आदि को लंबे समय तक कारावास में रखा गया।

1.8.3 पुन्नप्रा–वायलार आंदोलन

सांमती जुल्म और त्रावनकोर के दीवान सी पी. रामस्वामी अय्यर की अमरीकी प्रशासन पद्धति के विरूद्ध यह किसानों तथा मजदूरों का संयुक्त संघर्ष था जिसमें खेतिहर मजदूरों और नारियल की रस्सी बनाने वाले कारखानों के मजदूरों की प्रमुख भागीदारी थी। आंदोलन का प्रारम्भ अलेप्पी जिले के अंवालापुंजा और शेरतल्लई ताल्लुकों में अक्टूबर 1946 में हुआ और शीघ ही सामंत विरोधी सशस्त्र संघर्ष में बदल गया । युद्ध के बाद जीवनोपयोगी वस्तुओं तथा अन्न तक मिलने मैं कठिनाई के कारण किसानों–मजदूरों ने वार्ड कमेटिया गठित कर इनकी पूर्ति के लिये आम हड़ताल आयोजित की। इस हड़ताल के विरूद्ध त्रावनकोर रियासत ने दमन का मार्ग अपनाया तथा कई स्थानों पर सेना तथा रिजर्व पुलिस तैनात कर दी। जुलूसों हड़तालों पर प्रतिबन्ध लगाया गया और समाचार पत्रों को बिना अनुमति के समाचार प्रकाशित करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया

गया । दमन का मुकाबला करने के लिये त्रावनकोर ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने आम हड़ताल का नारा दिया और 22 अक्टूबर 1946 से हड़ताल प्रारम्भ हो गयी । किसानों–मजदूरों ने सुरक्षात्मक सशस्त्र दस्ते संगठित किये गये और उन्हें कामचलाऊ सैनिक शिक्षा भी दी गयी। 24 अक्टूबर को उनकी सशस्त्र भीड़ ने पुन्नप्रा पुलिस थाने पर हमला कर 9 राइफलें छीन ली जिसके कारण 25 अक्टूबर को मार्शल ला लागू किया गया। 27 अक्टूबर को आन्दोलन के प्रमुख केन्द्र बायलार के किसान शिविर पर सेना के आक्रमण का यद्यपि किसानों ने प्रतिरोध किया परन्तु 800 किसानों–मजदूरों के मारे जाने के बाद शिविर पर सेना का अधिकार हो गया।

1.9 जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के प्रयत्न

अखिल भारतीय किसान सभा अपने गठन के साथ ही बिना मुआवजे के जमींदारी प्रथा की समाप्ति की माँग कर रही थी ।इसे उसके प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन में दुहराया गया परन्तु कांग्रेस एक बहु वर्गीय पार्टी थी और जमींदारों को नाराजगी के कारण वह इस प्रथा की समाप्ति की विरोधी थी। यदि इस प्रथा को समाप्त करना अपरिहार्य भी हो जाये तो वह इसके लिये जमींदारों को उचित मुआवजा देने के पक्ष में थी। 1946 में अधिकतर प्रान्तों में कांग्रेस की सरकारें थी और उन्होंने इस समस्या पर विचार के लिये समितियाँ गठित कर इसे टालने का यथा सम्भव प्रयत्न किया ।स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इन समितियों ने अपनी रिपोर्ट दी जिसमें सरकारों की इच्छा के अनुरूप जमीदारों को उचित और पर्याप्त मुआवजा देने के बाद ही जमींदारी समाप्त करने की सिफारिश की गयी ।इन समितियों की सिफारिशों को ध्यान में रखते हु ए विभिन्न प्रदेश सरकारों ने 1950– 1952 के कालखंड में औपचारिक रूप से जमींदारी प्रथा की समाप्ति की घोषणा की परन्तु जमींदारों को इससे कोई नुकसान नहीं हु आ और अपने शानदार संघर्षो के बाद भी किसानों को वह सब नहीं मिला जो उन्हें मिलना चाहिए था या जो उनकी अपेक्षा थी।

1.10 सारांश

भारत की अर्थव्यवस्था सदियों से कृषि पर आधारित रही है और इसीलिये किसान भारतीय समाज का मुख्य तत्व रहा है। राजस्व की अधिक माँग और भूस्वामित्व का अभाव किसानों के असंतोष के प्रमुख कारण थे। अंग्रेजी 'राज ' के काल में किसानों की हालत लगातार बिगड़ती जा रही थी जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप किसानों ने विद्रोह किया। 1857 के पूर्व तथा उसके बाद के बिहार आदिवासी तथा बंगाल के नील उत्पादक किसानों का विद्रोह किसान आंदोलन की प्रथम अभिव्यक्ति थे। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में किसान आन्दोलन अपेक्षाकृत अधिक संगठित और व्यापक थे जिसका सबसे अच्छा उदाहरण था अवध के किसानों को स्वत: स्फूर्त आंदोलन ।भारत आगमन के पश्चात् महात्मा गांधी नें भी सबसे पहले चंपारण के उगाने वाले किसानों की समस्या के संदर्भ में सक्रिय हस्तक्षेप किया। विभिन्न क्षेत्रीय किसान संगठनों की गतिविधियों मे संयोजन की आवश्यकता अनुभव करते हु ये प्रमुख किसान नेताओं ने लखनऊ में कांग्रेस के अधिवेशन के दौरान 11 अप्रैल 1936 को अखिल भारतीय किसान सभा गठित की जिसकी सबसे प्रमुख माँग जमींदारी प्रथा का उन्मूलन थी। किसान सभा के गठन में कांग्रेस समाज वादी पाटी और कम्यूनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं ने नेतृत्वकारी भूमिका निभायी

और विभिन्न प्रान्तों में स्थानीय तथा वर्गीय माँगों को लेकर जुझारू संघर्ष आयोजित किये जिन में बिहार का ' 'बकाश्त '' आंदोलन प्रमुख है ।स्वतंत्रता की पूर्व संध्या पर भारत के पूर्वी तथा दक्षिणी भाग में संगठित तथा सशस्त्र किसान आंदोलन हुये जिन्होंने बढ़ती हुई किसान चेतना और संघर्ष क्षमता को रेखांकित किया। इनमें तेलगांना का किसान विद्रोह किसान आंदोलन का सबसे गौरवशाली अध्याय था ।यहाँ किसान 1946 से 1951 तक सशस्त्र संघर्ष राज्य की हिंसा के विरूद्ध चलाते रहे और यह सेना के हस्तक्षेप के बाद ही समाप्त हो सका ।स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न राज्य सरकारों ने जमींदारी समाप्ति की समस्या पर समितियाँ गठित की जिनकी सिफारिशों के आधार पर मुआवजा देकर जमींदारी समाप्ति का निश्चय गया।

1.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. आदिवासी किसानों के विभिन्न विद्रोहों का वर्णन कीजिये।
2. चम्पारण के किसान आंदोलन में गांधी जी की भूमिका का मूल्यांकन करिये।
3. अवध के किसान आंदोलन की समीक्षा कीजिए।
4. अखिल भारतीय किसान सभा के गठन की परिस्थितियों और संगठन का वर्णन कीजिए।
5. तेभागा और तेलंगाना किसान आंदोलनों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

1.12 संदर्भ ग्रन्धों की सूची:

1. एरिक स्ट्रोक्स - पीजेन्ट्स ऐंड दी राज।
2. माजिद एच. सिद्दीकी - एग्रेरियन अनरेस्ट इन नार्दन इंडिया : दी यूनाइटेड प्राविन्सेस (1918 – 22)
3. कपिल कुमार - पीजेन्ट्स इन रिवोल्ट:टीनेन्ट्स, लैडलॉर्ड्स ऐंड दी राज इन अवध 1886–1992
4. ए. आर. देसाई (संपादक) पीजेंट स्ट्रगल्स इन इंडिया
5. सुनील सेन - एग्रेरियन स्ट्रगल इन बंगाल।
6. के. एन. पनिक्कर - पीजेन्ट रिवोल्टस इन मालावार इन नाइन्टीन्थ ऐंड ट्वेटीथ सेंचुरीज।
7. महेन्द्र प्रताप - उत्तर प्रदेश में किसान आंदोलन
8. एन. जी. रंगा - फाइट फार फ्रीडम – आटोबायोग्राफी
9. अयोध्या सिंह - भारत का मुक्ति संग्राम
10. बिपिन चन्द्र (संपादक) - भारत का स्वतंत्रता संघर्ष

इकाई–2

अंग्रेजी शासन काल के अन्तर्गत भारत में कृषीय संरचना

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 अंग्रेजी शासन की स्थापना से पूर्व कृषि संरचना का स्वरूप

2.3 भारत की आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था में कृषकों की स्थिति

2.4 अंग्रेजी शासन काल के अन्तर्गत कृषि संरचना (1764 ई. से 1947 ई)

2.4.1 द्वेध शासन के अन्तर्गत कृषि संरचना

2.4.2 स्थाई बन्दोबस्त व्यवस्था और कृषि संरचना

2.4.3 रैयतवाड़ी व्यवस्था एवं कृषि संरचना

2.4.4 महलवाड़ी व्यवस्था में कृषि संरचना

2.4.5 बैटिक व कर्जन के शासन काल में कृषि संरचना का विकास

2.5 कृषि संरचना का प्रभाव

2.6 सारांश

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

2.0 उद्देश्य:

इकाई के अन्तर्गत आप अध्ययन करेंगे कि :

- कृषि भारतीय अर्थ व्यवस्था का प्रमुख अंग रहा है जिसमें विभिन्न परिस्थितियों एवं कालों में परिवर्तन के स्वरूप को प्रोत्साहन मिला।
- भारत की कृषि, कृषकों के स्तर व ढांचे में निरन्तर परिवर्तन की स्थिति उत्पन्न होती रही, जिस क्षेत्र में ब्रिटिश शासन काल के विशेष संदर्भ में अव्यवस्था की स्थिति को प्रोत्साहन मिला। इस स्थिति ने कृषकों में असंतोष व विद्रोह की स्थिति उत्पन्न की।
- इकाई के अन्तर्गत आप यह अध्ययन करेंगे कि भारत में 1764 ई में बंगाल प्रान्त में अंग्रेजी शासन की स्थापना के समय एवं उसके पश्चात् कृषि व्यवस्था का क्या स्वरूप बना रहा।
- आप यह अध्ययन करेंगे कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भूमि व्यवस्था का किस प्रकार उदभव हुआ एवं कृषि संरचना किस प्रकार रही ।
- इकाई में यह भी स्पष्ट किया गया है कि ब्रिटिश शासन काल में भारत का किस प्रकार आर्थिक व सामाजिक इतिहास रहा तथा कृषकों की स्थिति का क्या स्वरूप था ।

- इकाई में आप यह अध्ययन करेंगे कि अंग्रेजी शासन की स्थापना से लेकर भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति तक कृषकों के जमींदारों, साहूकारों, सरकार के साथ किस प्रकार के संबंध रहे।
- इकाई के अन्तर्गत यह तथ्यपूर्ण ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है कि भारत में विभिन्न वर्गों से संबंधित कृषकों का सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन की दृष्ठि से क्या योगदान रहा तथा उन्होंने अन्याय व शोषण के विरूद्ध क्या कदम उठाए ।
- अन्त में यह विश्लेषणात्मक अध्ययन करेंगे कि कृषि व्यवस्था का आधुनिक भारतीय इतिहास में कृषि व अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में क्या प्रभाव हुए।

2.1 प्रस्तावना :

कृषि की व्यवस्था एवं संरचना, अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग है। भारत में कृषि की व्यवस्था प्राचीन काल से ही अर्थव्यवस्था का आधार बनी रही है। इस व्यवस्था में मानव सभ्यता के विकास से लेकर वर्तमान समय तक विभिन्न परिवर्तनों एवं स्वरूपों को प्रोत्साहन मिला। कृषि संरचना निरंतर रूप में परिवर्तित होती गयी । अंग्रेजी शासन काल में स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तनों को प्रोत्साहन मिला था।

भारत में प्रमुख रूप से कृषि का षड्यंत्र पूर्ण इतिहास रहा। विद्वानों ने अपने विवरणों में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भूमि व्यवस्था तथा सामाजिक के उद्भव का लेखाजोखा प्रस्तुत किया है। इस क्षेत्र में भारतीय सामाजिक ढांचे में कृषकों की स्थिति व उनके स्थान ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक विवेचन महत्वपूर्ण आधार माना जाता है। इसी प्रकार कृषि अर्थव्यवस्था तथा राजनैतिक प्रणाली भी इसका प्रमुख अंग रहा है। कृषि संरचना में इस विचार धारा का स्पष्टीकरण किया जाना कि भारत में कृषकों के विभिन्न वर्गों के द्वारा अन्याय, शोषण व अत्याचार से मुक्ति प्राप्त करने, उनका विरोध करने, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक व्यवस्था के निर्माण करने में महत्वपूर्ण विवेचना मानी जाती है।

2.2 अंगेजी शासन की स्थापना से पूर्व कृषि संरचना का स्वरूप

भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना से पूर्व मुख्यतः मुगल सम्राटों का शासन एवं प्रशासन का स्वरूप विद्यमान था। यह मुगलकाल 15 वीं शताब्दी से लेकर 18 वीं शताब्दी तक निरन्तर रूप में बना रहा। मुगल काल में प्रमुख रूप से मुगल सम्राट अकबर के शासन काल के अन्तर्गत कृषि व्यवस्था के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किए गए थे।

मूरलैंड की तथ्यपूर्ण धारणा से यह सत्यता पूर्ण प्रमाणित होता है कि मुस्लिम युग में भारतीय राजनीति के अन्तर्गत तीन महत्वपूर्ण अंग थे– 1- सार्वभौमि शासनकर्ता 2– सेना, जिन्होंने शासन को समर्थन दिया 3– कृषक।

मुगलकाल में कृषक अपनी भूमि के उत्तराधिकारी स्वामित्व के अधिकारों का उपयोग करते थे, कभी कभी भूमि को बेचा जाता था। कृषक उस भूमि का राजस्व किराया, नगर रूप में अथवा उत्पादन के हिस्से के रूप में भुगतान किया करते थे। परिणाम स्वरूप कृषकों को उनके

स्वामित्व अधिकार से वंचित नहीं किया जाता था। भूमि पर खेती करना सामाजिक कार्य के रूप में माना जाता था । इसके कारण कृषकों के अधिकारों को हमेशा स्वीकृति प्रदान की जाती थी। इस क्षेत्र में कृषकों के द्वारा जमींदारों का विरोध किया गया, लेकिन यह सीमित रहा। फसल का हिस्सा अथवा भूराजस्व का निर्धारण निश्चित होता था, जिससे कि एकत्रित करने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो । यद्यपि इस व्यवस्था को सख्ती से लागू किया गया था तथापि राजनीतिक अस्थिरता, आर्थिक व सम्प्रभुत्ता के संकट की स्थिति में व्यवस्था के नियमों का उल्लंघन किया गया था।

मुगल काल में जब भी ऐसा प्रतीत हुआ कि शक्ति कमजोर हो गई, उस स्थिति में महत्वाकांक्षी जमींदारों व स्थानीय सरदारों ने मुगल सम्राट के विरूद्ध विद्रोह किए। इस कार्य हेतु जमींदारों ने कृषकों का सहयोग प्राप्त किया। अकबर के शासन काल के पश्चात इस प्रकार के विद्रोह निरन्तर रूप में बढ़े तथा औरंगजेब के शासन काल में 17 वीं शताब्दी में ये विद्रोह अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुके थे । इस दृष्टि से 1669 ई. से 1722 ई. तक दिल्ली के निकट आगरा धौलपुर क्षेत्र में जाटों के विद्रोह प्रमुख रूप में हुए। ये संघर्ष केन्द्रीय सत्ता तथा मध्यस्थों के बीच बना रहा। मध्यस्थों को कृषकों द्रारा सहयोग व समर्थन प्राप्त हुआ। लेकिन इस समय कृषकों को उनके उद्देश्यों में सफलता नहीं मिली। कृषकों को इस समय उन स्थानों पर पलायन करना पड़ा जहां कि खेती करने की पूर्ण संभावनाएं थी।

मुगल शासन काल में समस्या यह थी कि कृषकों को अत्यधिक कृषि उत्पादन के लिए किस प्रकार प्रोत्साहित किया जाए। मुगल सम्राटों की राजस्व प्रत्यक्ष रूप में अनुपात में हुआ करती थी। इसी प्रकार कृषकों का भूमि पर कानूनी अधिकार होने की तुलना में उन्हें भूमि पर खेती करने का अधिकार दिया जाना अत्यधिक महत्वपूर्ण था।

मुगल काल में लोगों का सामाजिक जीवन विभिन्न व्यवस्थाओं अथवा गाँवों में संगठित हुआ करता था। इन गाँवों के अधिकांश संगठनों में एक ही सम्प्रदाय के लोग निवास किया करते थे। सामाजिक व्यवस्था और भूमि की जोत एक दूसरे से जुड़े हुए थे। सामान्यत: भूमि सम्प्रदाय के स्वामित्व व्यवस्था पर आधारित थी। मुगल सम्राटों ने जब अपने स्थानीय सरदारों व राजाओं के क्षेत्रों में परिवर्तन की नीति को अपनाया उसके परिणाम स्वरूप ग्रामीण समुदाय के केन्द्रीय शक्ति के साथ राजस्व के फलस्वरूप जुड़ गया। परिणाम स्वरूप ग्रामीण समाज में बाहरी राजस्व व्यवस्था के कारण गतिरोध, असंतोष एवं विद्रोह के बीज इस समय से बो दिए गए थे।

प्रोफेसर हबीब ने चार विभिन्न प्रकार की कृषक श्रेणियों का उल्लेख मुगल काल का किया है

1– जमींदार 2– धनिक कृषक 3– निर्धन कृषक 4– भूमिहीन मजदूर अथवा कृषक।

मुगलों के अन्तर्गत कृषि उत्पादन का तरीका पिछड़ा हुआ था । सिंचाई के उद्देश्य से नहरों का निर्माण कुछ ग्रामीण क्षेत्रों मे नहीं किया गया था। संगठित बाजारों की संख्या बहुत कम थी। इसी प्रकार आवागमन और ऋण सुविधाओं की भी कमी थी।

2.3 भारत की आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था में कृषकों की स्थिति :

भारतीय सभ्यता के उद्भव के साथ आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख रूप में विकास हुआ। आर्थिक क्षेत्र में कृषि मुख्य व्यवसाय रहा। अधिकांश लोग यद्यपि अन्य उद्योग धंधे व व्यवसाय किया करते थे लेकिन. कृषि कार्य अधिकाधिक संख्या में किया करते थे। इस क्षेत्र में कृषक कृषि संबंधी कार्य किया करते थे तथा वर्तमान में भी उनका यह प्रमुख कार्य है। सामाजिक व्यवस्था के क्षेत्र में यद्यपि विभिन्न वर्गों का उदय हुआ लेकिन कृषक वर्ग उल्लेखनीय वर्ग रहा, जिसके द्वारा कृषि उत्पादन कर आम लोगों के लिए खाद्य सामग्री उपलब्ध होना संभव होता है। यद्यपि इस वर्ग का समाज में निम्न व शोषण पूर्ण स्थान रहा तथापि इस वर्ग की अर्थ–व्यवस्था में उल्लेखनीय स्थिति रही ।

डेनियल थोर्नर ने कृषकों की सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से तीन महत्वपूर्ण श्रेणियों का उल्लेख किया है ।

[1] भूमि से प्राप्त होने वाली आय का प्रकार – (अ) लगान (ब) स्वयं के उत्पादन से लाभ (स) मजदूरी

[2] अधिकारों की प्रकृति – (अ) स्वामित्व (ब) किराएदार के रूप में (स) फसल के भागीदार (द) किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त न होना।

[3] वास्तविक रूप में किया गया कृषि कार्य – (अ) अनुपस्थित कृषक, जो कोई कार्य नहीं करते थे। (ब) जो कुछ कार्य करते थे। (स) वास्तविक कृषकों के द्वारा किया गया पूर्ण कार्य – जो कि परिवार के सदस्यों के साथ मिलकर किया गया परिश्रम (द) मजदूरी प्राप्त करने के लिए पूर्ण रुप से दूसरों के लिए किया गया कार्य।

उक्त आधार पर थोर्नर ने भारत कृषकों के वर्गगत् ढांचे का माडल, इस रूप में विवेचित किया है:

[1] **मालिक:** इन्हें भूमि पर से मालिकाना अधिकार के रूप में आय, प्राप्त होती थी। मालिक किराएदारों, फसल के भागीदारों से भू राजस्व एकत्रित करते थे। इनमें– बड़े जमींदार व धनवान– जमींदार होते थे।

[2] **किसान:** कृषि कार्य करने वाले कृषक। कानूनी अथवा परम्परागत भूमि पर अधिकार होता था। इनमें छोटे कृषक व किराएदार के रूप में कृषक होते थे।

[3] **मजदूर:** (अ) निर्धन किराएदार कृषक (ब) फसल भागीदार (स) भूमिहीन मजदूर।

रूस व चीन के समाज में जो कृषि संरचना व व्यवस्था का स्वरूप रहा एवं जिसका विवेचन लेनिन व माओ ने किया उसके आधार पर भारत में कृषि संरचना का स्वरूप इस रूप में देखा जा सकता है:–

1– भूस्वामी 2– धनिक कृषक 3– मध्यम कृषक 4– निर्धन कृषक 5– भूमिहीन मजदूर

स्टेटिस्टिकल एब्सट्रेक्टर आफ ब्रिटिश इण्डिया 1943 ई के आंकड़ों के अनुसार भारत में 1931 ई. तक कृषि क्षेत्र में लाभप्रद रोजगारित संख्या:–

व्यवसाय	संख्या	कृषि व्यवसाय मे कार्यरत कृषकों का प्रतिशत	कुल जनसंख्या का प्रतिशत
कृषि जोत लगान वसूली कर्ता, (अकृषिजोत स्वामी)	3,257,391	2.9	2.1
खेतिहर भूस्वामी	27,006,100	26.2	17.5
किराएदार कृषक	34,173,904	33.0	22.2
कृषि मजदूर	31,480,219	31.0	20.5
विशेष उत्पादक फसल कृषक	2,486,717	2.7	1.6
अन्य संपत्ति एजेन्ट–मैनेजर आदि	227,259	0.2	0.1
कुल उत्पादन	98,631,590	96.0	64.0
वन	310,492	0.2	0.2
पशुधन	3,512,065	3.8	2.3
कुलकृषिगत व्यवसाय	102,454,147	100.0	66.5
लाभ के उद्देश्य से	153,916,050	-	-

उक्त तालिका के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि भारत के अधिकांश गरीब किसान किराएदार कृषक की श्रेणी में आते थे। इस दृष्टि से यह कहना स्पष्ट होगा कि 65 से 70 प्रतिशत भारत की कृषि जनसंख्या भूमिहीन थी। उक्त आकड़े भारत की कृषि संरचना के पिरामिड स्वरूप को दर्शाते है । अतः जो कृषक भूमि व अधिकार प्राप्त थे वे संख्या में कम थे। जबकि वे कृषक जो कि वास्तव में भूमि पर खेती करते थे वे ज्यादा थे तथा उन्हें अधिकार प्राप्त नहीं थे।

कृषकों की विभिन्न श्रेणियों की जाति, धर्म आदि के रूप में, सामाजिक संरचना, भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न रूप में विद्यमान थी । इस दृष्टि से भूस्वामी और धनिक भूमिपति उच्च जाति से संबंधित हुआ करते थे। इनमें ब्राह्मण, ठाकुर, बनिए उत्तरी भारत में प्रमुख थे। आन्धप्रदेश में कामा, रेड्डी व राव तथा मैसूर राज्य में – ओक्का, बिग और लिंयागत होते थे। गुजरात क्षेत्र में पट्टेदार एवं महाराष्ट्र में कुंभी, मराठा व देशमुख हुआ करते थे। ये सब स्थानीय भूमि प्राप्त व शक्तिशाली जाति होती थी। गांव के स्तर पर यह वर्ग एक छोटी इकाई का निर्माण करते थे। मध्यम एवं गरीब किसान प्राय: ऋण में दबे हुए होते थे। यह कृषक वर्ग मुख्य रूप में परम्परागत किसान होते थे जिनमें खेती करने वाले कृषक, कारीगर आदि होते थे। जो भूमिहीन मजदूर होते थे वे अधिकांशत: अस्पृश्य जाति–हरिजन आदि से संबंधित होते थे। उदाहरण स्वरूप उत्तर प्रदेश में कृषि कार्य करने वाले वर्ग का विशाल समूह था जिसमें अस्पृश्य जाति– चमार, हरिजन आदि वर्ग से संबंधित कार्य कर्ताओं को कृषि कार्य में लगाया जाता था ।

इसी भांति एक ही जाति अथवा धर्म सम्प्रदाय के कृषक भी कृषि के क्षेत्र में कार्यरत थे। इस वर्ग में से कुछ के पास टुकड़ों में भूमि बिखरे हुए रूप में थी अर्थात कुछ एक स्थान पर, कुछ दूसरे स्थान पर भूमि पर अधिकार हुआ करता था । कुछ कृषकों के पास निर्धारित व निश्चित अवधि के लिए भूमि पर अधिकार होता था । इस दृष्टि से या तो उन्हें स्थाई रूप में अथवा साल दर साल के लिए लीज पर भूमि प्राप्त होती थी।

इस प्रकार समाज व आर्थिक क्षेत्र में कृषक वर्ग तथा उनका आर्थिक स्तर भारतीय कृषीय संरचना में उल्लेखनीय स्थान रखता है ।

2.4 अंग्रेजी शासन काल के अन्तर्गत कृषि संरचना: (1764 ई. से 1947 ई.)

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि बंगाल में सर्वप्रथम 1764 ई. में बक्सर युद्ध में सफलता प्राप्त करने के पश्चात अंग्रेजो ने अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की स्थापना की थी। यद्यपि मुगल सम्राट जहांगीर के द्वारा 1616 ई,. में अंग्रेजों को व्यापारिक कम्पनी के रूप में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना करने का अधिकार प्रदान किया था, जिसके आधार पर कम्पनी केवल व्यापारिक कम्पनी थी और व्यापारिक गतिविधियां कर सकती थी। लेकिन 1764 ई में बंगाल के नबाब मीरकासिम को पराजित करने के पश्चात अंग्रेजों ने बंगाल में कम्पनी के अग्रेजी शासन की स्थापना की थी। इस समय से कम्पनी व्यापारिक कम्पनी होने के साथ–साथ राजनीतिक सत्ता के रूप में भी स्थापित हो गयी थी।

1764 ई. के पश्चात अंग्रेजों ने अपनी हस्तक्षेप, कूटनीति व छलपूर्ण नीति के आधार पर भारत की विभिन्न देशी शक्तियों को पराजित करना प्रारम्भ किया था। तथा अपनी सार्वभौम सत्ता को उन देशी रियासतों में स्थापित किया। परिणाम स्वरूप अंग्रेजों ने 1947 ई. तक भारत में शासन किया ।

अंग्रेजों ने लगभग दो सौ वर्षों तक भारत पर शासन किया एवं उनका प्रभाव बना रहा। इस स्थिति में भारतीय समाज के लगभग सभी क्षेत्रों में परिवर्तन को संभव बनाया।

2.4.1 द्वेध शासन के अन्तर्गत कृषि संरचना:

1765 ई. में अंग्रेजी कम्पनी को बंगाल के दीवानी अधिकार प्राप्त हुए थे। इस दृष्टि से 12 अगस्त 1765 ई के फरमान के अनुसार मुगल सम्राट शाहआलम ने 26 लाख रूपये वार्षिक के बदले दीवानी का अधिकार अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी को सोंप दिया था। फरवरी 1765 ई. में नजमुदौला मीरजाफर के पुत्र को नवाब बनाने की अनुमति दे दी गई लेकिन शर्त यह थी कि निजामत का लगभग समस्त कार्य कम्पनी के अधीन तथा दीवानी मामले नायब सूबेदार जिसे कम्पनी मनोनीत करेंगी और उसे कम्पनी की अनुमति के बिना हटाया नहीं जा सकेगा, सौप दे। इस प्रकार मुगल सम्राट से अंग्रेजी कम्पनी को दीवानी बंगाली सूबेदार का दायित्व प्राप्त हो गया था।

अंग्रेजी कम्पनी ने दीवानी कार्य के लिए दो उप दीवान - बंगाल के लिए मुहम्मद रजा खां और बिहार के लिए राजा शिताबराय नियुक्त किए। मुहम्मद रजा खां उपनाजिम के रूप में भी कार्य करते थे। इस भांति समस्त दीवानी एवं निजामत का कार्य, भारतीयों द्वारा ही संचालित होता था। इस व्यवस्था हेतु उत्तरदायित्व कम्पनी का हुआ करता था। यह व्यवस्था द्वेध प्रणाली भी कहलाती थी।

अंग्रेजी कम्पनी के शासन काल में कृषि की जो व्यवस्था व ढांचा हुआ उस से भूमि का उपजाऊपन नष्ट हो गया तथा किसान भूखों मरने लगे। कम्पनी ने लगान वसूली करने के उद्देश्य से ठेके की प्रथा को अपनाया। इस व्यवस्था के अनुसार भूमि एक वर्ष के लिए ठेके पर दे दी जाती थी। जो व्यक्ति ठेके पर लेता था वह भूमि की उर्वरता को बढ़ाने व बनाए रखने के लिए कुछ नही करते थे। इसी प्रकार वे कृषको से मनमाना लगान वसूल करते थे। कृषकों पर अत्याचार, शोषण में वृद्धि हुई। अंग्रेजी कम्पनी के कर्मचारियों में धनलोलुपता की प्रवृत्ति विद्यमान थी क्योंकि उन्हें कम्पनी के संचालकों को धन देना होता था। इस धनराशि की वसूली हेतू अंग्रेज कर्मचारी किसानों से अधिकाधिक लगान वसूल करने के लिए बाध्य होते थे। भूराजस्व वसूली हेतू नायब दीवान असफल रहे परिणाम स्वरूप, उनके स्थान पर अंग्रेजी कम्पनी द्रारा आमिल नामक कर्मचारी नियुक्त किया गया। 1770 ई. में बंगाल मे भयंकर अकाल पड़ा। इस अकाल की स्थिति में भी आमिल कृषकों का शोषण करते रहे। इस स्थिति में किसान व जानवर भूख सें मर गए।

अंग्रेजी गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग ने अपने काल 1772 ई. में भारत विद्यमान कृषि संरचना अथवा व्यवस्था में परिवर्तन की नीति को अपनाया। इस वर्ष बंगाल में विद्यमान द्वैध प्रणाली को समाप्त कर दिया गया। वारेन हेस्टिंग ने मुहम्मद रजा खां तथा राजा शिताबराय को पदच्युत कर दिया। इस समय कलकत्ता परिषद और उनके प्रधान को राजस्व बोर्ड की स्थापना की गयी। बोर्ड के द्रारा कर वसूली हेतु संग्राहक नियुक्त किये गए, जिनका मुख्य कार्य कर व्यवस्था कों सुचारू बनाना था। अंग्रेजी कम्पनी का कोष मुर्शिदाबद से कलकत्ता लाया गया।

वारेन हेस्टिंग ने समस्त भूमि का स्वामी कंपनी को माना। जमींदारों को केवल कर संग्रहकर्ता ही माना, जिन्हें कृषकों से भूराजस्व एकत्रित करने के लिए अधिकार प्रदान किया गया।

वारेन हेस्टिंग के शासन काल में प्रारम्भ में 1772 ई में भूराजस्व एकत्रित करने के अधिकार ऊँची बोली वाले को पांच वर्ष के लिए नीलाम कर दिए थे। 1773 ई. में भूराजस्व संग्रह की व्यवस्था में कुछ परिवर्तन किए गए। कम्पनी ने भ्रष्ट तथा नीजि व्यापार में लगे कलक्टरों को पदच्युत किया तथा उनके स्थान पर जिलों में भारतीय दीवान नियुक्त किए गए। उनका कार्य निरीक्षण करने के लिए 6 प्रान्तीय परिषदें नियुक्त की गयी। ये सभी कलकत्ता स्थित राजस्व समिति के अधीन होते थे।

कृषि एवं भूमि के क्षेत्र में यह पंचवर्षीय व्यवस्था असफल रही। ठेकेदारों ने कृषकों का शोषण किया व उनसे अधिकतम कर प्राप्त करने का प्रयास किया। भूमि की क्षमता अधिक मानी जाती थी तथा भूराजस्व कर अत्यधिक निश्चित किया जाता था।

1776 ई में पंचवर्षीय ठेके की समाप्ति पर पुन: **एकवर्षीय** प्रणाली अपनाई गयी तथा भूराजस्व कर एकत्रित करने के अधिकार नीलाम कर दिए गऐ थे। जमींदारों की स्थिति को इस समय अपेक्षाकृत अच्छा समझा गया। कृषकों की स्थिति शोषण पूर्ण बनी रही। 1781 ई. में पुन: इस कृषि व्यवस्था में सुधार किया गया। जिलों में पुन: कलक्टर नियुक्त किए गए, लेकिन उन्हें भूराजस्व कर निश्चित करने का अधिकार नहीं दिया गया था। इस क्षेत्र मे **कानूनगों** पुन: नियुक्त किए गए। कलकत्ता स्थित राजस्व समिति को निरीक्षण का कार्य सौपा गया था।

2.4.2 स्थाई बन्दोबस्त व्यवस्था और कृषि संरचना:

अग्रेंजी गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस के शासन काल में कृषि ढांचे में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। इस क्षेत्र में 1793 ई. में भूमि व्यवस्था को **स्थाई बन्दोबस्त** व्यवस्था के रूप में लागू किया गया। इस व्यवस्था के अन्तर्गत जमींदारों को भूमि का स्वामी मान लिया गया। भूमि के लगान का 8/9 भाग कम्पनी को देना था तथा 1/9 भाग अपनी सेवाओं के लिए अपने पास रखना था। इस व्यवस्था में भूराजस्व की धनराशि स्थाई रूप में निश्चित कर दी गयी जो कि नियमित रूप में समय पर कम्पनी के कोष में जमा कराने की व्यवस्था की गयी थी।

स्थाई बन्दोबस्त व्यवस्था के अन्तर्गत जमींदारों को भूमि पर पूर्णतया स्वामित्व के अधिकार प्रदान किए गए थे। इस व्यवस्था के फलस्वरूप भूमि पर नियंत्रण रखने के क्षेत्र में ढांचागत परिवर्तनों को प्रोत्साहन मिला।

बंगाल के जमींदारों ने ग्रामीण समाज में शक्तिशाली वर्ग का निर्माण किया। भूराजस्व वसूली के अधिकार के फलस्वरूप उनकी स्थिति और मजबूत और सुदृढ़ बन गयी थी। आर्थिक शक्ति व राजनीतिक महत्वता के क्षेत्र में उन्होंने शक्तियां प्राप्त कर ली थी। बंगाल में केन्द्रीय शक्ति व कृषकों के मध्य जमींदार महत्वपूर्ण कड़ी थे। अंग्रेजो की दृष्टि में भूमि की स्थाई बन्दोबस्त व्यवस्था का स्वरूप ब्रिटिश साम्राज्य के निर्माण के लिए वफादार वर्ग का निर्माण करना था। लेकिन यह व्यवस्था कृषकों के दृष्टिकोण से अन्यायपूर्ण थी। इस व्यवस्था ने कृषकों के भूमि पर से प्राकृतिक व स्वामित्व के वास्तविक अधिकार से वंचित कर दिया था।

भूमि के स्थाई बन्दोबस्त व्यवस्था ने कृषकों की स्थिति में किसी भी प्रकार के परिवर्तन को संभव नहीं बनाया था। जमींदारों की स्थिति भी वास्तविक रूप में संतोषजनक नहीं थी। जो जमींदार भूराजस्व की धनराशि का भुगतान करने में असफल रहता था उसके भूमि पर से अधिकार समाप्त कर दिए जाते थे। भूमि के अधिकार नीलाम कर दिए जाते थे। उनके स्थान पर नये जमींदारों को नियुक्त कर दिया जाता था। लेकिन इस समय जमींदारों को यह अधिकार प्राप्त था कि वे जिन कृषकों को भूमि किराए पर दिया करते थे उनसे वे अपनी शर्तों पर व्यवस्था निर्धारित कर सकते थे। इससे कृषकों पर गैर कानूनी करों को लागू किया गया। परिणाम स्वरूप कृषकों के शोषण में वृद्धि हुई। अंग्रेजी शासन काल में इस व्यवस्था के फलस्वरूप कृषकों व सरकार के बीच बहुत से मध्यस्थ उत्पन्न हो गए जो अपना–अपना हिस्सा प्राप्त करने में लग गए थे। इस व्यवस्था से समाज, जमींदार तथा आसामियों, एक दूसरे के

विरोधी दलों में बंट गया था। सामाजिक दृष्टिकोंण से स्थाई भूमि व्यवस्था दोषपूर्ण थी। कम्पनी ने भूपति व किराएदार कृषकों दोंनो के हितों की अवहेलना की थी।

2.4.3 रैयतवाड़ी व्यवस्था एवं कृषि संरचना :

अंग्रेजी शासन काल में कृषि के व्यवस्थागत ढांचे की अन्य उल्लेखनीय विशेषता रैयतवाड़ी भूमि व्यवस्था थी। अंग्रेजी गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग के काल में टामस मुनरों ने 1820 ई. में जब वह मद्रास का गवर्नर बना, उसने मालावार, कन्नड़, कोयम्बटूर, मदुरै तथा डिण्डीगुल क्षेत्रों में रैयतवाड़ी कर व्यवस्था को लागू किया। इस व्यवस्था के अन्तर्गत कृषकों को भूमि का स्वामी माना गया तथा बिना किसी जमींदार अथवा ग्राम समाज के बिचलिए के, सीधे भूराजस्व कर का भुगतान करना होता था। इस व्यवस्था के अर्न्तगत क्सिानों के भूमि पर वंशानुगत अधिकर स्वीकार किए गए। किसान अपनी भूमि को बेच सकता था अथवा भेंट व दान में दे सकता था। तथा गिरवीं रख सकता था।

रैयतवाड़ी व्यवस्था में भूराजस्व कर स्थिर व निश्चित हुआ करता था। मद्रास में इस व्यवस्था को लागू किया गया। प्रत्येक भूमि का कर हमेशा के लिए निश्चित कर दिया गया तथा उसे नकद रूप में वसूल किए जाने की व्यवस्था की गयी। कृषकों को इस बात की स्वतंत्रता भी दी गयी कि वे अपनी इच्छानुसार किसी खेत में फसल का उत्पादन करें अथवा किसी खेत को बिना जोते छोड़ दें। प्रत्येक भूमि को विस्तृत रूप में नाप की गयी। साधारणत: भूमि की लगान दर कम निर्धारित की जाती थी। इस व्यवस्था में बम्बई प्रेसीडेन्सी में रैयतवाड़ी भूमि व्यवस्था को लागू किया गया था। इस व्यवस्था में वास्तविक कर का निर्धारण निश्चित कर दिया गया था। जिसे की तीस वर्ष के लिए निर्धारित किया जा सकता था। इसके पश्चात उसमें पुन: निर्धारण किया जा सकता था। यह परिवर्तन भूमि की किस्म, उत्पादन, भूमि में किए गए सुधार, बचत व लाभ की स्थिति में किया जा सकता था। इस स्थिति के फलस्वरूप कृषक की श्रेणी में किराएदार कृषक, उप किराएदार, फसल भागीदार कृषकों का उद्भव हुआ।

2.4.4 महलवाड़ी व्यवस्था एवं कृषि संरचना:

अंग्रेजी शासन काल में कृषि व्यवस्था के अन्तर्गत भूराजस्व व भूमि की सुचारु व्यवस्था के उद्देश्य से **महलवाड़ी** अथवा **मालगुजारी** प्रणाली को लागू किया गया था। इस पद्धति में गांव को एक इकाई के रूप में स्वीकार किया गया। इस दृष्टि से अवध को छोड़कर संयुक्त प्रान्तों, पंजाब तथा केन्द्रीय प्रान्तों में अपनाया गया। जिन क्षेत्रों में महलवाड़ी व्यवस्था को लागू किया गया था उनमें विभित्र गांव सम्मिलित थे। इन गांवों में एक जाति, कुटुम्बी, उत्तराधिकारी से संबंधित सदस्य निवास किया करते थे। इसलिए भूमि पर कृषि भागीदारी के रूप में की जाती थी। इसमें सम्मिलित स्वामित्व व सम्प्रदाय विशेष की व्यवस्था बनी रहती थी। इस व्यवस्था के अनुसार राजस्व कलक्टर को यह अधिकार दिया गया कि वह पट्टे के भूमिकर का ब्यौरा स्पष्ट लिखने की सुविधा किसानों को प्रदान करें। ऐसे गांवों में जहां जमींदार नहीं है तथा भूमि कर व्यवस्था सीधे किसानों से गांव के आधार पर निर्धारित की जाती थी। कलक्टर को जमींदारों व

किसानों के मध्य झगड़ों व विवादों को सुलझाने का अधिकार प्रदान किया गया। उचित न्याय न मिलने पर कलक्टर उन मुकदमों को दीवानी अदालत में ले जा सकते थे।

अंग्रेजी शासन काल में एल्फिन्स्टन ने पेशवा से प्राप्त किए प्रदेशों की भूमि कर व्यवस्था को भी सुचारू बनाया था। इस दृष्टि से उसने बम्बई में महलवाड़ी तथा रैयतवाड़ी प्रणाली के सम्मिश्रण से इस प्रदेश की भूमि कर व्यवस्था की थी। इस व्यवस्था में कृषक के अधिकार सर्वेक्षण के पश्चात् किए गए तथा भूमिकर के संग्रह आदि का कार्य कुछ वर्षों के लिए पाटिलों को सौप दिया गया।

बंगाल में रैयत के अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए 1822 ई. **बंगाल काश्तकारी अधिनियम** पारित किया गया जिससे यदि रैयत अपना निश्चित किराया आदि देती रहे तो उसे विस्थापित नहीं किया जा सकता था । इसी प्रकार विशेष परिस्थितियों को छोड़कर किराया बढ़ाया नहीं जा सकता था।

2.4.5 बैंटिंक व कर्जन के शासन काल मे कृषि संरचना का विकास:

गवर्नर जनरल विलियम बैंटिंक के शासन काल के अन्तर्गत बंगाल में भूमि कर संग्रहण के लिए प्रभावशाली प्रयास किये गये थे। इस दृष्टि से पश्चिमोत्तर प्रान्त में राबर्ट मार्टिन बर्ड की देखरेख में भूमि की राजस्व व्यवस्था को सुचारू बनाया गया। इस क्षेत्र में बैंटिंक सरकार ने 1822 ई की योजना की पूर्ण रूप से समीक्षा की तथा इस निष्कर्ष पर पहुंची कि इस योजना से लोगों को काफी कठिनाई हुयी है। अत: 1833 ई. के रेग्यूलेशन पारित किए गए जिसके द्वारा भूमि की उपज तथा भूमि का कर का अनुमान लगाने की पद्धति सरल बना दी गयी। इस व्यवस्था में भिन्न–भिन्न प्रकार की भूमि के लिए अलग–अलग औसत भूमिकर निश्चित किया गया इस पद्धति में पहली बार जमीनों के मानचित्र तथा पंजीकरण व्यवस्था को लागू किया गया।

बैंटिंक के काल में लागू की गयी व्यवस्था के अनुसार एक भाग की भूमि का सर्वेक्षण किया जाता था जिसमें खेतों की परिधियां निश्चित की जाती थी। और बंजर तथा उपजाऊ भूमि ,स्पष्ट की जाती थी। इसके पश्चात समस्त भाग का और फिर समस्त ग्राम का भूमि कर निश्चित किया जाता था। भूमि कर का 66% भाग राज्य सरकार का भाग निश्चित किया गया तथा यह व्यवस्था 30 वर्ष के लिए की गयी। इस कर के भाग का पुनरीक्षण लार्ड डलहौजी के शासन काल में किया गया जिसका 50% भाग कर दिए जाने का सुझाव दिया गया था।

लार्ड कर्जन के शासन काल में 1902 ई. में भूमि प्रस्ताव के द्वारा भूमि कर एकत्रित करने में अधिक लचीलापन उत्पन्न करने की योजना निश्चित की गयी तथा उपज न होने पर भूराजस्व कर में छूट अथवा कम करने की व्यवस्था की गयी। यह भी व्यवस्था की गयी कि यदि कर में वृद्धि करनी हो तो यह वृद्धि धीरे–धीरे की जानी चाहिए कृषि उत्पादन बढ़ाने व कृषकों को राहत देने हेतु सिंचाई के साधनों, नहरों के निर्माण की व्यवस्था की गयी **पंजाब भूमि अन्यक्रामण अधिनियम** पारित किया गया, जिससे कृषकों की भूमि का गैर कृषकों के पास हस्तान्तरित होना समाप्त हो गया। 1904 ई. में एक **सहकारी ऋण समिति अधिनियम** पारित

किया गया, जिससे कृषकों को थोड़ी दर पर उधार मिल सकता था। इसी भांति एक महानिरीक्षक के अधीन **साम्राज्य कृषि विभाग** स्थापित किया गया जिससे भारतीय कृषि, पशुधन और कृषि विकास में वैज्ञानिक तरीकों के प्रयोग को बढ़ावा दिया जा सके।

इस प्रकार अंग्रेज जिन्होंने 1947 ई तक भारत में राज किया उनके शासन काल में निरन्तर रूप में कृषक, कृषि, भूमि की व्यवस्था, शोषणपूर्ण, अत्याचार पूर्ण बनती चली गयी। इस स्थिति के कारण किसानों में असन्तोष व विद्रोह का वातावरण बन गया। इस समय जमींदारों, साहूकारों का शोषण अत्यधिक रूप में बढ़ गया था । इस स्थिति में कृषकों ने सरकार, जमींदारों, साहूकारों के विरूद्ध आन्दोलन किए। ये कृषक आन्दोलन भी अंग्रेजी शासन काल में कृषिगत ढांचे का महत्वपूर्ण अंग बन गए थे।

2.5 कृषि संरचना का प्रभाव :

अंग्रेजी शासन काल के अन्तर्गत भारत में कृषि संरचना का जो स्वरूप रहा उसके सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण परिणाम हुए। अंग्रेजी शासन काल में 1764 ई से 1947 ई तक भूमि की व्यवस्था, भूराजस्व की नीति, कृषकों की श्रेणी, वर्ग, उनकी स्थिति, कृषि का स्वरूप, भूमि से संबंधी नियम प्रणालियों का जो परिवर्तित स्वरूप रहा उससे भारत में भूमि कृषक, कृषि व भूराजस्व व्यवस्था अत्यधिक रूप में प्रभावित हुयी।

भारत में कृषि संरचना के परिणाम स्वरूप कृषकों कें प्रति शोषण, अन्याय, अत्याचार, उपेक्षा की नीति, को विशेष बल मिला। उनकी इस स्थिति में सुधार होने के स्थान पर शोचनीय स्थिति बन गयी थी। कृषकों में असंतोष एवं विद्रोह की भावना प्रज्जवलित हुयी क्योकि अंग्रेजी शासन काल में कृषकों के हितों, उद्देश्यों, उनके भूमि पर अधिकार, उचित पारिश्रमिक, आर्थिक लाभ, सामाजिक सुरक्षा आदि के प्रति उपेक्षा की नीति को अपनाया गया। कृषकों को भूमि के प्राकृतिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। जो कृषक किराएदार कृषक थे उनसे अत्यधिक लगान की वसूली की जाती थी। इसमें उनका शोषण भी होता था। इसी प्रकार कृषि संरचना में कृषकों का साहूकारों जमींदारों द्वारा अत्यधिक शोषण किया जाता। सरकार व न्यायालय द्वारा भी उन्हें कोई संरक्षण प्राप्त नही होता था बल्कि जमींदारों व साहूकारों का पक्ष लिया जाता था। कृषकों की इस दयनीय स्थिति के परिणाम स्वरूप कृषकों ने सरकार के विरूद्ध आन्दोलन का सहारा लिया। इस स्थिति के फलस्वरूप भारत में कृषक आन्दोलनों को प्रोत्साहन मिला।

अंग्रेजी शासन काल में भारत में जो कृषि संरचना का विकास हुआ उसके परिणाम स्वरूप कृषि के क्षेत्र में पिछड़ापन और उसके पतन का मार्ग प्रशस्त हो सका। इसका कारण यह था कि अंग्रेजी सरकार ने कृषि के क्षेत्र में विकास संबंधी आवश्यक कदम नहीं उठाए बल्कि उपेक्षा के दृष्टिकोण को अपनाया। अंग्रेजी सरकार भारत में कृषि की उपेक्षा करके इंग्लैण्ड का आर्थिक विकास करना अपना उद्देश्य मानते थे। उन्होंने कृषि उत्पादन में कच्चा माल प्राप्त करके इंग्लैण्ड में उससे उत्पादित माल तैयार करवाकर आर्थिक लाभ कमाते थे। इस स्थिति के कारण भारतीय कृषि का पतन होना प्रारम्भ हो गया। कृषि हेतु उत्तम खाद, बीज, व सिंचाई के साधनों को उपलब्ध न करवाना। कृषि संबंधी यंत्रों, उपकरणों की व्यवस्था पर्याप्त मात्रा में न

करवाना। कृषि के क्षेत्र में अत्यधिक करों की विद्यमानता आदि की स्थिति के परिणाम स्वरूप भारत में कृषि और कृषि उत्पादन में कमी तथा पतन का स्वरूप संभव हुआ ।

भारत में अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत कृषि संरचना में भूराजस्व व्यवस्था तथा इस व्यवस्था हेतु जो प्रणालियां – स्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था, रैयतवाड़ी व्यवस्था, महलवाड़ी व्यवस्था लागू की गयी वे दोष – पूर्ण तरीकों व सिद्धान्तों पर आधारित थी। परिणाम स्वरूप राजस्व वसूली में अव्यवस्था, शोषण, अत्याचार की स्थिति को प्रोत्साहन मिला। अंग्रेजी सरकार को वास्तविक आमदनी प्राप्त नहीं हो सकी जिसके कारण अंग्रेजी सरकार को आर्थिक हानि हुयी। कर्मचारी व अधिकारी भ्रष्ट हो गए तथा कृषकों का आर्थिक शोषण हुआ।

कृषि संरचना के परिणाम स्वरूप कृषि भूमि का भी पतन हुआ। भूराजस्व, व्यवस्था, भूमि का वर्गीकरण, भूमि के संबंध में समय समय पर लागू की गयी नीतियों के कारण भूमि उपविभाजन, अपखण्डन भूमि की उपजाऊपन, उसके स्वरूप में भी परिवर्तन की स्थिति को प्रोत्साहन मिला। सरकार की दोषपूर्ण नीति के कारण भूमि का पर्याप्त व समुचित उपयोग नहीं किया जा सका। इसके परिणाम स्वरूप आर्थिक हानि होने के साथ साथ उत्पादन में भी कमी संभव हुयी ।

अंग्रेजी शासन काल में भारतीय अर्थव्यवस्था अस्त–व्यस्त हो गयी थी। ग्राम पंचायतों के मुख्य कार्य भूमि व्यवस्था समाप्त कर दिए थे। ग्रामों में प्राचीन सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था छिन्न – भिन्न हो गयी थी ।

समाज में जमींदार, साहूकार महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गए थे। ग्रामीण श्रमिक वर्ग जिनमें छोटे–छोटे किसान, भूमिहीन किसान सम्मिलित थे, उनकी संख्या बढ़ गयी थी। अंग्रेजी शासन में कृषि संरचना के कारण परस्पर प्रतिद्वंदिता तथा व्यक्तिवाद को बढ़ावा मिला तथा पूंजीवाद के लक्षण परिलक्षित होने लगे।

उपर्युक्त परिणामों का मिलाजुला एवं अन्ततोगत्वा परिणाम यह हुआ कि भारत के विभित्र क्षेत्रों में संथाल विद्रोह, मोपला कृषक विद्रोह, बारदोली, अवध, तेलंगान कृषक विद्रोह, बंगाल के कृषक आन्दोलन, तेलंगाना कृषक विद्रोह आदि कृषक आन्दोलनों को प्रोत्साहन मिला।

2.6 सारांश

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश शासनकाल के अन्तर्गत भारत की कृषि संरचना किस रूप में विद्यमान थी। भारत में अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बंगाल प्रान्त में सर्वप्रथम 1764 ई. में शासन की स्थापना के साथ भूमि, भूराजस्व व कृषकों के प्रति नीति का स्वरूप. प्रारम्भिक रूप में देखने को मिलता है। इस दृष्टि से 1947 ई. तक भारत में जो बंगाल के गवर्नर, गवर्नर – जनरल, भारत के गवर्नर जनरल तथा 1858 ई. से 1947 ई तक जो अंग्रेजी वायसराय हुए उनकी भारत की कृषि, भूमि, भूराजस्व व्यवस्था, कृषकों के प्रति नीति का भिन्न – भिन्न रूपों में दृष्टिकोण तथा नीति का स्वरूप बना रहा।

अंग्रेजी सरकार ने भूमि की स्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था, रैयतवाड़ी व्यवस्था, महलवाड़ी व्यवस्था आदि प्रणालियों को कृषि व्यवस्था के क्षेत्र में प्रमुख रूप में लागू किया। इन

व्यवस्थाओं के फलस्वरूप गुण व दोषों का भारतीय कृषक व्यवस्था व ढांचे को निर्धारित करने में सक्रिय योगदान रहा।

कृषि के व्यवस्थागत ढांचे के स्वरूप का विश्लेषणात्मक ऐतिहासिक विवेचन को देखने से यह भी स्पष्ट होता है कि अंग्रेजी शासन काल में अंग्रेजों की यह नीति स्वार्थ व व्यक्तिगत लाभ पर आधारित थी। इन व्यवस्थाओं के परिणाम स्वरूप कृषि व्यवस्था का पतन हो गया। कृषकों की स्थिति में गिरावट, कृषकों के साहूकारों, जमींदारों व अंग्रेजी सरकार के साथ गतिरोध पूर्ण संबंध स्थापित हो सके।

अंग्रेजी शासन काल में जो कृषि व्यवस्था स्थापित हुयी, उससे कृषकों के प्रति अत्याचार, शोषण की स्थिति काफी बढ़ गयी थी। इस स्थिति के कारण उनमें असंतोष एवं विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हुयी। इस परिस्थिति में उन्होंने आन्दोलन की नीति को अपनाया, परिणाम स्वरूप भारत में विभिन्न कृषक आन्दोलनों का प्रादुर्भाव हुआ ।

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न– 1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर पांच पंक्तियों में लिखिए:

1 कृषि संरचना से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2 भारत की सामाजिक व्यवस्था में कृषकों की स्थिति का अंग्रेजी शासन काल के विशेष संदर्भ में उल्लेख करें।

.....

.....

.....

.....

3 अंग्रेजी शासन काल के संदर्भ में कृषकों की आर्थिक स्थिति का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4 अंग्रेजी शासन काल के पूर्व कृषि व्यवस्था के स्वरूप की विशेषताएं बताइये।

.....

.....

.....
.....
.....

5 1765 ई. में बंगाल में अंग्रेजों की भूराजस्व व्यवस्था का वर्णन कीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....

6 अंग्रेजी गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग के काल में कृषि व्यवस्था की विशेषताएं लिखिए।

.....
.....
.....
.....
.....

7 भूमि के स्थायी बन्दोबस्त का अर्थ व व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....

8 रैयतवाड़ी व्यवस्था की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....

9 महलवाड़ी भ्रम व्यवस्था के स्वरूप को स्पाट कीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....

10 भारत में बैंटिक के शासन काल में की गयी कृषि व्यवस्था का विवेचन कीजिए।

.....

.....
.....
.....
.....

11 लार्ड कर्जन के शासन में कृषि के व्यवस्थागत ढांचे के स्वरूप को स्पष्ट रूप में बताइये।

.....
.....
.....
.....
.....

बोध प्रश्न 2

निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर उनके सामने दिए गए कोष्ठक में हां (✓) अथवा (x) का चिन्ह अंकित कर दीजिए।

1 बंगाल में अंग्रेजी शासन की स्थापना अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ हुयी थी। ( )

2 बक्सर के युद्ध के पश्चात 1764 ई. में अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया व्यापारिक कम्पनी के साथ–साथ राजनीतिक संस्था के रूप में स्थापित हो गयी थी। ( )

3 अंग्रेजो ने बंगाल में द्वैध शासन प्रणाली को अपनाया था। ( )

4 अंग्रेजी कम्पनी ने बंगाल के लिए राजा शिताबराय तथा बंगाल के लिए रजा खां को भूराजस्व अधिकारी नियुक्त किया था। ( )

5 गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग ने **राजस्व बोर्ड** की स्थापना की थी, जिसमें कलकत्ता कौंसिल व उसके प्रधान को सदस्य बनाया गया था। ( )

6 वारेन हेस्टिंग ने भूराजस्व व्यवस्था के अन्तर्गत किसानों को भूस्वामित्व के अधिकार प्रदान किए थे। ( )

7 वारेन हेस्टिंग ने कृषि व भूमि व्यवस्था को 10 वर्ष के लिए लागू किया था। ( )

8 लार्ड कार्न वालिस ने भूमि की व्यवस्था को कृषकों के साथ लागू किया था। ( )

9 स्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था 1793 ई. में लॉर्ड कार्न वालिस के द्वारा लागू की गयी थी। ( )

10 रैयतवाड़ी व्यवस्था के अन्तर्गत कृषकों को भूमि का स्वामी माना गया बिना किसी जमींदार व बिचौलिए के भूराजस्व कर का भुगतान करने की गयी थी। ( )

11 महलवाड़ी व्यवस्था में गांव को एक इकाई के रूप में मानकर कृषि व्यवस्था को क्रियान्वित किया गया था। ( )

बोध प्रश्न 3

निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर विस्तृत रूप में दीजिए:

1 भारत में अंग्रेजी शासन काल के अन्तर्गत कृषि संरचना के स्वरूप एवं उसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2 भारत में अंग्रेजी शासन की कृषि व्यवस्था के संबंध में अपनायी गयी नीति के परिणामों का विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3 अंग्रेजी शासन में कृषकों की सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में स्थिति को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3.8 संदर्भ ग्रंथों की सूची :

1 डी. एन. धनाग्रे : "पीजेण्ट मूमेंट इन इण्डिया (1920 - 50 ई)"

2 मार्क्स : "दी ब्रिटिश रूल इन इण्डिया"

3 बी. एच. बेडेन पावल : "ए शोर्ट एकाउण्ट आफ दी लैण्ड एण्ड इट्स एडमिस्ट्रेशन इन ब्रिटिश इण्डिया"

4 वीं. एंस्टे : "दी इकानामिक डवलपमेंट आफ इण्डिया"

5 भवानी सेन : "इवोल्यूशन आफ एग्रेरियन रिलेशन्स इन इण्डिया"

6 मूरलैण्ड : "सोशल ओरिजिन्स आफ डिक्टैटेरशिप एण्ड डेमोक्रेशी"

7 आर. ई. फ्रेकन्बर्ग : "लैण्ड कंट्रोल एण्ड सोशल स्ट्रक्चर इन इण्डिया।"

8 थोर्नर : "अग्रेरियन प्रोस्पेक्ट्स इन इण्डिया"

9 इरिक स्ट्रोक्स : "दी इंगलिश यूटिलिटीरियन एण्ड इण्डिया"

10 बेडेन पावेल : "लैण्ड रेवेन्यू इन ब्रिटिश इण्डिया"

11 आर. सी. दत्त : "टी इकानॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया"

12 एस. बी. चौधरी : "सिविल डिस्टर्बेन्सेज डयूरिग ब्रिटिश रूल इन इण्डिया"

(1765– 1857 ई.)

13 नटराजन : "पिजेण्ट अपराइजिंग इन इण्डिया"

इकाई–3

राजस्थान मे जन–जातियों के विद्रोह (1818–1900)

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना – भीलों का परिचय एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

3.2 भीलों का विद्रोह (1818–25)

3.2.1 कारण

3.2.2 घटनायें

3.2.3 डूंगरपुर एवं बांसवाड़ा में अशांति

3.3 दौलत सिंह एवं गोविन्द्रा का विद्रोह (1826–28)

3.4 भीलों के उत्पात (1836–38)

3.5 1818 से 1841 तक अंग्रेजों की भीलों के प्रति नीति की समीक्षा

3.6 मेवाड़ भील कोपर्स की स्थापना (1841)

3.7 भीलों के विद्रोह एवं उनके द्वारा अशांति फैलाने की घटनायें (1844–1880)

3.8 भील विद्रोह (1881)

3.8.1 कारण– आर्थिक, सामाजिक, प्रशासनिक, मनोवैज्ञानिक एवं धार्मिक; अंग्रेजों के प्रति असंतोष: आकस्मिक कारण

3.8.2 1881 के विद्रोह की घटनायें – बारापाल की पुलिस चौकी पर का हमला, अन्य स्थानों पर भी विद्रोह, खेरवाड़ा का घेरा, अंग्रेजों की, रिखबदेव का समझौता, समझौते की शर्ते

3.8.3 विद्रोह के समय भीलों का आचरण

3.8.4 प्रभाव: भीलों के प्रतिरोध की घटनायें, भीलों के साथ एक नया समझौता, प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार, भीलों के हितों के लिए कार्य 'के आदेश, शैल कातर हितकारिणी सभा की स्थापना, हाकिमों व भील' में परामर्श की व्यवस्था, भील क्षेत्रों में सैनिक बल में वृद्धि

3.9 1883 से 1900 तक की छुटपुट घटनायें।

3.10 1818–1900 तक भीलों के विद्रोह तथा प्रतिरोध आन्दोलन की

3.11 मेरो का विद्रोह (1818–23)

3.12 उन्नीसवीं सदी में भाद्राजन के मीणाओं के उत्पात ।

3.13 बोध प्रश्न

3.14 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

3.0 उद्देश्य:

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे

- राजस्थान में भीलों के प्रदेश: उनकी जनसंख्या तथा मध्यकालीन युग में उनके राजपूत शासकों के साथ सम्बन्ध
- 1818–25 के मध्य भीलों के विद्रोह, मेवाड़ में इस विद्रोह के कारण एवं घटनायें, डूंगरपुर तथा बांसवाड़ा में अशांति की घटनायें
- मेवाड़ में दौलत सिंह और गोबिन्द्रा का विद्रोह (1826–28)
- 1836–38 के मध्य विभित्र राज्यों में भीलों के उत्पात
- 1818 से 1841 तक भीलों के प्रति अंग्रेजों को नीति की समीक्षा
- मेवाड़ भील कोर्प्स की स्थापना (1841)
- 1844 से 1880 तक विभित्र राज्यों में भीलों द्वारा अशांति फैलाने की घटनायें
- मेवाड़ में 1881 के भील विद्रोह के आर्थिक, सामाजिक, प्रशासनिक, मनोवैज्ञानिक एवं धार्मिक कारण; ब्रिटिश नीतियों के प्रति असंतोष तथा आकस्मिक कारण

  विद्रोह को घटनायें : बारापाल की पुलिस चौकी पर भीलों का हमला, अन्य स्थानों पर विद्रोह का फैलना, खेरवाड़ा का घेरा, अंग्रेजों को तैयारियाँ, रिखबदेव का समझौता और उसकी शर्ते, विद्रोह के समय भीलों का आचरण, विद्रोह के प्रभाव
- 1883 से 1900 तक की छुटपुट घटनायें
- 1818 से 1900 तक के भीलों के विद्रोह तथा प्रतिरोध आन्दोलन की विशेषताऐं
- मेरी का विद्रोह (1821–23)
- मारवाड़ में भाद्राजून के मीणाओं द्वारा लूटमार का 1890 में अन्त

3.1 प्रस्तावना–भीलों का परिचय एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

राजस्थान मैं भील, मेर व मीणा जन–जातियाँ रहती है। इनमें भीलों का प्रमुख स्थान है। भारत के आदिवासियों में गौंड़ और सवालों के पश्चात् भीलों की संख्या सबसे अधिक है। ये मुख्य रूप से राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश तथा महाराष्ट्र के प्रदेशों में निवास करते है। राजस्थान में उदयपुर, चितौड़गढ़, राजसमन्द, डूंगरपुर, बांसवाड़ा तथा सिरोहों जिलों में अधिकांश भील रहते है। इनके अतिरिक्त बाड़मेर, झालावाड़, कोटा व जालोर जिलों में भी भीलों का निवास है। 1971 में राजस्थान में भीलों की संख्या 14,02,943 थी।

प्राचीन काल में राजस्थान के दक्षिण और दक्षिण पूर्वी प्रदेशों में भीलों के स्वतन्त्र राज्य थे। सातवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक राजपूतों ने इन प्रदेशों में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उन्होंने भीलों को पहाड़ों और वनों के आन्तरिक भागों में खदेड़ दिया। क्योंकि राजपूत शासक इन भागों पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने में असमर्थ थे इसलिये उन्होंने भीलों के साथ सहयोग की नीति अपनाई। अनेक राज्यों में भील मुखियाओं को एक राजपूत शासक के सिंहासनारोहण के समय अंगूठे के निकाले गये रक्त से "टीका" करने का अधिकार प्राप्त था। भील मुखियाओं को अपने प्रदेशों में स्वायत्ता के अधिकार दिये गये। राजपूतों ने भीलों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किए। भीलों ने राजपूत राजाओं को विपत्ति समय

सहायता प्रदान की। अकबर के मेवाड़ पर आक्रमण के समय महाराणा प्रताप को भीलों छ पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ।

मुगल साम्राज्य के पतन काल में दक्षिण पूर्वी राजस्थान के प्रदेशों पर मराठों के आक्रमण के समय भीलों को काफी हानि सहनी पड़ी। गुजरात व मालवा की ओर से इन प्रदेशों में प्रवेश करने वाली मराठा और बाद में पिंडारी सेनाओं की गतिविधियों की जानकारी रखने की जिम्मेवारी भीलों पर डाली गई। मराठों व पिंडारियों ने भील "पालों" पर आक्रमण करके उन्हें नष्ट किया। ऐसे हमलों के समय राजपूत शासक भीलों को पर्याप्त सहायता न पहुंचा सके। मराठों एवं पिंडारियों द्वारा भीलों के विरूद्ध कार्यवाही के कारण उनकी दशा बिगड़ गई। राजनैतिक अराजकता के उस काल में भीलों को मजबूर होकर लूट मार व चोरी का सहारा लेना पड़ा। राजपूत शासकों ने उन्हें अपराधी घोषित कर कठोर दंड दिये। इससे राजपूत–भील सद्भावना में दरारें पड़ने लगी।

1818 में सिरोही के अतिरिक्त दक्षिण के राज्यों ने ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ संधि कर ली। 1823 ई० में सिरोही राज्य ने भी कंपनी का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया। इन संधियों ने कंपनी को राज्यों के कुछ आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के अधिकार दे दिये। बी.के. शर्मा के अनुसार इन संधियों में कुछ समय बाद किये गये संशोधनों, समझौतों और कौलनामों में भीलों का दमन करने हेतु अनेक प्रावधान थे। इन सबका परिणाम भीलों को भुगतना पड़ा। फलस्वरूप उनमें असंतोष बढ़ता गया तथा 1818 ई० के पश्चात् इन राज्यों में भीलों के विद्रोह हुए अथवा उनके द्वारा कुछ प्रदेशों में शांति भंग को गई।

3.2 भीलों का विद्रोह (1818–25)

3.2.1 कारण: मेवाड़ में ब्रिटिश प्रभुत्व की स्थापना के समय के बाद भीलों ने उनके प्रति किये गये अन्यायों के विरोध में प्रतिरोध आन्दोलन आरम्भ दिये। इसके निम्नांकित कारण थे:

1 1818 में मेवाड़ व अन्य राज्यों की सैनिक शक्ति में कमी ली गई। अतएव काफी संख्या में सैनिकों की छटनी की गई। इसी प्रकार जागीरदारों के यहां भी सैनिक कम किये गये। राज्य तथा जागीरदारों की सेनाओं में काम करने वालों भील भी इससे प्रभावित हुए।

2 मेवाड़ में शांति स्थापित करने के लिये वहाँ के तत्कालीन रेजीडेंट टॉड ने महाराणा को सलाह दी कि वह अपने सामंतों से एक कौलनामा पर हस्ताक्षर कराये। इस कौलनामा के अनुसार सामंतों को अपने प्रदेशों में लूट मार रोकनी थी। सामन्तों ने भीलों के उत्पात रोकने में स्वंय को असमर्थ पाया। महाराणा और सामंतों के इस प्रकार के प्रयत्नों ने भीलों में व्याप्त असंतोष को भड़का दिया।

3 अंग्रेजों की सलाह पर महाराणा ने जवास, जूरा व अन्य गरासिया जागीरदारों से कर वसूल करने की चेष्टा की। क्योंकि उन्होंने काफी समय से राजा को कर नहीं दिया था इसलिये वे इसका विरोध करते रहे। वे अपने प्रदेश में वाले भीलों को उत्पात मचाने के लिये प्रोत्साहित करते रहे तथा उनकी लूट का भाग लेते रहे।

4 काफी समय से भील अपने आस पास के गाँवों के निवासियों' से "रखवाली" तथा यात्रियों से "भोलाई" वसूल करते थे। मेवाड़ राजा की बढ़ाने के लिये टॉड ने भीलों को इनकी वसूली करने से रोका। उसके इस कदम से भीलों में व्याप्त असंतोष ने एक विद्रोह का रूप धारण कर लिया।

5 बी.के. शर्मा के अनुसार दक्षिण–पूर्व राजस्थान के शासकों के साथ की गई संधियों में ईस्ट इंडिया कंपनी ने वार्षिक कर की रकम निश्चित करने के स्थान पर उनसे पहले पाँच सालों में उनके राजस्व का एक भाग लेना तय किया था। उदाहरण के तौर पर कंपनी ने मेवाड़ से पहले पाँच सालों में कुल आमदनी का एक चौथाई भाग लेना और बाद में इसका 3/8 भाग वसूल करना था। इसका अभिप्राय राज्य की आमदनी बढ़ने के साथ–साथ कंपनी को दिये जाने वाले वार्षिक कर में भी वृद्धि होना था। अंग्रेजों ने मेवाड़ की आमदनी बढ़ाने का प्रयत्न किया। भीलों को, जो राज्य को राजस्व अदा नहीं कर रहे थे अथवा नाम मात्र का अदा कर रहे थे, नये कर अदा करने पर बाध्य किया गया। 1818 की संधि के थोड़े ही समय बाद भीलों के विद्रोह करने का यह एक प्रमुख कारण था।

3.2.2 घटनायें:

आरम्भ में भीलों की नाकेबंदी के कारण राज्य की सेनाएं उनके प्रदेशों में प्रवेश नहीं कर सकी। उन्हें शांतिपूर्वक आत्मसमर्पण करने के लिये प्रेरित करने का टॉड का प्रयत्न भी सफल नही हुआ। 1820 ई० में एक ब्रिटिश सेना का भीलों के विरूद्ध किया गया अभियान भी असफल रहा। 1821 में मेवाड़ से प्रस्थान करते समय टॉड ने भीलों के विरूद्ध एक और ब्रिटिश सेना भेजने का सुझाव दिया। भीलों के साथ गरासिया जागीरदारों को नियंत्रित करने के लिये 1823 में लुमले के नेतृत्व में मेवाड़ तथा अंग्रेजों की एक सम्मिलित सेना भेजी गई। इसने भीलों के विद्रोह को दबा दिया तथा गरासिया जागीरदारों पर नियन्त्रण कायम किया। मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेशों में एक ब्रिटिश सैनिक दस्ता रखा दिया। प्रमुख भील गमेतियों से एक समझौते पर हस्ताक्षर कराये गये जिसके अनुसार उन्होंने महाराणा की प्रभुसत्ता को मानने, शस्त्रों को न रखने, भू–राजस्व अदा करने, स्थानीय कामदारों की आज्ञा मानने, "रखवाली" वसूल न करने, लूटमार व चोरी न करने तथा अपनी शिकायतों को महाराणा और पोलिटिकल एजेन्ट के समक्ष रखने और उनके निर्णयों को मानने के वायदे किये। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने प्रदेशों में राज्य के थाने स्थापित करने पर आपत्ति न करने का भी वचन दिया।

उस समय अंग्रेजों की सलाह व सहायता से मेवाड़ में भीलों को नियंत्रण में किया गया लेकिन उनका असंतोष बना रहा। वे अपने इलाकों में चौकियों की स्थापना, रखवाली वसूल न करने तथा राज्य के अधिकारियों के आदेश मानने की शर्तों का पालन नहीं करना चाहते थे। अतएव जब भी उन्हें अवसर मिलता वे अशांति फैलाने से बाज नहीं आते थे।

3.2.3 डूंगरपुर एवं बाँसवाड़ा में अशांति (1825)

मेवाड़ के भीलों का अनुसरण करते हुए इन दो राज्यों के भीलों में भी प्रतिरोध की घटनायें हुई। इनमें डूंगरपुर की दशा अधिक गंभीर थी। उनके विरूद्ध एक ब्रिटिश सेना भेजी गई लेकिन इस सेना द्वारा अभियान आरम्भ करने के पूर्व ही अनेक भील गमेतियों ने राज्य से समझौते कर लिये। उन्होंने अपने सब शस्त्र समर्पित करने, लूट व चोरों के माल को लौटाने, पास के गांवों, नगरों तथा सडकों पर वारदातें न करने, ब्रिटिश सरकार के किसी भी विरोधी को शरण न देने तथा राज्य को नियमित रूप से कर देने का वचन दिया।

3.3 दौलत सिंह एवं गोबिन्द्रा का विद्रोह (1826–1828)

दौलत सिंह जवास के जागीरदार का चाचा था। गोबिन्द्रा उसका सलाहकार था। 1823 में उन्होंने इस जागीर में ब्रिटिश सेना का विरोध किया था। अंग्रेजों की मांग पर जवास के जागीरदार ने उन्हें गिरफ्तार करके ब्रिटिश सरकार को सुपुर्द करने का वचन दिया था लेकिन ये दोनों आन्तरिक भागों में चले गये। कुछ समय बाद उन्होंने टॉड के उत्तराधिकारी कोबे (Cobbe) के एक प्रतिनिधि की जवास के पास हत्या कर दी। अंग्रेजों ने जवास के जागीरदार को करके जागीर को खालसा घोषित कर दिया। इस पर जनवरी, 1826 में दौलत सिंह व गोबिन्द्रा ने विद्रोह कर दिया। जनवरी व फरवरी, 1826 में उन्होंने विभिन्न स्थानों पर एक सौ और दो सौ पचास व्यक्तियों को मार डाला। उन्होंने खेरवाड़ा को चारों तरफ से घेर लिया। ने ब्रिटिश सरकार से सहायता मांगी। कोबे और ब्रयांट के नेतृत्व में कंपनी और मेवाड़ के सैनिक दस्तों को भीलों के विरोध के कारण पीछे हटना पड़ा। 1827 के कैप्टन ब्लेक के नेतृत्व में एक और सेना भेजी गई। ब्लेक भी आगे नहीं बढ़ सका। नवम्बर, 1827 में बर्ग को उसकी के लिये नीमच से भेजा गया। उसके पहुंचने के पहले ब्लेक ने भीलों को "भोलाई" करने की अनुमति दे दी। शीघ ही ब्रिटिश सेना ने दौलत सिंह को आत्म समर्पण के बाध्य कर दिया। उसे अपने निर्वाह के लिये बावलवाड़ा का ग्राम दिया गया। जवास की उसके जागीरदार को लौटा दी गई।

इस अभियान के बाद महाराणा जवान सिंह ने भीलों के साथ व्यवहार किया। जवास की जागीर को लौटाने तथा “भोलाई" के अधिकार को मान्यता प्रदान का भी अच्छा प्रभाव पड़ा। अतएव लगभग आठ साल तक मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेशों में रूप से शांति बनी रही, लेकिन यह शांति अस्थायी थी।

3.4 भीलों के उत्पात (1836–38)

1836 में डूंगरपुर में खेरवाड़ा के निकट भीलों ने उत्पात आरम्भ किये इसी प्रकार बांसवाड़ा में भी अशांति फैल गई। बांसवाड़ा के महारावल ने अंग्रेजों की सहायता। भीलों का दमन किया। अगले वर्ष माहीकांठा की सीमा पर वालेशिया में भीलों ने कुछ यात्रियों को लूटा। सिरोही व मेवाड़ के जूरा व पाटिया में भी भीलों ने उत्पात मचाये। अतएव 1838 में से एक अंग्रेजी सेना जूरा भेजी गई लेकिन संघर्ष आरम्भ होने के पहले जूरा के जागीरदार ने आत्मसमर्पण कर दिया। इस इलाके में मेवाड़ ने कई पुलिस चौकियाँ स्थापित की। इसी वर्ष प्रतापढ़ राज्य से गंगा की पाल के निकट कुछ भीलों ने ग्वालियर व मेवाड़ की सेनाओं का

सामान लूटा। प्रतापगढ़ के शासक ने उनके विरूद्ध कार्यवाही की। 1841 में मेवाड़ भील कार्प्स की स्थापना से स्थिति में सुधार हुआ।

3.5 1818 से 1841 तक अंग्रेजों की भीलों के प्रति नीति की समीक्षा

इस अवधि में समय समय पर भीलों ने विद्रोह किये अथवा भील बहुल प्रदेशों में लूट–मार व उत्पात मचा कर अशांति फैलाई। मेवाड़ में गरासिया जागीरदारों ने अवसर मिलते ही महाराणा के विरूद्ध विद्रोह किया तथा भीलों को किसी न किसी प्रकार मदद पहुंचाई। भीलों का दमन करने में इस प्रदेश के शासकों ने स्वंय को असमर्थ पाया तथा इसके लिये उन्हें अंग्रेजों को सैनिक सहायता लेनी पड़ी।

अंग्रेज अधिकारियों ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाने की चेष्टा की। कोबे के अनुसार भील प्रदेशों में शांति बनाये रखने से तथा राजस्थान के अन्य प्रदेशों से बंबई व पूर्व के अन्य बंदरगाहों के मार्ग को सुरक्षित बनाये रखने से उनके व्यापार में उन्नति सकती थी। उस समय दो मार्गों से होकर व्यापारियों के काफिले गुजरते थे। उदयपुर पहुंचने बाद गुजरात की तरफ जाने वाले व्यापारी खेरवाड़ा और माहीकांठा से गुजरते थे। दूसरा मार्ग से पाली, सोजत, नाडोल और मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेशों से गुजरता था।

इसके अतिरिक्त स्थानीय अंग्रेज अधिकारी इस इलाके के देशी राज्यों पर अपना नियंत्रण बनाये रखना चाहते थे। वे किसी ने किसी प्रकार उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करके अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयत्न करते थे।

उस समय देशी राज्यों के पास भीलों की दशा सुधारने के लिये पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं थे। भारत के गवर्नर जनरल के इस सुझाव का कि इन राज्यों के लिये भीलों की उन्नति के कार्य करना वांछित होगा, कोई ध्यान नही दिया गया। कोबे ने भी इसके लिये कुछ ठोस सुझाव दिये थे। लेकिन इस दिशा में कोई कार्य नहीं किया गया। एल.पी. माथुर के मत में इसके विपरीत जब भी स्थिति गंभीर होती दिखाई देती थी उस समय बल प्रयोग ही किया गया। भील इलाकों में चौकियों स्थापित की गई तथा उनके अधिकारों को सीमित किया गया।

3.6 मेवाड़ भील कोप्स की स्थापना (1841)

1818 से 1838 के मध्य मेवाड़ तथा अन्य राज्यों को भीलों के दमन के लिये अंग्रेजों ने सैनिक सहायता दी थी। इस अवधि मे कुछ स्थानों पर उनको दबाने के लिये अंग्रेजों ने विशेष सैनिक दस्तों का निर्माण भी किया गया था। 1836 में अजमेर में एक अंग्रेज अधिकारी के नेतृत्व में जोधपुर लिजन बनाई गई थी। जनवरी 1837 में इस दस्ते को सिरोही राज्य के बारगाँव में तैनात किया गया। 1840 में सिरोही के भीलों का एक दस्ता बनाया गया तथा उसे "जोधपुर लिजन" के साथ रखा गया। 1841 में मेवाड़ में खेरवाड़ा में भील कोपर्स की स्थापना की गई।

यद्यपि 1837 के पहले समय–समय पर मेवाड़ भील कार्प्स के गठन के प्रस्ताव किये गये थे किन्तु इस वर्ष माहीकांठा के पॉलिटिकल एजेन्ट मेजर ओटरस के सुझाव पर अमल

किया गया। 1825 में खानदेश में ओटरस के नेतृत्व में एक भील कोर्प्स का गठन किया गया था। थोड़े ही समय में ओटरस ने इस कोर्प्स की सहायता से अशांति फैलाने वाले भीलों को नियंत्रित किया। इस प्रकार एक ही प्रजाति के सदस्यों द्वारा उनके भाईयों कौ नियंत्रण में लाने की नीति का सफलतापूर्वक संचालन किया गया। भील कार्प्स के गठन के बारे में राजस्थान के दक्षिण पूर्व के राज्यों के शासकों और पॉलिटिकल एजेंटों तथा माहीकांठा के पॉलिटिकल एजेन्ट के साथ 1837 से 1841 तक विचार विमर्श कर 1841 में इसका गठन किया गया। इसका खर्च मेवाड़ व अन्य राज्यों में बाँटा गया। इसका प्रमुख केन्द्र खेरवाड़ा में रखा गया। 1844 में मेवाड़ के कोटड़ा नामक स्थान पर इसकी एक शाखा खोली गई। इसके अंग्रेज कमांडर को मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेशों की पॉलिटिकल सुपिरिन्टेन्डेट भी नियुक्त किया गया तथा उसे ऐसे प्रशासनिक अधिकारियों को हटाने को अधिकार भी दिया गया जो भ्रष्टाचार मे लिप्त हो अथवा अन्यायी हों।

ईस्ट इंडिया कंपनी की सरकार ने भील कोर्प्स पर नियंत्रण बनाये रखने के लिये निम्नलिखित कदम उठाये :

1. मेवाड़ व उसके आस पास पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले भीलों के अलावा अन्य जातियों के सदस्यों को भी कोख में भर्ती किया। इनकी संख्या कुल संख्या की एक चौथाई थी तथा इस सख्त में धीरे–धीरे कमी की जानी थी।
2. इन क्षेत्रों से भर्ती किये गये भीलों के नैतिक स्तर को उन्नत करने के लिये मध्य भारत तथा बम्बई के ब्रिटिश प्रान्तों के भील भी कार्प्स में भर्ती किये गये। इनकी संख्या कुल संख्या के कुल भील सिपाहियों की संख्या की एक तिहाई थी।

3.7 भीलों के विद्रोह एवं उनके द्वारा अशांति फैलाने की घटनायें (1844 से 1880)

यद्यपि इस समय तक अंग्रेजों की मदद से भीलों के विद्रोहों का दमन किया गया था किन्तु यदा–कदा भील प्रदेशों में होने वाली अशांति पैदा करने की घटनाओं पर काबू नही पाया जा सका था। 1844 में "रखवाली" वसूल करने के अधिकार को लेकर बांसवाड़ा के पांच सौ भीलों ने मालवा के मोखारी गाँव पर हमला किया। सिरोही राज्य तथा पोसेना (गुजरात) में भीलों ने उपद्रव किये। 1846 में कुँवर जावे वासवो के नेतृत्व में गुजरात के भील विद्रोह ने बाँसवाड़ा के भीलों को विद्रोह करने के लिये प्रोत्साहित किया। मालवा से एक ब्रिटिश सैनिक दस्ता बाँसवाड़ा भेजा गया तथा 1850 में विद्रोह दबा दिया गया।

1848 में मेवाड़ व सिरोही में सूखा पड़ा। इसके फलस्वरूप भीलों रात चोरी की वारदातों की संख्या में वृद्धि हुई। मारवाड़ के सयाना के जागीरदार को वहां के शासक ने अपदस्थ किया। इससे नाराज होकर उसने जूरा में अशांति फैलाने के कार्यों में भीलों का नेतृत्व किया। मेवाड़ के महाराणा के आग्रह पर दो अंग्रेज सैनिक दस्ते वहाँ पर भेजे गये। उन्होंने सयाना के जागीरदार को आत्म–समर्पण करने के लिये बाध्य किया।

जूरा व पनरवा के इलाकों में भीलों ने "भोलाई" वसूल करना जारी रखा। पनरवा के गरासिया जागीरदार ने ऐसे अनेक भीलों को पनाह दी जिन्होंने सड़कों व ग्रामों में को लूटा था। 1853 में ऐसे कई अपराधियों को गिरफ्तार किया गया।

1851 ई. में महाराणा ने रघुनाथ सिंह मेहता को जहाजपुर परगना का हाकिम नियुक्त किया। रघुनाथ सिंह ने परगने की आमदनी बढ़ाने तथा व्यय घटाने का प्रयत्न किया। इन प्रयत्नों के विरूद्ध वहां के मीनाओ ने विद्रोह किया। इन्होंने वहाँ के राजस्व अधिकारियों तथा बनियों को लूटा तथा निकट के अजमेर–मेरवाड़ा के इलाके में भी लूट–मार की। अंग्रेजों की शिकायत पर महाराणा ने अजीत सिंह मेहता को जहाजपुर का हाकिम नियुक्त किया तथा उसके साथ बनेंडा, भैंसरोडगढ, मांडलगढ़ व शाहपुरा के जागीरदारों की सेना भेजी। अजीत सिंह के नेतृत्व में इन सेनाओं ने मीनाओं के विरूद्ध अभियान शुरू किया। जयपुर, बूंदी और टोंक राज्यों के मीना जहाजपुर के मीनाओं की मदद के लिये आ गये। दिसम्बर, 1854 में राजपूताना के एजेंट टू दी गवर्नर जनरल मेवाड़ व हाड़ौती के पॉलिटिकल एजेंट जहाजपुर पहुँच गये। उन्होंने मीनाओं का दमन किया। जयपुर अजमेर–मेरवाड़ा, बूंदी और मेवाड़ की सीमाओं पर स्थित देवली में एक छावनी स्थापित की गई। 1860 में मीनाओं ने फिर विद्रोह किया। महाराणा की फौजों ने उनका सख्ती के साथ दमन किया। इस प्रकार जहाजपुर के मीणाओं को काबू में लाया गया।

दिसम्बर, 1855 में मेवाड़ में कालीवास 'पाल' के भीलों ने विद्रोह किया। नवम्बर, 1856 में सवाई सिंह मेहता को उनके विरूद्ध भेजा गया। मेवाड़ की सेना ने 'पाल' को जला दिया तथा काफी संख्या में भीलों को मार दिया और कैद किया।

1856 में खूमजी नामक एक भील गमेती ने लगभग पचास अनुयायियों के साथ मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेश में तीस यात्रियों को लूटकर गिरफ्तार कर लिया। शीघ्र ही उनको छोड़ने के लिये मांगी गई राशि मिलने पर उन्हें छोड़ दिया। खूमजी का दमन किया गया।

1857 के विद्रोह में गंगा रावल के नेतृत्व में कुछ भीलों ने बांसवाड़ा के मावरीखेड़ा ग्राम पर असफल आक्रमण किया। दिसम्बर, 1858 में ताँत्या टोपे के मेवाड़ प्रवेश के बाद रूपा नामक भील गमेती ने उसका साथ दिया। ब्रिटिश सेनाओं ने ताँते टोपे का पीछा किया। वह डूंगरपुर होता हुआ वापस मेवाड़ में घुसा। मेवाड़ के अनेक प्रदेशों में होता हुआ वह मावरीखेड़ा जा पहुंचा जहां दुल्ला रावत नामक भील गमेती ने उसका साथ दिया। थोड़े समय बाद ही एक मुठभेड़ में ताँत्या टोपे हार कर मन्दसौर की ओर चला गया। ताँत्या टोपे के विरूद्ध भील कोर्प्स ने ब्रिटिश सेनाओं का साथ दिया।

1857 में उदयपुर व खेरवाड़ा के मध्य एक सड़क के निर्माण के बाद मेवाड़ के पॉलिटिकल एजेन्ट ने इस इलाके के भील गमेतियों के साथ एक समझौता किया। इसके अनुसार भीलों ने यह वचन दिया कि वे यात्रियों के लिये एक "भोलावा" (पथ–प्रदर्शक) का प्रबन्ध करेंगे और यदि मार्ग में कही पर उनको लूटने की घटना हुई तो वहाँ का गमेती उनके नुकसान की पूर्ति करेगा। अपराधियों को गिरफ्तार करने में गमेती राज्य की मदद करेंगे।

1863 में कोटड़ा के भीलों ने अपने क्षेत्र में उत्पात मचाये। मेवाड़ भील कोर्प्स के कमाडिग अधिकारी ने इसके लिए मेवाड़ के प्रशासनिक अधिकारियों को जिम्मेवार ठहराया।

1864 में प्रसाद के निकट कुरबर, निठारा व कुछ का पालों के भीलों द्वारा चोरी व लूट की घटनाओं को मेवाड़ के राज्यों ने रोका। 1866 में कुरबर में एक ब्राह्मण मारा गया। प्रसाद के इलाकों में ऐसी घटनाओं को रोकने के लिये पॉलिटिकल एजेन्ट में आदेश पर घने जंगलों का सफाया किया गया तथा वहाँ पर एक सैनिक दस्ता रखा गया।

1867 में खेरवाड़ा व डूंगरपुर के मध्य देवल पाल के भीलों के विद्रोह को मेवाड़ भील कोर्प्स ने दबाया।

बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़ व कुशलगढ़ में भी भीलों द्वारा यात्रियों के लूटने की घटनायें हुई।

1868–70 में मेवाड़, बाँसवाड़ा, डूंगरपुर, कुशलगढ़ व प्रतापगढ़ में अकाल पड़ा। इसके फलस्वरूप भीलों द्वारा चोरी व लूट की घटनाओं में वृद्धि हुई। इन पर काबू पाने का हर संभव प्रयत्न किया गया।

1869 में निथारा, सिरारा, करबर और घकंनवाड़ा के भीलों के विरूद्ध उदयपुर के दो हजार सैनिक भेजे गये। इस अभियान में इक्कीस भील मारे गये। 1874 में फिर उन्हें दबाया गया।

1872–1875 के मध्य बाँसवाड़ा के भीलों ने विद्रोह किया। इसके कई कारण थे। 1868 में बाँसवाड़ा के शासक ने अंग्रेजों को भीलों का दमन करने के अधिकार दे दिये थे। अंग्रेजों ने 'बरार' कर की दर बढ़ा दी थी। उन्होंने भीलों से राजस्व वसूल करना भी आरंभ किया। इसके पहले भीलों ने राजस्व अदा नहीं किया था। राज्य की सरकार ने पठानों व अन्य मुस्लिमों को भीलों के दमन के लिये नियुक्त किया। उन्होंने भीलों पर अत्याचार किये तथा उनको ऊँची दरों पर ऋण दिये। ऋण की अदायगी न होने पर उनके स्त्री व बच्चों को दास बना लिया। 1868–75 के अकाल ने भीलों की दशा बिगाड़ दी। 1868 से निकटवर्ती गुजरात में नाईक विद्रोह ने भी मीलों को विद्रोह करने के लिये प्रोत्साहित किया।

बाँसवाड़ा के भीलों के विद्रोह को दबाने के लिये मेवाड़ का पॉलिटिकल एजेन्ट स्वयं वहाँ गया। दिसम्बर, 1875 तक विद्रोह दबा दिया गया।

1872–73 मे बाँसवाड़ा के सोदलपुर के भील गमेती दुल्ला रावत के विरूद्ध एक अभियान आरम्भ किया गया। दुल्ला रावत प्रतापगढ़ के इलाकों में चला गया। कुछ समय बाद बाँसवाड़ा के शासक ने उसके साथ समझौता किया।

1875 में मंडवा व बाकेल (जूरा) में भीलों के विरूद्ध मेवाड़ भील कोर्प्स का अभियान सफल रहा।

इसके बाद भी कुछ अन्य स्थानों पर भीलों के विरूद्ध कार्यवाही की गई।

1880 के प्रारम्भ में स्थानीय अंग्रेज अधिकारी ब्लेयर ने लिखा कि अब भील अपनी लूट मार की प्रवृति को त्याग कर शनै: शनै स्थायी जीवन व्यतीत करने लगे तथा उनके अपराधों की सखा में काफी कमी आ गई है। लेकिन उसे तथा अन्य अंग्रेज अधिकारियों को इस

बात का तनिक भी आभास नहीं था कि मेवाड़ में शीघ्र बड़े पैमाने पर भीलों का विद्रोह होने वाला है।

3.8 भील विद्रोह (मेवाड़ 1881)

1818 से 1880 तक मेवाड़ में भीलों के असंतोष को दूर करने लिये विशेष प्रयास नहीं किये गये। इसका एक कारण उस समय मेवाड़ की शोचनीय आर्थिक दशा थी। मेवाड़ को कर के रूप में एक बड़ी रकम अंग्रेजों को देनी पड़ती थी। अतएव उसके पास सदैव घन की कमी बनी रहती थी। यद्यपि गवर्नर जनरल और कोबे ने इस बात पर दिया था कि भीलों के उत्थान के लिये कार्य किये जायें किंतु उनके सुझावों को कार्यान्वित किया गया। अतएव भीलों में निरन्तर असंतोष बढ़ता गया। मेवाड़ भील कोर्प्स की स्थापना के बाद भीलों को कुछ हद तक काबू में रखा गया किन्तु उसके असंतोष की ज्वाला अन्दर स रही। 1881 में यह दबी हुई ज्वाला भड़क उठी। इसको दृष्टि में रखते हुए हमें 1881 के विद्रोह के कारणों का अध्ययन करना होगा।

3.8.1 कारण

आर्थिक:

(1) **"रखवाली" की वसूली पर प्रतिबन्ध :**

टॉड के सुझाव पर मेवाड़ में भीलों द्वारा "रखवाली" और "भोलाई" वसूल करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था लेकिन कुछ समय पश्चात् "भोलाई" वसूल करने की अनुमति दी गई थी। क्योंकि भील सदियों से रखवाली वसूल करते आ रहे थे, इसलिये इस परम्परागत अधिकार से उन्हे वंचित किये जाने से उनमें रोष था।

(2) **भू–राजस्व की दरों मे वृद्धि की आशंका :**

राज्य ने अपनी आमदनी बढ़ाने के लिये 1871 में भूमि की पैमाइश कराई और उसके आधार पर भीलों से भू–राजस्व कर वसूल किया गया। भीलों के विरोध करने पर 1874 में इसे बंद किया गया। लेकिन 1878 में एक ब्रिटिश अधिकारी विंगेट द्वारा भूमि का बन्दोबस्त किये जाने से भीलों में यह आशंका पैदा हो गई कि पहले की अपेक्षा अधिक दर पर उनसे भू–राजस्व वसूल किया जायेगा।

(3) **राज्यं द्वारा भीलों पर लगाये गये अन्य कर :**

भीलों से "तिसाला" नामक कर भी वसूल किया गया। यद्यपि यह बहुत ही मामूली था लेकिन भीलों ने इसे अन्यायपूर्ण माना। 1878 में मेवाड़ राज्य के जिलों (निजामत) का पुनर्गठन कर उसे ग्यारह जिलों में बाँटा गया तथा भीलों पर कुछ नये कर लगाये गये।

(4) **चुंगी की वसूली :**

भील क्षेत्रों में चौकी चुंगियाँ स्थापित की गई। निकटवर्ती गाँवों अथवा हाटों में भीलों द्वारा बेचने के लिये ले जानी वाली घास, लकड़ी आदि पर वसूल की गई।

(5) **आबकारी कर :**

तंबाकू, नमक, अफीम व शराब पर आबकारी कर वसूल किये गये। इस प्रकार के कर पहले वसूल नहीं किये जाते थे।

(6) **बेगार:**

मेवाड़ के सामन्त, उन अधिकारी व उनके कर्मचारी भीलों से बेगार लेते थे। इस प्रथा से भील अप्रसन्न थे।

(7) **वन–सम्पदा के मुक्त संग्रह पर रोक:**

अंग्रेजों ने वन कानून द्वारा वनों से लकड़ी काटने, शहद, फल व महुआ आदि एकत्रित करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। मेवाड़ में भी ऐसा ही किया गया तथा भीलों को बिना किसी कर की अदायगी के वन–सम्पदा वो संग्रह से वंचित किया गया। वनों से लकड़ी काटने के ठेके व्यापारियों को दे दिये गये।

(8) **सूदखोर महाजनों तथा व्यापारियों द्वारा शोषण:**

मेवाड़ में बाहर से आये कुछ महाजनों ने व्याज को ऊँची दरों पर भीलों को ऋण दिये। उनके शोषण से तंग आकर 1879 में भीलों ने कुछ सूदखोरों को मार दिया। यद्यपि महाराणा ने कुछ अन्य सूदखोर महाजनों को सजाऐं दी किन्तु इससे भीलों के शोषण का अन्त नहीं हुआ। महाजनों के अतिरिक्त व्यापारी भी भीलों की अज्ञानता का लाभ उठा कर उनका शोषण करते थे।

(9) **कुता करने के समय भीलों पर किये गये अन्याय:**

मेवाड़ के राजस्व अधिकारी एवं कर्मचारी कुंता करने के समय भीलों को तंग करते थे। 1850 से कुंता की दर में वृद्धि की गई।

(10) **अकालों व सुखों का प्रभाव :**

मेवाड़ में समय–समय पर किसानों को अकालों व सुखों का सामना करना पड़ता था उस समय उनको पर्याप्त राहत नहीं पहुंचाई जाती थी। इसका प्रतिकूल प्रभाव भीलों पर भी पड़ा।

(11) **हल–बरार नामक कर में वृद्धि :**

1858 में ब्रुक्स नामक एक ब्रिटिश अधिकारी को पीपलो व पडोना के भीलों ने एक अर्जी पेश की। इसमें उन्होंने बताया कि 1850 में उदयपुर व खेरवाड़ा के बीच सड़क बनने के बाद इस कर की दर में वृद्धि की गई थी।

(12) **सड़क कर:**

उदयपुर व खेरवाड़ा के मध्य के क्षेत्रों में रहने वालों से यह कर भी वसूल किया गया।

(13) **भीलों की आर्थिक दशा सुधारने के प्रयत्नों की उपेक्षा :**

मेवाड़ में भीलों को स्थायी रूप से एक स्थान पर खेती करने के लिये विवश किया गया था लेकिन उनके इलाकों में खेती के साधनों की उन्नति करने की दिशा में तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया था।

ऐसी परिस्थितियों में भीलों की आर्थिक दशा बिगड़ती चली गई। कई बार भीलों ने राज्य की सरकार व ब्रिटिश अधिकारियों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित किया किन्तु साधनों के अभाव में राज्य ने ऐसा करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। 1881 के विद्रोह के समय रिखबदेव में भीलों ने महाराणा के प्रतिनिधि श्यामल दास के सामने अपनी आर्थिक परेशानियों को बताया था।

सामाजिक :

(1) **राजपूतों व भीलों मे दूरी :**

मध्यकालीन युग में राजपूतों और भीलों के सम्बन्ध अच्छे थे। उनमें अंतर्जातीय विवाह होते थे। लेकिन एस.एल. दोषी के अनुसार समय के साथ–साथ जाति प्रथा की कठोरता तथा अन्य कारणों से राजपूतों व भीलों में पहले के समान मधुर सम्बंध नही रहे। राजपूत व उच्च जाति के हिन्दू उन्हें अपने से हीन समझने लगे।

(2) **ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा भीलों में सामाजिक कुरीतियों के निराकरण के प्रयत्न:**

ब्रिटिश अधिकारियों के आग्रह पर मेवाड़ के भीलों में प्रचलित "डाकन" प्रथा को रोकने के लिये एक कानून पारित किया गया। 1848 से लगातार स्थानीय अंग्रेज अधिकारियों ने मेवाड़ सरकार पर दबाव डाला कि वे ऐसे भीलों को सजा दें जिन्होंने संदेह के आधार पर एक औरत को "डाकन" समझ कर उस पर अत्याचार किये हों अथवा मार दिया हो। कुछ मामलों में तो अंग्रेज अधिकारियों ने आवश्यकता से अधिक उत्साह का प्रदर्शन किया। इससे भीलों में असंतोष फैला।

प्रशासनिक :

(1) **राज्य के अधिकारियों और कर्मचारियों का भ्रष्टाचार व अन्यायपूर्ण कृत्य :**

राज्य के कुछ अधिकारी व कर्मचारी भ्रष्टाचार में लिप्त थे। वे अनेक तरीकों से जनता से धन वसूल करते थे। यदि किसी भील द्वारा किसी प्रकार के कर की अदायगी में जरा सी भी चूक होती थी तो वे उसके स्त्री व बच्चों को तंग करते थे तथा उसके पशुओं को छीन लेते थे। 1877 में भीलों ने शिकायत की कि पहाड़ी प्रदेशों के हाकिम रघुनाथ सिंह व उसका मातहत कर्मचारी मोती सिंह भ्रष्ट है। मिर्जा रहीम बेग को भी भ्रष्टाचार का दोषी पाया गया। रधुनाथ सिंह के विरूद्धगठित जाँच कमेटी ने उसे तीन लाख रूपये की रिश्वत लेने तथा भीलों व अन्य पर जुल्म करने का दोषी पाया।।

(2) **भीलों की स्वायत्तता के अधिकारों को सीमित करने के प्रयत्न :**

भीलों में 'पाली' की सभाऐं अपराधियों को सजायें देने तथा अन्य मामलों का निर्णय स्वंय करती थी लेकिन उनीसवीं सदी मैं उसे राज्य द्वारा बनाये गये कानूनों का पालन करने के लिये बाध्य किया गया। इससे उनकी स्वायलता के अधिकरों को आघात पहुँचा।

मनोवैज्ञानिक :

(1) आम तौर पर भारत की जन–जातियों में नये विचारों व प्रथाओं को अपनाने की प्रवृति की गति अत्यन्त धीमी रही है। भीलों में भी इसी प्रकार की प्रवृति विद्यमान थी।

अतएव उन्नीसवीं सदी में वनों को काटने तथा आवागमन के साधनों में वृद्धि होने फलस्वरूप पहले की अपेक्षा तेजी के साथ उनका संपर्क बाहरी दुनिया से बढ़ने से उन्हें अपने पृथक अस्तित्व को बनायें रखने के प्रति चिन्ता उत्पन्न हुई।

धार्मिक :

(1) **रिखबदेव के मंदिर का प्रबन्ध राज्य सरकार द्वारा अपने हाथ में लेना :**

वींर विनोद के अनुसार 1877 में मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेशों के हाकिम ने रिखबदेव के मन्दिर के पुजारी खेमराज भंडारी को मंदिर की आमदनी में से एक लाख रूपया हड़पने के आरोप में हटा कर मन्दिर का प्रबन्धक अपने हाथ में ले लिया था। भील भी रिखबदेव के भक्त थे इसलिये उसे राज्य का यह कार्य अच्छा नहीं लगा। शायद खेमराज भंडारी ने भी उन्हें विद्रोह करने के लिये उकसाया हो।

अंग्रेजों के प्रति असंतोष :

1881 के बाद से मेवाड़ में अनेक बार अंग्रेजों की सैनिक सहायता से भीलों का दमन किया गया था। अंग्रेजों के आदेश पर ही उनकी स्वायत्तता के अधिकारों को सीमित किया गया था। अत: भील विश्वास करते थे कि अंग्रेजों ने उनकी सामाजिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने के लिये देशी राज्यों को बाध्य किया था। 1881 से उनके इलाके में बाहरी व्यक्तियों के प्रवेश तथा उनके शोषण के लिये भी वे अंग्रेजों को जिम्मेवार मानते थे।

आकस्मिक कारण :

(1) **जनगणना के प्रति रोष :**

1881 में मेवाड़ व अन्य प्रदेशों में ब्रिटिश अन्य प्रदेशों में ब्रिटिश अधिकारियों के निरीक्षण में जनगणना आरम्भ की गई। इससे भीलों में अनेक अफवाहें फैली। यह समझा गया कि जनगणना का उद्देश्य उन्हें सेना में भर्ती करना तथा उन पर करों का और भार लादना था। कुछ भीलों के अनुसार इसका उद्देश्य उनकी प्रजाति कों नष्ट करना था। ऐसी अफवाहें भी फैली कि इस गणना के बाद वृद्ध औरतों को वृद्ध पुरूषों, जवान स्त्रियों को जवान पुरूषों, मोटी स्त्रियों को मोटे पुरूषों तथा पतली स्त्रियों को पतले पुरूषों के सुपुर्द किया जायेगा। मार्च, 1881 में जावद ग्राम में माना के मंदिर में दो हजार से अधिक भीलों ने जनगणना के कार्यो का विरोध करने का निश्चय किया। इस प्रकार की अफवाहों से उत्पन्न भ्रम को मिटाने के लिये ब्लेयर ने कुछ इलाकों का दौरा भी किया।

बाद में ब्लेयर ने यह मत प्रकट किया कि इस विद्रोह का मुख्य कारण जनगणना के कार्यो से उत्पन्न अफवाहें थी लेकिन विंगेट के अनुसार ऐसी अफवाहों को केवल आकस्मिक कारण माना जा सकता है। काफी समय से भीलों मे असंतोष बढ़ रहा था।

(2) **बारापाल की घटना :**

वींर विनोद के अनुसार 1881 में बारापाल के थानेदार ने पडोना के रूपा और कुवेरा गमेती को एक भूमि के झगड़े के मामले में गवाही देने बारापाल बुलाया लेकिन उन्होंने आने से इन्कार कर दिया। इस पर थानेदार स्वयं वहां गया। दोनों पक्षों के बीच झगड़ा हुआ जिसमें एक गमेती मारा गया। इस घटना के अन्य वर्णन भी मिलने है। एक साधन के अनुसार कुछ समय

पहले मेवाड़ में शराब को बनाने व बेचने के ठेके दिये गये थे। ब्लेयर के अनुसार पडोना में चोरी–छिपे शराब बनाई जा रही थी। अतएव इससे वहाँ के कलाल, जिसके पास शराब का ठेका था, को नुकसान हो रहा था। उसके कहने पर बारापाल के थानेदार ने पडोना के गमेती को बुलाया तथा यह दु:खद घटना हुई। ऐसा भी कहा जाता तै कि बारापाल के थानेदार ने एक सवार को पडोना भेजा। पडोना में उसका कल हो गया तथा भीलों ने सजा से बचने के लिये विद्रोह आरम्भ कर दिया।

इस सम्बन्ध में प्रचलित कथाओं के बारे में अंतिम निर्णय देना कठिन है लेकिन यह माना जा सकता है कि बारापाल के थानेदार के जुल्म ने एक गंभीर परिस्थिति पैदा कर दी थी।

3.8.2 1881 के विद्रोह की घटनायें :

(1) **बारापाल की पुलिस चौकी पर भीलों का हमला :**

25 मार्च, 1881 को पडोना के भील बारापाल की ओर बड़े। अगले दिन बारापाल टिडो और पडोना के भीलों ने बारापाल की पुलिस चौकी पर हमला करके वहाँ के थानेदार व शराब के ठेकेदार को मार डाला।

27 मार्च को अमर सिंह के नेतृत्व में उदयपुर से भेजी गयी एक सेना ने, जिसमें एक ब्रिटिश सैनिक दस्ता भी था, बारापाल में भीलों की झोपड़ियों आग लगा दी।

(2) **अन्य स्थानों पर भी विद्रोह :**

शीघ्र ही मेवाड़ के अन्य स्थानों में यह विद्रोह फैल गया। अलीगढ़, पाई, कोटड़ा, प्रसाद के भील भी इसमें सम्मिलित हो गये। भीलों ने उदयपुर खेरवाड़ा मार्ग कों रोक लिया। उदयपुर से भेजी गयी एक और सेना ने पहाड़ी प्रदेशों के हाकिम अक्षय सिंह को प्रसाद में भीलों के घेरे से मुक्त किया।

30 मार्च से लेकर अगले चार दिन तक दोनों पक्षों में संघर्ष हुआ किंतु घने जंगलों में रसद व यातायात की कठिनाईयों के कारण राज्य की सेना भीलों के विरोध का अन्त न कर सकी।

(3) **खेरवाड़ा का घेरा :**

इस बीच भोलक, पीपलो, सारों व अन्य पालों के भील भी विद्रोह शामिल हो गये। भीलों ने एक बड़ी संख्या में एकत्रित होकर खेरवाड़ा को घेरने का असफल प्रयत्न किया। इसके पश्चात वे रिखबदेव के पास इकट्ठे हुए इस के प्रमुख नेता भोलक का रीमा, पीपली का खेमा तथा सगाजी का जोयता गमेती थे। उनके नेतृत्व में भीलों ने 10 अप्रैल, 1881 को चौबीस माँगे प्रस्तुत कीं।

(4) **अंग्रेजों की तैयारियाँ :**

आरम्भ से ही अंग्रेज अधिकारी किसी भी स्थिति का सामना करने लिये तैयारी कर रहे थे। कोटड़ा से मेजर टेम्पल शीघ्र ही खेरवाड़ा पहुँच गया। ब्लेयर भी माऊण्ट आबू से उदयपुर आ गया। 10 अप्रैल, 1881 को राजपूताना में जनरल का एजेन्ट कर्नल वाल्टर्स भी उदयपुर आ पहुंचा।

(5) **रिखबदेव का समझौता :**

ब्रिटिश अधिकारी यह चाहते थे कि महाराणा उनके निर्देशानुसार करे किन्तु महाराणा चाहता था कि अंग्रेजों के हस्तक्षेप के पहले ही भीलों से कर लिया जाय। अतएव महाराणा के प्रतिनिधि श्यामल दास ने रिखबदेव में भीलों से बातचीत आरम्भ की। शीघ्र ही ब्लेयर भी रिखबदेव पहुँच गया। खेमराज भंडारी के माध्यम से अप्रैल 18, 1881 को श्यामल दास व भीलों में बातचीत शुरू वार्ता के समय अचानक एक गोली चलने की घटना से वार्ता भंग हो गई। खेरवाड़ा का बचाव करने के लिये ब्लेयर वहाँ चला गया। अगले दिन श्यामल दास और भीलों में समझौता हो गया।

(6) **समझौते की शर्ते :**

इस समझौते की शर्तों को रिखबदेव के मंदिर के दाहिनी तरफ एक पत्थर पर अंकित किया गया। इसमें श्यामल दास ने भीलों को आश्वासन दिया कि उनकी गणना नहीं की जायगी; विद्रोह के लिये दोषी पाये जाने वाले भीलों को माफी दी जायेगी उनके सामाजिक व धार्मिक कार्यो में हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा; बेगार नही ली जायेगी तथा उनके प्रदेशों से राज्य की सेनाऐं हटा ली जायगी। इसके अतिरिक्त भीलों की भूमि की पैमाइश न करने; तिसाला की दर आधी करने; कामदारों को तंग न करने के आदेश देने; स्वयं व परिवार के लिये एकत्रित की गई महुआ, आम, घास व लकड़ी पर चुंगी न लगाने; भील इलाकों में पुलिस चौकियों की संख्या न बढ़ाने; अफीम व नमक के ठेके न देने; पिछले तीन सालों में कैद किये गये भीलों को मामूली जुर्माना अदा करने पर छोड़ देने के वचन दिये गये। रिखबदेव जाने वाले यात्रियों को सुरक्षा प्रदान करने वाले भीलों को "भोलाई" वसूल करने के अधिकार भी दे दिये गये। इस समझौते के बाद भी पूर्ण शांति स्थापित नहीं हुई। मार्च, 1882 में भीलाई व नथारा पालों के मीलों ने विद्रोह किया। उन्होंने दयालाल चौवींसा का मकान घेर लिया मेवाड़ की सेनाओं ने उनका दमन किया।

3.8.3 1881 के विद्रोह के समय भीलों का आचरण :

संथालों के समान भीलों ने इस विद्रोह में व्यापक रूप से हिंसा का आश्रय नहीं लिया। उन्होंने अशांत इलाकों से गुजरने वाले यात्रियों को भी तंग नहीं किया। केवल ऐसे अधिकारियों को ही अपना निशाना बनाया जो उन पर अत्याचार करते थे।

इस विद्रोह के समय भीलों ने महाराणा के प्रति निष्ठा तथा अंग्रेजों के प्रति रोष प्रकट किया। उन्होने श्यामल दास को कहा कि यदि महाराणा उन्हें तंग न करें तो वे "फिरंगियों" को राज्य से बाहर कर देंगे। कुछ भील गमेतियों ने ब्लेयर को यहाँ तक कहा कि वे मेवाड़ छोड़ कर चले जाये।

3.8.4 प्रभाव :

(1) **1881 के पश्चात् की भीलों के प्रतिरोध की घटनायें :**

इस समझौते से मेवाड़ में पूरी तरह से शांति स्थापित नहीं हुई। 1881 के अन्त में भोराई व निथारा के भीलों ने विद्रोह किया। इस विद्रोह को दबा दिया गया। कालियावास और धंकनवाड़ा में भी उनके विरूद्ध कार्यवाही की गई। कुछ अन्य स्थानों पर भी भीलों ने अपना असंतोष प्रकट किया।

(2) **अंग्रेजों का हस्तक्षेप व भीलों के साथ एक नया समझौता :**

अंग्रेज अधिकारियों ने रिखबदेव में किये गये समझौते को मेवाड़ राज्य की कमजोरी माना। उन्होंने महाराणा कौ भीलों के साथ एक नया समझौता करने के लिये विवश किया। मई, 1881 में किये गये इस समझौते के अनुसार भविष्य में किसी भी भील प्रदेश में होने वाली डकैती के लिये वहाँ के "पालों" को सामूहिक रूप से हरजाना देना पड़ेगा अन्यथा उनके विरूद्ध सैनिक कार्यवाही को जायेगी। कोई भी "पाल" राज्य की वफादारी को नहीं त्यागेगा। उदयपुर के गिरवा प्रदेश में पुलिस चौकियाँ पुन : स्थापित करने पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी। बारापाल व खेरवाड़ा की सड़क पर रहने वाले भीलों को यात्रियों व डाक की सुरक्षा की जिम्मेवारी सौंपी गई। यदि वे इस कार्य में रहे तो इस क्षेत्र में पुन : चौकियाँ स्थापित करने का निश्चय किया गया।

(3) **प्रशासनिक व्यवस्था मे सुधार :**

मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेशों की प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार किया। गोविन्द सिंह मेहता नामक एक योग्य अधिकारी को वहाँ का हाकिम नियुक्त किया। उसे अपना अधिकांश समय सराड़ा में बिताने का आदेश किया गया। हाकिमों, नायब हाकिमों व राजस्व अधिकारियों के कर्तव्यों को सुनिश्चित किया गया। उन्हें राज्य के महकमा खास के अधीन किया गया। हाकिमों व नायब हाकिमों के न्यायिक अधिकार निश्चित किये गये। अनेक स्थानों पर पुन पुलिस चौकियाँ स्थापित की गई। काफी संख्या में घुड़सवार व पैदल सिपाही नियुक्त किये गये। अधिकारियों को दिये गये कि अपराधियों को पकड़ने के मामले में वे गमेतियों से सहयोग।

(4) **भीलों के हितों के लिये कार्य करने के आदेश :**

अधिकारियों को आदेश दिये गये कि वे भीलों को खेती करने के लिए प्रोत्साहन दें। स्थानीय व्यापारियों से उन्हें कृषि उपकरणों, पशु व बीजों को खरीदने के लिए ऋण दिलाने की व्यवस्था करें। कुओं और तालाबों के खोदने के लिये उनके प्रस्ताव सरकार के पास भेजे जाये। केवल प्राचीन परम्पराओं के अनुसार ही भीलों से बेगार ली जाये। गमेतियों से सलाह करके "कूंता" के समय होने वाले विवादों कों निबटाया जाये। भील क्षेत्रों में सड़कें बनाई जाये। उदयपुर–खेरवाड़ा सड़क पर के तोल के नये प्रबन्धों से होने वाली हानि को पूर्ति की जाये। सिरोही के रोहरा में नव–स्थापित नमक के भंडार से उचित दर पर भीलों में नमक वितरित करने की पल की जाये।

(5) **शैल कांतर हितकारिणी सभा की स्थापना :**

मेवाड़ के महकमा खास के अधीन इस सभा की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य भीलों के हितों के लिये कार्य करना था।

(6) **हाकिमों व भील गमेतियों में परामर्श की व्यवस्था :**

समय–समय पर दोनों में परामर्श करने की आवश्यकता पर बल दिया गया।

(7) **भील क्षेत्रों में सैनिक बल मे वृद्धि :**

1884 ई. में चार हजार सैनिकों की एक छावनी के लिये भोराई में किले का निर्माण पूरा किया गया। भोमिया जागीरदारों को भी अधिक सैनिक रखने को कहा गया।

इस प्रकार एक ओर भीलों की शिकायतें दूर करने का प्रयत्न किया गया तो दूसरी ओर उनके क्षेत्रों में पुलिस व सैनिक बल में वृद्धि करके उन्हें नियन्त्रण में रखने की कोशिश की गई।

3.9 1883 से 1900 तक की छुटपुट घटनायें :

1883 में सूखा तथा 1884–85, 1888, 1891–92, 189, 1897, 1899–1901 में मेवाड़ में अकाल पड़े। इनमें 1899–1901 का अकाल भयंकर था। इसमें भीलों की काफी संख्या में मृत्यु हुई तथा उनकी आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई। ऐसी विषय परिस्थितियों में भीलों द्वारा चोरी व लूट की घटनाओं में वृद्धि हुई। लिये उनको दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

3.10 1818 से 1900 तक भीलों के विद्रोह तथा प्रतिरोध आन्दोलन की विशेषताऐं :

1832 तक ब्रिटिश प्रान्तों में अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध जनजातियों के विद्रोह संगठित नहीं थे क्योंकि इनका संचालन किसी एक योग्य नेता द्वारा नहीं किया गया था। इसके बाद भूमिज विद्रोह (1833) में गंगा नारायन सिंह, संथाल विद्रोह (1855–56) में कान्हू व सिद्धू तथा मुंडा विद्रोह (1895) में बिरसा के नेतृत्व में जन–जातियों ने ब्रिटिश सरकार का विरोध किया था। लेकिन 1818–1900 के बीच राजपूताना के भीलों के विद्रोह अथवा प्रतिरोध आन्दोलनों का संचालन किसी एक प्रभावशाली नेता द्वारा संगठित रूप से नहीं किया गया था। केवल कुछ समय के लिये मेवाड़ के एक क्षेत्र में दौलत सिंह ने नेतृत्व के कुछ गुणों का परिचय दिया था।

भूमिज, कोल, संथाल व मुंडा विद्रोहों में व्यापक रूप से हिंसा का प्रयोग किया गया था। ब्रिटिश अधिकारियों, बाहर से आये व्यापारियों, ठेकेदारों व शोषण करने वाले अन्य तत्वों को जन–जातियों ने विशेष रूप से अपना निशाना बनाया था लेकिन राजपूताना में भीलों ने केवल कुछ अधिकारियों व महाजनों के विरूद्ध सीमित पैमाने पर कार्यवाही की। उनके विद्रोही में व्यापक रूप से हिंसा देखने को नहीं मिलती।

छोटा नागपुर में उपरोक्त जन–जातियों के विद्रोहों का उद्देश्य ब्रिटिश सरकार कों उखाड़ कर अपनी जाति का राज्य स्थापित करना था। इनके नेताओं ने अपने अनुयायियों को यह आशा दिलाई थी कि वे उनके प्राचीन गौरव को पुन: प्राप्त करायेंगे। राजापूताने के भीलों का उद्देश्य अपने क्षेत्र के राजपूत शासकों को गद्दी से हटा कर अपना राज्य स्थापित करना नहीं था। वे तो केवल अपने प्रति किये गये अन्यायों का प्रतिकार करना चाहते थे।

3.11 1818 से 1823 तक मेरों का विद्रोह :

अजमेर के आस पास की पहाड़ियों (मगरों) में मेरो का निवास हैं। इस क्षेत्र में ये राजपूतों के आने के पहले रहते थे। ऐसा माना जाता है कि ये मीना जाति के थे तथा राजपूतों द्वारा खदेड़े जाने पर इन इलाकों में चले गये। मेरू (पर्वत) प्रदेशों में रहने के कारण ये मेर कहलाये। सल्तनत व मुगल काल में इन पर कभी भी पूर्ण रूप से नियन्त्रण स्थापित नहीं किया गया था।

1818 में अंग्रेजों ने सिंधिया से अजमेर प्राप्त किया। उसके पश्चात् उन्होंने मेवाड़ व मारवाड़ से अजमेर की सीमा पर स्थित कुछ प्रदेशों को अस्थायी तौर पर लेकर अजमेर–मेरवाड़ा का निर्माण किया। इसके प्रशासन के लिये एक चीफ कमिश्नर नियुक्त किया गया।

टॉड के अनुसार इन प्रदेशों में मराठों के आक्रमणों के कारण उत्पत्र अव्यवस्था का मेरों ने लाभ उठाया। वे आस पास के इलाकों को लूटने लगे। इस क्षेत्र में अंग्रेजों का नियन्त्रण स्थापित होने के बाद भी वे अशान्ति फैलाते रहे। 1818 में अंग्रेजों ने मेरवाड़ा में झाक व कुछ अन्य ग्रामों के मेरों के मुखियाओं के साथ समझौते किया। इन समझौतों में मेरो ने लूट–मार न करने का वचन दिया। लेकिन शीघ ही उन पर समझौतों की शर्त का उल्लंघन करने का आरोप लगाया

1819 ई. में उनके विरूद्ध एक सेना भेजी गई तथा उनके क्षेत्रों में पुलिस चौकियाँ स्थापित की गई। अंग्रेजों द्वारा उठाये गये इन कदमों से मेरों में रोष फैल गया। 1820 में झाक में एक पुलिस सिपाहियों को मार दिया गया। शीघ्र ही अनेक स्थानों पर पुलिस चौकियाँ नष्ट की गई।

मेरे द्वारा विद्रोह की संभावनाओं को रोकने के लिये अंग्रेजों ने मेवाड़ व मारवाड़ से हस्तगत किये मेरवाड़ा के प्रदेशों पर एक अंग्रेज सैनिक अधिकारी की कमांड में पूर्ण नियंत्रण स्थापित किया। मेरवाड़ा में मेरी के आठ सैनिक दस्ते बनाये गये। प्रत्येक सैनिक दस्ते में 70 मेरों को रखा गया। मेरों के कोर्प्स के व्यय का कुछ अंश मारवाड़ व मेवाड़ से वसूल किया गया। अंग्रेजों ने इन दो राज्यों को उनके प्रदेश 1947 तक नहीं लौटाये।

1821 से 1823 के अभियानों तथा उस समय में किये गये प्रबन्धों से मेरों को अंग्रेजों की शक्ति का आभास हो गया। अतएव इसके पश्चात् उन्होने फिर कभी विद्रोह करने का साहस नहीं किया।

3.12 उन्नीसवीं सदी मे भाद्राजून के मीणाओं के उत्पात:

राजस्थान के विभिन्न प्रदेशों में मीणाओं का निवास है। अन्य आदि निवासियों के समान राजपूतों ने इनकी सजा का अन्त किया। आमेर के क्षेत्र में कछवाहों ने ग्यारहवीं सदी तक मीणाओं पर रूप से अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया था। मध्यकालीन युग में मारवाड़ के विभिन्न प्रदेशों में राठौर भी उन पर अपना प्रभुत्व जमाने में सफल हुए। उन्नीसवीं सदी में भी भाद्राजून के मीणा मारवाड़ राजा के लिये एक समस्या बने रहे। मुंशी हरदयाल सिंह के वे

अपराध कर निकट के पहाड़ों में छुप जाते थे लेकिन 1890 के लगभग उन्होंने शांति जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया।

मेवाड़, चितौड़, अलवर, हाड़ोती, डूंगरपुर, भीलवाड़ा तथा अन्य प्रदेशों में रहने वाले मीणाओं ने उन्नीसवीं सदी में अपने राज्यों के लिये कोई गंभीर समस्या उत्पन्न नहीं की।

3.13 बोध प्रश्न:

(1) उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में मेवाड़ में भीलों में व्याप्त असंतोष के कारणों को विवेचना कीजिये। उनके विद्रोहों का दमन करने में अंग्रेजों की भूमिका को दर्शाइये।

उत्तर: देखें 4.2.1 और 4.2.5

(2) 1881 के भील विद्रोह के कारणों और प्रभावों की विवेचना कीजिये।

उत्तर: देखें 4.8.1 और 4.8.4

(3) **निम्नांकित पर संक्षिप्त में टिप्पणी लिखिये :**

(अ) दौलत सिंह और गोबिन्द्रा का विद्रोह (1826–28)

उत्तर: देखें 4.3

(ब) रिखबदेव का समझौता (1881)

उत्तर: देखें 4.8.2

(स) मेरों का विद्रोह (1821–23)

उत्तर: देखें 4.11

3.14 संदर्भ ग्रन्थों की सूची :

1. Proceedings of the Foreign Political Department of the Government of India (1818–1900) preserved in the National Archives of India.
2. Mewar Precies, Published by the Government of India.
3. Tod, Colonel James - Annals & Antiquites of Rajasthan (Edited by William Croake), Indian Reprint, Delhi, 1871.
4. Shyamal Das - Vir Vinod (1886), Reprint 1986
5. J.C. Brookes - History of Mewar
6. B.K. Sharma - Tribal Revolts
7. B.K. Sharma - Peasant Movements in Rajasthan
8. L.P. Mathur - Resistance Movements of Tribals of India (A case study of Bhils of southern Rajasthan in the Nineteenth Century)

इकाई–4
संथाल विद्रोह (1855 –56)

इकाई की रूपरेखा

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 संथाल हूल यानी विद्रोह की पहली चिंगारी
4.3 संथाल विद्रोह के कारण
4.4 संथाल विद्रोह का घटनाक्रम
4.5 विद्रोह की अवधि में संथालों का दमन
4.6 संथाल विद्रोह के परिणाम
4.7 सारांश
4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
4.9 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

4.0 प्रस्तावना

संथाल भारत की पाँच करोड़ जनजाति जनसंख्या का एक भाग है। देश की मुख्य जनजातियों में संख्या की दृष्टि से गोण्ड सर्वप्रथम आते है। उनके बाद संथाल आते है। और तीसरे स्थान पर भील जनजाति को रखा जाता है। देश की सम्पूर्ण जनसंख्या का 7.8 प्रतिशत जनजातियों का है। संविधान के अनुसार इन जनजातियों को अनुसूचित जनजातियाँ कहते है। ये अनुसूचित इसलिये है कि राष्ट्रपति द्वारा घोषित अनुसूची में इनका नाम दर्ज है। जनजाति होने के कारण इन्हें कुछ विशेष सुविधाऐं प्राप्त है। अधिसंख्यक संथाल बिहार पाये जाते है लेकिन इनकी जनसंख्या का एक भाग पश्चिमी बंगाल में भी पाया जाता है। कहना चाहिये कि कुल संथाल जनसंख्या का कोई 98 प्रतिशत भाग बिहार और पश्चिमी बंगाल में रहता है। न्यूनतम संख्या में संथाल असम, मेघालय, उड़ीसा, नेपाल तथा बांग्लादेश में भी मिलते है। जनजाति के लोग बहुत ही शांतिप्रिय है। बहुत पहले जार्ज केम्पबेल ने कहा था कि संथाल ऐसी मेहनतकश कौम है जो व्यवस्थित रूप से जंगल को काटकर कृषि योग्य भूमि तैयार कर लेती है। यह सत्य है कि जब ई० 1793 में जमींदारी व्यवस्था का आविर्भाव हुआ, संथालों की कृषि भूमि पर ही जमींदारों को भूमि का कब्जा दिया।

संथालों द्वारा 1855–56 में किया गया विद्रोह वास्तव में इतिहासकारों की अध्ययन सामग्री रहा है। हाल में इस विद्रोह का अध्ययन मानवशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने भी किया है। जब इतिहासकार संथाल विद्रोह का अध्ययन करते है तब उनकी रुचि उपनिवेशवादी ब्रिटिश कालीन प्रशासन को देखना होता है। इतिहासकार यह भी देखते है कि संथाल के उठने के कारण क्या थे, ब्रिटिश शासकों ने इस विद्रोह को किस भाँति दबाया और इसके परिणामस्वरूप उनकी

प्रशासनिक रीति–नीति में क्या परिवर्तन आये। इतिहासकार यह भी देखते है कि इस प्रकार के आदिवासी विद्रोह देश के अन्य भागों में किस भांति विकसित हुये। मानवशास्त्री और समाजशास्त्री संथाल विद्रोह का विश्लेषण करते है तब उनका केन्द्रीय तर्क यह होता है कि ये विद्रोह वस्तुत : एक प्रकार के आन्दोलन है। आन्दोलन वह है जिसमें निरन्तरता होती है। समाजशास्त्रियों में एम.एस..ए. राव ने कहा है कि संथाल विद्रोह आदिवासी कृषकों का हमारे देश मैं सबसे पहला आन्दोलन था। इसके बाद बारडोली (गुजरात), तेलंगाना (आन्ध्रप्रदेश) और दक्षिण के राज्यों में जो भी कृषक विद्रोह हुए वस्तुत : वे आन्दोलन ही थे। आज भी ये आन्दोलन समय–समय पर महाराष्ट्र और उत्तरप्रदेश में देखने को मिलते है। यहाँ हम संथाल विद्रोह को ऐतिहासिक और मानवशास्त्रीय दोनों दृष्टिकोणों से देखने का प्रयास करेंगे।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई में आप संथाल जनजाति द्वारा किये गये विद्रोह का अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य है :

(1) ब्रिटिश उपनिवेशवादी सरकार ने किस भाँति जंगलों में बसे कृषि करने वाले संथालों को उनकी पैदाइशी अधिकार वाली भ्रम से बेदखल करके यह जमीन जमींदारों को दे दी।

(2) संथाल विद्रोह यह भी स्थापित करता है कि इतिहास में पहली बार के स्थायी बंदोबस्त के परिणामस्वरूप भूमि पर स्वामित्व सामुदायिक न रहकर व्यक्तिगत हो गया। अब भूमि जमींदारों के हाथ में व्यक्तिगत सम्पति बन गयी। इसे बेचा जा सकता था, खरीदा जा सकता था। भूमि इस तरह व्यक्तिगत सम्पति बन गई।

(3) संथाल विद्रोह के अध्ययन का एक यह भी उद्देश्य है कि किस भाँति कृषक और मालिक के बीच में बिचौलियों का आविर्भाव हुआ। इस आन्दोलन में भूमि की मालिक ब्रिटिश सरकार थी और खेती करने वाले किसान जमींदार इसमें बिचौलिये थे।

(4) इस इकाई का उद्देश्य यह भी स्थापित करना है कि जब कृषकों या पद–दलित लोगों का शोषण होता है तो इसका परिणाम अनिवार्य रूप से विद्रोह होता है। जब संथाल जनजाति के किसानों को उनकी भूमि से वंचित किया गया, उन्हें बंधुआ मजदूर बना दिया गया तो इसका परिणाम विद्रोह में हुआ।

(5) इस इकाई का एक और उद्देश्य यह भी बताना है कि जनजातियों और किसानों का शोषण केवल सरकार और बिचौलिये ही नहीं करते, व्यापारी और सूदखोर भी करते है। संथालों का यह विद्रोह जहाँ एक ओर उपनिवेशवाद के विरोध में था, वहीं वे सूदखोरों और व्यापारियों के भी दुश्मन थे।

(6) संथाल विद्रोह के अध्ययन का एक और उद्देश्य यह भी है कि कभी–कभी कोई बहुत बड़ा विद्रोह असफल भी हो जाता है पर इसके दूरगामी परिणाम बहुत घातक होते है। वे सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था को बदलने के लिए भी कारगर होते है।

4.2 संथाल हूल यानी विद्रोह की पहली चिंगारी

संथाल विद्रोह के पीछे कई कारण है। लेकिन 1855 ई० की जुलाई में जब यह आन्दोलन चला तो इसका कारण एक विशेष घटना है। इतिहासकार मानवशास्त्री के० सुरेश कुमार सिंह का कहना है कि छोटानागपुर के भगनाडिहि गाँव में चार भाई सीधू, कान्हू, चन्दू और भैरव रहते थे। ये भाई जमींदार और राजस्व अधिकारियों से अत्यधिक पीड़ित थे। इन चारों भाईयों के पास कोई कृषि भूमि नहीं थी। ये भूमिहीन थे। इन भाईयों में सीधू और कान्हू अधिक संवेदनशील थे। रात और दिन वे जमींदार, सूदखोर और बनियों के अत्याचार से पीड़ित थे। एक रात जब वे सो रहे थे उन्हें सपने में ठाकुर यानि भगवान एक सफेद आदमी के रूप में दिखायी दिये। इस आदमी का हुलिया आदिवासी हुलिये की तरह था। उसके प्रत्येक हाथ में दस–दस अंगुलियाँ थी। उसने एक पुस्तक पर कुछ लिखा और इसे इन भाइयों को साँप दिया। इस पुस्तक के साथ उन्होंने कागज के बीस टुकड़े भी दिये। यह सफेद आदमी देखते ही देखते आसमान की ओर उड़ गया। कुछ दिनों तक यह सफेद आदमी सीधू और कान्हू के सपनों में रोज आता रहा। कभी वह आग की लपटों की तरह ओझल हो जाता था, कभी चाकू तथा कागज के साथ ओझल होता था। कागज पर वह संथाल जनजाति को आदेश देता था कि वे जमींदार और बनियों को समाप्त कर दें। इस घटना को सीधू और कान्हू ने अन्य संथालों को बताया और धीरे–धीरे एक ऐसा दिन आया जब कुछ संथालों ने मिलकर महेश लाल दरोगा के सिर को धड़ से अलग कर दिया। बस यह विद्रोह का प्रारम्भ था।

इस चिंगारी ने तो संथालों पर जादू का काम किया। लेकिन वास्तविक विद्रोह के प्रारम्भ होने से पहले संथाल जनजाति में कई अफवाह भी चल रही थी। एक अफवाह यह थी कि संथाल गांव में नाग–नागिन खुले आम घूम रहे हैं और वे संथालों को निगल रहे है। इस गाँव के संथाल एकत्र हुए और उन्होंने अन्य गाँवों को साँपों द्वारा निगलने की बात कही। अफवाह ने जोर पकड़ा। कुछ संथालों ने इस अफवाह का सम्बन्ध जमींदारों और बनियों के साथ जोड़ा। एक और अफवाह यह भी थी कि एक भैंस गाँव–गाँव घूमती है और संथालों को खा जाती है। यह भी अफवाह चली कि कुछ गाँवों में संथाल खुले आम व्यापारियों और जमींदारों को मार रहे थे। संथाल विद्रोह के पीछे कई तत्कालीन अफवाह और कारण भी थे, लेकिन इस विद्रोह को इस तरह से नहीं देखा जा सकता। वास्तविकता यह है कि संथाल, व्यापारी और राजस्व अधिकारियों के दमन और अत्याचार से इतने पीड़ित थे कि वे विद्रोह को बाध्य हो गये। कान्हू और सीधू के सपने में साँप और भैंस के मनुष्यों को खा जाने की में तो केवल अटकलें या अनुमान थे। वास्तव में तो इस आन्दोलन के पीछे, जो अपने का जनजाति किसानों का पहला विद्रोह था, कुछ निश्चित कारण थे। इन कारणों को देखना चाहिये।

4.3 संथाल विद्रोह के कारण

इतिहासकारों ने बिहार के दक्षिण में स्थित संथाल क्षेत्र में हुए के कतिपय कारणों का उल्लेख किया है। ये कारण इस भाँति है

(1) **संथाल अपनी भूमि से बेदखल:**

सामान्यतया संथाल जंगलों में रहते आये हैं। प्रारम्भ में ये झूम करते थे। जंगल के एक भाग को वे जला देते थे। इसमें बुवाई कर देने थे। इस क्षेत्र में वे दो–तीन फसलें लेते थे और फिर जंगल के दूसरे भाग को जला देते थे। इस तरह की झूम कृषि संथाल ही करते हों, ऐसा नहीं है। मध्यप्रदेश, उड़ीसा और राजस्थान की कई जनजातियाँ शुरू में इसी तरह कृषि करती थी। संथाल कृषकों को की एक और विशेषता थी। कभी–कभी वे जंगल के एक भाग को जलाने की अपेक्षा व्यवस्थित रूप से काट देते थे। और इस भूमि को कृषि योग्य कर देते थे। 19वीं शताब्दी के मध्य में बिहार के छोटानागपुर, क्षेत्र में संथालों के पास जो कृषि भूमि थीं वह जंगल काट कर ही। बनायी गयी थी।

जब स्थायी भूमि बंदोबस्त की व्यवस्था अंग्रेज सरकार ने बिहार, उड़ीसा और बंगाल में लागू की तब संथालों की इस कृषि भूमि को जमींदारों के नाम आवंटित कर दिया गया। अब सवाल किसान भूमिहीन हो गये। उनके उपार्जन के साधन उनके हाथ से निकल गये।

(2) **बंधुआ प्रथा**

किसानों और भूमिपतियों ने संथाल किसानों को बंधुआ मजदूर बना दिया बना दिया। इस क्षेत्र में दो प्रकार के बंधुआ मजदूर थे। बंधुआ मजदूर की पहली व्यवस्था कमेटी थी। इस व्यवस्था में बंधुआ मजदूर को कर्ज दिया जाता था। इस कर्ज की रकम के बदले में जब कभी महाजन चाहता कर्जदार को काम करने के लिए बुला लेता था। इस काम का उसे कोई भुगतान नहीं किया जाता था। जब तक संथाल कर्ज की रकम नहीं चुका पाता था वह महाजन का बंधुआ बनकर काम करता रहता था। बंधुआ प्रथा का दूसरा प्रकार हरवाही था। इसके अनुसार कर्जदार संथाल महाजन के खेतों में बुवाई, कटाई सब कुछ करता था। इसके एवज में उसे कोई भुगतान नहीं किया जाता था। हरवाही संथाल जीवन भर कर्ज से मुक्त नही हो पाता था। यह इसलिये कि उसे अपनी भूमि पर काम करने का समय ही नहीं मिलता था।

(3) **डिकू द्वारा शोषण**

जब कभी बिहार की जनजातियों की चर्चा की जाती है। तब डिकू पद का प्रयोग अनिवार्य रूप से होता है। डिकू का मतलब है बाहरी लोग। संथाल जनजाति के लिये उनके क्षेत्र के बाहर से आये हुए लोग और इसी तरह गैर संथाली सभी लोग डिकू थे। 19वीं शताब्दी के मध्य में संथाल लोगों का डिकू शब्द से तात्पर्य बंगाली व्यापारियों, राजस्व अधिकारियों और जमींदारों से था। ये डिकू लोग संथालों का शोषण करते थे। जमींदार और राजस्व अधिकारी इन आदिवासियों का दमन करते थे। 1855ई. में जो संथाल विद्रोह हुआ उसके पीछे डिकू लोगों का द्वारा किया गया संथालों का शोषण एक महत्वपूर्ण कारक था।

(4) **सूदखोरों की भूमिका**

संथाल बेघर–बाहर और भूमिहीन हो गये थे। उन्हें प्राय : कर्ज की आवश्यकता रहती थी। महाजन और सूदखोर उन्हें कर्ज देते थे। कर्ज दी गयी रकम पर मनमाना ब्याज

लिया जाता था। सामान्यतया ब्याज की दर 50 प्रतिशत से 500 प्रतिशत थी। ब्याज की यह दर संथालों की कमर को तोड़ रही थी।

(5) **रेल मार्ग के निर्माण मे लगे यूरोप के ठेकेदारों द्वारा शोषण**

संथालों पर शोषण और दमन का चक्र केवल जमींदारों, बड़े किसानों, महाजनों और सूदखोरों तक. ही सीमित नहीं था। उन दिनों में बिहार में रेल मार्ग का निर्माण हो रहा था। यह काम यूरोप से आये हुए ठेकेदारों का था। ये ठेकेदार भी संथालों को रेल मार्ग निर्माण में कार्य देते थे। ऐसा करने में वे संथालों से मनमाना काम लेते थे और दिहाड़ी के रूप में जो भुगतान किया जाता था वह नाम मात्र ही था। यहाँ भी संथाल शोषण के शिकार थे।

(6) **शिकायत और सुनवाई नही**

ऐसा नहीं है कि संथालों का जो शोषण हो रहा था चाहे वह जमींदारों के हाथ हो या महाजनों के या सूदखोरों के उसके खिलाफ उन्होंने उपनिवेशवादी हुकूमत को शिकायत न की हो लिखित शिकायत तो वे बराबर करते थे। पर अधिकारियों के कान पर कोई जूँ नही रेंगती थी। ऐसा लगता था कि विद्रोह करने के अतिरिक्त संथालों के सामने कोई विकल्प शेष नहीं बचा था।

4.4 संथाल विद्रोह का घटनाक्रम

संथाल जनजाति के अग्रणी नेताओं ने सरकार को बराबर यह सूचना दी कि उनकी तबाही सीमा को पार कर गयी है। लेकिन ब्रिटिश सरकार ने बड़ी सरलता से इस बात को भुला दिया कि संथालों के लिये विद्रोह एक परम्परा रही है। इन्ही संथालों ने 1811, 1820 और 1831 में उपनिवेशवादी सरकार की जड़ें हिला दी थी। 1854 में वास्तव में यह बात स्पष्ट कर दी कि विद्रोही के अतिरिक्त उनके लिये और कोई रास्ता नहीं था। विद्रोह को संगठित रूप से चलाने से पहले 1854 में ही उन्होंने लूटपाट शुरू कर दी। महाजनों और जमींदारों के पास जो शोषण का पैसा जमा था उस पर संथाल उपद्रवकारियों ने कब्जा कर लिया। उन्हीं दिनों में कलकत्ता–रिव्यू अखबार में एक लेख छपा जिसमें कहा गया कि बंगाल से गए हुए डिकू संथालों की लगातार होने वाली बैठकों से बहुत परेशान थे। सवालों का नेतृत्व, अखबार ने कहा, बीर सिंह कर रहे थे। इन बैठकों में कई क्रान्तिकारी संथाल भाग लेते थे। बीर सिंह के अतिरिक्त अन्य क्रान्तिकारियों में बोरे कोलेहफरमानिक और दोमन मंजही सम्मिलित थे। सरकारी अधिकारी उपद्रवकारियों की बैठकों से यह समझ गये कि बहुत शीघ्र संथाल कोई बहुत बड़ा उपद्रव करने वाले है। दरोगा महेश लाल दल संथालों को जब देखें तब गिरफ्तार कर लेता था। जब संथाल विद्रोह की चर्चा की जाती है तो निश्चित रूप से दरोगा के प्रति संथालों मैं जो आक्रोश था उसका उल्लेख अवश्य किया जाता था। इस सम्बन्ध में संथाल आक्रोश का निम्नलिखित कथन दोहराया जाता है :

हम यह देख लेंगे कि शांतिप्रिय संथालों को बांधने के लिये बदमाश दरोगा कितनी गूंज की रस्सी ला पायेगा?

इस तरह के कथन आने वाले विद्रोह की चेतावनी थे। लेकिन सन 1854 तक संथालों ने अपने क्षेत्र में शांति को बनाये रखा। वास्तव में यह समुद्र में आने वाले तूफान की पूर्व शांति थी। सरकार ने इसे गलत समझा। वह समझी कि संथाल कायर है और नए सरकार के तख्ते को उलटने का कोई साहस नहीं कर सकते।

ई. 1855 के प्रारम्भ में बीरभूम, बंकुरा, छोटा नागपुर और हजरत बाग के कोई 7000 संथाल एकत्र हुए। इनका उद्देश्य महेश लाल दल दरोगा के पिछले वर्षों के दमन का प्रतिकार करना था। उन्होंने कहा कि संथाल साथियों ने महाजनों और सूदखारों का अहित नहीं किया था फिर भी सरकार ने उन्हें हताहत कर दिया। देखा जाय तो सरकार ने करके कानून और व्यवस्था को अपने हाथ में ले लिया था। इस सभा में संथालों ने जो भी निर्णय लिये उसकी सूचना सम्पूर्ण संथाल समुदाय को दे दी गयी। इसके परिणामस्वरूप चार सौ गांवों का प्रतिनिधित्व करने वाले 10,000 संथाल 30 जून 1855 में भगनाडिहि गाँव में एकत्र हुये। इस सभा में कहा गया कि सभी संथाल संगठित होकर एक आदमी की तरह शोषण के खिलाफ विद्रोह करेंगे। इस सभा के आदेश पर अपने निर्णय की संथाल नेताओं– किरता, भादू, सुन्नों और सीधू ने कमिश्नर को सूचना दी। महाजनों और जमींदारों को भी कह दिया गया कि वे संथालों के शोषण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले तथा उनके पत्र का उत्तर 15 दिन मैं किसी भी तरह प्रेषित करें।

संथाल नेताओं ने भगनाडिहि के अपने इस पत्र में यह भी घोषणा वै कि वे अपने निश्चय के अनुसार किसी भी स्थिति में जमींदारों और महाजनों के शोषण से मुक्ति पाने के लिये सब कुछ करेंगे। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा :

विचित्र बात है। संथालों की इस चुनौती का सरकार ने कोई उत्तर नहीं दिया। इधर एक और सहानुभूति की लहर संथाल क्षेत्र में देखने को मिली। वे गैर–संथाल जो गाँवों में रहते थे उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि जब कभी संथाल विद्रोह का बिगुल बजायेंगे, वे उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर स्वतन्त्रता की इस लड़ाई में लड़ेंगे। जुलाई 28, 1855 भागलपुर के कमिश्नर ने बंगाल सरकार के सचिव को निम्नलिखित पत्र लिखा :

जो कुछ विवरण हमें प्राप्त है, इसके अनुसार संथालों के विद्रोह के पीछे ग्वाले, तेली और दूसरी जातियों के लोग काम कर रहे है। इन जातियों के लोग ढोल बजाकर सभी ग्रामीणों को एकत्र करते है और खुफिया की तरह काम करते है। संथालो के लिये हथियार बनाने का काम लोहारों ने ले लिया है। वे ही तीर बनाते है और कुल्हाड़ियाँ तैयार करते है। अब यह सरकार के लिये आवश्यक है कि वह विद्रोहियों के खिलाफ शीघ्र और सख्त कार्यवाही करे।

परिस्थितियाँ संथालों के अनुकूल थी। वे संगठित हो गये। सीने में उत्साहित दिल और होठों पर विद्रोही गीत लिये और हाथों में तीर–कमान लेकर संथाल झंडा ऊँचा उठाकर विद्रोह के लिये चल पड़े। उनके दुश्मन जमींदार, महाजन और उपनिवेशवादी सरकार थे।

दरोगा महेशलाल दत्त, जिसने संथालों पर ई. 1854 में जुल्म ढाये थे, पहला निशाना था। जब संथाल दरोगा के दरवाजे पर पहुँचे तो दरोगा ने उन्हें सलाह दी कि वे शांतिपूर्वक बिखर जायें। अपने खेतों में जाकर काम करें जिससे वे सरकार का राजस्व खजाने में दे सके।

इस तरह की सलाह को विद्रोही संथाल पचा नहीं सके। उन्होंने दरोगा के सिर को कुल्हाड़ी से काट दिया और विजय की ललकार करते हुए वे बेराहट की ओर चल पड़े। संथालों को आते हुए देखकर जमींदार के ऐजेण्ट, सूदखोर और महाजन अपने पाँवों को सिर पर लेकर भाग पड़े। इस प्रारंम्भिक विद्रोह में संथाल जनजाति ने जो कुछ पाया, उसे उन्होंने सुदृढ़ किया। जिस क्षेत्र में उन्होंने विजय पायी थी उसे सुरक्षित करके वे भागलपुर और राजमहल की तरफ बढ़े।

विद्रोही संथाल जय–जयकार करते हुए धूल के बादल उड़ाते हुए तीव्र गति से बढ़ रहे थे और इधर उपनिवेशवादी सरकार विशाल स्तर पर संथालों का मुकाबला करने के लिये तैयार हो रही थी। जो कुछ पुलिस और सेना सरकार को उपलब्ध थी, उसे सचेत किया और जमींदारों व दरोगाओं को आदेश दिये कि वे जैसी भी स्थिति में हो संथाल विद्रोह को दबाने के लिये भागलपुर और राजमहल पहुँचे। संथाल विद्रोही आग की लपटों की तरह विशाल रूप ले रहा था। बर्नेस जो कोल गोंग में थे, उन्होंने विद्रोही संथालों की जानकारी देते हुए भागलपुर कमिश्नर को लिखा :

इस क्षेत्र में संथाल विद्रोह भयानक स्थिति में है। वे मार–काट करने पर उतारू है। यद्यपि उनकी संख्या थोड़ी है लेकिन ढोल की आवाज पर यह संख्या देखते ही देखते 10,000 आदमियों की हो जाती है।

प्रत्येक आदिवासी विद्रोह की तरह संथाल विद्रोह की लड़ाई का तरीका गुरिल्ला युद्ध का था। इस तरह का प्रयोग सर्वप्रथम संथाल जनजाति ने ही किया था। पहली बार संथालों ने जनता की सेना बनायी जिसमें विद्रोही संथाल किसान अपने शोषकों का सम्पूर्ण उन्मूलन करने को उतारू थे। यह आश्चर्यजनक बात थी कि बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण के विद्रोही संथालों का व्यवहार पूरी तरह से अनुशासित था। 10,000 की संख्या में ये संथाल देखते ही देखते एकत्र हो जाते थे और फिर संकेत मिलने पर बिखर भी जाते थे।

संथाल विद्रोहियों ने भागलपुर और राजमहल के बीच के रेल और डाक सम्पर्को को पूरी तरह से समाप्त कर दिया। इन दोनों शहरों के बीच में जो भी भू–भाग था, उस पर संथाल विद्रोहियों का कब्जा हो गया था। पिरपेन्टी और सकरीगुली कस्बों को जोड़ने वाली सड़क विद्रोहियों के हाथ में थी। ऐसी अवस्था में विद्रोही संथालों में घोषित किया कि अब उपनिवेशवादी सरकार समाप्त हो गयी थी और सूबे का शासन उनके हाथों में आ गया था।

मेजर बुरोग को पिरपेन्टी बुला लिया गया। जुलाई 16, 1855 की शाम 2 बजे पिरपेन्टी उपद्रवकारियों के हाथों में आ गयी थी। बुरोग को लगभग 25 सैनिकों के साथ पिरपेन्टी छोड़कर भागना पड़ा। भागते हुए वे कोई आधा दर्जन अधिकारियों को युद्ध के मैदान में मरा छोड़कर चले गये। बुरोग ने इस अवसर पर अपनी रपट में इस तरह लिखा :

विद्रोही अपनी भूमि पर मजबूत है। वे तीर–कमान से वार करते है और युद्ध में कुल्हाड़ी का प्रयोग मारने में करते है।

विद्रोहियों की ताकतवर स्थिति को देखकर सरकार ने चालीसवीं और सातवीं रेजीमेन्ट को संथालों का मुकाबला करने के लिये युद्ध क्षेत्र मे भेजा। इस अवधि में रेलों का यातायात

एकदम बन्द हो गया और सरकार का भय बहुत गहरा हो गया। ऐसा लगा कि संथाल विद्रोह की स्थिति हर तरह से सरकार के नियंत्रण से बाहर थी।

जुलाई 19, 1855 को सरकार ने मार्शल लॉ लगा दिया। इसे लागते हुए यह घोषित किया कि अब संथाल विद्रोह हर तरह से सरकार के खिलाफ बगावत थी। सरकार ने यह भी कहा कि जिन विद्रोहियों के पास हथियार मिलेगें उन्हें मार दिया जाएगा। जो विद्रोहियों के कटे हुए सिर को जमा करायेगा उसे नगद पारितोषिक दिया जायगा। मुख्य विद्रोही के लिये नगद पारितोषिक की रकम 10,000 निर्धारित की गयी और मध्यम स्तर के विद्रोही का पारितोषिक 5,000/– रखा गया। सामान्य मुखियाओं सिर के लिये 1000/–का पुरस्कार निर्धारित किया गया। सेना को यह अधिकार दे दिया गया कि वह संथाल विद्रोह को दबाने के लिये जो भी उचित कदम समझे, उठाये।

4.5 विद्रोह की अवधि में संथालों का दमन

मार्शल लॉ लागू करने के बाद सरकार ने संथाल जनजाति पर कई जुल्म ढाये। जुल्म और दमन के होते हुए भी यह विद्रोह फैलता ही गया। अब इस विद्रोह में बहुत बड़ी संख्या में गैर संथाली छोटी जातियाँ भी, जिन्हे डिकू कहते हैं, सम्मिलित हो गयी। स्थिति कुछ इस तरह बनी कि इस विद्रोह में अब केवल संथाल ही नहीं रहे। इस क्षेत्र के गरीब–गुरबे भी शामिल हो गये। सीधू, कान्हू, भैरव और चन्दू आदि ने आकुर गाँव पर अपना कब्जा कर लिया। वहाँ के महाजन और जमींदार भाग निकले। इनको इन भाइयों ने कैद कर लिया। उस क्षेत्र के बहुत अधिक बदनाम सूदखोर दीनदयाल राय भी पकड़े गये। इनका एक बंधुआ मजदूर जगन्नाथ उन्हे पकड़कर संथाल नेताओं के पास ले आया। दीन दयाल राय के सिर को संथालों की भरी सभा में धड़ से अलग कर दिया। उन्होंने दीनदयाल की अंगुलियों को यह कह कर कुल्हाड़ी से काट दिया कि ये अंगुलियाँ ही ब्याज गिनती थी। इन्हीं हाथों से राय दूसरों के मुँह का कौर खींच लेते थे। यही तक दीनदयाल के मृत शरीर की त्रासदी नहीं थी। वे इसे लेकर गाँव के मंदिर में गये और इसकी करतूतों की कुख्याती में इसे सड़ा दिया।

संथालों की क्रूरता से सैनिक दहल गये। संथालों का मुकाबला करने के लिये 42वीं और 43वीं रेजीमेन्टों को भेजा गया। सरकार की मदद के लिये जमींदार आगे आटे और उन्होंने आर्थिक सहायता प्रदान की। भागलपुर के आस पास के जमींदारों ने सैनिकों की युद्ध में मदद के लिये हाथियों की सहायता दी। हाथी देने के पीछे केवल एक ही शर्त थी कि जब तक युद्ध में इनसे काम लिया जाये, सरकार का यह उत्तरदायित्व था कि वह हाथियों के देखभाल की पूरी सुरक्षा प्रदान करें।।

अब सेना इस स्थिति में थी कि पूरी क्रूरता के साथ विद्रोह को दबा सके। यह कहा जाता है कि राजमहल पहाड़ियों की पूरी तलहटी संथालों के खून से लथपथ हो गयी। युद्ध तो बहुत वींभत्स था पर इसका जो वृतान्त सरकारी रपट में उपलब्ध है उससे ज्ञात होता है कि संथाल सेना के मुकाबलें में चट्टान की तरह अड़े रहे। ओ–मेले ने सरकार और संथालों के बीच में हुए इस युद्ध का लोमहर्षक वर्णन प्रस्तुत किया है किसी का भी सिर संथालों की वींरता और साहस के सामने झुक जायेगा। ओ–मेले लिखते है :

युद्ध में एक अवसर ऐसा आया जब सेना के हमले से बचने के लिये कोई 45 संथाल एक झोपड़ी में घुस गये। सैनिकों ने इन्हें मारने के लिये गोलियों की बौछार की। संथाल मिट्टी की दीवारों से बनी झोपड़ी के अन्दर से अपने तीर–कमान चलाते रहे। एक ओर गोलियाँ थी और दूसरी ओर तीर–कमान। आखिर में संथाल ज्यादा समय तक मुकाबला नहीं कर पाये और एक के बाद एक गोलियों का निशाना बन गये। सैनिकों ने झोपड़ी के अन्दर जाकर देखा कि एक बूढ़ा संथाल किसी कोने में अपनी कमान को संभाल रहा था। सैनिक ने उसे आत्म सर्मपण के लिये कहा लेकिन अभी बूढ़े संथाल की हड्डियों में लोहे की ताकत थी। उसने सैनिक को मार दिया और अन्त में स्वयं अन्य सैनिकों की गोलियों का निशाना बन गया।

सैनिकों ने संथाल विद्रोहियों के साथ बड़ा क्रूर व्यवहार किया। इन दोनों के बीच का यह संघर्ष ई० 1855 के अगस्त के मध्य तक चलता रहा। इस अवधि तक कोई 30,000 संथाल सैनिकों का मुकाबला करने के लिए युद्ध क्षेत्र में डटे हुए थे। अगस्त 11, 1855 को भागलपुर के कमिश्नर ने बंगाल की सरकार को लिखा कि संथाल किसी भी हालत में पीछे हटने को तैयार नहीं है। वे तो अधिक सशक्त होकर सैनिकों का सामना करने के लिए तैयार है। सरकार को लगा कि विद्रोहियों का जितना अधिक दमन किया जाय उतने ही अधिक शक्तिशाली होकर वे सैनिकों का मुकाबला करने आगे आ जाते है।

संथाल अपने बल पर तो पूरी तरह दक्षिण बिहार से लड़ रहे थे लेकिन शेष भारत के आदिवासी किसान पूरी तरह मौन साधे बैठे थे। इधर सैनिक शक्ति में बराबर वृद्धि होती रही और परिणाम यह हुआ कि पचास हजार से अधिक संख्या में संथाल युद्ध क्षेत्र में खेत हुए। अब संथाल विद्रोह को पूरी तरह से दबा दिया गया। फरवरी के अंतिम सप्ताह 1856 में काजू सहित अन्य संथाल नेताओं को पकड़कर जेल में डाल दिया गया। हजारों संथाल सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया गया और इसके परिणामस्वरूप संथालों का मनोबल नीचे गिर गया। इस विद्रोह में हार संथालों के हाथ लगी। लेकिन हार कर भी संथालों ने सब कुछ खो दिया हो, ऐसा नहीं था। बाद में चलकर सरकार को आदिवासी किसानों के प्रति अपनी नीति को बदलना पड़ा।

4.6 संथाल विद्रोह के परिणाम

इतिहासकारों और मानवशास्त्रियों ने संथाल विद्रोह के परिणामों को निम्न बिन्दुओं में रखा है :

(1) युद्ध के बाद सैकड़ो संथालों को कैदी बना दिया गया। उन्हें जीवन पर्यन्त कैद में ही रखा गया। ऐसे संथाल भी कैदी थे जिनकी उब 9–10 वर्ष से भी कम थी। यह रूचिकर बात है कि इन कैदियों को छुड़ाने के लिये या इन पर कानूनी कार्यवाही करने के लिये सरकार को कोई गवाह नहीं मिले। इसका अर्थ हुआ संथाल विद्रोह के पीछे विशाल जन–समर्थन था।

(2) संथाल विद्रोह को बड़ी निर्दयता पूर्वक दबाया गया था। बिहार में यह विद्रोह दब तो गया लेकिन इसके परिणाम देश के अन्य भागों में देखने को मिले। दक्षिण भारत में संथाल विद्रोह का प्रभाव कुछ वर्षो में चलकर बहुत स्पष्ट हो गया। ई. 1872 में पूना

में मराठा किसान विद्रोह में हथियार उठाकर खड़े हो गये। ई. 1875 –76 में अहमदाबाद में भी किसान विद्रोह हो गया। सभी जगह किसानों की एक मात्र माँग यह थी कि जमींदारों और महाजनों के शोषण को समाप्त कर दिया जाये। अन्त में चलकर संथाल का खून रंग लाया और जगह–जगह किसान आन्दोलन पैदा हो गये।

(3) संथाल विद्रोह का बहुत महत्वपूर्ण परिणाम संथाल परगना का निर्माण था। ब्रिटिश सरकार ने यह निश्चय किया कि जिस क्षेत्र में संथाल जनजाति बहुसंख्यक है उसे संथाल परगना का भाग समझा जाये। आज बिहार में जिसे संथाल परगना कहते है, वह 1855 के विद्रोह का परिणाम है।

4.7 सारांश

भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या का 7.8 प्रतिशत जनजातियों का है। जनसंख्या की दृष्टि से गोंड जनजाति पहले स्थान पर आती है। दूसरा स्थान संथाल जनजाति का है। जनजाति के बहुसंख्यक लोग बिहार, बंगाल और उड़ीसा में पाये जाते है। अन्य जनजातियों तरह संथाल जनजाति का मुख्य व्यवसाय खेती–बाड़ी है। उपनिवेशवादी युग में संथालों पर सरकार, राजस्व अधिकारी, महाजन और सूदखोरों ने बहुत अधिक अत्याचार किये। संथालों कृषि भूमि स्थायी बन्दोबस्त के बाद जमींदारों के हाथ में आ गयी। यह बहुत बड़ा जुल्म संथालों के पेट पर था। विद्रोह करने के अतिरिक्त उनके सामने और कोई विकल्प नहीं था। कुछ ऐसा वातावरण बना कि संथाल संगठित होने लगे और उन्होने हजारों की संख्या में यह निश्चित किया कि वे सरकार का मुकाबला युद्ध भूमि में करेंगे। लड़ने के लिये उन्होंने गुरिल्ला युद्ध पद्धति अपनायी। सैनिकों के साथ उनका पहला मुकाबला अगस्त 1855 में हुआ। अगस्त से यह विद्रोह फरवरी 1856 मैं पूर्णतया दबा दिया गया। जहाँ संथाल जनजाति के जवानों ने और महाजनों का निर्दयता पूर्वक संहार किया वहीं सैनिकों ने भी संथालों को दबाने में कोई कमी नहीं रखी। संथाल विद्रोह दबा तो दिया गया पर इसकी चिंगारियाँ एक दो वर्ष पूरे में देखने को मिली। अब किसानों ने यह बात स्पाट कर दी कि वे बड़े किसानों, जमींदारों, और महाजनों के अत्याचारों को अधिक सहन नहीं करेंगे। दक्षिण बिहार में जहाँ संथाल निवास करते है वहाँ संथाल परगना की स्थापना संथाल विद्रोह की एक ऐतिहासिक उपलब्धि रही है।

4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. संथाल जनजाति के विषय में एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
2. संथाल विद्रोह के अध्ययन के पीछे कौन से मुख्य उद्देश्य है? इनका उल्लेख कीजिये।
3. संथालों के ठाकुर यानी भगवन ने सपने में आकर सवाल बंधुओं को क्या कहा? संथाल विद्रोह के भड़काने में इस सपने के योगदान को बताइये।
4. 1855 – 56 के संथाल विद्रोह के कौन से कारण थे?
5. संथाल डिकू किसे कहते है? डिकू के अर्थ को समझाइये।
6. संथाल विद्रोह के घटनाक्रम को सिलसिले से समझाइये।

7. उपनिवेशवादी सरकार ने किस भाँति संथालों के विद्रोह का दमन किया? कतिपय घटनाऐं दीजिये।
8. यद्यपि संथाल विद्रोह असफल रहा फिर भी इसके कुछ परिणाम देखने को मिले। इन परिणामों का ब्यौरा दीजिये।

4.9 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. देसाई, ए.आर. पीजेन्ट स्ट्रगल्स इन इण्डिया, ऑक्सफोर्ड युर्निवसिटी प्रेस,1791
2. राव, एम.एस.ए., सोशल मूवमेन्टस इन इण्डिया, मनोहर, नई दिल्ली,1979।
3. सिंह, के. ए., ट्राइबल सोसाइटी इन इण्डिया, मनोहर, नई दिल्ली, 1985।
4. दत्ता मजूमदार, नबेन्दु, दि संथाल, पब्लिकेशन्स डिविजन, भारत सरकार, कलकता, 1956।

इकाई – 5
नील विद्रोह (1860 ई.)

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 नील की खेती की व्यवस्थाऐं
5.3 1810 व 1830 ईस्वी के कानून
5.4 नील विद्रोह के कारण
5.5 नील विद्रोह का आरम्भ
5.6 बंगाल के लेफ्टीनेंट गवर्नर के आदेश
5.7 1860 ईस्वी की घटनायें तथा लेफ्टीनेंट गवर्नर की घोषणा
5.8 प्रान्तीय सरकार द्वारा प्रस्तावित बिल एवं नील आयोग की
5.9 प्रस्तावित बिल का विरोध तथा आन्दोलन की लोकप्रियता
5.10 भारत सरकार का आदेश (1860 ईस्वी)
5.11 सेक्रेट्री ऑफ स्टेट की भारत सरकार के निर्णय के प्रति
5.12 नील आयोग का गठन व कार्य
5.13 भारत सरकार के प्रस्तावों का सेकेट्ररी ऑफ स्टेट द्वारा
5.14 बंगाल में नील की खेती का अंत
5.15 नील विद्रोह की विशेषताऐं
5.16 सारांश
5.17 अभ्यासार्थ प्रश्न
5.18 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

5.1 प्रस्तावना

सत्रहवीं शताब्दी से यूरोपियन व्यापारिक कंपनियाँ अन्य वस्तुओं के साथ भारत से नील का निर्यात भी करती थी। उस समय इंग्लैंड व यूरोप में नील का प्रयोग वस्त्रों को रंगने के लिए किया जाता था। इंग्लैंड में वस्त्र उद्योग के तेजी से विकास के साथ वही पर उसकी खपत बढ़ने लगी। संयुक्त राज्य अमेरिका के स्वतंत्र होने के पहले काफी मात्रा में नील वहाँ से तथा वेस्टइंडीज से इंग्लैंड आती थी लेकिन वेस्टइंडीज में नील के स्थान पर काँफी और कपास के बोये जाने तथा अमेरिका के स्वतंत्र होने के कारण इंग्लैंड में नील के आयात में काफी कमी आई। अत: इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने बंगाल व बिहार में नील की खेती को प्रोत्साहन दिया। ऐसा करने में उन्हें काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। आमतौर पर नील की फसल उगाना एक लाभप्रद कार्य नहीं था। अत कृषक इसे बोने के लिये राजी नहीं था। भारत से नील के निर्यात को बढ़ावा देने के लिये कम्पनी ने जमींदारों और बड़े व्यापारियों को बताया कि नील के व्यापार से उनको काफी लाभ हो सकता है। केम्ब्रिज इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया (जिल्द–

2) के अनुसार कुछ जमींदारों व व्यापारियों ने इसके उत्पादन व निर्यात में पूंजी लगाई इसके अतिरिक्त कम्पनी ने बंगाल व बिहार में यूरोपियन प्लान्टर्स को ऋण तथा सुविधाऐं दी।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में बंगाल व बिहार में ब्रिटिश पूंजीपतियों ने व्यवस्थित ढंग की खेती शुरू कर दी थी। लेकिन उन्होंने इसके लिये जो व्यवस्था स्थापित की उसमें कृषकों का शोषण होता था।

5.2 नील की खेती की व्यवस्थाऐं

नील की खेती के लिए ब्रिटिश प्लान्टर्स ने निम्नांकित दो तरीके अपनाये : –

(i) **निज आबाद:** नील की खेती के लिये एक प्लान्टर जमींदारों से भूमि खरीद कर श्रमिकों की सहायता से उस पर नील उगाता था। सुनील सेन के अनुसार इस बात के काफी प्रमाण है कि जमींदारों ने उन्हें महंगी दरों पर भूमि दी तथा उनसे ऊँची दरों से लगान वसूल किया।

(ii) **रैयती अथवा असामीवार:** इस व्यवस्था में रैयत अपनी भूमि पर स्वयं खेती करता था। एक पूंजीपति उसे इसके लिये अग्रिम राशि देता था। केम्ब्रिज इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया (जिल्द–2) के अनुसार आमतौर पर प्रति बीघा पर नील की खेती के लिए दो रुपये दिये जाते थे। इसके साथ–साथ वह किसान को कुछ ऋण भी देता था। एक कृषक से सबसे उपजाऊ भूमि पर खेती कराई जाती थी। प्रत्येक कृषक के साथ स्टाम्प पेपर पर एक लिखित अनुबन्ध किया जाता था इसके अनुसार फसल के बाद उस भूमि में उत्पादित नील, जिसकी दर अनुबन्ध के समय निश्चित की जाती थी, मैं से किसानों को दी गई अग्रिम राशि तथा ऋण मय ब्याज के वसूल कर लिया जाता था।

दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं में ब्रिटिश प्लान्टर भारतीयों पर अत्याचार करता था। निज आबाद तरीके में एक पूंजीपति अपने श्रमिको को बहुत कम वेतन देता था। वह उनको अपना दास मानता था तथा उन्हें मार–पीट कर अथवा डरा धमका कर अधिक काम लेता था ।

दूसरी प्रकार को व्यवस्था में भी एक प्लांटर भारतीय कृषकों के साथ अमानुषिक व्यवहार करता था। बंगाल के लेफ्टीनेंट गर्वनर जॉन पीटर ग्रांट ने 1860 ईस्वी में लिखा कि रैयत एक तरीके से प्लान्टर्स के शिकंजे में फंस गये है। यदि खेती करने से मना करते है तो उन्हें लठैतों द्वारा इसके लिये विवश किया जाता है, अधीनस्थ कर्मचारी भी उनकी मदद करते हैं। किसानों में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वे मुकदमा लड़ सकें। रैयतों ' से बाजार के मूल्य से कम दरों पर नील खरीदी जाती है। उनसे कई अन्य खर्चे वसूल किये जाते है। ऐसी परिस्थितियों में एक रैयत ऋण चुकाने में असमर्थ हो जाता है तथा उसकी पीढ़ियाँ दास का जीवन व्यतीत करती है।

5.3 1810 व 1830 ईस्वी के कानून

बंगाल की सरकार को रैयतों की दयनीय दशा के बारे में काफी समय दे ज्ञात था। 1810 ईस्वी में सरकार ने चार प्लान्टरों के लाईसेंस जब्त कर लिये थे क्योंकि यह सिद्ध हो गया था कि उनका व्यवहार अपनी रैयतों के प्रति अत्यन्त अन्यायपूर्ण था इसलिए तुरन्त गवर्नर जनरल द्वारा एक परिपत्र जारी किया गया जिसमें प्लान्टरों द्वारा किये गये अनेक अन्यायपूर्ण

कार्यों के वर्णन के बाद यह कहा गया कि वह ऐसे कार्यों की पुनरावृति रोकने के लिये प्रतिबद्ध हैं तथा इस सम्बन्ध में पर्याप्त कदम उठाये जायेंगे। मजिस्ट्रेटों को आदेश दिये गये कि वे ऐसे कार्यों की रिपोर्ट प्रस्तुत करें। ऐसे साक्ष्य दें जिससे, कि दोषी व्यक्तियों को सजा दी जा सकें।

गवर्नर जनरल के इस आदेश पर गंभीरता के साथ अमल नही किया गया। इसके विपरीत बंगाल की सरकार ने 1830 ईस्वी में रेग्यूलेशन – 5 के द्वारा यह आदेश दिया कि अनुबन्धों की शर्तों का पालन न करने वाले किसानों कौ दंड दिया जायेगा। इससे किसानों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। सेक्रेट्री ऑफ स्टेट ने इसे अनुचित व अन्यायपूर्ण ठहराते हुए इसको रद्द करने के आदेश दिये। यद्यपि यह कानून रद्द हो गया किन्तु वास्तविक स्थिति में परिवर्तन नहीं हुआ। अनेक स्थानों पर उच्च सरकारी अधिकारियों पुलिस ने प्लान्टरों की मदद की। इसके साथ–साथ 1830 ईस्वी के कानून को फिर लागू करने के पक्ष में प्लान्टरों का आन्दोलन चलता रहा। बंगाल सरकार ने इस पर गंभीरता के साथ विचार किया किन्तु वहाँ के तत्कालीन लेफ्टीनेंट गवर्नर जॉन पीटर ग्रांट इससे सहमत नहीं हुए ।

5.4 नील विद्रोह के कारण

नील के खेतों में काम करने वाले श्रमिकों तथा रैयत व्यवस्था के नील की खेती करने वाले किसानों में व्याप्त असंतोष के कारण, जिसने 1860 ईस्वी में उन्हें विद्रोह करने पर बाध्य किया, निम्नांकित थे :

(1) **नील के खेतों में काम करने वाले श्रमिकों पर अत्याचार:** श्रमिकों के साथ दासों के समान व्यवहार किया जाता था। यद्यपि इंग्लैंड में 1807 ईस्वी में दास प्रथा और 1833 ईस्वी में दासों के व्यापार को गैर कानूनी घोषित किया था किन्तु भारत में अंग्रेज पूंजीपतियों ने एक भिन्न तरीके से दास प्रथा को प्रचलित किया।

(2) **रैयतों पर अत्याचार:** अंग्रेज पूंजीपति विभिन्न तरीकों 'से रैयतों का शोषण करते थे। 1860 ईस्वी में नील आयोग ने अपने प्रतिवेदन में निम्नांकित अन्यायों को सही माना था। एक रैयत से अनुबन्ध के स्टाम्प की फीस, बीज के दाम, माल लाने का भाड़ा तथा कुछ अन्य खर्चे वसूल किये जाते थे। इस प्रकार उससे काफी खर्चो की वसूली की जाती थी। यदि कोई कृषक अनुबन्ध पर हस्ताक्षर करने के बाद नील की खेती करने से इन्कार करता था तो उसे डरा धमका कर लठैतों से पिटवा कर खेती करने के लिये मजबूर किया जाता था।

(3) उस समय एक किसान के लिए नील के मुकाबले जूट अथवा तम्बाखू की खेती करना अधिक लाभदायक हो गया था। सुनील सेन के अनुसार बरासत क्षेत्र में जूट की खेती से किसानों को अच्छी आमदनी हो रही थी यदि एक किसान तम्बाखू उपजाता था तो उसे नील के मुकाबले में ग्यारह रूपया प्रति बीघा का लाभ होता था। 1860 ईस्वी में बंगाल के एक उच्च अंग्रेज अधिकारी एशले ईडन ने लिखा कि नील की खेती अलाभकारी होने के कारण कोई कृषक इसको उपजाना नहीं चाहता था। वह यह भी जानता था कि अंग्रेज प्लान्टर उसे अनेक तरीकों से तंग करेगा।

(4) एक रैयत को अपनी सबसे उपजाऊ भूमि पर नील की खेती करने के लिये बाध्य किया जाता था। यदि कोई किसान उसमें अन्य प्रकार की फसल उगाता था तो वह नष्ट कर दी जाती थी।

(5) एक रैयत से पैदावार बाजार भाव से कम दरों पर नील खरीदी जाती थी। नील आयोग ने स्वीकार किया है कि आम तौर पर एक रैयत से चार रुपया प्रति मन की निर्धारित दर से नील खरीदी जाती थी जबकि बाजार में इसका विक्रय मूल्य दस से तीस रुपया तक था। 1859–60 ईस्वी में नील की कीमत दुगुनी होने पर भी इसी दर पर माल खरीदा जाता था।

(6) अनुबन्ध के समय जब भूमि नापी जाती थी तो प्लान्टर ऐसे पैमाने का प्रयोग करता था जिसका नाप निर्धारित पैमाने से एक चौथाई अथवा आधा ज्यादा होता था। इसके फलस्वरूप एक रैयत को अनुबंध में उल्लेखित भूमि से अधिक भूमि पर नील की खेती करनी पड़ती थी।

(7) अंग्रेज रैयत से नील खरीदते समय एक प्लांटर के गुमाश्ते नील के बंडलों को कम तोलते थे। इससे रैयत को आर्थिक हानि होती थी।

(8) अंग्रेज प्लान्टरों ने नील के कारखाने भी खोल लिये थे। जॉन पीटर ग्रांट के अनुसार जब खेती कराने वाला तथा फैक्ट्री चलाने वाला एक ही व्यक्ति हो तो एक रैयत अपनी पैदावार को कम कीमतों पर बेचने को विवश हो जाता था।

(9) नील की फैक्ट्रियों के कर्मचारी किसानों का शोषण करते थे। एक रैयत को फैक्ट्रियों के कर्मचारियों को रिश्वत देनी पड़ती थी। अन्यथा वे उसे अन्य तरीकों से हानि पहुँचा सकते थे। वह उसे फैक्ट्री में कुछ समय के लिये पकड़ कर रख लेते थे तथा उसके परिवार के सदस्यों को परेशान करते थे। रैयत को कारखानों के कर्मचारियों की भविष्य निधि अदायगी के लिये भी कुछ रकम देनी पड़ती थी।

(10) ऋण की नाअदायगी की स्थिति में प्लान्टर और एक रैयत में किये गये अनुबंध में यह शर्त होती थी कि यदि एक रैयत ऋण की पूरी रकम अदा करने में असमर्थ हो तो वह बकाया रकम नील की पैदावार से ही अदा करेगा। इस शर्त के अनुसार एक रैयत की आने वाली पीढ़ियों को भी प्लान्टर के लिये नील की खेती करनी पड़ती थी। नील आयोग के मत में एक बार अग्रिम राशि लेने वाला किसान कभी स्वतंत्र मनुष्य नहीं रह सकता था। यहाँ तक कि उसकी आने वाली पीढ़ी भी स्वतंत्र नहीं रह पाती थी।

(11) ऋण की अदायगी की स्थिति में भी किसानों को नील की खेती करने के लिए बाध्य किया जाता था। उसे मुक्ति नहीं मिलती थी। नील आयोग के सामने एक प्लान्टरों ने यह स्वीकार किया कि यदि वे ऐसा न करे तो उन्हें फैक्ट्री को बंद करना पड़ेगा।

(12) एक किसान किसी भी प्लान्टर के विरूद्ध न्यायालय में मुकदमा दायर करने का साहस नहीं कर सकता था पहले तो उसके पास इतना धन और समय ही नहीं था कि वह मुकदमा दायर करे और उसकी सुनवाई के लिये कई बार जिले के मुख्यालय जाय। यदि वह मुकदमा दायर करता था तो अनेक तरीकों से उसे वापस लेने पर मजबूर किया जाता था। इसके अतिरिक्त यदि किसी अंग्रेज पर मुकदमा चलाया भी जाता तो उसकी सुनवाई केवल एक अंग्रेज न्यायाधीश ही कर सकता था अथवा कलकत्ता में स्थित सुप्रीम कोर्ट में उसकी सुनवाई हो सकती थी। नील आयोग ने स्वीकार किया कि अंग्रेज न्यायाधीशों ने रैयतों के साथ सहानुभूति प्रदर्शित नहीं की। जॉन पीटर ग्रांट ने नील आयोग के प्रतिवेदन पर टिप्पणी करते समय ऐसे कुछ मुकदमों का विवरण दिया है जिसमें रैयतों को कचहरियों से न्याय मिला। ऐसी परिस्थितियों में एक अंग्रेज पलान्टर कानून की चिन्ता नहीं करता था ।

(13) उच्च सरकारी कर्मचारी व अधिकारी अंग्रेज थे। वे अंग्रेज प्लान्टर के प्रति सहानुभूति रखते थे। उन्होंने अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को रैयत की सहायता करने से रोका। पुलिस ने भी प्लान्टरों के अत्याचारों को रोकने में उत्साह नहीं दिखाया ।

(14) अंग्रेज व यूरोपियन प्लान्टरों ने "इंडियन प्लान्टर्स एशोसियेशन" नामक संगठन स्थापित कर लिया था। पहले उनमें आपस में कुछ हद तक प्रतिद्वंदिता थी और एक कृषक इसका लाभ उठा सकता था। लेकिन एसोसियेशन की स्थापना के बाद एक प्लान्टर से छुटकारा पाने के लिये अब वह उसके प्रतिद्वंद्वी की सहायता नही ले सकता था।

(15) इस समय तक कलकत्ता के अनेक समाचार पत्र प्लान्टरों के अत्याचार, किसानों की शोचनीय दशा तथा सरकार की उपेक्षा के बारे में प्रचार कर रहे थे। इनमें हिंदू पेट्रियट प्रमुख था। इस समाचार पत्र में प्लान्टरों के अन्यायपूर्ण कार्यो का विवरण प्रकाशित किया गया।

(16) दीनबंधु मित्रा, जो कि एक सरकारी कर्मचारी थे, ने अपने नाटक "नील दर्पण" में नील की खेती करने वाले किसानों की दशा का सजीव चित्रण किया । उनकी इस कृति ने जनता को बड़ा प्रभावित किया।

(17) कतिपय नेताओं ने भी कृषकों पर हो रहे अन्यायों का विवरण जनता के सामने रखा। जैसोर के तालुकेदार सिसिर घोष ने अनेक आँखों देखे दृश्य हिन्दू पेट्रियट में प्रकाशित कराये। हरीश मुकर्जी द्वारा नियुक्त कुछ मुख्तयारों ने न्यायालयों में कृषकों की पैरवीं की। रामगोपाल घोष ने बंगाल में अनेक ग्रामों का दौरा किया तथा इस विषय पर उसने एक पुस्तक भी लिखी। इस प्रकार उन्होंने इस विषय पर जनता में चेतना जागृत की। विष्णु चंद्र विश्वास तथा दिगम्बर विश्वास, जिन्होंने कुछ समय तक नदिया जिले के चारूगच्छा ग्राम में नील की एक फैक्ट्री में कार्य किया था, स्थानीय कृषकों में यह प्रचार किया कि वे नील की खेती न करें। उनके नेतृत्व में किसानों ने सक्रिय विरोध किया तथा अहिंसात्मक ढंग से प्लान्टरों का विरोध किया।

(18) 1859 ईस्वी में बंगाल रेन्ट अधिनियम पारित हुआ। हंटर के अनुसार इस अधिनियम के फलस्वरूप लगान की दरों में वृद्धि हुई। वृद्धि का उन प्रदेशों में भी प्रभाव पड़ा जहाँ प्लान्टरों ने काफी मात्रा में भूमि खरीद ली थी इन प्लान्टर जमीदारों द्वारा लगान की वृद्धि का रैयत ने विरोध किया। विरोध में जैसोर के कृषकों ने लगान की नाअदायगी का आन्दोलन आरम्भ किया। जो पबना, नदिया और फरीदपुर जिलों में भी फैल गया। सुनील सेन के अनुसार 1860 ईस्वी के मध्य तक लगान की नाअदायगी व नील आन्दोलन का संचालन साथ–साथ किया जाने लगा।

(19) 1859 ईस्वी में बरासत के जिला मजिस्ट्रेट के फैसले के आधार पर घोषणा की गई कि एक कृषक किसी भी प्रकार की फसल बोने के लिये पूर्ण रूप से स्वतंत्र है इस आदेश से किसानों में नील उत्पादन की बाध्यता का विरोध करने के प्रति उत्साह बढ़ा।

5.5 नील विद्रोह का आरम्भ

रमेश चन्द्र मजूमदार के अनुसार 1858 ईस्वी में चारूगच्छा ग्राम में विष्णु चंद्र और दिगम्बर विश्वास के नेतृत्व में किसानों द्वारा नील की खेती न करने के निश्चय से नील विद्रोह आरम्भ हुआ। शीघ्र ही पड़ौस के एक अन्य गाँव के किसानों ने भी ऐसा ही किया। इस गाँव पर प्लान्टर के लगभग एक सहस्त्र लठैतों ने आक्रमण किया। यद्यपि ग्रामवासियों ने उनका लाठियों से मुकाबला किया किन्तु उनकी संख्या कम होने के कारण लठैतों ने उनका गाँव लूटा व जला डाला। नदिया के जिला मजिस्ट्रेट टाटनहोम को इस घटना की जाँच पड़ताल के लिये भेजा गया। उसने न्याय करने का प्रयत्न किया। इस पर कुछ प्लान्टरों द्वारा उसका नदिया से स्थानांतरण कर दिया गया। विश्वास बंधुओं ने अपना कार्य जारी रखा। इस पर कुछ प्लान्टरों ने ऐसे कृषकों पर दीवानी मुकदमें दायर कर दिये जिन्होंने अनुबंधों की शर्तो का पालन नहीं किया था। इन

कृषकों पर किये गये जुर्माने विश्वास बंधुओं ने अदा कर दिये। शीघ्र ही अन्य ग्रामों में भी किसानों ने नील की खेती करना बंद कर दिया। सिसिर कुमार घोष के निदेशन में नदिया जिले के 92 ग्रामों के प्रतिनिधियों ने जयरामपुर की एक सभा में यह प्रण लिया कि वे जान की बाजी लगाकर भी प्लान्टरों का विरोध करेंगे।

5.6 बंगाल के लेफ्टीनेंट गवर्नर के आदेश

बंगाल के लेफ्टीनेंट गवर्नर जॉन पीटर ग्रान्ट ने किसानों द्वारा प्रस्तुत एक प्रतिवेदन के उत्तर में कहा कि ऐसे किसानों को जिन्होंने अनुबंधों पर हस्ताक्षर किये है के लिए खेती करना अनिवार्य रहेगा किन्तु किसी रैयत को उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी भी फसल को बोने के लिये मजबूर नहीं किया जायेगा। इस आदेश से किसान कुछ हद तक आश्वस्त हुए उनको यह विश्वास हो गया कि प्लान्टरों का विरोध करना ब्रिटिश सरकार का विरोध करना नहीं है।

5.7 1860 ईस्वी की घटनायें तथा लेफ्टीनेंट गवर्नर की घोषणा

सिसिर कुमार घोष व अन्य व्यक्तियों के नेतृत्व में नील की खेती करने वाले किसानों का संगठन जोर पकड़ता गया। 1860 ईस्वी तक नील की खेती न करने के निश्चय से सम्बन्धित आन्दोलन नदिया, जैसोर, पबना, मालदा और फरीदपुर मुर्शीदाबाद और राजशाही जिलों में भी फैल गया। प्लान्टरों ने बल प्रयोग से इसे दबाने का प्रयत्न किया इसमें उन्हें उन सरकारी अधिकारियों ने मदद की। जैसोर के मजिस्ट्रेट ने किसानों की एक सभा आयोजित कर उसमें अचानक 49 किसानों को गिरफ्तार किया तथा उन्हें धमकियाँ दी। दोनों पक्षों ने लेफ्टीनेंट गवर्नर को कई प्रार्थना पत्र भेजे जिनमें अपनी–अपनी शिकायतों का विवरण प्रस्तुत किया।

प्लान्टर्स एशोसियेशन का एक शिष्ट मंडल लेफ्टीनेंट गवर्नर से मिला उसने निम्नांकित दो बातों पर जोर दिया : –

(अ) रैयतों में फैली हुई गलत फहमियों को दूर करने का सरकार प्रयत्न करे।

(ख) एक कानून बनाया जाए जिसमें अनुबंध का पालन न करने वाले को मजिस्ट्रेट द्वारा सजा देने का प्रावधान हो।

लेफ्टीनेंट गवर्नर ने प्रथम माँग को स्वीकार करते हुए यह घोषणा की कि सरकार चाहती है कि किसान अनुबंधों का पालन करे। दूसरी माँग को मानने में। कुछ हिचकिचाहट का प्रदर्शन किया लेकिन नील के लाभदायक व्यापार के नष्ट होने की संभावना से आशंकित होकर उसने यह आश्वासन दिया कि नील की खेती व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं की जाँच कराई जायेगी और गंभीर विचार–विमर्श के पश्चात् एक ऐसा कानून बनाया जायेगा जिससे कि दोनों पक्षों के हितों की रक्षा की जा सके।

5.8 प्रान्तीय सरकार द्वारा प्रस्तावित बिल एवं नील आयोग की नियुक्ति

इस निश्चय के बाद बंगाल की सरकार ने 24 मार्च, 1860 ईस्वी को प्रान्तीय विधान सभा में एक बिल पेश किया। इस अधिनियम में ऐसे कृषकों को जिन्होंने नकद अग्रिम राशि ली हो को खेती करना अनिवार्य माना लेकिन इसके साथ ही इससे सम्बन्धित कुछ ऐसे गैर कानूनी

कार्यों से किसानों को धमकी देकर अथवा अन्य तरीकों से डराकर खेती करने वाले व्यक्तियों के लिये सजा की व्यवस्था भी की गई। इस अधिनियम में एक आयोग की नियुक्ति का प्रावधान भी था। इस को नील की खेती से सम्बन्धित प्रबन्धों व उनकी वास्तविक कार्य प्रणालियों तथा प्लान्टरों व रैयतों के बीच के सम्बन्धों की जाँच करके एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करना था।

सी.ई. बकलैंड, जो उस समय में बंगाल में एक उच्च अंग्रेज अधिकारी था, ने अपनी पुस्तक बंगाल अंडर दी लेफ्टीनेंट गवर्नर में लिखा है कि इस अधिनियम से बड़ी उत्तेजना फैली तथा उन्होंने इसके विरोध में बकलैंड के अनुसार ग्राम के कई स्थानों पर हिंसक उपद्रव किये। मालदा जिले के बकराबाद फैक्ट्री के मालिक लिओन पर किसानों की एक भीड़ ने लाठियों से हमला किया। इसी स्थान पर एक अन्य फैक्ट्री पर भी हमला किया गया। पबना में एक डिप्टी मजिस्ट्रेट के साथ भेजी गई पुलिस के एक दस्ते को किसानों की एक भीड़ ने खदेड़ दिया। सरकार ने ऐसी घटनाओं की रोकथाम के लिये अशांत क्षेत्रों में योग्य मजिस्ट्रेट नियुक्त किये तथा पर्याप्त मात्रा में सैनिक व पुलिस तैनात की।

5.9 प्रस्तावित बिल का विरोध तथा आन्दोलन की लोकप्रियता

लेफ्टीनेंट गवर्नर ने 17 सितम्बर, 1860 ईस्वी की एक 'मिनट' में यह स्वीकार किया कि आन्दोलन काफी लोकप्रिय हो चुका था। उन्होंने लिखा कि कुछ क्षेत्रों में उनके दौरे के समय अनेक स्थान पर किसानों के झुंडों ने उनको प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किये अथवा निवेदन किया कि उनके नील की खेती न करने के बारे में सरकार आदेश निकाले। इन प्रदर्शनों में स्त्रियाँ भी सम्मिलित थी।

5.10 भारत सरकार का आदेश (1860 ईस्वी)

बंगाल में नील की बढ़ती हुई लोकप्रियता से भारत सरकार को चिंता हुई। तत्कालीन गवर्नर जनरल केनिंग लगभग एक सप्ताह तक अत्यन्त चिन्तित रहा। सितम्बर, 1860 ईस्वी के अंत में उसने बंगाल की सरकार को सलाह दी कि वह एक विज्ञप्ति द्वारा किसानों का यह भ्रम दूर कर दे कि सरकार नील की खेती के विरूद्ध है। इसके साथ वह किसानों को यह आश्वासन भी दे कि उनकी वर्तमान दशा को बिगड़ने नहीं दिया जायेगा तथा किसी भी प्रकार की फसल बोने के अधिकार से उन्हें वंचित नहीं किया जायेगा तथा नील की खेती से सम्बन्धित सभी पक्षों को यह चेतावनी दी जाये कि वे गैर कानूनी कार्य न करें तथा हिंसा का सहारा न लें। यह भी स्पष्ट किया जाये कि सरकार का 1860 ईस्वी के अधिनियम में संशोधन का कोई इरादा नहीं है।

5.11 सेक्रेट्री ऑफ स्टेट की भारत सरकार के निर्णय के प्रति असहमति

सेक्रेट्री ऑफ स्टेट ने भारत सरकार के उपरोक्त प्रस्ताव का विरोध किया। उसने लिखा कि वह नील की खेती के लिये किये गये अनुबन्धों का सख्ती के साथ पालन कराने के पक्ष में नहीं है। अतएव 1860 ईस्वी के अधिनियम को पारित नहीं किया गया। 4 अक्टूबर, 1860 ईस्वी को यह अधिनियम स्वयंमेव निरस्त कर दिया। इसके पहले नील आयोग अपना प्रतिवेदन

प्रस्तुत कर चुका था। किसानों को दिये गए आश्वासन के फलस्वरूप बंगाल में स्थिति में सुधार होने लगा। आम तौर पर शांति बनी रही लेकिन कुछ स्थानों पर स्थिति तनावपूर्ण रही। 1861 ईस्वी के बसंत में प्लान्टरों ने लगान की वसूली की कठिनाईयों, निजी आबाद खेतों से अपदस्थ किये जाने तथा अपनी तथा कर्मचारियों की जान के खतरे के बारे में शिकायत की। लेकिन कुछ स्थानों पर उन्होंने पहले की भाँति अनाधिकृत चेष्टाऐं भी की।

5.12 नील आयोग का गठन व कार्य

डब्ल्यू सीटोन कार को इस आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। सरकार की ओर से रिचर्ड टेम्पल इसके सदस्य थे। जेसल नामक एक ईसाई पादरी प्लान्टर्स एशोसियेशन का प्रतिनिधि तथा ब्रिटिश एशोसियेशन के प्रतिनिधि चंद्र मोहन चटर्जी भी इसके सदस्य थे ।

इस आयोग के समक्ष जेम्स लोंग नामक एक पादरी, विजय चौधरी नामक जमींदार, हिन्दू पेट्रियट के सम्पादक हरीश चंद्र मुकर्जी, किसानों के संघ प्लान्टर्स एशोसियेशन के प्रतिनिधियों, सरकारी अधिकारियों व अन्य व्यक्तियों ने गवाहियाँ दी। लोंग ने कहा कि बंगाल की जनता यह मानने लगी है कि अंग्रेज भेड़ की खाल में भेड़िये हैं तथा वे रक्षक न होकर भक्षक है। हरीश चंद्र मुकर्जी ने प्लान्टरों के अत्याचारों का विवरण देते हुए बताया कि उन्होंने स्त्रियों का भी अपमान किया है। 27 अगस्त, 1860 ईस्वी को इस आयोग ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। सिटोन कार, सेल व चन्द्र मोहन चटर्जी के द्वारा की गई सिफारिशों से रिचर्ड टेम्पल व प्लान्टर्स संघ के प्रतिनिधि ने असहमति प्रकट करते हुए अपना मत प्रकट किया। बंगाल के लेफ्टीनेंट गवर्नर जॉन पीटर ग्रांट ने 17 दिसम्बर, 1860 ईस्वी के 'मिनट' में इस विषय का विस्तृत विवेचन करते हुए अनेक सिफारिशें की। उसके अनुसार इन सिफारिशों के कार्यान्वयन से दोनों पक्षों के हितों की रक्षा' हो सकेगी। उसकी सिफारिशों के आधार पर भारत सरकार ने 1862 ईस्वी में एक अधिनियम का प्रस्ताव रखा इसमें कृषि उत्पादों की खेती, संग्रह, उत्पादन व यातायात सम्बन्धी अनुबंधों के पालन न करने वाले व्यक्ति के लिये सजा की व्यवस्था की।

5.13 भारत सरकार के प्रस्तावों का सेकेट्री ऑफ स्टेट द्वारा विरोध

सेक्रेटरी ऑफ स्टेट ने कडा विरोध प्रकट किया। उसने लिखा कि, जैसा कि प्लान्टर्स जैसा वे अब तक करते आये है, रैयतों के साथ अपने सम्बन्धों को सरकारी तथा कानून के लम्बे हाथों द्वारा नियमित नहीं कर सकते। अतएव तत्कालीन गवर्नर जनरल केनिंग ने इसे पारित नहीं किया।

5.14 बंगाल में नील की खेती का अंत

इस प्रकार भारत सरकार, बंगाल सरकार तथा प्लान्टर्स के प्रयत्नों के बावजूद बंगाल में नील की खेती लगभग बंद हो गई। कुछ समय बाद रसायनिक प्रक्रिया बनाई गई नील ने भूमि से उपजी नील का स्थान ले लिया क्योंकि इसका उत्पादन खर्च पर हो जाता था। फिर भी लगभग पचपन वर्ष तक बिहार के कुछ क्षेत्रों में की खेती होती रही। इसके विरूद्ध भी आन्दोलन

हुए जिनकी पराकाष्ठा 1917–18 के चंपारन आन्दोलन में देखने को मिलती है। इस आन्दोलन में किसानों का नेतृत्व महात्मा गांधी ने किया था।

5.15 नील विद्रोह की विशेषताऐं अथवा स्वरूप

(1) **उपनिवेशवाद का एक ज्वलंत उदाहरण:** नील की खेती तथा निर्यात इंग्लैड के उद्योगों के लिये अत्यन्त लाभदायक था। अंग्रेज पूंजीपतियों को प्रोत्साहित किया गया। उन्होंने गरीब किसानों का निरन्तर शोषण किया तथा अपना अर्जित लाभ इंग्लैंड भेजा ब्रिटिश सरकार व उद्योगों को भी इससे लाभ हुआ। लोंग का यह कथन है कि जहाँ पर अंग्रेज उपनिवेशवादी गये, प्रदेशों के निवासियों का उन्होंने या तो शोषण किया अथवा उन्हें दासता के स्तर पर पहुंचा दिया, नील की खेती के संदर्भ में भी लागू किया जा सकता है।

(2) **अंग्रेज सरकारी अधिकारियों का प्लान्टर्स के प्रति दष्टिकोण :** कुछ अंग्रेज सरकारी अधिकारियों ने प्लान्टरों के अन्यायों और अत्याचारों की निंदा की। जिला मजिस्ट्रेट टावर ने नील आयोग के सामने गवाही देते हुए कहा कि नील का एक सन्दूक मानव खून से सना हुआ इंग्लैड पहुँचता है। उसने स्वयं कई ऐसे व्यक्तियों के बयान लिये जिनमें प्लान्टर्स द्वारा दी गई शारीरिक यातनाओं के उल्लेख थे और जो बीमार थे। एशले ईडन ने भी एक मुकदमें में किसानों के पक्ष में फैसला दिया। लेकिन अधिकांश अंग्रेज अधिकारी अंग्रेज प्लान्टर्स के प्रति सहानुभूति रखते थे तथा उनकी मदद करते थे वे अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को भी ऐसा करने के लिए विवश करते थे। वास्तव में वे यह जानते थे कि यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया तो अंग्रेजों के एक संगठित समूह के हितों को आघात पहुंचेगा।

(3) **बंगाल के जमींदारों का कृषकों को समर्थन :** अंग्रेज पूंजीपतियों ने जमींदारों से भूमि खरीद कर किसानों पर उनके प्रभाव को सीमित कर दिया था। बी. चौधरी के मत में बंगाल के जमींदारों ने इस आन्दोलन की अवधि में पलान्टर्स का विरोध तथा किसानों का समर्थन किया। सुनील सेन के अनुसार वे इन "साहिबो" को सबक सिखाना चाहते थे।

(4) **सरकार की उपेक्षा** – लगभग पचास साल तक सरकार ने किसानों को संरक्षण प्रदान करने के प्रति उदासीनता का रवैया अपनाया। 1810 ईस्वी का अधिनियम लागू किया गया। इस अधिनियम को हटा लेने के औचित्य को स्वीकार करने के बाद में भी सरकार ने कोई ठोस कदम नहीं उठाया।

(5) **सामान्य व्यक्तियों का आन्दोलन मे भाग** – विष्णु चंद्र और दिगम्बर विश्वास जैसे सामान्य व्यक्तियों ने इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। अठारह वर्ष की आयु में सिसिर कुमार घोष ने किसानों के समर्थन में प्रचार किया। राम गोपाल घोष ने बंगाल के कई इलाकों का दौरा किया, किसानों ने भी इसमें भाग लिया। जोतदारों, गाँवों के मुखिया तथा अन्य किसानों ने भी इसमें भाग लिया।

(6) **समाचार पत्रों द्वारा प्रचार** – हिन्दू पेट्रियट नामक समाचार पत्र ने किसानों की शोचनीय दशा पर प्रकाश डाला तथा लगातार उनकी मांगों का समर्थन किया। लोंग ने अपनी गवाही में बताया कि बंगला भाषा के अनेक समाचार पत्रों में मजिस्ट्रेटों, पुलिस तथा सरकारी अधिकारियों की प्लान्टर्स द्वारा तीव्र आलोचना की जाती।

(7) **ईसाई पादरियों की सहानुभूति** :– कुछ ईसाई पादरियों, जिनमें लोंग भी प्रमुख थे, ने सरकार को जनता की भावना से अवगत कराया। उन्होंने किसानों पर किये जा रहे अन्यायों की निंदा की।

(8) **स्त्रियों का भाग लेना**:– इस आन्दोलन में अनेक स्थानों पर स्त्रियों ने भी भाग लिया क्योंकि वे समझती थी कि अंग्रेज पूंजीपतियों का विरोध करना है।

(9) **किसानों द्वारा एकता व संगठन का प्रदर्शन**:– यद्यपि काफी समय तक नील की खेती करने वाले किसान अंग्रेज पूंजीपतियों के अन्यायों को सहते रहे और सरकार का विरोध करने का साहस नहीं किया। लेकिन अंत में उन्होंने एकता व संगठन का प्रदर्शन किया। उन्होंने भी प्लान्टर्स की तरह अपना एक संगठन बनाया तथा एकजुट होकर कार्य किया।

(10) **बंगाल के किसानों में चेतना का उदय**:– सुनील सेन के अनुसार नील विद्रोह ने कृषकों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना जागृत की। नील विद्रोह समाप्त होने के कुछ समय पश्चात् पबना जिले में किसानों ने लगान की दरों में वृद्धि के विरोध में आन्दोलन जारी रखा।

(11) **स्वतंत्रता आन्दोलन पर प्रभाव** – 1874 ईस्वी में अमृत बाजार पत्रिका नामक समाचार पत्र ने लिखा कि नील उपद्रवों ने सबसे पहले भारतीयों संगठन तथा राजनीतिक आन्दोलन के महत्व का अनुभव करवाया। बंगालियों में नई चेतना जागृत हुई। इसके फलस्वरूप बंगाल में अनेक आन्दोलन आरम्भ हुए जनता में सरकार के विरूद्ध अपने विचार प्रकट करने का साहस हुआ।

5.16 सारांश

सत्रहवीं व अठारहवीं शताब्दियों में नील का निर्यात इंग्लिश ईस्ट ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिये अत्यन्त लाभप्रद था भारत में इसके उत्पादन में वृद्धि के लिये प्लान्टर्स को सुविधाऐं दी गई। अंग्रेज पूंजीपतियों ने दो प्रकार से बंगाल में नील खेती की। ये व्यवस्थाऐं थी निज आबाद तथा रैयती। दोनों ही व्यवस्थाओं में भारतीयों का शोषण किया गया 1810 ईस्वी में चार प्लान्टर्स को उनके अन्यायपूर्ण कार्यों के लिये सजा दी गई तथा आदेश दिये गये कि प्लान्टरों द्वारा किये गये अत्याचारों को रोका जाय। लेकिन 1830 के अधिनियम के तहत यह व्यवस्था की गई कि ऐसे किसानों को जिन्होंने प्लान्टर्स के साथ किये गये अनुबन्धों का पालन नहीं किया है, सजा दी जाय। यद्यपि इस कानून को शीघ्र वापस ले लिया गया। परन्तु किसानों पर अत्याचार बढ़ते गये। इसके पश्चात् किसानों में व्याप्त असंतोष जो कि 1858 ईस्वी में नील उपद्रवों के रूप में फूटा, के कारणों का अध्ययन किया गया है। विद्रोह के आरम्भ की घटनाओं की जानकारी भी दी गई है। 1859–60 में बंगाल सरकार व भारत सरकार के आदेशों के साथ बंगाल में कृषकों के आन्दोलन की घटनाओं का भी उल्लेख किया गया है। नील आयोग के गठन तथा उसके कार्यों का परिचय भी दिया गया है। सेक्रेटरी ऑफ स्टेट आज्ञानुसार बंगाल में नील की खेती लगभग समाप्त हो गई। अंत में नील विद्रोह विशेषताओं तथा उसके स्वरूप की व्याख्या की गई है।।

5.17 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नील विद्रोह के कारणों का विश्लेषण कीजिये।
2. 1860 में बंगाल के नील विद्रोह के स्वरूप एवं घटनाओं का विवेचन कीजिये।
3. 1860 के नील विद्रोह की मुख्य विशेषताऐं क्या थी ?

5.18 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. R.C. Majumdar (Editor) : British paramauntry and Indian Renaressance, Part I,Volume IX, Bhartiya Vidya Bhawan Series on the History and Culture of the Indian People.
2. Sunil Sen : Peasant Movements in India.
3. Tara Chand : History of Freedom Movement, Volume I, II and III
4. Dharma Kumar (Editor) : The Cambridge Economic History of India, Volume II.
5. Desai, A.H. (Editor) : Peasant Struggles in India.

इकाई - 6

पाबना एवं बोगुरा 'क्षेत्रों में कृषकों का विद्रोह (1870 – 1873)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 भारत में कृषक आन्दोलनों का 1818 ई. से 1870 ई. के मध्य स्वरूप

6.3 बंगाल प्रांत के पाबना एवं बोगरा क्षेत्रों के कृषक विद्रोह की प्रकृति

6.4 पाबना एवं बोगरा कृषक विद्रोह के कारण

6.5 कृषक आन्दोलन का उत्कर्ष एवं विकास

6.6 कृषक विद्रोह के प्रभाव

6.7 विद्रोह के संबंध में ब्रिटिश सरकार की नीति

6.8 सारांश

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.10 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

6.0 उद्देश्य

उक्त इकाई में आप अध्ययन करेंगे कि –

(i) कृषक आन्दोलन भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषता रही है। भारत के अधिकांश प्रांतों में कृषक आन्दोलन का स्वरूप निरन्तर रूप में बना रहा। कृषकों की समस्याओं कृषि संबंधी कठिनाईयों आदि ने कृषकों को बार–बार सरकार व जमींदारों की दोषपूर्ण नीति के विरूद्ध आन्दोलन करने के लिये बाध्य किया है।

(ii) भारत में कृषक आन्दोलन विभिन्न क्षेत्रों में प्रादुर्भावित हुए, जिनमें विभिन्न वर्गो से संबंधित कृषकों ने सक्रिय योगदान दिया।

(iii) 1870 ई. से 1873 ई. तक के मध्य पाबना और बोगरा इलाकों में जो कृषक आन्दोलन हुए उसमे बंगाल प्रांत एवं इन क्षेत्रों में विद्यमान राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक व धार्मिक परिस्थितियों ने योगदान दिया।

(iv) बंगाल के पाबना एवं बोगुरा क्षेत्रों में कृषक आन्दोलन की क्या प्रकृति एवं स्वरूप रहा, उसका विश्लेषणात्मक अध्ययन करेंगे।

(v) इस इकाई के अन्तर्गत इस तथ्य पूर्ण विचारधारा का अध्ययन करेंगे कि बंगाल के पाबना एवं बोगरा क्षेत्रों में जो कृषक आन्दोलन हुए उसके क्या परिणाम हुए। इसी भाँति भारतीय अर्थ व्यवस्था तथा इतिहास पर इसका क्या प्रभाव पड़ा।

(vi) बंगाल प्रांत के पाबना एवं बोगुरा क्षेत्रों में कृषक विद्रोह का दमन करने, उसे समाप्त व नियंत्रित करने के उद्देश्य से ब्रिटिश सरकार के द्वारा जिस नीति को अपनाया गया, उसका विवेचनात्मक अध्ययन करेंगे।

6.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था का कृषि प्रमुख अंग तथा मुख्य आधार रहा है। प्राचीनकाल से ही भारत का बहुसंख्यक वर्ग किसान रहा है भूराजस्व व्यवस्था के क्षेत्र में सरकार के द्वारा विभिन्न नीतियों व पद्धतियों का निर्माण किया गया। इन नीतियों में अंग्रेजों की भूराजस्व व्यवस्था तथा उद्योगों के प्रति उपेक्षा एवं उदासीनता की नीति के परिणाम स्वरूप कृषकों की संख्या में वृद्धि हुई थी। ऐतिहासिक दृष्टि से यह तथ्य पूर्ण है कि अंग्रेज सरकार ने समय–समय पर भूराजस्व की वसूली एवं उसकी पद्धति में काफी परिवर्तन किए थे। 1793 ई. में अंग्रेजी गवर्नर जनरल कार्नवालिस के द्वारा स्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था को लागू किया गया था। इस व्यवस्था को बंगाल प्रांत में लागू किए जाने का प्रमुख लक्ष्य बंगाल प्रांत में भूराजस्व एवं कृषि संबंधी विभिन्न समस्याओं का निराकरण करना था। कृषि एवं भूमि व्यवस्था के क्षेत्र में विभिन्न दोष जैसे कि भूमि की उचित नाप–जोत न होना, भूमि का वर्गीकरण, सर्वेक्षण न होना, कृषकों के द्वारा कृषि भूमि, कृषि उत्पादन को कम बताना, लगान की वसूली उचित रूप में न होना आदि विभिन्न समस्यायें विद्यमान थी। इन कमियों को दूर करने के उद्देश्य से ब्रिटिश ' सरकार के द्वारा बंगाल में स्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था को लागू किया गया।

इस व्यवस्था के अन्तर्गत भूराजस्व व्यवस्था को अंग्रेजी सरकार एवं जमिदारों के बीच लागू किया गया। जमींदारों को निश्चित समय, नियमित रूप से निश्चित, स्थायी आधार पर कम्पनी के कोष में जमा करवाने की व्यवस्था की गयी थी।

1793 ई. के बंगाल के स्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था के द्वारा जमींदारों को अत्याधिक अधिकार प्रदान कर दिए गए थे। इस व्यवस्था से बंगाल के कृषकों के प्राकृतिक एवं वास्तविक अधिकारों की अवहेलना की गयी। जमींदारों को किसानों से भूराजस्व एकत्रित करने से संबंधित विस्तृत अधिकार प्राप्त हो गए थे। इससे कृषकों के शोषण में भी वृद्धि संभव हुई थी परिणामस्वरूप कृषकों में असंतोष एवं विद्रोह की स्थिति को प्रोत्साहन मिला था।

बंगाल में भूराजस्व व्यवस्था के क्षेत्र में साहूकारों के द्वारा कृषकों के शोषण को भी प्रोत्साहन मिला था। इसका कारण यह रहा कि बंगाल के अधिकांश क्षेत्रों के कृषकों को अत्याधिक लगान का भुगतान करने हेतु साहूकारों से ऋण के लिये बाध्य होना पड़ा। इस वातावरण में साहूकार कृषकों को अत्याधिक ब्याज की राशि पर धनराशि के रूप में दिया करते थे एवं उसकी वसूली निर्ममता पूर्वक की जाती थी। साहूकार। कृषकों की पैदावार तथा उनके मवेशियों को जबरन ले जाते थे। अंग्रेजी सरकार के कानून / कचहरियाँ भी साहूकारों के पक्ष में हुआ करते थे। बंगाल के कृषकों को भूराजस्व के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के अन्य करों पथकर / मेला कर / पर्व कर / जमींदार के परिवार में कोई विवाह होने पर डाक व्यय कर, यात्रा कर आदि का भी भुगतान करना होता था जिससे बंगाल के कृषकों पर आर्थिक भार अत्याधिक रूप में बढ़ गया था।

बंगाल में अंग्रेज सरकार ने चाय, रबड़, काँफी और नील के बाग लगाने हेतु कम कीमतों का भुगतान कर कृषकों से भूमि प्राप्त की, जिससे कृषकों का आर्थिक शोषण हुआ और उनमें असंतोष उत्पन्न हुआ। इन परिस्थितियों में बंगाल के विभिन्न क्षेत्रों के कृषकों ने

जमींदारों, साहूकारों एवं अंग्रेज सरकार के विरूद्ध आन्दोलन किए। इन आन्दोलनों में 1870 ई. से 1873 ई. के मध्य बंगाल के प्रमुख क्षेत्र पाबना और बोगुरा में जो कृषक आन्दोलन हुए, उनका आधुनिक भारतीय इतिहास एवं बंगाल प्रांत में हुए कृषक आन्दोलनों की श्रेणी में उल्लेखनीय स्थान माना जाता है।

6.2 भारत में कृषक आन्दोलनों का 1818 ई. से 1870 ई. के मध्य स्वरूप।

ब्रिटिश शासनकाल में 1818 ई. से 1870 ई. के बीच भारत में विभिन्न कृषक आन्दोलनों का स्वरूप रहा। बंगाल के कृषक आन्दोलन से पूर्व भारत में। संथालों का 1855 – 56 ई. में विद्रोह हुआ। संथाल जो कि आदिवासी थे और हजारीबाग, मिदनापुर, वींर भूमि आदि क्षेत्रों में कृषि कार्य किया करते थे। इस क्षेत्र में जमींदार स्वामी बन गए थे। साहूकारों ने भी उन्हें निर्धन बना दिया था। पुलिस, न्यायालयों ने भी साहूकारों और जमींदारों को सहायता प्रदान की थी। इस स्थिति के परिणाम स्वरूप संथालों ने विद्रोह किया । लेकिन उनके विद्रोह को दबा दिया गया।

1857 ई. में अवध और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कृषकों ने भी जमीदारों की कठोरता को भुलाकर ब्रिटिश शासन को समाप्त करने का प्रयास किया था। सरकार ने भूराजस्व व्यवस्था अवध के तालुकेदारों से की और उनकी अधिकांश भूमि कृषकों को लौटा दी गयी।

1859–60 ई. में नील विद्रोह को प्रोत्साहन मिला था। अंग्रेजी कम्पनी के अवकाश प्राप्त यूरोपीय अधिकारी बंगाल और बिहार में भूमि प्राप्त करके उस पर नील की खेती करने लगे थे। यह वर्ग वहां के कृषकों पर अत्याचार किया करता था। उनके साथ मारपीट दुर्व्यवहार, नजरबंद, नील उगाने हेतु बाध्य आदि नीति को अपनाता था। इससे उत्तेजित होकर बंगाल के प्रमुख क्षेत्रों पाबना, नदिया, जैसोर, खुलना, दीनाजपुर, मालदा इत्यादि क्षेत्रों में कृषकों ने विद्रोह प्रारम्भ कर दिया । इस विद्रोह से तंग आकर अंग्रेजी सरकार ने नील आयोग की नियुक्ति की, जिसके द्वारा किसानों की कठिनाइयों का निराकरण किया गया ।

उक्त परिस्थितियों एवं वातावरण में 1872 ई. में बंगाल के प्रमुख क्षेत्र पाबना एवं बोगरा में कृषक आन्दोलन को प्रभावीं स्वरूप मिला जो कि बंगाल में हुए कृषक आन्दोलन के विशेष संदर्भ में ऐतिहासिक घटना के रूप में अध्ययन किया जाता है।

6.3 बंगाल प्रांत के पाबना एवं बोगुरा क्षेत्रों के कृषक विद्रोह की प्रकृति

भारत के महत्वपूर्ण प्रांत बंगाल के प्रमुख क्षेत्रों पाबना एवं बोगुरा में हुए कृषक विद्रोह का महत्वपूर्ण स्वरूप रहा है। ये विद्रोह कृषकों के द्वारा अंग्रेजी सरकार, जमींदारों तथा साहूकारों के विरूद्ध प्रारम्भ किए गए थे।

इन विद्रोह के संबंध में यह धारणा रही कि कृषक विद्रोह पूर्वी भारत के प्रमुख प्रांत बंगाल के पाबना तथा बोगुरा क्षेत्रों में प्रारम्भ हुआ। यह कृषक विद्रोह कृषकों के द्वारा प्रारम्भ

किये गये थे। कृषकों ने यह आन्दोलन जमींदारों, साहूकारों की दोषपूर्ण नीतियों के विरूद्ध किया था। यह कृषक आन्दोलन 1870 ई. में प्रारम्भ हुआ और 1873 ई. में इस आन्दोलन का दमन कर दिया गया। यद्यपि यह आन्दोलन असफल रहा तथापि इस आन्दोलन के दूरगामी परिणाम भी हुए पाबना एवं बोगुरा कृषक आन्दोलन के परिणामस्वरूप 1885 ई. में बंगाल टेनेन्सी कानून का निर्माण किया गया था।

पाबना एवं बोगुरा कृषक आन्दोलन का यह भी स्वरूप रहा कि यह कृषक विद्रोह सशस्त्र विद्रोह था जिसमें कि कृषकों ने ब्रिटिश सरकार की सेना के विरूद्ध शस्त्रों का प्रयोग किया एवं हिंसा की नीति को अपनाया था।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्पष्ट है कि पाबना व बोगुरा बंगाल प्रांत के समृद्ध एवं महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जहाँ कृषि कृषकों का प्रमुख व्यवसाय रहा है। बंगाल प्रांत प्रारम्भ से ही आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टि से उल्लेखनीय प्रांत रहा है जो कि मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् से स्वतंत्र प्रांत के रूप में स्थापित हुआ था। अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इस प्रांत की विभिन्न विशिष्टताओं, सुविधाओं को देखते हुए सर्वप्रथम बंगाल प्रांत पर अपने राजनैतिक अधिकार की स्थापना की थी। 1764 ई. में बंगाल पर अधिकार के पश्चात् से ही अंग्रेजी कम्पनी व्यापारिक कम्पनी के साथ–साथ राजनैतिक संस्था के रूप में स्थापित हो गयी थी। इस प्रांत पर अंग्रेजों की 'द्वैधशासन पद्धति', 1793 ई का स्थायी बन्दोबस्त आदि दोषपूर्ण नीतियों के परिणाम स्वरूप बंगाल में विभिन्न समस्याओं एवं कठिनाइयों का प्रादुर्भाव हुआ था, जिसका कि बंगाल के निवासियों प्रमुखत: कृषकों को सामना करना पड़ा। इस समय से ही बंगाल के विभिन्न क्षेत्रों, जिनमें पाबना व बोगरा प्रमुख है, में कृषकों के असंतोष, शोषण के कारण कृषक आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला।

6.4 पाबना एवं बोगुरा कृषक विद्रोह के कारण

1870 ई. से 1873 ई. के बीच बंगाल के महत्वपूर्ण क्षेत्र पाबना और बोगरा इलाकों में जो कृषक आन्दोलन हुए उन्हें निम्नांकित परिस्थितियों ने सक्रिय सहयोग प्रदान किया था:–

(1) **कृषकों की भूमि का छीना जाना –** पाबना एवं बोगुरा क्षेत्रों में कृषक आन्दोलन के प्रारम्भ होने का महत्वपूर्ण कारण जमींदारों व अंग्रेजी सरकार के द्वारा उनकी भूमि की छीना जाना था। कृषकों से भूमि छीनकर सरकार अपनी स्वार्थपूर्ति एवं निजी लाभ के उद्देश्य से नील की खेती एवं अन्य उत्पादन करवाना चाहती थी। सरकार व जमींदारों के द्वारा कृषकों को उनके स्वामित्व के अहि से वंचित कर दिया गया। उनके भूमि पर से अधिकार छीन लिये गए जिससे वे भूमि से बेदखल हो गए। इस समय पाबना व बोगुरा के कृषकों के साथ दासों जैसा व्यवहार किया जाता था। जमींदार व सरकार की इच्छानुसार कार्य न होने पर उनके घरों को नष्ट कर देते थे, उनके पशुओं को छीन लेते थे।

जमींदार एवं अंग्रेजी सरकार कृषकों पर विभिन्न प्रकार के झूठे आरोप लगाते। उदाहरण स्वरूप उन पर यह आरोप लगाया जाता था कि कृषकों कें द्वारा करो का भुगतान नहीं किया गया है। विभिन्न विवादों में उन्हें फंसाना, इन विवादों पर जो जुर्माना कृषकों पर

किया जाता था उनका भुगतान सरकारी कोष में न कराना आदि आरोप लगाए जाते थे और उनके आधार पर कृषकों की भूमि छीनने का तरीका अपना रखा था। इस स्थिति से कृषकों में जमींदारों व सरकार के प्रति रोष / विद्रोह / असंतोष की भावना उत्पन्न हुई और उससे प्रेरित होकर उन्होंने विद्रोह किया।

(2) **किसानों का शोषण –** बंगाल प्रांत के पाबना और बोगुरा क्षेत्रों के कृषकों का जमींदारों व सरकार के द्वारा शोषण किया जाना भी कृषकों के विद्रोह का प्रमुख कारण सिद्ध हुआ था। इस दृष्टि से कृषकों के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक रूप में अत्याधिक शोषण की स्थिति विद्यमान थी। कृषकों से कृषि एवं उपज का अत्याधिक उत्पादन कराने के उद्देश्य से अधिक से अधिक परिश्रम करवाया जाता था। इसके बदले में उन्हें कम पारिश्रमिक मिलता था, जबकि अत्यधिक लाभ जमींदार प्राप्त किया करते थे। कृषकों को भूमि से बेदखल करने, किसी न किसी रूप में आरोप लगाकर भूमि हड़पने की प्रवृत्ति विद्यमान थी। इस प्रकार कृषक जो ऋण साहूकारों अथवा ऋणदाताओं से प्राप्त करते थे, उस धनराशि को वे बढ़ा–चढ़ाकर लिखा करते थे। ऋण की ब्याज राशि भी काफी हुआ करती थी, जिससे कृषकों का शोषण होता था। ऋण की वसूली भी साहूकार कठोरता पूर्वक किया करते थे। राजनैतिक दृष्टि से भी संरक्षण केवल जमींदारों, ऋणदाताओं को प्राप्त हुआ करता था। कृषकों का इस क्षेत्र में भी शोषण विद्यमान था। कृषकों के किसी भी विवाद के मामलों में पुलिस, न्यायालय व जमींदारों को ही सहयोग देती थी। इन सभी स्थितियों से परेशान होकर कृषकों ने विद्रोह किया।

(3) **आमदनी से अधिक भूराजस्व की वसूली** – पाबना व बोगुरा क्षेत्रों के कृषकों से उनकी आमदनी अथवा कुल उत्पादन के औसत से अधिक लगान का वसूल किया जाना भी कृषक असंतोष एवं आन्दोलन का कारण बना। जमींदार एवं भूराजस्व अधिकारी इन क्षेत्रों के किसानों से बलपूर्वक अत्याधिक भूराजस्व की धनराशि प्राप्त किया करते थे। इस स्थिति के परिणाम स्वरूप कृषकों में असंतोष एवं विद्रोह की भावना प्रज्जवलित हुई। इस परिस्थिति से प्रोत्साहित होकर भी कृषकों ने जमींदारों व अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया। पाबना एवं बोगरा इलाकों के कृषकों की आर्थिक स्थिति दयनीय थी। कृषि उत्पादन कम होता था ऐसी स्थिति में भूराजस्व का भुगतान करने में कृषक असमर्थ होते थे। इस स्थिति में वे साहूकारों से ऋण लेकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति किया करते थे। परिणाम स्वरूप उनकी स्थिति काफी शोचनीय हो गयी, जिससे उनमें असंतोष एवं विद्रोह की भावना प्रोत्साहित हुई।

(4) **कृषकों की शोचनीय स्थिति** – बंगाल प्रांत के पाबना तथा बोगुरा क्षेत्रों के कृषकों की स्थिति दयनीय थी। कृषक जो कि भूमि पर हल चलाता है, परिश्रम करके कृषि उत्पादन करता है, उसका भूमि पर वास्तविक प्राकृतिक अधिकार होता है। लेकिन इस प्राकृतिक अधिकार से उसे वंचित कर दिया गया था। भूमि पर वास्तविक अधिकार जमींदारों का

माना गया था। यह वर्ग कृषि उत्पादन हेतु कृषकों को कम पारिश्रमिक का भुगतान किया करता था। कृषकों को स्वास्थ्यपूर्ण निवास, समुचित स्वास्थ्य व्यवस्था, सामाजिक सुरक्षा आदि की सुविधाएं प्रदान नहीं की गयी थी। उन्हें कृषि उपकरण, खाद, बीज आदि के लिये साहूकारों से अत्याधिक ब्याज दर पर ऋण प्राप्त होता था। इन सबके कारण उनकी स्थिति दयनीय हो गयी थी। इन क्षेत्रों में सरकार व जमींदारों के द्वारा किसी प्रकार की राहत न पहुँचाने के फलस्वरूप कृषकों में असंतोष उत्पन्न हुआ, परिणाम स्वरूप आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला।

(5) **कृषकों से अन्य प्रकार के करों की वसूली** – पाबना व बोगुरा इलाकों के कृषकों को भूराजस्व के अतिरिक्त अन्य प्रकार के करों का भी भुगतान करना हुआ करता था। इस स्थिति के कारण भी उन पर अतिरिक्त आर्थिक भार बढ़ गया था, जिससे कि उनमें असंतोष की भावना प्रज्जवलित हो सकी। कृषकों के द्वारा अन्य प्रकार के करों – पथकर, त्यौहार कर, मेला कर, जमींदारों के परिवार में विवाह होने पर कर, डाक व्यय, धार्मिक कर, जन्म–मृत्यु कर आदि विभिन्न प्रकार के करों का भुगतान करना पड़ता था। कृषक इन करों को निश्चित समय पर जमा नहीं करवाते थे, तो उन्हें सजाऐं दी जाती थी। इस स्थिति से भी कृषक तंग आ चुके थे। उनमें रोष, क्रोध एवं विद्रोह की भावना विद्यमान थी। इससे प्रभावित होकर उन्होंने विद्रोह प्रारम्भ किया।

(6) **अंग्रेजी सरकार का उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण** – बंगाल प्रांत के पाबना व बोगुरा क्षेत्रों में अंग्रेजी सरकार के द्वारा भी कृषि के क्षेत्र में किसी भी प्रकार के व्यवस्था संबंधी कदम नही उठाए गए थे। बल्कि इस क्षेत्र में सरकार का उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण ही बना रहा। कृषकों को शोषण से बचाने, उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करने, सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने, उनके हितों व उद्देश्यों की पूर्ति हेतु राजनैतिक संरक्षण व सहयोग प्रदान करने के क्षेत्र में उपेक्षा के दृष्टिकोण अपनाया गया था। सरकार के द्वारा इस ओर किसी भी प्रकार के सुधार व विकास पूर्ण कार्य नहीं किए गए। जिससे कृषकों की स्थिति निरन्तर बिगड़ती – चली। गयी एवं उनमें असंतोष बढ़ गया।

(7) **जमीदारों को पुलिस, न्यायालयों व सरकारी विभागों का संरक्षण** – जमीदारों को पुलिस, न्यायालय एवं सरकारी विभागों के द्वारा सहयोग एवं संरक्षण प्रदान किया जाना भी, कृषक आन्दोलन का अन्य महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुआ। पाबना व बोगरा क्षेत्रों में कृषकों को सरकार, पुलिस व न्यायालयों से किसी प्रकार का संरक्षण प्राप्त नहीं होता था, जिससे वे कठिनाई पूर्ण परिस्थितियों में असहाय रहते थे। उन्हें किसी भी वर्ग व क्षेत्र से सहायता प्राप्त नही हो पाती थी। इसके विपरीत कृषकों के विरूद्ध जमींदारों व साहूकारों को पुलिस व न्यायालय तथा सरकारी तंत्रों का पूर्ण सहयोग एवं संरक्षण प्राप्त होता था। इस स्थिति के परिणाम स्वरूप कृषकों की स्थिति काफी कमजोर हो गयी। जमींदार व साहूकार वर्ग

शक्तिशाली व प्रभुत्वशाली बन गए। इस स्थिति में सुधार व परिवर्तन लाने के उद्देश्य से भी कृषकों ने आन्दोलन प्रारम्भ किया।

(8) **कृषकों द्वारा लगान का भुगतान न किया जाना** – बंगाल प्रांत के पाबना एवं बोगरा क्षेत्रों के किसानों ने लगान की अदायगी का बहिष्कार कर उसका सरकारी कोष में भुगतान किए जाने से इन्कार कर दिया था। परिणाम स्वरूप सरकार ने उनके विरूद्ध कानूनी कार्यवाही व सजा देने की नीति को अपनाया था इस स्थिति में कृषकों में जो असंतोष व विद्रोह की स्थिति विद्यमान थी उसमें और वृद्धि संभव हुई। कृषकों ने सरकार की दमनकारी नीति का विद्रोह के माध्यम से विरोध किया। इस परिस्थिति में भी कृषक आन्दोलन को विशेष रूप में बल मिला ।

(9) **आवागमन व संचार सुविधाओं का अभाव –** पाबना एवं बोगूरा में कृषकों के लिये आवागमन एवं संचार साधनों का भी पूर्ण अभाव था। इस क्षेत्र में सरकार के द्वारा किसी प्रकार के विकास पूर्ण कार्य नहीं किये गये थे। इस स्थिति के परिणाम स्वरूप कृषकों को अपने उत्पादित मात्र एक स्थान से दूसरे स्थान भेजने तथा किसानों को एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर आने जाने की सुविधा प्राप्त नहीं थी। इसी भांति समाचार, सूचना भेजने एवं प्राप्त करने में भी कठिनाइयाँ होती थी। परिणाम स्वरूप कृषकों ने इन सुविधाओं को प्राप्त, के लक्ष्य से भी विद्रोह किया।

(10) **अन्य कृषक आन्दोलनों का प्रभाव** – बंगाल के प्रांतों पाबना और बोगुरा में जो 1870 ई. से 1873 ई. के मध्य कृषक आन्दोलन हुए, उससे पूर्व भारत के अधिकांश प्रांतों व क्षेत्रों में कृषक आन्दोलन हो चुके थे। इन कृषक आन्दोलनों की प्रकृति भी मिलती जुलती थी, अत: इन आन्दोलनों – संथालों (1855–56), अवध और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कृषक आन्दोलन (1857 ई.), 1859–69 ई. में बंगाल के नदिया, जेसोर, पाबना क्षेत्रों में जो कृषक आन्दोलन हुए उनसे प्रेरित होकर पाबना व बोगरा के कृषकों ने कृषक आन्दोलन प्रारम्भ किया।

6.5 कृषक आन्दोलन का उत्कर्ष एवं विकास

बंगाल के महत्वपूर्ण क्षेत्रों पाबना और बोगरा में उक्त परिस्थितियों के फलस्वरूप कृषक आन्दोलन का उद्भव हुआ एवं विद्रोह को प्रोत्साहन मिला। कृषकों में जो विद्रोह, असंतोष की भावना अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी वह 1870 ई. में प्रस्फुटित हुई। पाबना और बोगरा क्षेत्रों के कृषकों ने संगठित होकर जमींदारों तथा अंग्रेजी सरकार की दोषपूर्ण नीतियों का विरोध करने का निर्णय लिया। इस दृष्टि से उन्होंने सरकार का सर्वप्रथम अपनी कठिनाइयों व सरकार की त्रुटिपूर्ण नीतियों की ओर ध्यान आकर्षित किया एवं इन कठिनाइयों को दूर न करने की स्थिति में आन्दोलन करने की चेतावनी दी गयी। लेकिन इस क्षेत्र में सरकार के द्वारा किसी प्रकार के सुधारवादी कदम नहीं उठाए गए। जमींदारों व साहूकारों के अत्याचार व सरकार की दोषपूर्ण नीतियाँ निरन्तर बढ़ती जा रही थी, परिणाम स्वरूप कृषकों ने आन्दोलन को तीव्र करने का निर्णय लिया।

पाबना व बोगरा के क्षेत्रों में कृषकों ने जुलूस निकाले एवं सरकार विरोधी नारे लगाए गए। कृषकों ने विभिन्न कबुलियत, समझौतों को नष्ट कर दिया एवं उनका पालन करने से इन्कार कर दिया। इसी प्रकार कृषकों के द्वारा भूमि से संबंधित जो नियम, लगान संबंधी नियम बनाए गए उन सभी का बहिष्कार किया। कृषकों ने उत्पादन करने से इन्कार कर दिया। इसी प्रकार कृषकों के द्वारा लगान देने से इन्कार कर दिया गया। पाबना व बोगरा क्षेत्रों के कृषकों में इस समय काफी उत्साह व संगठन की भावना विद्यमान थी। सरकार विरोधी विचारधारा कृषकों में चरम सीमा पर पहुँच गयी थीं।

पाबना व बोगरा क्षेत्रों में कृषक विद्रोह 1872–73 ई. में अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। यह विद्रोह काफी संघर्ष पूर्ण हो गया था। कृषकों ने उस समय काफी संख्या में विभिन्न समझौतों से संबंधित कागजों एवं प्रपत्रों को अपने कब्जे में कर लिया तथा उन्हें नष्ट कर दिया। इस समय शहरी क्षेत्रों के मध्यम वर्ग के कुछ लोगों ने जो कि छोटे भूस्वामी, ऋणदाता व मुखिया थे ने कृषकों का समर्थन किया। लेकिन उनका प्रारम्भिक उद्देश्य एवं स्वार्थ इसमें निहित था कि वे अपने प्रभाव को स्थापित करना चाहते थे। इस स्थिति में जमींदारों के क्षेत्रों में भी पुराने सामन्तीय जमींदारों और अन्य वर्गों का पतन हो गया था।

पाबना एवं बोगरा क्षेत्रों में कृषक आन्दोलन के प्रभाव एवं तीव्रता को प्रतिबंधित करने के उद्देश्य से बंगाल की अंग्रेजी सरकार के द्वारा आवश्यक कार्यवाही की गयी। अंग्रेजी सरकार के द्वारा इन क्षेत्रों में पुलिस एवं सैनिक व्यवस्था को सुदृढ़ रूप से स्थापित किया गया। उन्होंने यह निर्देश दिए कि कृषकों के विद्रोह को कुचल दिया जाए। परिणाम स्वरूप कृषकों ने सैनिक बल का यथाशक्ति सामना किया लेकिन कृषकों का पूर्ण समर्थन प्राप्त न होने, सैनिकों की दमनकारी नीति के फलस्वरूप पाबना व बोगरा क्षेत्रों के कृषक विद्रोह को दबा दिया गया। परिणाम स्वरूप यह कृषक आन्दोलन अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सका।

6.6 कृषक विद्रोह के प्रभाव

बंगाल के पाबना और बोगरा इलाकों में 1870 से 1873 ई. के मध्य जो कृषक विद्रोह प्रारम्भ हुआ था उसका बंगाल की अंग्रेजी सरकार के द्वारा 1873 ई. में दमन कर दिया गया था। जिसके फलस्वरूप यह कृषक विद्रोह असफल रहा। इस आन्दोलन के अप्रत्यक्ष परिणाम महत्वपूर्ण रूप में संभव हुए थे। पाबना व बोगरा क्षेत्रों में यह आन्दोलन कृषकों के द्वारा अपने शोषण और अत्याचार के विरूद्ध किया गया था, उस उद्देश्य में यह कृषक आन्दोलन असफल रहा, क्योंकि उनकी समस्यायें, कठिनाइयाँ तथा जमींदारों, साहूकारों व सरकार के अत्याचार यथावत् बने रहे। कृषकों में असंतोष, विरोध एवं विद्रोह की स्थिति निरंतर रूप में बनी रही। इस समय काफी संख्या में कृषक बंदी बनाए गए। उनके विरूद्ध मुकदमें भी चलाए गए। उनके उत्साह, विद्रोह करने की भावना, जोश को नुकसान पहुँचाया गया।

पाबना एवं बोगरा क्षेत्रों में कृषक आन्दोलन का दमन कर दिया गया एवं असफल बना दिया गया। यद्यपि पाबना एवं बोगरा क्षेत्रों के कृषक आन्दोलन का दमन कर दिया गया था तथापि इस आन्दोलन के अप्रत्यक्ष परिणाम भी हुए। इस आन्दोलन के फलस्वरूप इन क्षेत्रों के कृषकों में नेतृत्व की भावना, विरोध करने का साहस संभव हुआ जमींदारों व सरकार ने इस

विद्रोह के परिणामस्वरूप अपनी कृषकों के प्रति नीति में कुछ सीमा तक परिवर्तन करने का निर्णय लिया। इस उद्देश्य के अनुरूप उन्होंने यह प्रेरणा ली कि कृषकों के उद्देश्यों व हितों को भी कुछ हद तक नीति निर्माण करते समय ध्यान में रखा जाए जिससे कि भविष्य में कृषक आन्दोलन को प्रोत्साहन नही मिले।

इसी प्रकार कृषक विद्रोह का यह भी महत्वपूर्ण परिणाम कालान्तर में संभव हुआ कि 1885 ई. में बंगाल में 'बंगाल टेनेन्सी कानून' पारित किया गया जो कि कृषकों के सामाजिक, आर्थिक हितों के अनुरूप निर्मित किया गया था। कृषकों को कुछ सुविधाऐं एवं अधिकार, प्रदान किए गए थे। कृषक विद्रोह के पश्चात् से ब्रिटिश सरकार ने अपनी सरकारी नीति के अन्तर्गत कृषकों के हितों एवं उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कृषि नीति का निर्धारण करने का प्रयत्न किया। इसी प्रकार सरकार के द्वारा कृषकों को भूमि दिलाने, कृषि संबंधी उपकरणों को खरीदने, ऋण की सस्ती ब्याज दरों पर सुविधाऐं दिलाने, उचित लगान का निर्धारण, सामाजिक सुरक्षा व बीमा योजना लागू करने की नीतियों को अपनाया गया। इससे स्पष्ट है कि पाबना एवं बोगरा में कृषक आन्दोलन असफल होने के बावजूद इस विद्रोह के अप्रत्यक्ष परिणाम भी हुए।

6.7 विद्रोह के संबंध मे ब्रिटिश सरकार की नीति

विश्लेषणात्मक ऐतिहासिक विवेचना के आधार पर यह स्पष्ट है कि बंगाल में 1870 ई. से 1873 ई. के बीच पाबना एवं बोगरा क्षेत्रों में कृषक विद्रोह के प्रति अंग्रेजी सरकार की दमनकारी नीति रही। बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रत्यक्ष शासन का स्वरूप विद्यमान था। अंग्रेजी सरकार ने बंगाल में भूमि सुधार एवं भूराजस्व के संबंध मे विभिन्न सुधार पूर्ण कार्यों एवं नीतियों को क्रियान्वित स्वरूप प्रदान किया था। सरकार किसानों से जमींदारों के माध्यम से भूमि का लगान अधिक से अधिक मात्रा में प्राप्त, चाहती थी। इस स्थिति में कृषक आन्दोलनों के प्रति अंग्रेजी सरकार की कठोर नीति एवं दमनकारी नीति रही।

अंग्रेजी सरकार ने पाबना व बोगरा क्षेत्रों में पुलिस व सेना के माध्यम से कृषक आन्दोलन को असफल बनाने का सफल प्रयास किया था।

लेकिन कृषक विद्रोह को असफल बनाने एवं उसका दमन करने के पश्चात् सरकार की नीति में परिवर्तन संभव हुआ। सरकार ने इस विद्रोह के उपरान्त कृषकों की स्थिति में सुधार करने, उन्हें ऋण के भार से राहत पहुँचाने, शोषण से बचाने, उनके हितों, उद्देश्यों को अपनी नीति व योजना के अन्तर्गत स्थान देने का लक्ष्य बनाया था। क्योंकि सरकार यह नहीं चाहती थी कि कृषकों के द्वारा पुन: अव्यवस्था, अराजकता एवं विद्रोह की स्थिति उत्पन्न की जाए।

बंगाल के विभिन्न क्षेत्रों, जिनमें पाबना व बोगरा क्षेत्र भी सम्मिलित थे, के लिए सरकार के द्वारा किराया अधिनियम अर्थात टेनेंसी एक्ट पारित किया गया, जिससे कृषकों को भूमि के क्षेत्र में आर्थिक सहायता व राहत पहुंचायी गयी। कृषकों को कृषि करने के लिये भूमि दिलायी गयी, उन्हें कृषि संबंधी सुविधाएं उपलब्ध करवायी गयी।

6.8 सारांश

इस प्रकार 1870 से, 1873 ई. के बीच बंगाल के महत्वपूर्ण क्षेत्रों पाबना व बोगरा मे जो कृषक विद्रोह हुआ, उसको आधुनिक भारतीय इतिहास एवं ब्रिटिश शासनकाल में हुए कृषक आन्दोलन की दृष्टि से महत्वपूर्ण व उल्लेखनीय विद्रोह माना जाता है। पाबना एवं बोगरा इलाकों के कृषक विद्रोह की प्रकृति, स्वरूप के विश्लेषणात्मक वर्णन से यह ऐतिहासिक जानकारी मिलती है कि यह विद्रोह कृषकों के द्वारा प्रारम्भ किया गया जमींदारों, साहूकारों एवं अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध किया गया कृषक विद्रोह था। इसी भाँति यह कृषक आन्दोलन सरकार विरोधी नीतियों के खिलाफ विद्रोह का स्वरूप था।

पाबना एवं बोगरा कृषक विद्रोह के उत्पन्न होने से संबंधित विभिन्न कारणों का विवेचन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि कृषक विद्रोह के लिये कृषकों के प्रति शोषण नीति, कृषकों का भूमिहीन होना, साहूकारों तथा ऋणदाताओं द्वारा कृषकों का अत्याधिक शोषण, सरकार की कृषक विरोधी नीति, कृषकों से भूराजस्व व अन्य प्रकार के करों की अत्याधिक वसूली महत्वपूर्ण कारण एवं परिस्थितियाँ रही।

कृषक विद्रोह की प्रगति के स्वरूप को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह विद्रोह प्रारम्भिक रूप में उग्र एवं विद्रोहपूर्ण रहा लेकिन सरकार की दमनकारी नीति के परिणामस्वरूप यह विद्रोह 1873 ई. में समाप्त हो गया। यद्यपि यह कृषक विद्रोह असफल हुआ तथापि इस विद्रोह के परिणाम. स्वरूप पाबना व बोगरा में सरकार के द्वारा सुधारवादी नीति को प्रोत्साहित किया गया।

अन्ततः यह स्पष्ट है कि पाबना व बोगरा में जो कृषक विद्रोह हुआ, उसका बंगाल के इतिहास में प्रमुख स्थान माना जाता है। कृषक आन्दोलन की श्रेणी में बंगाल में हुए कृषक विद्रोहों में पाबना व बोगरा कृषक आन्दोलन अपना उल्लेखनीय स्थान रखता है।

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न– 1

निम्नांकित प्रश्नों के पाँच पंक्तियों में उत्तर दें :–

1. पाबना व बोगरा कृषक विद्रोह की प्रकृति बताईये।

.....

.....

.....

.....

.....

2. पाबना एवं बोगुरा क्षेत्रों के कृषकों की स्थिति को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3. पाबना व बोगुरा क्षेत्रों में जमींदारों व साहूकारों की नीति को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4. पाबना व बोगुरा क्षेत्रों में भूराजस्व की स्थिति का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

5. टेनेन्सी कानून 1885 ई. के संबंध में आप क्या समझते है।

.....

.....

.....

.....

.....

बोध प्रश्न–2

निम्नलिखित वाक्यों को पढ़कर उसके सम्मुख सही (✓) या गलत (×) का चिन्ह अंकित करें।

(1) पाबना एवं बोगुरा दक्षिण भारत के प्रमुख क्षेत्र है। ( )

(2) पाबना एवं बोगुरा का आन्दोलन कृषक विद्रोह था। ( )

(3) पाबना और बोगुरा में कृषकों की स्थिति शोचनीय व शोषण पूर्ण थी। ( )

(4) जमींदार व साहूकार पाबना व बोगुरा क्षेत्रों के कृषकों का शोषण किया करते थे। ( )

(5) सरकार, पुलिस व न्याय व्यवस्था कृषकों के समर्थन में कार्य करते थे। ( )

(6) पाबना और बोगुरा कृषक विद्रोह सफल हुआ था। ( )

(7) पाबना व बोगुरा कृषक विद्रोह के परिणाम स्वरूप बंगाल में 1885 ई. में टेनेंसी कानून पारित किया गया था। ( )

बोध प्रश्न–3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 100 शब्दों में लिखिए–

1. पाबना एवं बोगुरा कृषक आन्दोलन की प्रकृति एवं स्वरूप का विवेचन कीजिए ।
2. पाबना तथा बोगुरा कृषक आन्दोलन के कारणों का वर्णन कीजिए।
3. पाबना व बोगुरा कृषक विद्रोह के परिणामों को समझाइये।

6.10 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. एल. नटराजन : पीजेन्ट अपराइजिंग इन इण्डिया
2. जे.सी. बगाल : पीजेन्ट रिवोल्यूशन इन बंगाल
3. डी.एन. धनाग्रे : पीजेन्ट मूवमेंट इन इण्डिया
4. थोर्नर : अग्रेरियन प्रोस्पेक्ट्स इन इण्डिया
5. ए.आर. देसाई : पीजेन्ट स्ट्रूगल्स इन इण्डिया
6. स्वामी सहजानन्द सरस्वती एण्ड एन.जी. रंगा : हिस्ट्री ऑफ दि किसान मूवमेन्ट्स
7. एस. सेन : अग्रेरियन रिलेशन्स इन इण्डिया
8. गोध : पीजेन्ट अपराइजिंग इन इण्डिया
9. अलवीं : पीजेन्ट्स एण्ड रिवोल्यूशन्स
10. दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया खण्ड – 5
11. बी.बी. क्लिंग : दि इण्डिगो डिस्टरबैन्सेज इन बंगाल
12. डब्ल्यू. डब्ल्यू. हण्टर : एनल्स ऑफ बंगाल

इकाई – 7

दक्षिण भारत में कृषक विद्रोह 1875

इकाई की रुपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 भारत में कृषक आन्दोलन की प्रष्ठभूमि 1818 ई.–1875 ई.

7.3 दक्षिण भारत में हुए कृषक आन्दोलन की प्रकृति

7.4 कृषक विद्रोह के कारण

7.5 आन्दोलन का उत्कर्ष एवं विकास

7.6 दक्षिण के कृषक विद्रोह के प्रति सरकार की नीति

7.7 दक्षिण के कृषक विद्रोह के परिणाम

7.8 सारांश

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.10 संदर्भ ग्रंथों की सूची

7.0 उद्देश्य:

इकाई के अन्तर्गत यह विश्लेषणात्मक ऐतिहासिक विवेचन किया गया है कि किस भांति भारत के दीक्षण क्षेत्र के किसानों के द्वारा 1875 ई. में प्रमुखत : महाराष्ट्र में मारवाड़ी साहूकारों के विरुद्ध विद्रोह किया। इस इकाई में आप यह अध्ययन करेंगे कि:–

- ❑ भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में कृषकों के निरन्तर विद्रोह प्रारम्भ हुए जो कि अर्थव्यवस्था का प्रमुख अंग बना रहा।
- ❑ भारत में दक्षिण के किसानों के द्रारा 1875 ई. में विद्रोह करने के पूर्व अधिकांश क्षेत्रों में आदिवासियों के विद्रोह, बंगाल में किसानों के विद्रोह प्रादुर्भावित हो चुके थे।
- ❑ इकाई के अन्तर्गत आप यह अध्ययन करेंगे कि दक्षिण के कृषकों ने जो विद्रोह किया वह साहूकारों व सरकार के विरुद्ध आन्दोलन का स्वरूप रहा।
- ❑ 1875 ई. में दीक्षण के किसानों के द्रारा जो विद्रोह प्रारम्भ किया गया वह किसानों को भूमि के अधिकार से वंचित करने, भूमि छीनने, अत्यधिक भूराजस्व कर, सरकार का संरक्षण प्राप्त न होने, साहूकारों के शोषाण व अत्याचार, असंतोष से तंग आकर किया गया आन्दोलन था।
- ❑ इकाई में आप यह तथ्यपूर्ण विचारधारा का अध्ययन करेंगे कि दक्षिण के कृषकों के द्वारा आन्दोलन किए जाने के क्या परिणाम हुए और भारतीय अर्थव्यवस्था पर इसका क्या प्रभाव पडा।
- ❑ दक्षिण के कृषक विद्रोह के प्रति सरकार की नीति का विवेचनात्मक अध्ययन करेंगें।

7.1 प्रस्तावना:

भारतीय अर्थव्यवस्था एवं 19वीं शताब्दी में भारत में हुए विभिन्न कृषक विद्रोहों के संदर्भ में दक्षिण के कृषकों के द्वारा 1875 ई. में विद्रोह किया जाना उल्लेखनीय – ऐतिहासिक घटना एवं विवेचना का विषय माना जाता है ।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह तथ्यपूर्ण है कि मानव सभ्यता के विकास के साथ कृषि अर्थव्यवस्था का प्रमुख अंग रहा है। कृषि भारतीयों का मुख्य व्यवसाय एवं, जीविकोपार्जन का साधन रहा है। आदिकाल से ही भूमि पर खाद्यान उपजाने हेतु जो वर्ग खेती कार्य किया करते थे उन्हें कृषक कहा जाता रहा। कृषकों के द्वारा भूमि पर अधिक परिश्रम कर अत्यधिक उत्पादन किए जाने, लेकिन उन्हें उनके द्वारा उत्पादित माल व परिश्रम का पर्याप्त हिस्सा प्राप्त न होने। उनका शोषण होने, साहूकार, जमींदार, सरकार के द्वारा उनके अधिकारों की उपेक्षा, शोषण करने की प्रक्रिया निरन्तर रूप में बनी रही। इस स्थिति के परिणाम स्वरूप कृषकों में विद्रोह की भावना प्रज्जवलित हुयी, जिससे प्रेरित होकर कृषकों ने विद्रोह प्रारम्भ किए। इस दृष्टि से भारत में मुख्यत: 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही कृषक विद्रोह प्रारम्भ हो गए थे जो कि भारतीय अर्थ–व्यवस्था का हिस्सा बन गए हैं।

7.2 भारत में कृषक आन्दोलन की पृष्ठभूमि: (1818 ई. – 1875 ई.)

1875 ई. में दक्षिण के कृषकों के द्वारा विद्रोह किए जाने से पूर्व भारत के अनेक क्षेत्रों में कृषक विद्रोह का स्वरूप बना रहा। दक्षिण के कृषक विद्रोह का विवेचन करने से पूर्व ऐतिहासिक दृष्टि से यह आवश्यक है कि इस विद्रोह की संक्षिप्त पृष्ठभूमि का अध्यन किया जाए।

दक्षिण के कृषक विद्रोह से पूर्व भारत में विभिन्न कृषक विद्रोहों का प्रादुर्भाव हो चुका था। इस दृष्टि से 19वीं शताब्दी के प्रथम भाग में बिहार, उड़ीसा के विभिन्न आदिवासियों ने विद्रोह किए। असम की खासी जाति ने, मणिपुर–त्रिपुरा की कूकी जाति ने, छोटा नागपुर की कोल जाति ने और उड़ीसा की खोल जाति ने अंग्रेजी शासन, सरकार द्वारा हस्तक्षेप के छीने जाने आदि कारणों के फलस्वरूप विद्रोह हुए।

1855 – 56 ई. में संथाल जाति से संबंधित कृषकों का विद्रोह उल्लेखनीय विद्रोह मान जाता है। इस विद्रोह का प्रमुख कारण जमींदारों तथा साहूकारों द्वारा – भूमि का अपहरण किया जाना था। इन संथालों ने अपने परिश्रम से बिहार में बंगाल की सीमा के निकट राजमहल की पहाड़ी भूमि को कृषि योग्य बनाया था। उस भूमि को साहूकारों ने चालाकी से अपने अधिकार में करने का प्रयास किया, परिणाम स्वरूप संथालों ने विद्रोह कर दिया ।

1858 – 60 ई. के वर्षों में बंगाल के कई जिलों के कृषकों द्वारा विद्रोह प्रारम्भ किए गए थे। अवकाश प्राप्त यूरोपियनों ने बंगाल, बिहार में नील की खेती प्रारम्भ कर दिया था। वे कृषकों के प्रति शोषण व अत्याचार की नीति को अपनाए हुए थे। सरकार द्वारा इस ओर कोई

ध्यान नहीं दिया गया। इस स्थिति में विष्णुचरण विश्वास और दिगम्बर नामक दो भाईयों ने कृषकों को संगठित करके खेती न करने के लिए प्रोत्साहित किया। परिणाम स्वरूप कृषक विद्रोह प्रारम्भ हुए।

इसी प्रकार 1870 ई. में बंगाल में कृषकों ने लगान देने से इंकार कर दिया और अपनी भूमियों को छीने जाने का सशस्त्र विरोध किया। परिणाम स्वरूप कृषक विद्रोह को प्रोत्साहन मिला।

उक्त कृषक विद्रोहों के क्रम में 1875 ई. मे दक्षिण के कृषकों के द्वारा विद्रोह किया जाना ऐतिहासिक विवेचना एवं अध्ययन का विषय माना जाता है।

7.3 दक्षिण भारत में हुए कृषक आन्दोलन की प्रकृति:

1875 ई. में दक्षिण के किसानों के विद्रोह की महत्वपूर्ण प्रकृति एवं स्वरूप रहा है। दक्षिण के कृषकों का विद्रोह किसानों के द्वारा महाराष्ट्र में मारवाड़ी साहूकारों के विरुद्ध किया गया विद्रोह था। कृषकों ने साहूकारों के शोषण, अत्याचार से मुक्ति प्राप्त करने, उनके द्वारा किसानों की भूमि हस्तगत किए जाने की स्थिति में भूमि पुन : प्राप्त करने के उद्देश्य से यह विद्रोह किया गया था।

दक्षिण के कृषकों का विद्रोह सरकार के विरुद्ध आन्दोलन का स्वरूप था। क्योंकि सरकार कृषकों को संरक्षण प्रदान करने व उनके हितों का ध्यान रखने में उपेक्षा का दृष्टिकोण अपनाए–हुए थी। सरकार साहूकारों को ही सहयोग प्रदान कर रही थी, परिणाम स्वरूप कृषकों ने सरकार की इस दोषपूर्ण नीति के विरुद्ध आन्दोलन करने का कदम उठाया।

इस विद्रोह का स्वरूप इस तथ्य पर परिलक्षित होता है कि दक्षिण के कृषकों ने संगठित होकर साहूकारों व सरकार के विरुद्ध विद्रोह की नीति को अपनाया था। यह विद्रोह हिंसात्मक विद्रोह का स्वरूप रहा। इस विद्रोह की यह भी प्रकृति रही कि सरकार ने सेना की सहायता से इस विद्रोह को दबा दिया था।

इस कृषक विद्रोह का यह भी मुख्य स्वरूप रहा कि, यह विद्रोह मुख्यत मारवाड़ी और गुजराती साहूकारों के विरुद्ध किया गया आन्दोलन था।

कृषक विद्रोह की यह भी प्रकृति रही कि 1875 ई. का दक्षिण विद्रोह पश्चिम महाराष्ट्र में प्रादुर्भावित हुआ था। इन क्षेत्रों में जो रैयतवाड़ी प्राणाली को लागू किया गया, जिसके द्वारा भूस्वामियों को भूराजस्व का भुगतान करने के लिए व्यक्तिगत व प्रत्यक्ष रूप में उत्तरदायी माना गया। उस समय से ही कृषकों व साहूकारों के बीच परस्पर विवाद व विद्रोह की स्थिति को प्रोत्साहन मिल।

7.4 कृषक विद्रोह के कारण:

1875 ई. में दक्षिण के किसानों द्वारा विद्रोह किए जाने के विभिन्न आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक कारण थे। इन कारणों के अन्तर्गत निम्नलिखित परिस्थितियों ने कृषक विद्रोह को प्रोत्साहित किया था

1. कृषकों को भूमि से अपदस्थ किया जाना:

दक्षिण के कृषक विद्रोह का महत्वपूर्ण काला कृषकों को भूमि से बेदखल किया जाना था। इस क्षेत्र में साहूकार कृषकों की भूमि छीनने में निरन्तर क्रियाशील थे। दक्षिण के साहूकार एवं व्यापारी जिन्हें **वेनिस** कहा जाता था, कृषकों को धन उधार में दिया करते थे। खेतीहर किसान जो कि **कुन्बीस** कहलाता था ऋणों से ग्रस्त थे। साहूकार किसानों को जो ऋण दिया करते थे उस धन राशि में चालाकी से बढ़ोतरी करके उसे खाते में अधिक लिख लिया करते थे। ब्याज की राशि भी अधिक वसूल करते थे। कृषक ऋणराशि को चुकाने में असमर्थ होता था, परिणाम स्वरूप उसकी भूमि को साहूकार द्वारा हड़प लिया जाता था। इस स्थिति से किसान असन्तुष्ट थे। वे भूमि पर अधिकार प्राप्त करने व साहूकारों की दोषपूर्ण नीति के विरुद्ध छुटकारा करने हेतु इच्छुक थे। इस स्थिति में कृषकों ने विद्रोह की नीति को अपनाया।

2. कृषकों का ऋणग्रस्त होना:

दक्षिण के कृषकों का ऋणग्रस्त होना अर्थात ऋण के भार से दबा होना भी, विद्रोह का अन्य कारण था। कृषकों पर अत्यधिक भूमिकर का दायित्व एवं भार था। कृषकों के द्वारा जो उत्पादन किया जात था, उस उत्पादन का आधा हिस्सा लगान के रूप में देना होता था। उनके पास आमदनी के साधनों की कमी थी। कृषकों को साहूकारों से विभिन्न कार्यो के लिए, उधार लेना पड़ता था। उनके चंगुल में फंसने के बाद कृषकों का साहूकारों से छुटकारा प्राप्त करना असंभव होना था। परिणाम स्वरूप कृषक अत्यधिक रूप में ऋणग्रस्त हो गए थे। इसी प्रकार विश्व की मंडियों में कपास के भावों में गिरावट आने से भी कृषक ऋण के भार से दब गए थे। स्थिति से छुटकारा प्राप्त करने के उद्देश्य से कृषकों ने विद्रोह किया।

3. साहूकारों की दोषपूर्ण नीति:

साहूकारों की अत्यधिक छलपूर्ण, ललची प्रवृति एवं दोषपूर्ण नीति के कारण भी दक्षिण के कृषकों ने विद्रोह किया। गुजराती एवं मारवाड़ी साहूकार अत्यधिक लालची थे। वे अपने बही–खातों में हेरा–फेरी करते थे। कृषकों के द्वारा ली गयी वास्तविक धनराशि को बढ़ाकर लिख लिया करते थे। अशिक्षित किसान बिना जानकारी के ऋण संबंधी व अन्य दस्तावेजों पर हस्ताक्षर कर देते थे। साहूकारों के द्वारा कृषकों का शोषण किया जाना था। ऋण नहीं चुका पाने की स्थिति में वे उनकी भूमि आपने नाम करवा लिया करते थे। इस स्थिति के फलस्वरूप उनमें असंतोष व विद्रोह की स्थिति विद्यमान थी परिणाम स्वरूप कृषकों ने विद्रोह करने की नीति को अपनाया।

4. सरकार का उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण:

दक्षिण के कृषकों के प्रति सरकार का उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण बना रहा, जिसके कारण कृषकों में विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हो सकी। सरकार कृषकों के हित, उनके उद्देश्यों के अनुरूप कार्य नही करती थी। कृषकों को अत्याचारों व कष्टों तथा शोषण से बचाने हेतु कोई कदम नही उठाए गए थे। इसके विपरीत सरकार साहूकारों को सहयोग व संरक्षण प्रदान किया करती थी। सरकार के द्वारा कृषि संबंधी सुधार, कृषकों को सुविधाएं उपलब्ध करवाने, उन्हें राहत पहुंचाने, सामाजिक, आर्थिक सहायता प्रदान करने आदि के क्षेत्र में कोई कार्यवाही नहीं की गयी। परिणाम स्वरूप कृषकों ने सरकार की उपेक्षापूर्ण नीति के विरुद्ध विद्रोह किया।

5. न्यायालयों द्वारा साहूकारों को सहायता:

न्यायालयों द्वारा विशेषत: दीवानी न्यायालयों में साहूकारों को पूर्ण संरक्षण व सहयोग प्राप्त होता था। इस स्थिति से भी कृषकों विद्रोही बन गए थे। किसान जब न्याय प्राप्त करने के लिए, न्यायालय की शरण प्राप्त करने जाता था, उस स्थिति में भी, न्यायालयों में फैसले प्राय: साहूकारों के पक्ष में होते थे। इस स्थिति में कृषकों बेदखल हो जाते थे। इस स्थिति के कारण भी कृषकों में असन्तोष तथा विद्रोह की भावना उत्पन्न हुयी, जिससे प्रेरित उन्होंने विद्रोह प्रारम्भ किया।

6. कृषकों की दयनीय स्थिति:

दक्षिण के कृषकों द्वारा विद्रोह किए जाने का अन्य कारण कृषकों की दयनीय स्थिति होना था। कृषक आर्थिक, सामाजिक दृष्टि से हीन व दयनीय स्थिति में थे। सामाजिक दृष्टि से उनका स्तर निम्न व शोषणपूर्ण था। आर्थिक दृष्टि से वे निर्धन, ऋणग्रस्त थे। उनकी आमदनी सन्तोष जनक नहीं थी। समाज में उनके प्रति उपेक्षा का दृष्टिकोण अपनाया जाता था। इस स्थिति में उनकी स्थिति शोचनीय बन गयी थी। कृषकों के स्वास्थय, उनकी निवास स्थान की समुचित व्यवस्था, जीवन बीमा व सुरक्षा आदि की सुविधाएं नहीं थी। परिणाम स्वरूप कृषकों में असन्तोष को प्रोत्साहन मिला। इस स्थिति में भी कृषकों ने विद्रोह प्रारम्भ किया।

7. कृषकों पर करों का भार होना:

दक्षिण के कृषकों द्वारा विद्रोह किए जाने का अन्य कारण उन पर करारोपण का होना था। कृषक विभिन्न प्रकार के करों के भार से दबे हुए थे। उन्हें भूराजस्व के अतिरिक्त अन्य प्रकार के करों – मेला, त्यौहार, पर्व, परिवहन, डाक व्यय, पथकर, जन्म, मृत्यु, धार्मिक, विवाह, निवास आदि करों का भी भुगतान करना होता था। इस स्थिति में करों का अत्यधिक भार कृषकों पर बढ़ गया था। इन करों की वसूली में भी शोषण की स्थिति विद्यमान थी। इन करों के भुगतान हेतु कृषकों को साहूकारों से ऋण लेना हुआ करता था। इस स्थिति के फलस्वरूप उन पर आर्थिक भार बढ़ जाने व आर्थिक स्थिति कमजोर होने की परिस्थिति बन गयी थी। इस परिस्थिति से छुटकारा प्राप्त करने के उद्देश्य से कृषकों ने विद्रोह को प्रोत्साहित किया।

8. आवागमन एवं संचार सुविधाओं का अभाव:

दक्षिण के कृषकों द्वारा विद्रोह किए जाने हेतु अन्य परिस्थिति इस रूप में भी संभव हुयी थी कि, कृषकों की सुविधाओं के लिए आवागमन तथा संचार सुविधाओं का पूर्ण अभाव था। इस क्षेत्र में सरकार द्वारा किसी प्रकार के विकासपूर्ण कार्य नहीं किए गए थे। कृषकों को अपना उत्पादित माल एक स्थान से दूसरे स्थान भेजने व स्वयं के द्वारा अन्य स्थानों पर आने–जाने की सुविधाओं का पूर्ण अभाव था। इसी प्रकार समाचार भेजने व प्राप्त करने में भी कठिनाईयां महसूस होती थीं। इन सुविधाओं को प्राप्त करने हेतु कृषकों ने विद्रोह किया।

9. भारत के अन्य प्रान्तों के कृषक आन्दोलनों का प्रभाव:

1875 ई. से पूर्व भारत के विभिन्न प्रान्तों में कृषक विद्रोहों को प्रोत्साहन मिला था। इनमें से संथाल व बंगाल के कृषक विद्रोहों का उल्लेखनीय स्थान माना जाता है। इन कृषक

विद्रोहों की परिस्थितियां भी लगभग समान थी। इन कृषकों ने सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों से मुक्ति प्राप्त करने हेतु विद्रोह प्रारम्भ किया था। वे ही परिस्थितयों दक्षिण के कृषकों की थी। अत: दक्षिण के कृषकों ने इन कृषक विद्रोहों से प्रेरणा प्राप्त कर स्वयं को शोषण व अत्याचार से छुटकारा प्राप्त करने के उद्देश्य से विद्रोह प्रारम्भ किया।

10. खाद्यान उत्पादन में कमी एवं भूराजस्व में वृद्धि:

डी. एन. धनाग्रे के तथ्यपूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि दक्षिण क्षेत्र के कृषकों के लिए वर्ष की कमी व सिचाई साधनों के अभाव में खाद्यान्न उत्पादन में भी, काफी गिरावट आ गयी थी। दूसरी ओर **वेनिस** वर्ग के सामाजिक स्तर व आर्थिक शक्तियों में अभिवृद्धि को प्रोत्साहन मिला था। इसी प्रकार राजस्व दरों में भी वृद्धि की गयी थी। परिणाम स्वरूप दक्षिण के कृषकों मुख्यतः: पश्चिम ग्रामीण महाराष्ट्र के कुम्बी कृषकों की स्थिति असहनीय बन गयी थी। इस स्थिति से मुक्त होने के उद्देश्य से भी कृषकों ने विद्रोह करने हेतु कदम उठाया।

11. तात्कालिक कारण:

दक्षिण के किसानों द्वारा विद्रोह किए जाने हेतु तात्कालिक परिस्थिति ने मुख्य भूमिका अदा की थी। यद्यपि कृषक आन्दोलन को प्रोत्साहित करने हेतु उक्त विभिन्न कारण थे तथापि वास्तविक शुरुआत तात्कालिक कारण के फलस्वरूप संभव हो सकी। जिसने मुख्य चिंगारी का कार्य किया

इस दृष्टि से तात्कालिक परिस्थिति एवं घटना इस रूप में संभव हुयी कि दिसम्बर माह के 1874 ई. में पूना जिले के सिरूर नामक ताल्लुका में घटना घटित हुयी कि. मारवाड़ी साहूकार कल्लूराम ने बाबा साहिब देशमुख के विरुद्ध 150 रु. के ऋण के लिए बेदखली का आज्ञापत्र प्राप्त कर लिया। साहूकार के लोगों ने बाबा साहिब के मकान को गिरा दिया था इस स्थिति के फलस्वरूप ग्रामवासियों को क्रोध आ गया। जून 1875 ई. तक समस्त पूना जिले के कृषकों व निवासियों ने विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। कृषकों ने साहूकारों के मकानों तथा दुकानों पर आक्रमण कर दिया, उन्हें जला दिया। यह विप्लव अहमदनगर व अन्य जिलो में भी फैल गया। परिणाम स्वरूप इस स्थिति ने विद्रोह को वास्तविक रूप में क्रियान्वित स्वरूप प्रदान किया।

7.5 आन्दोलन का उत्कर्ष एवं विकास:

उपर्युक्त परिस्थितियों एवं कारणों के परिणाम स्वरूप दक्षिण के कृषकों द्वारा, विद्रोह प्रारम्भ किया गया था। इस विद्रोह के तात्कालिक कारण का विश्लेषणात्मक अध्यन करने के पश्चात यह तथ्यपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी मिलती है कि, दक्षिण के कृषक विद्रोह का दिसम्बर 1874 ई. में जिले के सिरूर इलाके में हुआ था। यद्यपि कृषकों में साहूकारों सरकार के प्रति असंतोष तथा विद्रोह करने की भावना विद्यमान थी तथापि विद्रोह का इस चिंगारी के फलस्वरूप संभव हुआ था कि एक मारवाड़ी साहूकार कल्लूराम ने बाबा साहिब देशमुख के विरुद्ध 150 रु. के ऋण के लिए बेदखली का आज्ञापत्र प्राप्त कर लिया। इस साहूकार के लोगों ने बाबा साहिब के मकान को गिरा दिया। इस घटना के परिणाम स्वरूप कृषकों में क्रोध की ज्वाला भड़क उठी और उन्होंने विद्रोह प्रारम्भ कर दिया।

इसी समय कृषकों ने संगठित होकर साहूकारों की शोषण व अत्याचार पूर्ण नीति का विरोध किया। धीरे–धीरे विद्रोह की लहर जून 1875 ई. तक समस्त **पूना** जिले में फैल गयी थी। कृषकों का यह विद्रोह **अहमद नगर, सतारा, शोलापुर**, जिले में भी फैल गया। ने साहूकारों के मकानों तथा दुकानों पर आक्रमण किया, उन्हें आग लगा दी तथा तोड़–फोड़ की। कृषकों ने उन दस्तावेजों को अपने कब्जे में ले लिया जिन पर किसानों के हस्ताक्षर थे साहूकारों के कब्जे में थे। इस स्थिति के फलस्वरूप कृषक विद्रोह ने हिंसा का रूप धारण कर लिया था। कृषकों का विद्रोह 33 गांवों में फैल गया था। कृषकों ने मारवाड़ी साहूकारों की संपत्ति को भी लूटा और उन्हें विभिन्न तरीके के परेशान किया।

कृषकों की हिंसात्मक गतिविधियां निरन्तर रूप में बढ़ती चली गयी, उन्हें नियंत्रित करने तथा अत्यधिक रूप में विकसित न होने के उद्देश्य से सरकार के द्वारा सक्रिय कदम उठाए गए।

7.6 दक्षिण के कृषक विद्रोह के प्रति सरकार की नीति:

कृषकों के बढ़ते हुए हिंसात्मक स्वरूप एवं उत्तेजना के कारण सरकार के दमनकारी नीति को अपनाया गया था। इस दृष्टि से सर्वप्रथम सरकार ने विद्रोह को दबाने उद्देश्य मे पुलिस की सहायता प्राप्त की। पुलिस ने कृषकों की हिंसात्मक कार्यवाहियां, आग लगाने की गतिविधियों को रोका। इसी प्रकार सेना का भी सहयोग सरकार ने प्राप्त किया, जिससे कि विद्रोहियों पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सके और उनके विद्रोह का अन्त किया जा सके। इस कार्यवाही में 1000 कृषक बंदी बना लिए गए और विद्रोह को पूर्णतया दबा दिया गया। लेकिन सरकार को इस विद्रोह को नियंत्रित करने में काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा था।

दक्षिण के विद्रोही कृषकों पर सरकार द्वारा जुर्माना लगाया गया। सरकार को कृषक विद्रोह को दबाने एवं उसका दमन करने में लगभग तीन सप्ताह का समय लगा।

7.7 दक्षिण के कृषक विद्रोह के परिणाम:

यद्यपि दक्षिण के कृषक विद्रोह को सरकार के द्वारा दबा दिया गया था तथापि इसके दूरगामी परिणाम भी हुए। यह विद्रोह संगठित विद्रोह था, जिसका दमन करने में सरकार को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा तथा पुलिस व सेना का सहयोग प्राप्त करना पड़ा। एतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह जानकारी मिलती है कि, इस विद्रोह का आधार इतना प्रभावशाली एवं संगठित था कि सरकार को किसी भी विद्रोही के विरुद्ध साक्ष्य नही मिला।

सरकार के द्वारा इस विद्रोह से प्रभावित होकर कृषक विद्रोह आयोग की नियुक्ति हेतु बाध्य होना पड़ा। इस आयोग को "**दक्कन उपद्रव आयोग**" कहा जाता है। इस आयोग को यह कार्य सौंपा गया कि वह दक्षिण के कृषकों द्वारा उपद्रव किए जाने के कारणों व उददेश्यों का पता लगाकर प्रतिवेदन प्रस्तुत करें। इसी प्रकार कृषकों की स्थिति सुधारने के लिए 1879 ई. में "**कृषक राहत अधिनियम**" पारित किया गया अधिनियम में यह व्यवस्था की गयी कि, ऋण संबंधी समस्त दस्तावेजों की, गांव के रजिस्ट्रार और आवश्यकता हो तो न्यायालय द्वारा जांच

की जाए। यह भी व्यवस्था की गयी कि कृषकों को ऋण न लैटाने पर गिरफ्तार अथवा जेल में बन्द नहीं किया जा सकता था।

अधिनियम के परिणाम स्वरूप कृषकों को ऋण के क्षेत्र में कोई राहत नहीं मिली थी। क्योंकि **वेनिस** (साहूकार) की शक्तियों में कमी नही की थी, जौ कि विद्रोह के पश्चात भी ऋण की लेन–देन का कार्य कर रहे थे। इस स्थिति में **कुन्बीज** (निर्धन किसान) के पास अन्य कोई मार्ग नहीं था, परिणाम स्वरूप उन्होंने **वेनिस** के बढ़ते हुए प्रभावपूर्ण वातावरण में अपने आपको व्यवस्थित करने व प्रयास किया।

7.8 सारांश:

इस प्रकार दक्षिण के कृषक विद्रोह का 19वीं शताब्दी के ब्रिटिश कालीन भारतीय इतिहास एवं भारत में हुए विभिन्न कृषक आन्दोलनों की श्रेणी में उल्लेखनीय स्थान माना जाता है।

यह कृषक विद्रोह मुख्यत: **कुन्बीज** (निर्धन कृषकों) के द्वारा **वेनिस** (साहूकारों) के विरुद्ध किया गया आन्दोलन था इस विद्रोह को प्रोत्साहित करने में प्रमुखत: कृषकों से भूमि छीना जाना, ऋण की अत्यधिक वसूली, साहूकारों की शोषण व अत्याचारपूर्ण नीति, सरकार व न्यायालय आदि के द्वारा कृषकों को सहयोग प्राप्त न होना तथा साहूकारों को समर्थन दिया जाना आदि महत्वपूर्ण कारण थे, जिनके फलस्वरूप यह विद्रोह प्रारम्भ हुआ।

कृषक विद्रोह का उद्भव दिसम्बर 1874 ई. से माना जाता है, जबकि जिले के सिरूर इलाके में कृषकों द्वारा सर्वप्रथम साहूकारों के विरुद्ध विद्रोह किया गया। उनके मकान, दुकान जला दिए गए एवं लूटमार की गयी। सरकार के द्वारा पुलिस व सेना के सहयोग से कृषक आन्दोलन का दमन कर दिया गया। इस विद्रोह का यह परिणाम हुआ कि सरकार ने **दक्कन उपद्रव आयोग** की स्थापना की तथा 1879 ई. में **कृषक राहत अधिनियम** पारित किया गया।.

यद्यपि दक्षिण के कृषक आन्दोलन को दबा दिया गया तथापि उसके दूरगामी परिणाम हुए,।जिसके परिणाम स्वरूप इस कृषक विद्रोह का भी ऐतिहासिक महत्व माना जाता है।

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न:

बोध प्रश्न – 1 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर पांच पंक्तियों मे लिखिए:

1 भारत में दक्षिण के कृषकों के द्वारा किए गए विद्रोह से हुए कृषक आन्दोलनो का उल्लेख कीजिए।

---

2 दक्षिण के कृषक विद्रोह की प्रकृति का विवेचनात्मक स्वरूप बताइये।

---

3 दक्षिण के कृषक विद्रोह के समय कृषकों की स्थिति का विवेचन कीजिए।

---

4 दक्षिण के कृषक विद्रोह को प्रोत्साहित करने में साहूकारों के उत्तरदायित्व को स्पष्ट कीजिए।

---

5 कृषक विद्रोह को प्रोत्साहित करने में तात्कालिक परिस्थिति का महत्व बताते हुए उसकी विवेचना कीजिए।

---

6 दक्षिण के कृषक विद्रोह को दबाने एवं उसका दमन करने हेतु सरकार द्वारा उठाए गए कदमों का वर्णन कीजिए।

---

7 दक्कन उपद्रव आयोग का दक्षिण कृषक विद्रोह के सन्दर्भ में महत्व स्पष्ट कीजिए।

---

8 दक्षिण के किसान विद्रोह के क्षेत्र में कृषक राहत अधिनियम की ऐतिहासिकता व व्यवस्थाओं का वर्णन कीजिए।

बोध प्रश्न – 2 निम्नांकित वाक्यों को पढ़कर उनके सम्मुख सही (✓) अथवा गलत (×) का चिन्ह अंकित कीजिए:

1 दक्षिण के कृषकों का विद्रोह किसानों के द्वारा महाराष्ट्र में मारवाड़ी साहूकारों के विरुद्ध किया गया विद्रोह था। ( )

2 कृषक विद्रोह नील की खेती किए जाने के विरुद्ध विद्रोह का स्वरूप था। ( )

3 दक्षिण के कृषकों के हित, उनके उददेश्यों की पूर्ति, कृषकों को सहायता व करने, उनकी स्थिति में सुधार करने की दृष्टि से सरकार सजग थी। ( )

4 दक्षिण के कृषकों का विद्रोह संगठित व हिंसात्मक स्वरूप था। ( )

5 कृषकों के विद्रोह को दबाने एवं उसका दमन करने के लिए सरकार ने सेना व पुलिस का सहयोग प्राप्त नही किया। ( )

6 कृषकों को भूमि से बेदखल करना, ऋणग्रस्त होना, कृषकों की दयनीय स्थिति, सरकार, न्यायालय का संरक्षण प्राप्त न होना, साहूकारों की कृषकों के प्रति शोषण व अत्याचार की नीति दक्षिण के कृषक विद्रोह के महत्वपूर्ण कारण थे। ( )

7 दक्षिण के कृषक विद्रोह का प्रभाव क्षेत्र मुख्यत: पूना, अहमदनगर, शोलापुर, सतारा क्षेत्रों में बना रहा। ( )

8 दक्षिण के कृषक विद्रोह को प्रारम्भ करने का तात्कालिक कारण पूना जिले के सिरूर इलाके की घटना से संबंधित था। ( )

9 दक्षिण के कृषकों ने अपनी विद्रोहपूर्ण गतिविधियों में साहूकारों के मकानों, दुकानों को जलाने, लूटमार करने तथा अपने गिरवीं रक्खे कानूनी दस्तावेजों को प्राप्त करना था। ( )

10 सरकार के द्वारा दक्षिण के कृषकों हेतु राहत पहुंचाने के उददेश्य से विद्रोह के, पश्चात भी किसी प्रकार के सुधार कार्य नहीं किए गए थे। ( )

बोध प्रश्न – 3 निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में लिखिए:

1 दक्षिण के कृषक विद्रोह को प्रोत्साहित करने वाली परिरिथतियों का एतिहासिक विवेचन एवं महत्व को समझाइये।

---

2 दक्षिण के कृषक विद्रोह की प्रमुख घटनाओं का वर्णन कीजिए।

---

3 कृषक विद्रोह के परिणामों को बताते हुए इस घटना के ऐतिहासिक महत्व को स्पष्ट कीजिए।

7.10 संदर्भ ग्रन्थों की सूची:

1. आर. कुमार "वेस्टर्न इण्डिया इन दि नाइनटिंथ सैन्चुरी"
2. नील चार्ल्सवर्थ "दि मिथ आफ दि दक्कन रिवोल्ट्स आफ 1875"
3. नट्राजन "पीजेण्ट अपराइजिंग इन इण्डिया"
4. आई. जे. कटनज "रूरल क्रेडिट इन वेस्टर्न इण्डिया"
5. डी. एन. धनाग्रे "पीजेण्ट मूवमेन्ट इन इण्डिया"
6. थोर्नर "अग्रेरियन प्रोस्पेक्टस इन इण्डिया"
7. ए. आर. देसाई "पीजेण्ट स्ट्रगल्स इन इण्डिया"
8. स्वामी सहजानन्द सरस्वती एण्ड एन जी. रंगा "हिस्ट्री ऑफ दि किसान मूवमेन्टस"

9. एस. सेन "अग्रेरियन रिलेशन्स इन इण्डिया"
10. अलवीं "पीजेण्ट्स एण्ड रिवोल्यूशन्स"
11. बी.एल. ग्रोवर एवं यशपाल "आधुनिक भारत का इतिहास"

इकाई – 8

राजस्थान एवं गुजरात में जनजाति विद्रोह (1900–1913)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 गोविन्द गिर का जीवन वृत

8.3 गोविन्द गिर की शिक्षाएं एवं भीलों की उन्नति के कार्यक्रम

8.3.1 धार्मिक विचार

8.3.2 सामाजिक सुधार

8.3.3 आर्थिक कार्यक्रम

8.4 गोविन्द गिर के विरूद्ध सामंतवादी तत्वों की विरोधी प्रतिक्रिया के कारण

8.4.1 भीलों का शोषण रोकने के प्रयत्न

8.4.2 डूंगरपुर, बाँसवाड़ा तथा प्रतापगढ़ के भीलों में असंतोष

8.4.3 भीलों में जागृति

8.4.4 सामंतवादी व्यवस्था को चुनौती

8.4.5 आर्थिक शोषण के विरूद्ध प्रचार

8.4.6 शराब–सेवन के विरूद्ध प्रचार से राज्यों को आर्थिक हानि

8.4.7 जागीरदारों और अधिकारियों के अत्याचार के विरूद्ध आवाज

8.4.8 पाल पट्टा के ठाकुर के साथ भीलों का समझौता

8.5 गोविन्द गिर व उसके अनुयायियों में असंतोष के कारण

8.5.1 गोविन्द गिर को परेशान किये जाने की घटनायें

8.5.2 गोविन्द गिर के अनुयायियों पर अत्याचार

8.6 मानगढ़ का घेरा

8.6.1 मानगढ़ में बड़ी संख्या में भीलों का एकत्रित होना

8.6.2 छुटपुट घटनायें

8.6.3 घेरे की तैयारियाँ

8.6.4 घटनायें

8.7 गोविन्द गिर व उसके साथियों पर मुकदमा

8.8 विद्रोह का स्वरूप

8.9 भारत की अन्य जनजातियों के आन्दोलनों से गोविन्द गिर के आन्दोलन की भिन्नताएं

8.10 प्रभाव

8.10.1 भीलों में आत्मविश्वास व आत्मसम्मान की भावना

8.10.2 संगठन की भावना

8.10.3 सामाजिक प्रभाव – रहन सहन में परिवर्तन, कुप्रथाओं का विरोध, हिन्दू समाज में भगतों का सम्मान, समाज सुधार की भावना, अपराधों की संख्या में कमी, शिक्षा का प्रसार, विभिन्न सामाजिक वर्गों का उदय, समाज के परम्परागत अधिष्ठाताओं के अधिकारों में कमी

8.10.4 धार्मिक – भक्ति मत का प्रसार, दार्शनिक विचारों की महत्ता, अन्ध विश्वासों का विरोध, मूर्ति पूजा का विरोध, धुनियों पर हवन, हिन्दू धर्म से निकटता, परम्परागत धार्मिक व्यवस्था पर आघात

8.10.5 आर्थिक – भीलों की कृषि कार्य में रुचि, शोषण के विरुद्ध आवाज

8.10.6 राजनैतिक – देशी राज्यों पर तत्कालिन प्रभाव, अंग्रेज अधिकारियों का भीलों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया, राजपूत शासकों द्वारा भीलों का दमन, "भगत" भीलों का जन आन्दोलन में भाग

8.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.12 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

8.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे -

- बीसवीं सदी के प्रथम दशक में राजस्थान व गुजरात के प्रदेशों में भीलों की दशा,
- बीसवीं सदी के प्रथम दशक में इन प्रदेशों में भीलों के आन्दोलन के नेता गोविन्द गिर का जीवन वृत,
- गोविन्द गिर की शिक्षाएं – भीलों में सामाजिक व धार्मिक सुधार के प्रति उनके विचार तथा भीलों की आर्थिक उन्नति का कार्यक्रम,
- सामंतवादी तत्वों के गोविन्द गिर के आन्दोलन का दमन करने के कारण,
- मानगढ़ के घेरे की तैयारी एवं घटनायें। इसमें गोविन्द गिर द्वारा भेजे गये दो संदेशों से उसके जीवन व शिक्षाओं के बारे मे जानकारी,
- गोविन्द गिर व उनके: साथियों पर चलाये गये मुकदमे में उसके तथा उसके साथियों के बयान तथा उनको दी गई सजाएं,
- विद्रोह के स्वरूप के बारे में समकालीन अंग्रेज अधिकारियों एवं आधुनिक इतिहासकारों के मत,
- यह विद्रोह भारत की अन्य जन–जातियों के विद्रोह से किस प्रकार से भिन्न था,
- गोविन्द गिर के आन्दोलन का भीलों की सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक दशा पर प्रभाव तथा उसके अनुयायियों की राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने की प्रवृत्ति ।

8.1 प्रस्तावना

1818 में राजस्थान के दक्षिण–पूर्वी राज्यों तथा 1823 में सिरोही ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ संधियाँ करके उसकी अधीनता स्वीकार की। उस समय से लेकर 1900 तक भीलों ने अपना असंतोष प्रकट करने के लिये कई बार विद्रोह किये। बी.के. शर्मा के अनुसार यद्यपि उन्नीसवीं सदी में डूंगरपुर बाँसवाड़ा के भीलों में भी असंतोष व्याप्त था और इन प्रदेशों में भी यदा–कटा असंतोष की अग्नि भड़क उठी लेकिन इस समय में भीलों के विद्रोहों और आन्दोलनो का प्रमुख केन्द्र मेवाड़ रहा। अंग्रेजों की सहायता से ये सब विद्रोह दबा दिये गये। 1881 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार की सलाह पर मेवाड़ ने भीलों की दशा सुधारने के लिये कुछ प्रयत्न किये। लेकिन इसके साथ भीलों के प्रदेशों में सैनिक व पुलिस चौकियों का जाल बिछाकर उन्हें नियन्त्रण में रखने का प्रयत्न भी किया।

1882 से लेकर 1901 तक राजपूताना को बार–बार अकाल अथवा सूखे की स्थिति का सामना करना पड़ा। इनमें 1899–1901 का दुर्भिक्ष, जो देश के: कई भागो में पड़ा, सबसे भयंकर व विनाशकारी था। इस अकाल में भीलों को सबसे अधिक हानि हुई । अक्टूबर, 1900 मे राजपूताना में गवर्नर जनरल के एजेन्ट ने भारत सरकार को लिखा कि समस्त भारत में इन प्रदेशों की स्थिति सबसे खराब है। इस दुष्काल के समय में भूख और हैजे से मरने वाले मनुष्यों में मेवाड़ के पहाड़ी इलाकों में तीस प्रतिशत, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा और प्रतापगढ़ में पन्द्रह प्रतिशत भील थे। इन दो दशकों में पड़े अकालों व सुखों से भीलों की आर्थिक स्थिति अत्यंत शोचनीय हो गई है। यद्यपि बीसवीं सदी के प्रथम कुछ वर्षों में उनकी स्थिति में मामूली सुधार हुआ किन्तु उनकी आर्थिक दशा खराब ही बनी रही। ऐसी विपणन परिस्थिति में गोविंद गिर ने उनकी धार्मिक, सामाजिक व आर्थिक दशाओं को सुधारने के लिए एक आन्दोलन चलाया। उनके इस आन्दोलन का व्यापक प्रभाव डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, कुशलगढ़, प्रतापगढ़ तथा मेवाड़ के कुछ प्रदेशों के अलावा गुजरात के निकटवर्ती प्रदेश पंचमहाल के भीलों पर पड़ा।

8.2 गोविन्द गिर का जीवन वृत

1913 में मानगढ़ से ब्रिटिश अधिकारियों को भेजे गये दो संदेशों में गोविन्द गिर द्वारा अपने जीवन की घटनाओं का विवरण दिया है। 20 दिसम्बर, 1868 ई. को उनका जन्म डूंगरपुर राज्य के बाँसिया–वेडेसा ग्राम में एक बंनजारा परिवार में हुआ। बचपन से ही वे धार्मिक प्रवृति के थे। अपनी बिगड़ती हुई आर्थिक दशा तथा अपने सदाचारी स्वभाव के कारण उन्होंने दशनामी सम्प्रदाय के गुरु राजगिर से दीक्षा ली। 1899–1900 के दुर्भिक्ष में उनकी पत्नी और बच्चों की मृत्यु के कारण वे गुजरात में संत रामपुर राज्य के नाटवाँ ग्राम में चले गये। हाली का काम करते हुए उन्होंने वहाँ कोलियों व भीलों को उपदेश देने का कार्य भी किया। राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर (सिरोही) के अनुसार 1905 से 1908 तक उन्होंने सिरोही के गांवों में अपना प्रचार किया। इरस्किन ने 1908 के इम्पीरियल गजेटियर में लिखा है कि अभी हाल में डूंगरपुर के गाँव में एक संत का आगमन हुआ है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इससे कुछ समय पहले ही वे वेडेसा लौट आए थे। वेडेसा में उन्होंने एक धुणी स्थापित कि। उन्होंने शीघ्र ही भीलों

कि ओर विशेष ध्यान दिया। अपने उपदेशों के कारण वे शीघ्र ही लोकप्रिय हो गये। वे बागड़ एवं गुजरात के प्रदेशों में अपने मत का प्रचार करने लगे। ब्रिटिश अधिकारियों को भेजे गये अपने संदेशों में गोविन्द गिर ने बताया कि डूंगरपुर राज्य में उन्हें एक बार लगभग तीन दिन कैद में रख कर उसके कुछ दिनों बाद उन्हें राज्य से निष्कासित कर दिया गया था। ईडर राज्य के रोजेड़ा गाँव में भी उन्हें गिरफ्तार करने का प्रयत्न किया गया था। संत रामपुर अधिकारियों ने भी उन्हें तंग किया था। उन्हें ईडर व संत रामपुर से भी निष्कासित किया गया था। अत: जब उन्हें अपने कुछ शिष्यों द्वारा मानगढ़ आने का निमन्त्रण मिला तो वे अक्टूबर ,1913 में मानगढ़ चेले गये। शीघ्र ही वहाँ पर काफी संख्या में भील एकत्रित हो गये। नवम्बर, 1913 में अंग्रेजों तथा कुछ देशी राज्यों की सेनाओं ने मानगढ़ का घेरा डाला। गोविन्द गिर तथा उसके कुछ प्रमुख शिष्यों को गिरफ्तार का उन पर संत रामपुर में मुकदमा चलाया गया। यद्यपि प्रारम्भ में गोविंद गिर को मौत की सजा दी गई किन्तु बाद में यह सजा दस साल की कैद में बदल दी गई। 1923 में जेल से रिहा होने के बाद उन्होंने अपना शेष जीवन भी भीलों की सेवा में व्यतीत किया। 1931 में गुजरात के झालोद तालुके के कंबोई ग्राम में उनका देहांत हो गया।

8.3 गोविन्द गिर की शिक्षाएं एवं भीलों की उन्नति के कार्यक्रम

मानगढ़ से भेजे गये अपने संदेशों तथा 1914 में संत रामपुर के कारागृह से भेजे गये पत्रों से उनके विचार ज्ञात होते है।

8.3.1 धार्मिक विचार

1. वे एकेश्वरवाद के समर्थक थे। उन्होंने कहा कि परमात्मा का केवल एक ही नाम है।
2. उन्होंने बहु देववाद का विरोध किया।
3. उनका मत था कि परमात्मा के प्रति गहरी आस्था रखनी तथा उनकी आराधना आदर के साथ करनी चाहिये।
4. वे मूर्ति पूजा के विरूद्ध थे। अत: उन्होंने अपने शिष्यों को पत्थर लकड़ी की मूर्तियों को न पूजने का आदेश दिया।
5. वे इस संसार को क्षण भंगुर मानते थे।
6. जीव के आवागमन के बंधन से छुटकारा पाने के लिये मुक्ति इस जन्म अथवा अगले जन्मों में आवश्यक मानते थे।
7. कर्म के सिद्धान्त में उनका विश्वास था। उनके मत में एक को उसके द्वारा किये गये कर्मो का फल भुगतना पड़ता मैं तथा दुष्कर्म उसे पर चैन से नही रहने देते।
8. उन्होंने अंश विश्वासों का विरोध किया। भीलों को अपने वीरों, न करने का आदेश दिया। भोपाओं और जादू–टोने से उपचार करने वालों पा विश्वास न करने की सलाह दी। वे भूत–प्रेतों को नहीं मानने थे।

9. उन्होंने अपने अनुयायियों को धुणियॉ बनाने और अपने पंथ के निशान गाड़ने का आदेश दिया। वहाँ हवन करने तथा सदैव उन्हें प्रज्जवलित रखने! की भी आज्ञा दी। ' उनका विश्वास था कि एक घुणी के चारों ओर परमात्मा का पास रहता है।
10. धार्मिक त्योहारों पर उपवास रखने की शिक्षा दी।
11. सुबह उठ कर स्नान करने व सूर्य के दर्शन करने की सलाह दी।
12. वे शंकर के भक्त थे तथा उन्होंने अपने अनुयायियों को रूद्राक्ष पहनने के आदेश दिये।
13. उन्होंने राम नाम का जप करना भी बताया।

दीक्षा की विधि :

इस पंथ में शिष्य बनाने की विधि इस प्रकार है –

सबसे पहले नये बनने वाले शिष्य के घर चौका पाटला करके दीप जलाया जाता है। इसके बाद उसके बाल काट कर उसका कान फूंका जाता है मन्त्रोचार किया जाता है। गुरू मन देने की इस प्रथा को "कान फुंकाई" संस्कार जाता है। एक या एक से अधिक रूद्राक्ष की माला व एक जनेऊ पहनाया जाता है। उसे गेरूआ वस्त्र पहनाया जाता है। उसके दाहिना हाथ को दागा जाता है तथा घर पर सफेद ध्वज फहराया जाता तै। गोविन्द गिर दीक्षा देते समय अपने अनुयायियों से केवल एक आना व एक पैसा लेते थे जबकि इसके पहले दीक्षा देने वाले एक रुपया चार आना लेते थे।

शरीर की स्वच्छता व वस्त्रों की सादगी :

गोविन्द गिर ने एक मनुष्य के शरीर को स्वच्छ रखने पर विशेष ध्यान दिया। वे चाहते थे कि उनके अनुयायी प्रति दिन शौच जाकर हाथ धोयें। उसके बाद स्नान करें। सादे गेरूआ वस्त्र पहने, मनुष्य बड़ी चोटी न रखें व जेवर न पहने। स्त्रियाँ लाख का चूड़ा न पहने। स्त्रियाँ मासिक धर्म के समय चूल्हा–चौके में प्रवेश न करें। प्रसूति में सवा मास तक स्त्रियाँ काम न करें।

नैतिकता के नियम :

गोविन्द गिर ने नैतिक नियमों के पालन पर विशेष जोर दिया। वे कहते थे कि जो बुरा करता है उसे उसका दण्ड भोगना पड़ता है। इसलिये उन्होंने अपने शिष्यों को पाप से दूर रहने की शिक्षा दी। इस सम्बन्ध में उनके द्वारा बताये गये नियम निम्नांकित है।

1. चोरी व धोखेबाजी न करें।
2. झूठ न बोलें।
3. पीठ पीछे बुराई न करें।
4. कत्ल व हिंसा के कार्य न करें।
5. व्याभिचार न करें।
6. झूठी गवाही न दें।

7. मदिरा का सेवन न करें।
8. गाय, सूअर व अन्य पशु–पक्षियों का माँस न खायें।
9. धूमपान न करें।
10. लालच न करें।
11. खतरनाक शस्त्रों को धारण न करें। केवल लोहे का चिमटा रखें।
12. माता–पिता की आता का पालन करें।
13. वे विश्व–बनाता के पोषक थे। उनके मत में सब मनुष्य भाई–भाई थे।

8.3.2 सामाजिक सुधार

गोविन्द गिर ने धार्मिक सुधार के साथ सामाजिक सुधार का कार्य भी किया। उन्होंनें भीलों में प्रचलित निम्नांकित कुप्रथाओं का विरोध किया :

1. उन्होंने कन्या कें विवाह के समय धन आदि देने का विरोध किया। भीलों में यह प्रथा "दापा" कहलाती है।
2. वे विधवा विवाह के समर्थक थे। उन्होंने स्वयं अपने भाई की विधवा से विवाह किया था।
3. वे बहु–विवाह के पक्ष में नहीं थे।

गोविन्द गिर ने ब्राह्मणों व राजपूतों में प्रचलित कुछ सामाजिक कुरीतियों की निन्दा की । उन्होने कहा कि आजकल सच्चा ब्राहाण देखने को नही मिलता है । जो भी जनेऊ पहन लेता है वह स्वंय को ब्राहाण मान लेता है। वे राजपूतों के समान पापी है जिसकी विधवाएं कुकर्म करती है क्योंकि राजपूत समाज में बाल विधवाओं को पुन: शादी करने कि अनुमति नही दी जाती है। उन्होनें उच्च जाति के हिन्दुओं कि आलोचना करते हुए खा कि वे नास्तिक हों गये है। उन्होनें मुसलमानों पर आरोप लगाया कि वे भी पथ भ्रष्ट हों चुके है। उनमें से कुछ ब्याज लेते है तथा सूअर का माँस खाते है जो उनके धर्म मई माना है।

वास्तव में उच्च जाति के हिन्दुओं विशेषकर राजपूतों तथा मुसलमानों के प्रति उनका आक्रोश इसलिए था कि वे भीलों का शोषण करते थे तथा इन तत्वों ने उन्हे तथा उनके अनुयायियों को तंग किया था। इसके अतिरिक्त वे भीलों में आत्म विश्वास की भावना जाग्रत करना चाहते थे।

8.3.3 आर्थिक कार्यक्रम

1. आमतौर पर भीलों के बारे में यह विश्वास था कि वे खेती के कार्यो में परिश्रम नही करते । अत: उन्होने भीलों को सलाह दी कि वे लगन और परिश्रम के साथ कृषि कार्यो में जूट जाए। इसके उन्होने कुएं खोदने व खेतों की मेडबंदी करने को कहा।
2. अपने अनुयायियों को बेगार (वेथ) न करने के आदेश दिये।
3. उन्होंने अपने शिष्यों को सलाह दी कि वे फिजूलखर्ची न करे तथा मुकदमेबाजी में न पड़े।
4. मानगढ़ से उन्होंने भीलों से बेगार लेने कम पर घास खरीदने तथा मकान बनाने के लिए लकड़ी न देने आदि प्रथाओं को समाप्त करने कि अपील की।

8.4 गोविन्द गिर के विरुद सामंतवादी तत्वों की वोरोधि प्रतिक्रिया के कारण

गोविन्द गिर की बढती हुई लोकप्रियता ने दक्षिण पश्चिमी राजपूताना और निकटवर्ती गुजरात के प्रदेशों के कुछ राज्यों के शासकों को चिन्तित कर दिया । गोविन्द गिर व उसके आन्दोलन का दमन का निश्चय किया । इसके लिए उन्होने ब्रिटिश सरकार की सैनिक सहायता भी ली। उन्होने इस सामाजिक व धार्मिक आन्दोलन को एक भील राज्य स्थापित करने की दिशा में गंभीर प्रयत्न माना । गोविन्द गिर व उसके आन्दोलन का दमन करने के निश्चय के पीछे अनेक करण थे।

8.4.1 भीलों का शोषण रोकने के प्रयत्न

उन्नीसवीं सदी में भीलों की दशा को सुधरने के लिए ब्रिटिश सरकार और देशी राज्यों के शासकों ने विशेष प्रयत्न नही किए । अंग्रेज़ अधिकारियों के निदेश पर देशी राज्यों के शासकों ने भीलों की स्वायत्ता के अधिकारों को सीमित करने का प्रयत्न किया । उन्हे शनै: शनै : स्थायी रूप से खेती करने के लिए विवश किया ज्ञ । उनसे अनेक प्रकार के ऐसे कर वसूल किए गये जो वे फले अदा नही करते थे । उन्हें वनों से लकड़ी व अन्य वस्तुएं संग्रहीत करने से रोका गया । उन्हे अपने उपयोग के लिए शराब बनाने से रोका गया । राज्य के अधिकारियों ने उनके साथ अन्यायपूर्ण बर्ताव किया । वे तथा जागीरदार उनसे बेगार लेते थे। समस्त भील प्रदेशों में सैनिक व पुलिस चोंकियाँ स्थापित की गयी। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में अकाल व सूखे के समय उन्हें पर्याप्त राहत नहीं पहुचाई गई। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी में भीलों की आर्थिक दशा फले की अपेक्षा अधिक बिगड़ गई। इससे उनमें असंतोष बढता ही गया । देशी राज्यों की सरकारों द्वारा उनकी स्वायत्तता के अधिकार सीमित करने के प्रयत्नों से भी वे असन्तुष्ट थे। गोबिन्द गिर ने इसके विरुद प्रचार किया।

8.4.2 डूंगरपुर, बाँसवाड़ा तथा प्रतापगढ के भीलों में असंतोष

बी.के. शर्मा के अनुसार उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मेवाड़ के भीलों9 को कुछ रियायतें दी गयी लेकिन ऐसी रियायतें इन राज्यों में रहने वाले भीलों को नही दी गयी। वे सोचने लगे कि विद्रोह करके अथवा उत्पात मचा कर वे ऐसी सुविधाएं प्राप्त कर सकते है।

8.4.3 भीलों में जाग्रति

दिसम्बर, 1913 में एजेन्ट टू दी गवर्नर जनरल इन राजपूताना ने भारत सरकार को सूचित किया कि दक्षिणी राजपूताना के भील भारत के अन्य प्रदेशों में हुई प्रगति से परिचित होकर अपने पिछड़ेपन से निकालने का प्रयास करने लगे है। इसके कुछ दिन फले मेवाड़ के रेजीडेन्ट ने उन्हें लिखा था कि गोविंद गिर की शिक्षाओं में भीलों को अपने समाज के पुनरुत्थान की संभावनाएं दिखाई देने लगी है। ऐसी संभावनाओं को देशी राजाओं सामंतों एवं उच्च अधिकारियों ने अपने अस्तित्व व विशेषाधिकारों के लिए खतरनाक माना । इससे अंग्रेज़ अधिकारी भी चिंतित हुए।

8.4.4 सामंतवादी व्यवस्था को चुनौती

मेवाड़ के तत्कालीन अंग्रेज़ रेजीडेन्ट काये (Kaye) के मत में गोविन्द गिर के आन्दोलन से राजपूत शासकों तथा सामंतों एवं अधिकारियों की आज्ञाओं का आँख मूंद कर पालन करने की परंपरा के भीलों द्वारा त्यागने की संभावनाएं बढ़ने लगी थी। भीलों के अब यह समझ आने लगा था कि उनके\आ शोषण किया जा रहा है। अत: सामंतवादी तत्व जो कि हमेशा से अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रहे है , सचेत हो गये तथा उन्होने समय रहते इस आन्दोलन को दबाने का प्रयत्न किया।

8.4.5 आर्थिक शोषण के विरुद प्रचार

गोविन्द गिर का उद्देश्य भीलों कि आर्थिक दशा सुधारना भी था। मानगढ़ से 14 नवम्बर 1913 को भेजे गये अपने संदेश में उन्होने भीलों के प्रति किये जा रहे अन्यायों को समाप्त करने बकी अपील की उन्होने बेगार प्रथा को बन्द करने तथा मनमाने लगान की वसूली को रोकने के लिये आवाज उठाई वे चाहते थे कि रेवाकांठा में राज्य के लिये काटी जाने वाली घास पर भीलों को उचित दर से पारिश्रमिक दिया जाये।। सभी राज्यों में लकड़ी काटने पर प्रतिबन्ध हटाये जायें तथा भीलों को मकान बनाने लिये राज्य की ओर से मुफ्त दी जाने वाली लकड़ी में वृद्धि की जाये। वनों से इकट्ठा किये जाने वाले फलों, पत्थर, चूना व कंकर पर लगाये गये करों की वसूली समाप्त जाये। सभी राज्यों में भीलों को समान दरों पर अफीम उपलब्ध कराई जाये। तकावीं ऋणों पर व्याज की वसूली का अंत किया जाये।

8.4.6 शराब–सेवन के विरूद्ध प्रचार से राज्यों को आर्थिक हानि

गोविन्द गिर के शिष्यों की संख्या में लगातार वृद्धि से अनेक देशों राज्यों में शराब की बिक्री से होने वाली आबकारी की आमदनी में काफी कमी आई। अक्टूबर, 1911 में बाँसवाड़ा के राज्य मे 18,470 गैलेन शराब की बिक्री हुई लेकिन अक्टूबर, 1912 में यह घट कर 5,154 गैलेन ही रह गई। कुशलगढ़ में 1912 –13 ईस्वी में शराब की बिक्री का ठेका इक्कीस हजार रुपये में दिया गया जबकि उसके पिछले साल इसे छियासी हजार रुपये में दिया गया था। संत रामपुर में एक महीने में छ : हजार रुपये की आय कम हो गई। इसी प्रकार अन्य राज्यों में 'भी शराब की बिक्री पर आबकारी की आमदनी में कमी आई होगी। जून, 1913 में बॉसवाड़ा के कामदार ने दक्षिणी राजपूताना के ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट को लिखा कि के आधार गर हमें गोविन्द गिर के अनुयायियों को परेशान नहीं करना चाहिए किन्तु में लगातार कमी होने के कारण हमें इस बारे में सोचना पड़ेगा। शराब की बिक्री में कमी होने से ठेकेदारों को भी नुकसान हुआ। अत : उन्होंने राज्यों के अधिकारियों पर गोविन्द गिर के आन्दोलन का दमन करने के लिये दबाव डाला होगा।

8.4.7 जागीरदारों और अधिकारियों के अत्याचार के विरूद्ध आवाज,

उस समय में जागीरदारों के पास अपनी पुलिस थी। राजपूताना में गवर्नर जनरल के एजेन्ट के अनुसार बाँसवाड़ा में, जहाँ राज्य का एक बड़ा भाग जागीरदारों के कब्जे में है, उनके तथा शासक के लिये यह संभव नहीं है कि वह इतनी शक्तिशाली पुलिस रखे जो कि समस्त राज्य पर आपत्ति के समय नियन्त्रण रख सके। ऐसी परिस्थितियों में जागीदार अपनी पुलिस द्वारा भीलों पर अत्याचार करते थे। इसके अतिरिक्त इस राज्य में जागीरदारों के पास अपने कृषकों के ऊपर असीमित फौजदारी तथा दीवानी अधिकार भी थे।

जागीरदारों के अतिरिक्त राज्यों के उन अधिकारी व उनके अधीनस्थ कर्मचारी तथा कामदार भी उन पर अत्याचार करते थे। इन सब तत्वों के विरूद्ध गोविंद गिर ने आवाज उठाई।

8.4.8 पाल पट्टा के ठाकुर के साथ भीलों का समझौता

1908 से 1910 तक गोविन्द गिर ईडर व संत रामपुर' के राज्यों कार्य करते रहे। बी के. शर्मा के अनुसार उन्होंने इन राज्यों के भीलों में जागृति पैदा की तथा ईडर राज्य की पाल पट्टा जागीर में भीलों का जन–आन्दोलन संगठित किया। इस आन्दोलन शक्ति को देखकर पात्र पट्टा के जागीरदार ने फरवरी, 1910 में एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। इसमें उसने भीलों की चौबीस माँगों को स्वीकार किया। उसने दोनों फसलों की कुल उपज का एक चौथाई भाग राजस्व के रूप में वसूल करने के स्थान गर मानसून की फसल की उपज का 1 / 5 शुद्ध भाग तथा ऊनालू फसल की उपज का 1 / 6 शुद्ध भाग लेना स्वीकार किया। तीन रुपये आठ आने के स्थान पर तीन रुपये चार आना की दर से प्रति 'हल ' वसूल करना माना। 'कन्या चोरी ' (Bride Tax) की दर प्रति कन्या 12 आना से छ : आना कर दी गई। प्रत्येक घर से 10 पौंड अनाज लेना बंद कर दिया गया। प्रत्येक मकान से 100 मन पक्की के स्थान पर 1 मन लेना निश्चित हुआ। नजराने की रकम कम की गई। कर की अदायगी में देरी होने के कारण भीलों को तंग नही किये, जाने का वचन दिया तथा इसके लिये पाल के मुखियाओं को जिम्मेवार ठहराने का निश्चय किया। ग्राम के मुखियाओं की उपस्थिति में कूता किया जायेगा। किसी भी मकान में आम व महुआ के पेड़ों के लिये कर नही लिया जायेगा। जब भी कभी किसी विशेष कार्य के लिये श्रमिकों को लगाया जायेगा तो उन्हें पारिश्रमिक दिया जायेगा। 10 सेर का एक मन होगा। जागीरदार ने अपने विरूद्ध ईडर के राजा को शिकायत करने वाले पाँच भीलों को भी माफ करने के लिये रजामंदी प्रकट की।

इस सफलता ने ईडर व आसपास के प्रदेशों के भीलों को अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाने के लिये प्रोत्साहित किया। इस प्रकार गोविन्द गिर के आन्दोलन में आर्थिक व राजनैतिक तत्वों का समावेश भी हो गया।

8.5 गोविन्द गिर व उसके अनुयायियों में असंतोष के कारण

8.5.1 गोविन्द गिर को परेशान किये जाने की घटनायें

गोविन्द गिर ने बताया है कि उन्हें अनेक राज्यों में परेशान किया गया। डूंगरपुर में उन्हे तीन दिनों के लिये कैद किया गया, उनके परिवार को पुलिस की निगरानी में रखा गया, उनकी सम्पत्ति व्यय की गई तथा उन राज्य से निष्कासित किया गया। उन्हें ईडर में कैद करने का प्रयत्न किया गया तथा निष्कासित किया गया। कुछ अन्य राज्यों ने उनके आगमन पर प्रतिबन्ध लगाया अथवा निष्कासित किया।

8.5.2 गोविन्द गिर के अनुयायियों पर अत्याचार

उनके अनुयायियों को भी अनेक प्रकार से परेशान किया गया। संत रामपुर के राजा में उनकी धुणियाँ नाट की गई तथा उनके साफे, चिमटे व तम्बूरे छीन लिये गये। उन्हें जबरदस्ती शराब पिलाई गई व माँस खिलाया गया। इस प्रकार का दुर्व्यवहार अन्य राज्यों में भी उनके अनुयायियों के साथ किया गया। अत : उनमें रोष फैल गया।

8.6 मानगढ़ का घेरा

8.6.1 मानगढ़ में बड़ी संख्या में भीलों का एकत्रित होना

गोविन्द गिर के मानगढ़ पहुँचने के बाद दिन प्रति दिन वहाँ पर भीलों की संख्या बढ़ने लगी। उस समय में मानगढ़ की पहाड़ी का कुछ भाग संत रामपुर तथा कुछ भाग की बाँसवाड़ा के अधीन था। यह स्थान भील प्रदेशों के केन्द्र में स्थित था। परम्पराओ के अनुसार प्राचीन में मानगढ़ भील राज्य का एक प्रमुख गढ़ था। महि नदी के तट पर स्थित यह पहाड़ी डूंगरपुर राज्य कि सीमा पर थी तथा यहां से बाँसवाड़ा, डूंगरपुर, रामपुर, ईडर और मध्य प्रदेश के भील इलाकों पर शीघ्रता के साथ पहुँचा जा सकता था। अत: बड़ी संख्या में वहाँ पर भीलों के एकत्रित होने से यह आंशका प्रकट हो गई कि मानगढ़ को केन्द्र बना कर गोविन्द गिर एक 'भील राज्य' स्थापित करना चाहता है।

8.6.2 छुटपुट घटनायें

गोविन्द गिर ने मानगढ़ पहुंचने के बाद कुछ छुटपुट घटनाओं ने स्थित को तनावपूर्ण बना दिया। बाँसवाड़ा के शासक के आवेदन पर 18 अक्टूबर कि पोलिटिकल एजेन्ट, सदरन स्टेट्स, राजपूताना ने रेवाकांठा के पोलिटिकल एजेन्ट को गोविन्द गिर को गिरफ्तार करने के लिए लिखा। 30 अक्टूबर को संत रामपुर कि गडरा चौकी बके पुलिस इंस्पेक्टर ने जमादार यूसूफ खाँ और सिपाही गुल मोहम्म्द को मानगढ़ भेजा। उन्हे वहाँ की हलचलों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के आदेश दिये गये। 31 अक्टूबर को वे दोनों मानगढ़ में भीलों से मिले। भीलों इने उन्हे कैद करके खूब पीटा। बाद में भीलों पर यह आरोप लगाया गया की पुलिस चौकी पर भीलों के एक हमले में दो भील मारे गये तथा राज्य के दो कर्मचारी गायब हो गये। अगले दिन मानगढ़ के

निकट प्रतापगढ़ अथवा खेडापाड़ा के छोटे किले पर भीलों ने असफल हमला किया। इसमे सत्रह भील मारे गये नवंबर, 1913 को संत रामपुर के सैनिक की मदद के लिए रेवाकांठा एजेंसी के 33 पुलिस जवान मानगढ़ की तलहटी में आ गये। 3 नवम्बर को भीलों ने भामरी गाँव को लूटा क्योंकि वहाँ के मुखिया ने मानगढ़ के भीलों को मदद देने से इंकार किया था।

8.6.3 घेरे की तैयारियां

संत रामपुर के शासक ने रेवाकांठा के पोलिटिकल एजेन्ट से सहायता माँगी। बाँसवाड़ा के शासक ने सदरन राजपूताना के पोलिटिकल एजेन्ट को गोविन्द गिर को गिरफ्तार करने तथा मानगढ़ से भीलों को तितर बितर करने के लिए लिखा। 18 अक्टूबर 1913 को कुशलगढ़ के कामदार ने भीलों द्वार विद्रोह करने की संभावना प्रकट की। शीघ्र ही जिला मजिस्ट्रेट, पंचमहाल ने अपने इलाके के डिप्टी'कलेक्टर को झालोद भेजा तथा एक घुडसवार दस्ते को संत रामपुर व बाँसवाड़ा की सीमाओं पर गश्त लगाने के लिए तैनात किया।

रेवाकांठा बीवीं दक्षिण राजपूताना के राज्यों के पोलिटिकल एजेन्टों ने संत रामपुर व बाँसवाड़ा के राज्यों की मदद करने के लिए निकटवर्ती प्रदेशों से सेनाएं बुलाई। रेवाकांठा पोलिटिकल एजेन्टों ने बम्बई सरकार को बडौदा में मशीनगनों से लैस एक अंग्रेजी दस्ते को तैयार रखने का आग्रह किया। महू छावनी के अंग्रेजी सेना के कमांडर को भी तैयार रहने के आदेश दिये गये खेरवाड़ा के कमिश्नर बेरो (Barrow) भी शीघ्र मानगढ़ पहुँच गए बाँसवाड़ा के युवराज पृथ्वी सिंह व गढी के राव साहिब भी अपने सैनिक दस्तों के साथ मानगढ़ पहुँचा गये संत रामपुर का सैनिक दस्ता पहले से ही वहां उपस्थित था।

8.6.4 घटनायें

11 नवम्बर 1913 तक ये सब सैनिक दस्ते मानगढ़ पहुंचा गये थे। 12 नवम्बर को मानगढ़ में भीलों की संखा चार हजार के लगभग आंकी गई । इस दिन एक अंग्रेज़ सैनिक अधिकारी हेमिल्टन मई भीलों के दो प्रतिनिधियों से बातचीत की।

इसी दिन गोविन्द गिर ने रेवाकांठा के पोलिटिकल एजेन्ट को जो मानगढ़ की तलहटी मई उपस्थित था एक लिखित संदेश भेजा इस संदेश में उसने यह दावा किया कि वह एक धार्मिक व सामाजिक सुधारक था। डूंगरपुर व ईडर आदि राज्यों में उसका तथा उसके अनुयायियों को तंग किया जाने के कारण उन्होने मानगढ़ मे शरण ली थी गोविन्द गिर ने अपने कुछ शिकायते दूर करने तथा भीलों के प्रति हो रहे अन्यायों के प्रतिकार के लिये भी कार्यवाही करने के लिये निवेदन किया उसने खा कि वह और उसके अनुयायी अपने मत का पालन करना चाहते हैं । अंग्रेजों को महान एवं मानव मात्र का रक्षक बताते हुये गोविन्द गिर ने अपील कि वे स्थिति के सुधारने लेकिन उसके साथ ही यह चेतावनी भी दी कि यदि ऐसा ना किया गया गया तो स्थिति के बिगड़ जाने कि संभावना है

यद्यपि अंग्रेज़ अधिकारियों ने गोविन्द गिर को एक सच्चा साधु माना और कुछ समय बाद संत रामपुर व अन्य राज्यों मे भीलों के शोषण कि प्रक्रिया कि जांच कि लेकिन उस समय उसका मुख्य उद्देश्य मानगढ़ को भीलों से खाली करवाकर उनके विद्रोह कि संभावना को मिटाना

था अत: उन्होंने तीन दी के भीतर मानगढ़ खाली करने कि चेतावनी गोविन्द गिर व उसके साथियों को दी। इसके साथ साथ उन्हे यह आश्वासन भी दिया कि उनके शांतिपूर्वक अपने घरों को जाने देने में कोई बाधा उपस्थित नही की जायेगी।

13 नवम्बर को अंग्रेज़ों को यह सूचना मिली कि बाँसवाड़ा, डूंगरपुर, कुशलगढ़, संत रामपुर, ईडर, बारिया आदि राज्यों के कुछ स्थानों पर भीलों ने उपद्रव आरंभ कर दिये है। अत एवं उन्होने गोविन्द गिर को सूचित किया कि यदि 14 नवम्बर की शाम तक समझौता नही हुआ तो अगले दिन भीलों से मानगढ़ खाली करा लिया जायेगा।

इस शाम को उन्हें गोविन्द गिर बका एक लिखित संदेश प्राप्त हुआ। इस संदेश में उसने यह कहा कि एक भील राज्य स्थापित करने का उसका तनिक भी इरादा नही है। एक बार फिर अंग्रेजों कि महानता और न्याय प्रियता की दुहाई देते हुए गोबिन्द गिर ने सारे मामले की निष्पक्ष जाँच करने की माँग की। उसने पुन: यह कहा कि वे और उसके बात पर विश्वास न करते हुए भीलों पर आरोप लगाया कि वे मानगढ़ में विद्रोह के लिए सशस्त्र तैयारियों कर रहे है। अत: उनका मानगढ़ खाली करना आवश्यक है। इसके साथ ही उन्होने यह आश्वासन दिया कि वे सबंधित राज्यों को निर्देश देंगे कि वे भीलों को तंग न करे।

यदपि चौदह नवम्बर की सहम को मानगढ़ पर कब्जा करने का निश्चय किया गया था लेकिन उसके पहले मानगढ़ का घेरा डालने वाले अंग्रेज़ अधिकारियों को भारत सरकार का आदेश मिला की वे आक्रमण करने के पहले सभी संभव तरीके से भीलों को वहाँ से जाने के लिए राजी कर ले इसके उत्तर में भारत सरकार को सूचित किया गया की वे ऐसे प्रयत्न कर चुके है तथा उन्हें कम से कम बल प्रयोग के साथ. को खाली कराने की अनुमति दी जाये। 16 नवम्बर को वायसराय ने उसे ऐसा करने अनुमति दे दी।

17 नवम्बर की रात को अंग्रेजी सेना व देश। राज्यों के सैनिक दस्तों ने मानगढ़ पर हमला किया। बंदूकों व मशीनगनों का प्रयोग करते हुए ये सैनिक दस्ते ' आगे बढ़ते गये। शीघ्र ही एक बड़ी संख्या में भीलों ने आत्म समर्पण किया। गोविन्द व उसके ' 900 अनुयायियों को गिरफ्तार किया गया।

अंग्रेज अधिकारियों के अनुसार इस अभियान में लगभग 100 भील मारे लेकिन आधुनिक अनुसंधान के आधार पर यत्न माना जाता है कि इसमें लगभग तीन व्यक्ति ,.मारे गये। इसके बाद अपने स्थानों को लौटते समय विभिन्न सैनिक दस्तों ने इलाकों में आतंक मचाया।

8.7 गोविन्द गिर व उसके साथियों पर मुकदमा

गोविन्द गिर उनके प्रमुख शिष्य गूंजा तथा अन्य अनुयायियों पर मुकदमें की जाँच करने के लिये दो अंग्रेज अधिकारियों की एक विशेष अदालत गठित की। मानगढ़ में गिरफ्तार किये गये केवल तीस व्यक्तियों पर मुक्दमा चलाया गया तथा शेष को छोड़ दिया गया। मुकदमें की सुनवाई संत रामपुर में की गई। गोविन्द गिर ने अपने अनुयायियों की कार्यवाहियों की जिम्मेवारी लेते हुए अदालत का ध्यान मानगढ़ से भेजे अपने दो संदेशों की ओर आकर्षित किया। पुजा व अन्य अभियुक्तों ने कहा कि, गिर ने मानगढ़ में उनको बलपूर्वक रोका था।

अदालत ने अपने फैसले में उनकी बात को स्वीकार नहीं किया। उसने गोविन्द गिर और पुजा को संत रामपुर और बांसवाड़ा, विरूद्ध संघर्ष करने का दोषी माना। गोविन्द गिर को फाँसी, पूजा को आजीवन कारावास अन्य को तीन–तीन साल के कठोर कारावास की राजा टी गई।

गोविन्द गिर ने मौत की सजा के विरूद्ध अपील की। इस अपील में उसने यह बताया कि उसको यह कह कर मानगढ़ बुलाया गया था कि वहां पर "दापा" के विरुद्ध प्रस्ताव पारित किया जायेगा लेकिन मानगढ़ आने पर उसे यह बताया गया कि भीलों का इरादा एक राज्य स्थापित करने का है और उसको इसका नेता बनाया गया है। उसे समर्थन करनें कें लिये बाध्य भी किया गया। पुजा ने अपनी अपील में यह दोहराया कि उसे गोविन्द गिर ने मानगढ़ जाने से रोका। अन्य अभियुक्तों ने भी यही बात कही। लेकिन नोदर्न डिवींजन के कमिश्नर बैरो ने, जिन्होंने इस अपील की सुनवाई की थी यह माना कि आरंभ में गोविन्द गिर का उद्देश्य भीलों की उन्नति करना था लेकिन ज्यों–ज्यों वह लोकप्रिय होता गया त्यों–त्यों उसकी महत्वाकांक्षाएं बढ़ती गई। उसने सहस्त्रों की संख्या में मानगढ़ में भील एकत्रित किये। वहाँ आने वाले भील शस्त्र धारण करके आये थे तथा उन्होंने मानगढ़ की किलेबंदी भी की थी। गोविन्द गिर ने अपने संदेशों में ऐसी माँगें रखी उद्देश्य राज्यों की शासन पद्धति में परिवर्तन लाना था। अत : उसने गोविन्द गिर को मानते हुए फाँसी के स्थान पर आजीवन कारावास की सजा दी। पुजा की सजा की पुष्टि की गई। शेष की सजा तीन वर्ष के स्थान पर छ : महीने की कर दी गई।

गोविन्द गिर की सजा के मामले में बम्बई के गवर्नर ने वायसराय को इसे कम करने की सिफारिश की। वायसराय ने गोविन्द गिर को दस वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी। वास्तव में गोविन्द गिर को दी गई सजा में कमी करने का कारण भीलों में उसकी लोकप्रियता थी। ब्रिटिश सरकार को यh आशंका थी कि उसे कठोर सजा देने पर भीलों में व्यापक असंतोष फैलेगा और स्थिति को नियंत्रित रखने में कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा।

8.8 विद्रोह का स्वरूप

बाँसवाड़ा व संत रामपुर के तत्कालीन शासकों ने गोविन्द गिर के आन्दोलन को एक विद्रोह की संज्ञा दी तथा उसे दबाने के लिए अंग्रेजों की सहायता प्राप्त की। गोविन्द गिर व उसके साथियों का मुकदमा सुनने वाली विशेष अदालत ने उसे इसके लिये दोषी ठहराया किन्तु यह नहीं माना कि उसने अगले अनुयायियों को मानगढ़ पर जबरदस्ती रोक कर रखा। बैरो ने उसे दोषी मानने के साथ–साथ कुछ शिष्यों को बलात् रोकने का अपराधी भी पाया। लेकिन गोविन्द गिर ने अंग्रेज अधिकारियों को भेजे गये संदेशों तथा अपने बयानों व अपील में स्वयं को निर्दोष बनाया तथा अगले कुछ अनुयायियों को भील राज्य स्थापित करने के लिये मानगढ़ पर बड़ी संख्या में भीलों को इकट्ठा करने के लिये जिम्मेवार ठहराया। इन परिस्थितियों में यह माना जा सकता है कि उसके कुछ उत्साही अनुयायियों में भील राज्य स्थापित करने की आकांक्षाएं जागृत हुई हो तथा मानगढ़ पहुँचने के बाद गोविन्द गिर में भी या तो ऐसी महत्वाकांक्षा जागृत हुई हो अथवा वह अपने शिष्यों की आकांक्षाओं को दबाने में सफल नहीं हुआ हो।

बागड़ व निकटवर्ती गुजरात के क्षेत्रों में यह माना जाता है कि गोविन्द गिर ने विद्रोह किया था तथा उनका उदेश्य 'भील राज्य' की स्थापना करना था। अनेक आधुनिक इतिहासकार भी इस मत का समर्थन करते है। भगवती लाल जैन तथा बृज किशोर शर्मा ने इस मत को स्वीकार किया है। बृज किशोर शर्मा के अनुसार गोविन्द गिर व उसके अनुयायियों को जिस प्रकार की परेशानियों का सामना करना पड़ा उन परेशानियों ने उन्हें भील राजा स्थापित करने तथा भीलों को सामन्तवाद और उपनिवेशवाद के चंगुल से मुक्त करने के लिये बाध्य किया। कुंवर सुरेश सिंह का मत है कि संत रामपुर के राज्य के विरूद्ध गोविन्द गिर की माँगें राजनीतिक उद्देश्य से अवश्य प्रेरित थी लेकिन इसके कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है कि उसने राजपूत राज्यों की सत्ता को चुनौती दी और एक 'भील राज्य' की स्थापना करने की योजना बनाई। लेकिन गोविन्द गिर द्वारा की गई अपील से यह स्पष्ट है कि मानगढ़ में इस प्रकार की योजना को मूर्त रूप देने का प्रयत्न किया गया था। गोविन्द गिर के अनुसार मानगढ़ पहुँचने के बाद उन्हें इस बारे में मालूम हो गया था लेकिन वे आपने अनुयायियों को रोक नहीं सके। अन्त में यह कहा जा सकता है कि या तो गोविन्द गिर ने अथवा उनके अनुयायियों ने विद्रोह की योजना अवश्य बनाई थी।

8.9 भारत की अन्य जनजातियों के आन्दोलनों से गोविन्द गिर के आन्दोलन की भिन्नताएं

ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना से लेकर उन्नीसवीं सदी के अन्त तक अंग्रेजों के विरूद्ध अनेक जन–जातियों ने विद्रोह किये। इन विद्रोहों में तथा गोविन्द गिर के आन्दोलन में कुछ भिन्नताएं है। आमतोर पर उन्नीसवीं सदी के जन–जाति आन्दोलनों में हिंसा की व्यापक घटनायें हुई लेकिन इसमें हिंसा का प्रयोग नहीं किया गया। इस सम्बन्ध मानगढ़ में एकत्रित भीलों पर केवल यही आरोप है कि उन्होंने सिपाही गुल मोहम्मद की हत्या की। भूमिज व संथाल विद्रोहों के नेताओं एवं बिरसा मुंडा के समान गोविन्द ने स्वयं को एक मसीहा अथवा चमत्कारिक व्यक्ति होने का दावा नहीं किया। यह बात है कि उसके अनुयायी उसे एक चमत्कारिक पुरुष मानने लगे थे। कई अन्य जनजाति आन्दोलनों तथा खेरवार आन्दोलन के कुछ प्रवर्तकों के समान गोविन्द गिर ने स्वयं को शासक नहीं बताया। वह ऐसा पहला जनजाति नेता था जिसने सामाजिक व धार्मिक सुधार के साथ एक ठोस आर्थिक कार्यक्रम को अपनाने के लिये शिष्यों को प्रेरित किया। उसने कई अन्य जन–जाति नेताओं के समान अपने अनुयायियों को यह विश्वास नहीं दिलाया कि शीघ्र ही वे प्राचीन काल का गौरव पुन: प्राप्त करेंगे।

8.10 प्रभाव

इस आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य भीलों के सामाजिक एंव धार्मिक सुधार के साथ उनके आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाना था। यद्पि इसे बलपूर्वक दबाया गया किन्तु इसके भील समाज पर व्यापक प्रभाव पड़े।

8.10.1 भीलों में आत्मविश्वास व आत्मसम्मान की भावना

गोविन्द गिर के उपदेशों ने भीलों में आत्म–विश्वास व आत्म–सम्मान की भावना जागृत की। गोविन्द गिर ने उन्हें यह शिक्षा दी कि अन्य मनुष्यों के समान उन्हें भी जीने का पूरा अधिकार है। गोविन्द गिर के अनुयायी, जो कि "भगत" कहे जाते थे, समान पूर्वक जीवन व्यतीत करते थे।

8.10.2 संगठन की भावना

गोविन्द गिर व उसके अनुयायियों ने अनेक स्थानों पर धुणियां स्थापित की। वे इन धुणियों पर एकत्रित होकर आहुति देते, सांस्कृतिक समारोह मनाते, तथा समस्याओं के समाधान के तरीकों पर विचार करते। आध्यात्मिक एकता से प्रेरित होकर व प्रेम एवं भाई चारे का संदेश दूसरों को पहुँचाते। इन सभाओं, जिन्हें उनके अनुयायी "सभाओं" के नाम से जानते थे, के माध्यम से गोविन्द गिर के अनुयायियों ने भीलों में एकता व संगठन की भावना का विकास किया।

8.10.3 सामाजिक प्रभाव

1. **रहन– सहन में परिवर्तन** – मावजी, सूरमाल दास एवं गोविन्द गिर के अनुयायियों ने अपने रहन–सहन में परिवर्तन किया। वे सफेद, भगवा अथवा हल्के लाल कपड़े पहनने लगे क्योंकि ये सादगी व नैतिकता के प्रतीक है। प्रतिदिन स्नान कर स्वच्छ वस्त्र पहनना एक 'भगत' के लिये अनिवार्य था। वे बड़ी–बड़ी चोटियां नहीं रखते था, लेकिन पँचकेशी दाढ़ी रखते थे। गोविन्द गिर के अनुयायी भगवा फेंटा पहनते तथा रूद्राक्ष की माला धारण करते। हिन्दू महिलाओं के समान भगत स्त्रियाँ साड़ी पहनती तथा पीतल की भारी पैजनियों के स्थान पर हल्के चाँदी के कड़े पहनती। उन्होंने लाख का चूड़ा पहनना बन्द कर दिया। मासिक धर्म होने पर उनकी स्त्रियाँ पाँच दिन तक चूल्हे चौके में प्रवेश नहीं करती।
2. **कुप्रथाओं का विरोध** – गोविन्द गिर के अनुयायी 'दापा', 'नात्रा' व 'देवर–वात' तथा बहु–विवाह की प्रथाओं का विरोध करते थे। वे विधवा विवाह के समर्थक थे। पराई स्त्री से सम्पर्क रखना उचित नहीं मानते थे। उनके विवाह सम्बन्धी रीति रिवाजों में भी परिवर्तन आये। गोविन्द गिर ने राजपूतों में प्रचलित कन्या–वध की प्रथा को निन्दनीय बताया।
3. **हिन्दू समाज मे सम्मान** – गोविन्द गिर ने अपने शिष्यों को उपदेश दिया कि वे हिन्दुओं के उच्च वर्गों के समान जीवन–चर्या रखें। भगत भीलों के स्वच्छ आचरण व नैतिकता के पालन के कारण हिन्दु समाज फिर से भीलों को सम्मान की दृष्टि से देखने लगा।
4. **समाज सुधार की भावना** – गोविन्द गिर के अनुयायियों में समाज सुधार की भावना जागृत हुई। उन्होंने न केवल सामाजिक कुप्रथाओं का निषेध किया अपितु भीलों में उनके अन्त के लिये भी कार्य किया। कुछ समय बाद "भगत" भीलों ने छुआछूत की भावना का विरोध किया।

5. **अपराधों की संख्या में कमी** – गोविन्द गिर के आदेशों का पालन करते हुए भीलों ने चोरी करना, लूटमार करना व डाके डालना बंद कर दिया। अंग्रेज अधिकारियों ने यह माना कि भील प्रदेशों में अपराधी की संख्या में कमी हुई थी।
6. **शिक्षा का प्रसार** – भगत भीलों में शिक्षा का प्रसार हुआ। उन्होंने भीलों को शिक्षित करने के लिये अभियान चलाये।
7. **विभिन्न सामाजिक वर्गों का उदय** – अठारहवीं सदी से आरम्भ हुए 'भगत' आन्दोलनों ने इस प्रदेश के भीलों को अनेक सामाजिक वर्गो में बाँट दिया। भगत भीलों का एक नया सामाजिक वर्ग बना। इनके रहन–सहन व आचार विचार सामान्य भीलों से भिन्न है। वे गैर–भगत भीलों के साथ खान–पान का व्यवहार भी नहीं रखते। आम तौर पर इन दोनों वर्गों में आपस में वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित नहीं होते तथा वे एक दूसरे के समारोहों में भाग नहीं लेते। इसके अतिरिक्त भगत भीलों में अपने–अपने वर्ग थे। मावजी, सूरमाल दास, गोविन्द गिर के अनुयायियों का अपना–अपना वर्ग था। कबीर पंथियों व कामडिया (दसनामी) पंथियों का अपना अलग वर्ग था। इन विभिन्न वर्गो के गठन ने इस प्रदेश के भीलों में कुछ हद तक अलगाव की भावना उत्पन्न हुई लेकिन 'भगत' भीलों के विभिन्न समुदायों ने समस्त भीलों की समस्याओं का समाधान करने तथा अलगाव की भावना को यथा संभव कम करने का प्रयत्न किया।
8. **समाज के परम्परागत अधिष्ठाताओं के अधिकारों में कमी** – 'भगत' भीलों ने पाट–भोपा व भोपा आदि को मान्यता न देकर समाज में उनके प्रभाव को कम किया। उन्होंने समाज के परम्परागत नेताओं व गाँवों की पंचायतों के अधिकारों को स्वीकार नहीं किया। कतिपय मामलों में ये पंचायतें अपराधियों को कुछ शराब की बोतलें व कुछ मुर्गियाँ अर्पित करने का आदेश देती थी। इस प्रकार की सजा 'भगत' भीलों को मान्य नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में वे अपनी धुणियों इस प्रकार के मामलों का निबटारा करते है।

8.10.4 धार्मिक

1. **भक्ति मत का प्रसार** – मावजी व सूरमाल दास के बाद गोविन्द गिर ने भीलों में भक्ति मत का प्रचार किया। उनके द्वारा तथा बाद में स्थापित धुणियों में 'भगत' नवरात्रि, बैशाखी पूर्णिमा तथा अन्य अवसरों पर भजन मंडलियों रात्रि जागरण का आयोजन करते। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उन्होंने भजनों की रचना की। उन्होंने भीलों को राम नाम का जप करना सिखाया।
2. **दार्शनिक विचारों की महत्ता** – एकेश्वरवाद पर जोर देने हुये गोविन्द गिर ने अनेक देवीं देवताओं की आराधना को व्यर्थ बताया। जीवन को क्षणभंगुर माना। उनके उपदेशों में अच्छे कर्म करने पर अधिक जोर दिया क्योंकि इसके बिना किसी को मुक्ति नहीं मिल सकती।।
3. **अंधविश्वासों का विरोध** – उस समय भील समाज में अनेक अंध विश्वास प्रचलित थे। भूत–प्रेतों व जादूगरनियों में भील विश्वास करते थे इन्हें दूर रखने के लिये भोपा मंत्र आदि पढ़ कर भीलों को वश में रखते थे।। गोविन्द गिर ने इन सब का विरोध किया।।

4. **मूर्ति पूजा का विरोध** – गोविन्द गिर ने मूर्ति पूजा का विरोध किया।
5. **धुणियों पर हवन** – गोविन्द गिर के समय में अनेक स्थानों पर धुणियाँ स्थापित की गई। उस समय से लेकर आज तक जिस क्षेत्र में लगभग सौ भगत होते हैं वहाँ पर एक धुणी बनाई जाती है। इन धुणियों पर हवन किया जाता है तथा भजन गाये जाते हैं। इन स्थानों पर सामाजिक व सांस्कृतिक भी होते है।
6. **हिन्दू धर्म से निकटता** – गोविन्द गिर की शिक्षाऔं के प्रतिमान ब्राह्मण संस्कृति पर आधारित थे। उन पर मीरा व कबीर का प्रभाव था। वे शैव मत के अनुयायी भी थे। जैन धर्म के कुछ सिद्धान्तों को उन्होंने अपनाया था। आर्य समाज के नियमों से भी वे प्रभावित थे। अत उनका पंथ हिंदू धर्म के निकट था। गोविन्द गिर स्वयं यह मानते थे कि उनके अनुयायी हिन्दू धर्मावलम्बी हैं। मई, 1927 में जालोद से गोविन्द गिर ने अपने एक पत्र में बाँसवाड़ा के शासक को लिखा कि 1913 ईस्वी में मानगढ़ की घटना में भाग लेने वाले भील अज्ञानी थे। किन्तु आजकल उनमें से अधिकाँश हिन्दू धर्मावलम्बी है। 941 ईस्वी की जनगणना में बांसवाड़ा के अधिकांश भीलों ने स्वयं को हिन्दु धर्म का अनुयायी बताया था।
7. **परम्परागत धार्मिक व्यवस्था पर आघात** – 'भगत' भीलों ने अपने समाज के परम्परागत धार्मिक विश्वासों को त्याग दिया। उन्होंने विभिन्न के भोपाओं के कार्यो को मान्यता नहीं दी। इस प्रकार 'भगत' आन्दोलन के से सदियों से चली आई धार्मिक व्यवस्था को आघात पहुँचा। आर. एस. मान मत में 'भगत' आन्दोलन के प्रवर्तकों ने भीलों की प्राचीन व्यवस्था का अन्त करने विशेष उत्साह का प्रदर्शन नहीं किया लेकिन उन्होंने उस व्यवस्था की कुछ आधारभूत प्रथाओं पर आघात किया।
8. **ईसाई मत के प्रचार में कमी** – उनका आन्दोलन ईसाई धर्म प्रचारकों के धर्म परिवर्तन के कार्यों में बाधक बना। 1913 ईस्वी में मानगढ़ में विद्रोह के समय एक फ्रांसीसी धर्म प्रचारक ने लिखा कि गोविन्द गिर का प्रमुख उद्देश्य राज्य के विरूद्ध विद्रोह की भावना को फैलाना है। बाद में भगत भीलों में शिक्षा के प्रचार से भी भीलों में ईसाई मत स्वीकार करने वालों की संख्या में कमी आई।

8.10.5 आर्थिक

1. **भीलों की कृषि कार्य में रूचि** – गोविन्द गिर के अनुयायियों ने कृषि कार्य में पहले की अपेक्षा अधिक रूचि ली। कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिये खेतों की मेड़बंदी की व कुएं खुदवाये। इससे उनके जीवन में स्थायित्व आया तथा वे स्वालम्बन की ओर बढ़े।
2. **आर्थिक शोषण के विरूद्ध आवाज** – गोविन्द गिर ने भीलों के आर्थिक शोषण को समाप्त करने के लिये माँगें रखी तथा अंग्रेज अधिकारियों ने "बेगार" सम्बन्धी माँग के औचित्य को स्वीकार करते हुए बाँसवाड़ा के कामदार को लिखा कि भीलों से बेगार न ली जाये। लेकिन उन्होंने इस और विशेष कदम नहीं उठाये। रेवाकांठा के पोलिटिकल एजेन्ट ने बम्बई सरकार को लिखा कि यह प्रथा सदियों से चली आ रही है और इसको समाप्त करने के लिये दबाव नहीं डाला जा सकता क्योंकि ऐसा करने से देशी राज्यों में रोष उत्पन्न होगा। गोविन्द गिर

की अन्य माँगों को उन्होंने काल्पनिक माना। इस प्रकार अंग्रेज अधिकारियों द्वारा की गई जाँच पड़ताल का कोई प्रभाव नहीं पड़ा किन्तु इस समय से भीलों में आर्थिक शोषण के विरूद्ध भावना जागृत हो गई। आर्थिक क्षेत्र में गोविन्द गिर के विचार बिरसा मुंडा से भिन्न थे।

बिरसा ने अपने अनुयायियों को खेती न करने के आदेश दिये थे लेकिन गोविन्द गिर ने वास्तविक स्थिति का सही मूल्यांकन करके अपने अनुयायियों को लगन व परिश्रम के साथ कृषि कार्यों में जुट जाने की सलाह दी थी।

8.10.6 राजनैतिक

1. **देशी राज्यों पर तत्कालीन प्रभाव** – गोविन्द गिर के आन्दोलन को दबाने में असफल रहने के कारण प्रतापगढ़ के शासक को गद्दी से उतार दिया गया। डूंगरपुर के अल्पव्यस्क शासक को पढ़ने के लिये मेयो कॉलेज अजमेर भेज दिया गया तथा वहाँ का शासन एक रीजेंसी कौंसिल को सौंप दिया गया। इस समय बांसवाड़ा में महारावल शंभु सिंह व उसके पुत्र पृथ्वी सिंह में नहीं बनती थी। यह समझा जाता था कि शंभु सिंह गोविन्द गिर के प्रति सहानुभूति रखता है लेकिन पृथ्वी सिंह ने मानगढ़ के घेरे में अंग्रेजों की मदद की थी। अत : शंभु सिंह के स्थान पर पृथ्वी सिंह को शासक बनाया गया।
2. **अंग्रेज अधिकारियों का भीलों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया** – अंग्रेज अधिकारियों ने गोविन्द गिर की लोकप्रियता का सही अनुमान लगा लिया था। वे नहीं चाहते थे कि भीलों में व्याप्त असंतोष एक विस्फोटक स्थिति में पहुँच जाये और उससे निपटना कठिन हो जाये। उनके मत में इस आन्दोलन से भीलों में शराब पीने में कमी आई थी और उनके आचरण में सुधार हुआ था। वे आशा करते थे कि इससे अपराधों में कमी होगी तथा वे शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए कृषि कार्य में संलग्न रहेंगे। अतएव उनके इस आन्दोलन के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाया। 19 मार्च, 1914 के अपने पत्र में मेजर हेमिल्टन ने बाँसवाड़ा राज्य के कामदार को 'भगत' आन्दोलन को बनाये रखने की सलाह दी। उसने लिखा कि शराब खरीदने अथवा माँस खाने के लिये भीलों पर दबाव न डाला जाये। उनसे बेगार न ली जाये तथा उनके धार्मिक स्थानों में राज्य के अधिकारी व जागीरदार हस्तक्षेप न करें। यदि ऐसा नहीं किया गया तो 1913 को मानगढ़ घटना की पुनरावृति हो सकती है। गोविन्द गिर की मृत्यु तक पंचमहाल क्षेत्र के अंग्रेज अधिकारियों का रवैया भी 'भगत' भीलों के प्रति। बना रहा। लेकिन राजपूत राज्यों ने अंग्रेजों की सलाह को न माना।
3. **राजपूत शासकों द्वारा 'भगत' भीलों का दमन** – अनेक राजपूत शासकों ने अंग्रेजों की सलाह को न मानकर 'भगत' भीलों के प्रति नीति अपनाई 'भगत' भीलों के बढ़ते हुए प्रभाव को वे शंका व भय की से देखते रहे। 1927–31 में बाँसवाड़ा राज्य के दीवान की आज्ञा से राज्य में 'भगत' भीलों को बलपूर्वक शराब पिलाने तथा माँस खिलाने का अभियान तहसीलदारों तथा पुलिस अधिकारियों के नेतृत्व में हुआ। 'भगत' भीलों व अन्य में तनाव बढ़ाने के प्रयत्न किये गये। इसमें उन्हें कुछ हद तक सफलता भी मिली क्योंकि 'भगत'

भीलों व अन्य भीलों के यहाँ के आचार–विचार में काफी भिन्नता थी। लेकिन राजपूत शासक 'भगत' भीलों को अपने पंथ से विमुख न कर सके। 1945 के प्रजामण्डलों के आन्दोलन आरम्भ होने के समय जब राजपूत शासकों का ध्यान 'भगत' आन्दोलन से हटा तो 'भगत' भीलों तथा अन्य भीलों के बीच तनाव लगभग समाप्त हो गया तथा दोनों ने मिलकर प्रजामण्डलों के आन्दोलनों में भाग लिया। अतएव 'भगत' आन्दोलनों से भीलों में अलगाव उत्पन्न नहीं हुआ और उनमें शोषण के विरूद्ध संगठित होकर आन्दोलन करने की शक्ति समाप्त नहीं हुई।

4. **'भगत' भीलों का जन–आन्दोलन में भाग –** समय के साथ–साथ 'भगत' भील अपने–अपने प्रदेशों के सामाजिक जीवन में विशिष्ट वर्ग के रूप में उभर कर आये। 1907 व 1931 ईस्वी के मध्य बाँसवाड़ा, कुशलगढ़, दोहद।, लिम्बडी, बेला, रोजड़ा बेडसा, बरसोड, केरथ आदि क्षेत्रों में इस आन्दोलन की लोकप्रियता बढ़ी लेकिन डूंगरपुर में उसे इतनी सफलता नहीं मिली। जिन इलाकों में यह आन्दोलन सशक्त हुआ उनमें भगत भीलों ने जन आन्दोलनों में भाग लिया। उन्होंने अनेक नेताओं को जो कि भीलों की दशा सुधारने के लिये कार्य कर रहे थे, अपना सहयोग प्रदान किया। 1934–37 में मेवाड़ के जन आन्दोलन के एक प्रमुख नेता को अपने निर्वासन काल में डूंगरपुर में भीलों के लिये किये गये रचनात्मक कार्य में भगतों का पूर्ण सहयोग मिला। बाद में बागड़ सेवा मंदिर के कार्यो में भी भगतों ने अपनी सेवाएं अर्पित की। 1945 से 1948 की अवधि में भगत भीलों ने बाँसवाड़ा राज्य प्रजामंडल के नेतृत्व में बेगार तथा जागीरदारों के शोषण के विरूद्ध चलाये गये आन्दोलनों में भाग लिया।

8.11अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गोविन्द गिर के आन्दोलन के कारणों और प्रभावों की विवेचना कीजिये।

   उत्तर – देखें भाग 9.4,9.5 और 9.10

2. गोविन्द गिर के सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र में सुधार के लिये प्रकट किये गये विचारों को रेखांकित कीजिये। उसके आन्दोलन के स्वरूप की विवेचना कीजिए।

   उत्तर – देखें भाग 9.2 और 9.8

3. गोविन्द गिर व उसके अनुयायियों के प्रति सामंतवादी तत्वों की विरोधी प्रतिक्रिया के कारणों का विश्लेषण कीजिए। क्या गोविन्द गिर एक 'भील राज्य' स्थापित करना चाहते थे?

   उत्तर – देखें भाग 9.4,9.7 में गोविन्द गिर के सन्देश तथा 9.8

8.12 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. National Archives of India	:	Proceedings of the Foreign Political Department of Government of India (1912–1916)
2. B.K. Sharma	:	Tribal Revolts
3. B.K. Sharma	:	Peasant Movements in Rajasthan.

4. भगवती लाल जैन	:	स्वतंत्रता संग्राम में भगत आन्दोलन का योगदान। (साधु गोविन्द गिर और भगत आन्दोलन)
5. K. Suresh Singh	:	Tribal Society in India.
6. शोध पत्रिका (राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य संस्थान की पत्रिका)		

इकाई – 9

चम्पारन, खेडा एवं बारदोली के किसान आन्दोलन

इकाई की रुपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 चम्पारन, खेडा, एवं बारदोली के किसान आन्दोलन से पूर्व भारत में कृषक आन्दोलन का स्वरूप (1818 ई. से 1917 ई.)

9.3 भारत में चम्पारन, खेडा एवं बारदोली किसान आन्दोलन. प्रकृति

9.4 कृषक विद्रोहों के कारण :

9.4.1 चम्पारन किसान आन्दोलन के कारण

9.4.2 खेडा किसान आन्दोलन के कारण

9.4.3 बारदोली किसान आन्दोलन के कारण

9.5 किसान आन्दोलनों का उद्भव एवं विकास

9.6 चम्पारन, खेडा एवं बारदोली के किसान आन्दोलन का महत्व

9.7 सारांश

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.9 संदर्भ ग्रथों की सूची

9.0 उद्देश्य

इकाई के अन्तर्गत ऐतिहासिक दृष्टि से यह विवेचन किया गया है कि किस प्रकार भारत में चम्पारन, खेडा एवं बारदोली के किसान आन्दोलन प्रादुर्भावित हुए, उनका क्या स्वरूप रहा एवं इन आन्दोलनों को प्रोत्साहित करने हेतु किन परिस्थितियों एवं तत्वों ने योगदान दिया। इन आन्दोलनों के संदर्भ में इकाई में आप यह अध्ययन करेंगे कि :

- आदि काल से भारतीय अर्थव्यस्था का कृषि एक महत्वपूर्ण अंग रहा है और इस व्यवस्था के क्षेत्र में कृषकों के निरन्तर विद्रोह होते रहे, जो कि अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषता बन गयी।
- कृषि अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में प्रारम्भ से ही कृषकों की दयनीय, शोषण व अत्याचारपूर्ण स्थिति बनी रही इस वर्ग के सुधार हेतु सरकार के द्वारा उपेक्षा की नीति को अपनाया गया, जिससे कृषकों में असन्तोष एवं विद्रोह की भावना प्रज्जवलित हुई। इस भावना से प्रेरित होकर कृषकों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में समय–समय पर आन्दोलन किए!
- इकाई में आप अध्ययन के रूप मे इस स्थिति पर विचार करेंगे कि भारत में कृषकों के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में जो विद्रोह किए गए, उनमें विभिन्न वर्गों के कृषकों ने सक्रिय रूप में भाग लिया!

- आप यह अध्ययन करेंगे कि 1917–18 ई में बिहार प्राप्त मैं चम्पारन कृषक आन्दोलन, गुजरात प्रान्त में खेडा कृषक विद्रोह तथा 1928 ई. में गुजरात प्रान्त एवं सूरत जिले के बारदोली शक विद्रोह को विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों ने योगदान दिया।
- इकाई में आप चम्पारन, खेडा, बारदोली कृषक आन्दोलनों की प्रकृति एवं स्वरूप का विस्तृत ऐतिहासिक विश्लेणात्मक अध्ययन करेंगे!
- इस इकाई में इस विचारधारा का अध्ययन करेंगे कि चम्पारन, खेडा एवं बारदोली कृषक आन्दोलन के क्या परिणाम हुए एवं इसका क्या ऐतिहासिक महत्व रहा। इसी प्रकार इन कृषक विद्रोहों का भारतीय अर्थव्यस्था पर क्या प्रभाव पडा।
- चम्पारन, खेडा, बारदोली के कृषक आन्दोलन को अंग्रेजी सरकार के द्वारा दमन करने एवं उसे नियंत्रित करने हेतु किस नीति को अपनाया उसका विवेचनात्मक अध्ययन करेंगे।

9.1 प्रस्तावना

आधुनिक भारतीय इतिहास एवं भारत में हुए विभिन्न कृषक आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में चम्पारन, खेडा एवं बारदोली कृषक आन्दोलनों का उल्लेखनीय ऐतिहासिक महत्व माना जाता है। इन आन्दोलनों की भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा महात्मा गांधी जी के द्वारा प्रारम्भ किए गए आन्दोलन के विशेष संदर्भ में भी प्रमुख भूमिका रही है। इनके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन को सक्रिय सहयोग मिला था।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषक आन्दोलन का प्राचीन स्वरूप माना जाता है लेकिन 19वीं शताब्दी से इन कृषक आन्दोलनों को सक्रिय बल एवं प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ था। इस शताब्दी में भारतीय किसान अंग्रेजी सरकार के शोषण, अत्याचार एवं दोषपूर्ण नीति के आन्दोलन करने हेतु प्रेरित हुए थे। बीसवीं सदी में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन तथा कृषक आन्दोलनों ने कृषकों के असन्तोष को आन्दोलन के रूप में परिवर्तित करने में अत्यधिक रूप में प्रभावित किया था।।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह तथ्यपूर्ण है कि कृषि भारतीय का प्रमुख अंग रही है। यहां अधिकांश लोग कृषि कार्य किया करते थे। अंग्रेजी में यह वर्ग बहुसंख्यक वर्ग था। इस वर्ग का प्रारम्भ से ही अधिक शोषण एवं उनका अत्याचार होता था। अंग्रेजी सरकार की भूराजस्व व्यवस्था, व्यापारिक नीति तथा उद्योगों के विनाश के प्रति उदासीनता की नीति के परिणाम स्वरूप समाज व अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में कृषकों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि संभव हुई थी। इस स्थिति में भारत का कृषक वर्ग प्रारम्भ से ही अधिकतम शोषित रहा। अंग्रेजी शासन काल में कृषकों के प्रति अत्याचार, शोषण की प्रक्रिया काफी वृद्धिशील हुई। इस क्षेत्र में सरकार, जमींदार, स्थानीय, अधिकारियों आदि सभी ने कृषकों के शोषण में सक्रिय सहयोग दिया। प्रारम्भ अधिकतर किसान इस शोषण को सहन करते रहे क्योंकि कृषकों की निर्धनता, अज्ञानता, कृषकों का विभिन्न स्थानों में निवास करना, स्थान परिवर्तन करने की अक्षमता आदि परिस्थितियों ने

कृषकों को संगठित नहीं होने दिया। इसी भांति इन कारणों के कारण कृषकों ने शोषित वर्ग के विरूद्ध संगठित रूप में संघर्ष करने के लिए असक्षम बना दिया। तथापि कृषकों के असंगठित विद्रोह निरन्तर रूप में बने रहे। लेकिन सरकार की संगठित शक्ति ने कृषक आन्दोलनों का दमन करने में सफलता प्राप्त की।।

9.2 चम्पारन, खेड़ा एवं बारदोली के किसान से पूर्व भारत में कृषक आन्दोलन का स्वरूप (1818 ई. से 1917 ई.)

अंग्रेजी शासन काल के अन्तर्गत 1818 ई. से 1917 ई. तक भारत में विभिन्न कृषक आन्दोलनों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनका ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय स्वरूप एवं महत्व माना जाता है।

चम्पारन का कृषक आन्दोलन 1917 ई. में बिहार प्राप्त में हुआ था पूर्व भारत के विभिन्न प्रान्तों में कृषक विद्रोहों को प्रोत्साहन मिल चुका था। इन विद्रोह का उल्लेख एवं संक्षिप्त विवेचना ऐतिहासिक दृष्टि से तथ्य पूर्ण एवं है।

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह ऐतिहासिक जानकारी मिलती है कि कृषक आन्दोलन के अन्तर्गत 1855–56 ई. में सन्थाल विद्रोह का उदभव हुआ था। सन्थाल आदिवासी जाति थी। इस वर्ग के कृषक हजारीबाग, मिदनापुर, बाकुडा और वींर भूमि क्षेत्रों में कृषि कार्य किया करते थे। इन क्षेत्रों में 1793 ई. की स्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था के फलस्वरूप जमींदार भूस्वामी बन गए थे। कृषकों ने यद्यपि अपने परिश्रम के द्वारा पथरीली व जंगलों से आच्छादित भूमि को कृषि योग्य बना दिया था, लेकिन जमींदारों ने इस भूमि के भी स्वामित्व की मांग की और बलपूर्वक उनसे रूपए बटोरने प्रारम्भ कर दिये थे। पुलिस, न्यायालय ने भी साहूकारों और जमींदारों को किसानों के समर्थन दिया। इस स्थिति में सन्थाल लोग इन अत्याचारों को सहन नही कर और उन्होंने सिद्ध व कान्नू बन्धुओं के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। 1856 ई में के नेता बंदी बना लिए गए और विद्रोह को कठोरता पूर्वक दबा दिया गया। सरकार ने एक जांच समिति की नियुक्ति की, जिसके आधार पर बंगाल कास्तकारी अधिनियम किया गया, जिसने खोए हुए भूधारण और सामन्तों द्वारा लगान के रूप में निश्चित राशि वसूल करने की प्रथा को फिर से स्थापित किया। 1857 ई. में जिन क्षेत्रों के कृषकों ने विद्रोह में भाग लिया था उन्हें अधिक भूराजस्व कर का भुगतान करने के लिए बाध्य किया गया। इस समय कृषकों ने अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध विद्रोह करने की नीति को अपनाया था।

1859 ई. में बंगाल में नील विद्रोह को प्रोत्साहन मिला था। इस समय अंग्रेजी सरकार के अवकाश प्राप्त यूरोपीय अधिकारियों तथा धनी वर्ग के जमींदारों ने बंगाल तथा बिहार के जमींदारों से भूमि प्राप्त करके उस पर नील खेती करने लगे। यह वर्ग कृषकों पर अत्याचार किया करते थे। ये लोग कृषकों को अपने आर्थिक लाभ के उद्देश्य से नील उगाने के लिए बाध्य करते थे। कृषकों के साथ मारपीट, दुर्व्यवहार उनके प्रति अत्याचार व शोषण की स्थिति बनी हुई थी। यह विद्रोह पाबना, नदिया जिला, जेसोर, खुलना, राजाशाही ढाका, दीनाजपुर इत्यादि प्रदेशों

में फैल गया। इस विद्रोह से परेशान होकर अंग्रेजी सरकार ने नील आयोग की नियुक्ति की जिसके द्वारा किसानों की कठिनाइयों का निराकरण किया गया।

1872 ई. में एवं 1876 ई. के मध्य पूर्वी बंगाल के कृषकों द्वारा जमींदारों के विरूद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किए गए थे, क्योंकि ये जमींदार कृषकों से अत्यधिक भूराजस्व की वसूली करते थे। कृषकों के साथ शोषण व अत्याचार किया जाता था। इस स्थिति में कृषकों ने विद्रोह किया लेकिन सरकार ने इन विद्रोह का दमन किया एवं कृषकों के हित में इस प्रकार के कानून बनाए, जिनसे कृषकों की कठिनाईयों को दूर किया जा सके।

1875 ई. में मराठा कृषकों द्वारा आन्दोलन किया गया। ये कृषक ऋणों के भार से ग्रसित थे। उन पर साहूकारों व जमींदारों के अत्याचार व शोषण पूर्ण रूप से विद्यमान थे। गुजराती व मारवाड़ी साहूकार कृषकों द्वारा लिए गए ऋणों की अपने खातों में हेराफेरी कर देते थे। परिणाम स्वरूप पूना, अहमदाबाद के कृषकों ने अत्याचार करने वालों का वध कर दिया, साहूकारों का बहिष्कार कर दिया। कृषकों ने साहूकारों के कब्जे से कानूनी दस्तावेज प्राप्त करने व उन्हें नष्ट करने का प्रयास किया! लेकिन अंग्रेजी सरकार ने सेना की सहायता से विद्रोह का दमन करने का प्रयास किया। "सरकार ने दक्कन आयोग" की नियुक्ति की जिसकी सिफारिश पर दक्कन एग्रीकल्चरिस्ट रिलीफ एक्ट 1879 पारित किया गया।

1893–94 ई. में असम के कृषकों ने विद्रोह किए थे। इस क्षेत्र में कृषकों ने लगान की वृद्धि का विरोध कर दिया था। जमींदारों, साहूकारों तथा अन्य अधिकारियों ने जब कृषकों की भूमि पर कब्जा किया तो कृषकों ने विरोध स्वरूप विद्रोह किया। अंग्रेजी सरकार ने पुलिस और सेना के द्वारा कृषक विद्रोह को दबाने का प्रयास किया।

1896 ई. व 1900 ई. के मध्य पंजाब में सरकार के भूराजस्व संबंधी कानूनों तथा साहूकारों के शोषण के विरूद्ध कई स्थानों पर कृषकों ने संघर्ष किया। सरकार ने किसानों को सन्तुष्ट करने के लिए 1902–3 ई. में पंजाब लैण्ड एलीनेशन एक्ट बनाया जिसके द्वारा यह निश्चित हुआ कि साहूकार किसान की भूमि की खरीद अथवा गिरवीं नहीं रख सकता था। लेकिन कृषक इससे सन्तुष्ट नहीं हुए। कृषकों का निरन्तर विद्रोह चलता रहा एवं यह कृषक विद्रोह पंजाब में राष्ट्रीय आन्दोलन का हिस्सा बन गया।

उक्त आन्दोलनों के पश्चात् महात्मा गांधी के नेतृत्व में कृषक को 1917 ई. प्रोत्साहन मिला। इस क्षेत्र में बिहार में चम्पारन के क्षेत्र में कृषक को प्रमुख रूप में प्रोत्साहन मिला।

9.3 भारत में चम्पारन, खेडा एवं बारदोली किसान आन्दोलन की प्रकृति

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन एवं महात्मा गांधी द्वारा प्रारम्भ किए गए विभिन्न आन्दोलनों के संदर्भ में चम्पारन, खेड़ा एवं बारदोली कृषक विद्रोहों का विशेष महत्व है। इन आन्दोलनों की प्रकृति अथवा स्वरूप का भलीभांति अध्ययन करने के पश्चात यह ऐतिहासिक तथ्य स्पष्ट होता है कि ये कृषक विद्रोह में हुए कृषक विद्रोहों से अपनी विशिष्टता लिए हुए थे।

चम्पारन, खेड़ा, बारदोली कृषक विद्रोहों को विशेष रूप में महात्मा गांधी का सक्रिय नेतृत्व प्राप्त हुआ था। कृषकों को अहिंसात्मक रूप में संगठित करने, विद्रोह के लिए प्रेरित करने व विद्रोह को सक्रिय व सशक्त स्वरूप प्रदान करने में गांधीजी सक्रिय योगदान रहा।

इन विद्रोहों का यह भी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्वरूप रहा कि ये प्रमुखतः राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रेरित विद्रोह थे एवं उन्हें राष्ट्रीय विद्रोह का प्राप्त हुआ। ये कृषक विद्रोह सत्याग्रह का स्वरूप भी माने जाते है।

चम्पारन, खेड़ा और बारदोली के कृषक विद्रोह की प्रकृति का भी स्वरूप रहा कि ये विद्रोह कृषकों के द्वारा प्रारम्भ किए गए थे, जिनके कारण इसे विद्रोह का आधार प्राप्त हुआ। लेकिन इन विद्रोहों को भारतीय राष्ट्रीय नेतृत्व रूप में महात्मा गांधी का पूर्ण समर्थन व नेतृत्व कृषकों को मिला।

यद्यपि अन्य कृषक विद्रोहों की भांति चम्पारन, खेड़ा व बारदोली कृषक आन्दोलन के शोषण अत्याचार प्रमुख कारण रहे लेकिन इस विद्रोहो को राष्ट्रीय आन्दोलन की परिस्थितियों ने विशेष योगदान दिया। भारत में महात्मा गांधी के नेतृत्व में अंग्रेजी सरकार विरोधी जिस नीति विरोध, सत्याग्रह आदि को अपनाया गया उनसे कृषक को समर्थन मिला एवं उन्हें भी आन्दोलन में बुनियादी समस्या मानकर सम्मिलित कर लिया गया। परिणाम स्वरूप चम्पारन, खेड़ा व बारदोली कृषक विद्रोहों को गतिशीलता प्राप्त हुयी।

चम्पारन, खेड़ा व बारदोली कृषक विद्रोहों के स्वरूप की यह भी प्रमुख विशेषता रही कि महात्मा गांधी ने जब अखिल भारतीय कांग्रेस के आन्दोलन को मध्यमवर्गीय आन्दोलन के स्थान पर जन आन्दोलन में परिवर्तित किया, उसमें कृषकों की सक्रिय भूमिका रही। कृषकों ने इस समय यह महसूस किया कि उनकी समस्याओं का हल स्वतंत्रता प्राप्ति द्वारा ही संभव है। इस भावना से प्रेरित होकर कृषकों ने कांग्रेस की। समस्त गतिविधियों में भाग लिया। महात्मा गांधी के द्वारा प्रारम्भ की गयी प्रत्येक गतिविधि में कृषकों ने सक्रिय। योगदान दिया।

चम्पारन, खेड़ा व बारदोली के कृषक विद्रोह 1917 ई. से 1931 ई. के मध्य हुए किसान आन्दोलन थे। इस दृष्टि से चम्पारन कृषक विद्रोह 1917–18 ई. खेड़ा कृषक विद्रोह 1919 ई. व बारदोली का कृषक विद्रोह 1930–31 ई. कृषक विद्रोहों का स्वरूप रहे। इन कृषक विद्रोहों को राष्ट्रीय आन्दोलन व राष्ट्रीय भावना से प्रेरित किसान आन्दोलन कहा जाए तो कोई ऐतिहासिक अतिश्योक्ति नहीं होगी क्योंकि इन कृषकों ने अपने शोषण, अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त करने तथा कृषि के क्षेत्र में अधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान दिया।

कृषक विद्रोहों के स्वरूप की कड़ी में यह भी विचार धाराव्यक्त की जा सकती है कि चम्पारन, खेड़ा व बारदोली किसान आन्दोलन स्वतंत्रता आन्दोलन का हिस्सा थे क्योंकि भारतीय किसान अपने अधिकारों को प्राप्त करने तथा कृषि के क्षेत्र में व्याप्त अव्यवस्थाओं, दोषों से मुक्ति चाहते थे, जिसके वशीभूत होकर उन्होंने अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध भारतीय क्रांतिकारियों का सहयोग किया व आन्दोलन में भाग लिया।

किसानों के संगठन के विशेष संदर्भ में भी ये आन्दोलन अपना विशिष्ट स्वरूप रखते है क्योंकि इन कृषक विद्रोहों के परिणाम स्वरूप भारत में विभिन्न किसान संगठनों की स्थापना हुई थी। राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के साथ–साथ कृषकों ने यह भी महसूस किया कि कांग्रेस द्वारा किसानों के हित की पूर्ति सम्भव नहीं है। एन. जी. रंगा ने महात्मा गांधी से चम्पारिन आन्दोलन करते हुए लिखा था कि इस आन्दोलन में कृषकों की मुख्य समस्याओं – कृषकों के ऋण, लगान में कमी किए जाने संबंधी प्रश्नों को सम्मिलित नहीं किया गया था। परिणाम स्वरूप किसानों के अलग संगठनों की स्थापना को प्रोत्साहन मिला। इस आधार पर 1923 ई. में आन्ध्र प्रदेश के कृषकों ने 1926 ई. में पंजाब, बंगाल, बिहार तथा उत्तर प्रदेश में कृषकों के संगठन बन गए। 1928 ई. में आन्ध्र में प्रान्तीय **"रैयत सभा"** की स्थापना हुयी।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व किसानों के संगठित अथवा असंगठित शान्तिपूर्ण या हिंसात्मक आन्दोलनों में से कोई भी कृषकों को न्याय नहीं दिला सका तथापि इन आन्दोलनों का यह भी महत्वपूर्ण स्वरूप रहा सरकार ने कृषकों के हित में कुछ कानून निर्मित किए। इस दृष्टि से 1934 का उत्तर प्रदेश का **डेब्ट रिलीफ एक्ट**, पंजाब का **रेग्यूलेशन आफ एकाउण्ट्स एक्ट**, बंगाल के **मनीलैण्डर्स एक्ट 1933** ई., रिलीफ आफ इनडेन्टेडनेश एक्ट 1935 ई. कृषकों के लिए विशेष रूप में लाभदायक रहे।

9.4 कृषक विद्रोहों के कारण :

चम्पारन, खेड़ा व बारदोली में जो कृषक विद्रोह हुए उन्हें विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों से पूर्ण कारणों ने प्रोत्साहित किया था। इन विद्रोहों, की आशिक कारणों को छोड़कर, समानता पूर्ण स्थिति थी जिनके परिणाम स्वरूप कृषक विद्रोहों को प्रोत्साहन मिला।

इन विद्रोहों को प्रोत्साहित करने के लिए निम्नांकित कारणों ने सक्रिय योगदान दिया था।

9.4.1 चम्पारन किसान आन्दोलन के कारण :

बिहार राज्य के महत्वपूर्ण क्षेत्र चम्पारन में कृषकों के विद्रोह को 1917–18 ई. में प्रोत्साहन मिला था। इस आन्दोलन के उदय के निम्नांकित प्रमुख कारण थे :

1. **तिनकठिया पद्धति का दोषपूर्ण होना** : चम्पारन के कृषकों ने 1917 - 18 ई. में सरकार के विरूद्ध जो विद्रोह किए उसका महत्वपूर्ण आर्थिक कारण तिनकठिया पद्धति का दोषपूर्ण होना था। यह पद्धति नील की खेती से संबंधित थी अनुसार किसानों को अपनी भूमि के 3/20 दें हिस्से में नील की खेती करना था। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट रूप में जानकारी मिलती है कि 19वीं शताब्दी के आरंभ में अंग्रेज बागान मालिकों ने चम्पारन के कृषकों से अनुबंध करा लिया था जिसके आधार पर कृषकों को अपनी भूमि के 3/20 वें हिस्से में अनिवार्य रूप में नील की पैदावार करना आवश्यक कर दिया था। परिणाम स्वरूप चम्पारन के कृषक (इस दोषपूर्ण प्रणाली के कारण शोषण व बाध्यपूर्ण स्थिति में थे जो कि इस प्राणाली को करवाना चाहते थे। इस स्थिति में कृषकों को अधिक काट तब हुआ जब 1916–17 के

लगभग जर्मनी के रासायनिक रंगों की उपलब्धि के कारण नील की आवश्यकता महसूस नहीं की जाने लगी। इस स्थिति के कारण चम्पारन के अंग्रेजी बागान मालिक नील खेती बंद करने के बाध्य हो गए। चम्पारन के कृषकों के लिए यह उचित अवसर था क्योंकि कृषक भी नील की खेती से छुटकारा प्राप्त करना चाहते थे। लेकिन अंग्रेजों ने स्थिति का लाभ दूसरे रूप में उठाना चाहा। उन्होंने कृषकों से प्राप्त होने वाली भूराजस्व गैर कानूनी करों आदि की दरों में मनमानी वृद्धि कर दी थी। परिणाम स्वरूप इस के विरूद्ध कृषकों का विरोध प्रारम्भ हुआ जिसके कारण चम्पारन कृषक विद्रोह की शुरूआत को प्रोत्साहन मिला।

2. **लगान व अन्य करो में वृद्धि** : चम्पारन में कृषक विद्रोह को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से अन्य कारण लगान व अन्य करों में वृद्धि किया जाना था। चम्पारन के कृषकों को भूराजस्व के रूप में कृषि उत्पादन का काफी हिस्सा लगान के रूप में सरकार को भुगतान करना होता था।

इसी प्रकार अन्य प्रकार के कर – यातायात, पथकर, त्यौहार मेला कर, जन्म व मृत्यु कर, धार्मिक कर आदि विभिन्न प्रकार के करों का भुगतान करना पड़ता था। इन करों में जो कि कृषकों पर पहले ही अतिरिक्त भार थे, उसमें वृद्धि होना कृषकों के लिए असहनीय हो गया था। इस स्थिति के कारण चम्पारन के कृषकों ने विद्रोह का सहारा लिया।

3. **कृषकों से अवैध वसूली एवं उसका हर्जाना :** चम्पारन में कृषकों का आर्थिक दृष्टि से इस रूप में भी अत्यधिक शोषण हुआ कि किसानों से अवैध रूप से अत्यधिक धन की वसूली की गयी यह धन राशि लगान व अन्य प्रकार के करों की मनमानी तरीकों से वसूल कर के प्राप्त की थी। इससे किसानों की स्थिति अत्यधिक बन गयी थी। गांधी जी व अन्य सहयोगियों के नेतृत्व में अवैध वसूली का विरोध गया। इस स्थिति में आन्दोलन को विशेष बल मिला। इस समय अंग्रेजी सरकार से भी मांग की गयी कि कृषकों से जो अभी तक अवैध रूप में वसूली की गयी है उसे या तो लौटाया जाए अथवा उसके बदले में हर्जाना दिया जाए। इस मांग को अंग्रेजी सरकार स्वीकार करने को तैयार नहीं थी परिणाम स्वरूप आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला।

4. **कृषकों का शोषण** : चम्पारन में कृषकों का जमीदारों, साहूकारों व अंग्रेजी सरकार के द्वारा शोषण किया जाना भी एक अन्य कारण था। कृषकों का आर्थिक, सामाजिक व राजनितिक रूप में अत्यधिक शोषण था। कृषकों से कृषि उत्पादन का भाग कर व लगान के रूप में लिया जाता था। कृषकों को साहूकार अत्यधिक राशि पर धन उधार दिया करते थे तथा दी गयी धन राशि में भी हेरा फेरी करते थे। कृषकों से जमीन हड़पने, उन्हें बेदखल करने की स्थिति विद्यमान थी राजनैतिक दृष्टि से भी कृषकों के विरूद्ध जमींदारों, ऋणदाताओं को संरक्षण प्राप्त था। इस स्थिति में परेशान होकर चम्पारन के कृषकों ने विद्रोह प्रारम्भ किया।

5. **महात्मा गांधी व अन्य कार्यकर्त्ताओं का योगदान** : 1917–18 ई. के चम्पारन कृषक विद्रोह को विशेष रूप में महात्मा गांधी व डा. राजेन्द्र प्रसाद का सक्रिय योगदान प्राप्त हुआ था। इस नेतृत्व के कारण चम्पारन कृषक विद्रोह सक्रिय रूप में प्रारम्भ हो सका। महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन के क्षेत्र में जो गतिविधियाँ प्रारम्भ कर दी थी उस परिस्थिति में चम्पारन के कृषकों, वहां के राजकुमार श्री शुक्ल ने गांधीजी को जब चम्पारन आने व कृषकों की समस्याओं

के संबंध में अध्ययन करने हेतु आमंत्रित किया था। इस समय गांधी जी चम्पारन पहुंचे जहां कि उन्हें ब्रज किशोर, डा. राजेन्द्र प्रसाद, महादेव देसाई, नरहरि पारेख, जे बी. कृपलानी और बिहार के अनेक बुद्धिजीवियों का सहयोग मिला। गांधी जी ने अपने सहयोगियों के साथ कृषकों की समस्याओं को सुलझाने उन्हें शोषण, अत्याचार से बचाने व तिनकठिया पद्धति को समाप्त करने का प्रयास किया तथा कृषकों को अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध आन्दोलन करने हेतु नेतृत्व प्रदान किया। परिणामस्वरूप कृषक विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हो सकी।

10.4.2. खेड़ा के कृषक विद्रोह के कारण :

महाराष्ट्र प्रान्त के महत्वपूर्ण क्षेत्र खेड़ा के कृषकों द्वारा बंबई की अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध जो कृषक आन्दोलन 1919 ई. में किया गया उसको निम्नांकित परिस्थितियों ने सक्रिय योगदान दिया था।

1. **अकाल, प्लेग व मंहगाई की स्थिति उत्पन्न होना** : खेड़ा के कृषक विद्रोह को वहां की अकाल, महामारी एवं मंहगाई की स्थिति ने प्रमुख रूप में प्रोत्साहित किया था। ऐतिहासिक दृष्टि से स्पष्ट है कि भारत के विभिन्न प्रान्तों के समान खेड़ा क्षेत्र में भी अकाल की स्थिति समय समय पर उत्पन्न होती थी। इस क्षेत्र में 1918 ई. में भयंकर अकाल व सूखे की स्थिति उत्पन्न हुयी थी जिसके कारण फसल नष्ट हो गयी थी। पानी की कमी व खाद्यान्न की पूर्ण रूप से कमी हो गयी थी। इससे भूखमरी, प्लेग व भयंकर बीमारियां फैलनी प्रारंभ हो गयी थी। इस स्थिति में सरकार ने उपेक्षा के दृष्टिकोण को अपनाया एवं कोई राहत कार्य नहीं किए। इसके विपरीत कृषकों से लगान वसूलने, वस्तुओं के भावों में वृद्धि करने, कृषकों का शोषण करने की नीति को अपनाए हुई थी। इस स्थिति के कारण कृषकों में असन्तोष एवं विद्रोह की भावना प्रज्जवलित हुई परिणामस्वरूप खेड़ा में कृषक विद्रोह को प्रोत्साहन मिला।

2. **कृषकों से अत्यधिक माल गुजारी वसूल करना :** खेड़ा के कृषक आन्दोलन का अन्य कारण बम्बई की सरकार के द्वारा कृषकों से अत्यधिक मालगुजारी वसूल करना था। क्योंकि खेड़ा इलाके में अकाल की भयंकर स्थिति के कारण जब फसल पूर्ण रूप से नष्ट हो गयी थी। कृषकों के पास उत्पादन व धन का पूर्ण अभाव था, उस स्थिति में सरकार को चाहिए था कि लगान को माफ कर देती लेकिन इसके विपरीत उनसे अत्यधिक माल गुजारी वसूल करने की नीति को अपनाया। इसके कारण कृषकों को काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। उनमें असन्तोष, विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हुयी। जब महात्मा गांधी ने इस क्षेत्र में कृषकों को नेतृत्व व सहयोग किया तो उस स्थिति में यह विद्रोह सक्रिय हो गया।

3. **कृषकों की सम्पत्ति का कुर्क किया जाना** : खेड़ा के कृषकों द्वारा आन्दोलन प्रारम्भ किए जाने का अन्य महत्वपूर्ण कारण इस दृष्टि से भी संभव हुआ कि सरकार कृषकों की सम्पत्ति व भूमि कुर्क करने की नीति को क्रियान्वित स्वरूप प्रदान कर रही थी। क्योंकि खेड़ा के कृषक जब भूराजस्व का भुगतान करने की स्थिति में नहीं थे जो उस स्थिति में महाराष्ट्र सरकार कृषकों की सम्पत्ति कुर्क कर रही थी। इस स्थिति का कृषकों ने विरोध किया। गांधीजी

व अन्य कार्यकर्त्ताओं का जब सहयोग व नेतृत्व कृषकों को मिला, उस स्थिति में कृषकों ने विद्रोह प्रारम्भ कर दिया।

4. **कृषकों को गांधी व अन्य कार्यकर्त्ताओं का नेतृत्व प्राप्त होना :** खेड़ा में कृषकों की विभिन्न समस्यायें थी, उनका शोषण होता था एवं दिन प्रतिदिन निरन्तर रूप में बढ़ रहे थे। कृषकों में विद्रोह, असन्तोष की स्थिति विद्यमान थी विद्रोह प्रारम्भ करने हेतु नेतृत्व की आवश्यकता थी। 1919 ई. में महात्मा गांधी अतिरिक्त सर्वेन्ट ऑफ, इण्डिया सोसाइटी के सदस्यों विट्ठलभाई पटेल, इन्दुलाल आदि ने कृषकों को सक्रिय नेतृत्व प्रदान किया। उन्होंने खेड़ा के किसानों को लगान न देने की शपथ दिलाई। इस स्थिति के कारण खेड़ा विद्रोह प्रारम्भ हो सका।

5. **कृषकों द्वारा लगान देने से मना करना :** खेड़ा में कृषक का अन्य कारण वहां के कृषकों द्वारा लगान देने से इन्कार करना था। खेड़ा क्षेत्र में 1919 ई. में जहां एक और सूखे व अकाल की स्थिति बनी हुयी थी वहां कृषकों से महाराष्ट्र सरकार लगान भुगतान करने की मांग कर रही थी। इस प्राकृतिक आपदा के समय ने लगान का भुगतान करने से मना कर दिया था। कृषकों का यह मानना था कि फसल नष्ट हो गयी, भूराजस्व प्राप्त नहीं हुआ है जिसके कारण वे भूराजस्व का भुगतान करने में असमर्थ है। लेकिन सरकार का यह तर्क था कि फसल 25 प्रतिशत नष्ट नहीं हुयी, जिसके आधार पर किसानों को लगान से मुक्त किया जाए क्योंकि भूमिकर नियमों में व्यवस्था की गयी थी कि यदि फसल साधारण से 25 प्रतिशत कम होगी तो भूमि में कृषकों को छूट नहीं दी जायेगी। लेकिन गांधीजी के नेतृत्व में खेड़ा के कृषकों ने सरकार को लगान देने से मना कर दिया तथा कृषकों ने विद्रोह प्रारम्भ कर दिया।

9.4.3 बारदोली कृषक विद्रोह के कारण :

गुजरात राज्य के जिले में बारदोली नामक इलाके के कृषकों ने भी अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध किया था। इस विद्रोह को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से निम्नांकित परिस्थितियों का सहयोग रहा।

1. **कृषकों द्वारा लगान न दिया जाना :** बारदोली के कृषक आन्दोलन हेतु महत्त्वपूर्ण परिस्थिति वहां के कृषकों द्वारा 1928 ई. में सरकार को लगान का भुगतान करने से इन्कार करना था। कृषकों के लगान में 30 प्रतिशत की वृद्धि 1926 ई. में सरकार के द्वारा कर दी गयी थी, जिसका कि कृषकों ने विरोध किया। परिणामस्वरूप मामले की जाँच हेतु बारदोली जांच समिति की नियुक्ति की गयी, जिससे समिति ने लगान बढ़ोतरी को अनुचित बताया। "यंगइण्डिया" "नवजीवन" "बाम्बे समाचार" आदि अखबारों ने इस समाचार को प्रकाशित किया। 1927 ई. में भीम भाई नाइक ओर शिवदासानी के नेतृत्व में किसानों का प्रतिनिधि मण्डल बम्बई सरकार के राजस्व विभाग अधिकारी से मिला। 1928 ई. में कृषकों ने लगान का भुगतान नहीं करने का निर्णय लिया एवं सरकार के विरूद्ध विद्रोह प्रारम्भ किया।

2. **असहयोग आन्दोलन की देन :** बारदोली के कृषक आन्दोलन के उदय के कारणों में महात्मा गांधी जी के द्वारा प्रारम्भ किए गए 1920–21 के असहयोग आन्दोलन की देन एवं परिणाम कहा जा सकता है क्योंकि महात्मा गांधी जी ने अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध जिस असहयोग आन्दोलन को प्रारम्भ किया था। उसमें कृषकों का सक्रिय सहयोग मिला था क्योंकि कृषकों की भी अपनी समस्यायें, शोषण व अत्याचार थे, मुक्ति प्राप्त करने के स्वार्थ थे। उन्होंने गांधीजी का सहयोग प्राप्त करने हेतु एक आन्दोलन में भाग लिया व प्रेरणा प्राप्त कर अपने अत्याचारों के विरूद्ध गांधीजी के नेतृत्व में कृषक आन्दोलन प्रारम्भ किया।

1922 ई. में बारदोली राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया था। इस इलाके के स्थानीय नेता जैसे कल्याणजी और कुंवर जी मेहता, दयाल जी देसाई ने असहयोग आन्दोलन के लिए जनमत तैयार करने में सक्रिय योगदान दिया। इन नेताओं के प्रयास से गांधीजी ने बारदोली को असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ करने के लिए चुना। परिणामस्वरूप बारदोली में कृषकों को गांधीजी व असहयोग आन्दोलन के सक्रिय कार्यकत्ताओं का सहयोग मिला, जिसके कारण कृषक विद्रोह प्रोत्साहित हुआ।

3. **अंग्रेजी सरकार की उपेक्षापूर्णनीति :** बारदोली में कृषक विद्रोह को प्रोत्साहित करने हेतु सरकार का उपेक्षा पूर्ण दृष्टि कोण भी प्रमुख कारण सिद्ध हुआ था। अंग्रेजी सरकार की दोषपूर्ण एवं उपेक्षापूर्ण नीति के कारण कृषकों की स्थिति शोचनीय बन गयी थी। बारदोली क्षेत्र के कृषकों के लिए अंग्रेजी सरकार द्वारा उनके हितों, उद्देश्यों के अनुरूप तथा उनके कष्टों व समस्याओं का दूर करने के लिए किसी भी प्रकार के कदम नहीं उठाए गए थे कृषकों को खाद बीज, कृषि उपकरण, कीटनाशक आदि उपलब्ध नहीं करवाए गए। उनको शोषण, अत्याचार से बचाने, ऋण से मुक्ति दिलाने, कम ब्याज पर ऋण सुविधा दिलवाने, उने स्वास्थ्य, चिकित्सा, निवास, जीवन बीमा के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गयी थी। परिणामस्वरूप कृषकों में सरकार के प्रति असन्तोष, विद्रोह की स्थिति बन गयी थी, जिन्होंने सरकार के विरूद्ध आन्दोलन की नीति को अपनाया।

4. **प्रारम्मिक कृषक आन्दोलन का प्रभाव :** बारदोली के कृषक आन्दोलन को प्रेरित करने में इस आन्दोलन से पूर्व हुए विभिन्न कृषक आन्दोलन का भी प्रभाव पड़ा। भारत के बंगाल प्रान्त, दक्षिण भारत, गुजरात, अवध, पश्चिम उत्तर प्रदेश के कृषकों के द्वारा जो कृषक विद्रोह प्रारम्भ हुए उन विद्रोही को प्रोत्साहित करने हेतु जो परिस्थितियां विद्यमान थी वे ही बारदोली कृषक विद्रोह की थी। कृषक विद्रोहों की प्रेरणा से बारदोली के कृषकों ने भी यह निर्णय लिया कि हमें भी अपनी समस्याओं का निराकरण करने, सरकार, जमींदार के शोषण, अत्याचार से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जरूरी है कि आन्दोलन प्रारम्भ किया जाए। अत: इस परिस्थिति ने भी कृषक विद्रोह को प्रोत्साहित किया।

5. **विभिन्न नेताओं व संगठनों का नेतृत्व प्राप्त होना :** बारदोली के कृषक आन्दोलन को विभिन्न नेताओं, संगठनों एवं कार्यकत्ताओं का कुशल व सक्रिय नेतृत्व प्राप्त हुआ था, जिसके कारण भी यह विद्रोह प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन को महात्मा गांधी, कल्याणजी, कंवरजी

मेहता, दयालजी देसाई, नरहरि पारेख, जगतराम दवे आदि नेताओं को सक्रिय सहयोग मिला जिससे कि कृषक आन्दोलन बारदोली में प्रारम्भ हो सका। इसी प्रकार बारदोली की किसान समिति, आश्रमों, स्वयं सेवकों का भी योगदान मिला, जिनकी गतिविधियों व कार्यों के फलस्वरूप बारदोली में कृषकों को विद्रोह करने की प्रेरणा मिली। इस प्रकार उक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि चम्पारन, खेड़ा, बारदोली में कृषक विद्रोह होने के उक्त महत्वपूर्ण कारण एवं परिस्थितियां थी, जिनके फलस्वरूप कृषक प्रारम्भ हुए।

9.5 किसान आन्दोलनों का उद्भव एवं विकास :

चम्पारन क्षेत्र में कृषक विद्रोह का उद्भव 18वीं शताब्दी के आरम्भ से माना जाता है। इस समय यूरोपियन बागान मालिकों ने चम्पारन के कृषकों से इस आशय का अनुबंध करवा लिया था कि किसानों के पास जो भूमि है उस भूमि के 3/20 वे हिस्से में वे नील की खेती अनिवार्य रूप में करेंगे। इस पद्धति को **तिनकष्ठिया** पद्धति कहा जाता था। इस व्यवस्था का चम्पारन के कृषकों द्वारा विरोध किया गया। कृषकों में असन्तोष एवं विद्रोह की भावना उत्पन्न हुयी। लेकिन जब 19वीं सदी के अन्त में जर्मनी में रासायनिक रंगों का अत्यधिक रूप से प्रचार हुआ तो उस स्थिति में नील की मांग कम हो उस स्थिति में बागान मालिक नील की खेती बन्द करने के लिए मजबूर हो गये थे। चम्पारन के कृषक भी इस स्थिति से छुटकारा प्राप्त करना चाहते थे, लेकिन यूरोपियन्स बागान ने किसानों की मजबूरी का फायदा उठाना चाहा। उन्होंने चम्पारन के कृषकों को अनुबन्ध से मुक्त करने के लिए लगान व अन्य गैर कानूनी करों की दर मनमाने ढंग से बढा दी। उनकी इस नीति के विरूद्ध प्रारम्भ में 1980 ई. में किसानों ने विरोध किया। लेकिन मालिकों का लूट का कार्य चलता रहा।

चम्पारन में विद्यमान उक्त स्थिति में 1917 ई में यहां के राजकुमार शुक्ल ने महात्मा गांधी जी को चम्पारन आमंत्रित करने का प्रयास किया। गांधी जी जब चम्पारन पहुँचे, कमिश्नर ने उन्हें वहां से तुरंत चले जाने का आदेश दिया। गांधी जी ने इस को स्वीकार करने से मना कर दिया। भारत सरकार ने स्थानीय प्रशासन को अपना आदेश वापस लेने तथा गांधी जी को चम्पारन के गांवो में जाने की छुट देने का निर्देश दिया।

चम्पारन क्षेत्र में गांधी जी अपने सहयोगियों ब्रज किशोर, डा. राजेन्द्र प्रसाद, नरहरि पारेख, जेबी कृपलानी, महादेव देसाई, बिहार के अनेक बुद्धिजीवियों के साथ सवेरे गांव में निकल जाते थे और दिनभर विभिन्न स्थानों का भ्रमण कर वहां के कृषकों के विचार, बयान दर्ज करते थे। कृषकों से पूर्ण जानकारी, पूछताछ, करके प्राप्त करते थे। इन गतिविधियों के कारण किसानों में भी विद्रोह करने की भावना, आत्मसम्मान की विचारधारा बढ़ी। इस स्थिति में अंग्रेजी सरकार ने समस्त स्थिति की जांच करने हेतु एक आयोग की नियुक्ति की थी। गांधीजी को इस आयोग का सदस्य बनाया गया था। गांधी जी अपने प्रयासों के फलस्वरूप लगभग 800 कृषकों के बयान सबूत के रूप में इकट्ठे कर चुके थे। आयोग ने सरकार को यह सिफारिश की कि तिनकठिया पद्धति समाप्त होनी चाहिये। आयोग ने यह भी सुझाव रखा कि किसानों से जो पैसा अवैध रूप में वसूला गया है, उसके लिए उन्हें हरजाना दिया जाए। बागान मालिक अवैध वसूली

का 25 प्रतिशत वापस करने के लिए तैयार हुए। गांधीजी बागान मालिकों के इस निर्णय को मान गए। यद्यपि चम्पारन के कार्यकत्ताओं व कृषकों ने गांधी जी के इस निर्णय का विरोध किया तथापि गांधी का यह मानना था कि मालिकों द्वारा 25 प्रतिशत रकम वापस करना भी उनकी बेइज्जती है। परिणाम स्वरूप यूरोपियन्स बागान मालिक चम्पारन छोड़कर चले गये।

चम्पारन के पश्चात खेड़ा जिले के कृषक विद्रोह का प्रादुर्भाव देखने को है। इस विद्रोह का उद्भव ऐतिहासिक दृष्टि से वहां प्रारम्भ हुए अकाल, प्लेग व मंहगाई पूर्ण परिस्थिति में हुआ था। अकाल के कारण खेड़ा इलाके में फसल हो गयी थी। उस परिस्थितियों में भी अंग्रेजी सरकार खेड़ा के कृषकों से मालगुजारी कर रही थी। कृषक यह मांग कर रहे थे कि भूराजस्व माफ किया जाए, लेकिन सरकार' कृषकों का बात स्वीकार करने को तैयार नहीं था। इस समय **सरवेंट ऑफ इण्डिया सोसाइटी** के सदस्यों गांधी विट्ठलभाई पटेल ने इस संबंध की जांच पड़ताल की और उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला की कृषकों की मांग न्यायोचित है तथा **राजस्व संहिता** के अनुसार किसानों का पूर्ण लगान माफ किया जाना चाहिये।

कृषकों के द्वारा जो आन्दोलन अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध प्रारम्भ किया गया उसमें **गुजरात सभा** की सक्रिय तथा महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। गांधी जी इस सभा के अध्यक्ष थे। गांधी जी ने खेड़ा के कृषकों को यह कहा कि वे सरकार को भूराजस्व का भुगतान नहीं करें। गांधी जी के द्वारा कृषकों को इस बात के लिए भी प्रेरित किया कि वे सरकार के दमनकारी आदेश के विरूद्ध संघर्ष प्रारंभ करें।

खेड़ा कृषक आन्दोलन को प्रेरित करने हेतु, जिले के वकील वल्लभ भाई पटेल, इन्दुला यागतिक तथा अन्य अनेक युवाओं ने गांधी जी के साथ गांवों का दौरा प्रारम्भ किया, कृषकों से संघर्ष करने की अपील की। इस समय अंग्रेजी सरकार लगान न देने वाले किसानों की सम्पत्ति कुर्क कर रही थी, उनके मवेशियों को हांककर ले जा रही थी। गांधीजी ने सभी कृषकों से लगान न देने की शपथ दिलायी। इस समय सरकार ने यह निर्णय लिया कि खेड़ा जिले के जो किसान लगान देने की स्थिति में है वे ही लगान का भुगतान करें। गांधीजी भी इस निर्णय के पक्ष में थे अत: कृषक आन्दोलन समाप्त कर दिया गया।

गुजरात राज्य के सूरत जिले स्थित बारदोली तालुक के कृषक आन्दोलन की शुरूआत गांधी जी के असहयोग आन्दोलन के साथ प्रारम्भ हुयी थी। इस विद्रोह के उद्भव में 1921–22 ई. के असहयोग आन्दोलन का सक्रिय सहयोग माना जाता है। बारदोली में विभिन्न समाजसेवीं और राजनीतिक नेता सक्रिय थे। उन्होंने यहां राष्ट्रीय स्कूलों की स्थापना की। छात्रों को सरकारी स्कूलों को छोड़ने के लिए प्रेरित किया। विदेशी वस्त्रों, शराब के बहिष्कार का आन्दोलन छेड़ दिया। बारदोली क्षेत्र में आनाविल ब्राहण तथा पेट्टीदार महत्वपूर्ण बिरादरियां थी। इनके नाम से आश्रम की स्थापना की गयी। जो कि छात्रावास का कार्य करते थे।

1922 ई. में गांधी जी के सुझाव पर कांग्रेस के कार्यकत्ताओं ने बारदोली क्षेत्र के आदिवासी, अछूत, निम्नजातियों जिन्हें **कालिपराज** कहा जाता था उनके हित में कार्य करना प्रारम्भ किया। इस इलाके में 60 फीसदी आबादी इस वर्ग से ही सबंधित थी। बाकी जातियां स्वर्णों या उच्चजातियों से संबंधित थी जिन्हें उजलीपराज कहा जाता था। कालिपराज जनता के

लोगों हेतु कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने छः आश्रम भी खोले थे आश्रम बारदोली के भिन्न भिन्न स्थानों पर स्थापित किये गए। इन आश्रमों के माध्यम से लोगों में शिक्षा प्रसार, शोषण, अन्याय के विरूद्ध आन्दोलन की प्रेरणा दी गयी।

बारदोली इलाके में कुवंरजी मेहता और केशवजी गणेश ने आदिवासियों की भाषा व बोली को सीखा। **कालिपराज साहित्य** की रचना की। विभिन्न गद्य लेखों व कविताओं के माध्यम से कालिपराजाओ में विद्यमान सामाजिक कुरीतियों पर हमला किया। बंधुआ मजूरी (होली पद्धति) के विरूद्ध आवाज उठायी।

इस समय बारदोली क्षेत्र में भजनमण्डलियों ने, विभिन्न स्थानों का भ्रमण कर सामाजिक सुधारो को करने का आव्हान किया। इस समय आश्रम के कार्यकर्त्ताओं की जमींदारों तथा ऊँची जातियों के लोगों के संघर्ष की स्थिति भी उत्पन्न हुयी। 1922 ई. के पश्चात के प्रतिवर्ष कालिपराज सम्मेलन का आयोजन होता था। 1927 ई. के वार्षिक सम्मेलन की अध्यक्षता महात्मागांधी जी ने की थी जिसके द्वारा एक जांच समिति का गठन किया गया। गांधी जी ने इस समय कालिपराज का नाम बदलकर रानीराज अर्थात् जंगल के वासी रख दिया था।

बारदोली क्षेत्र के कृषक विद्रोह की कड़ी में गुजरात के नेताओं नरहरि पारेख, जगतराम दवे का महत्वपूर्ण प्रयास था कि उन्होंने वहां विद्यमान होली पद्धति को अमानवींय तथा शोषणपूर्ण प्रणाली बताया। इन नेताओं ने अपने प्रतिवेदन में यह विचार रखा कि सूदखोर और जमींदार गरीब कालिपराज जनता का आर्थिक और यौन शोषण कर रहे है। आश्रम के कार्यकर्त्ता भूमिधर किसानों के बीच भी सक्रिय थे। 1926 ई. में जब पुनरीक्षण अधिकारी ने लगान में 30 फीसदी की बढ़ोतरी की सिफारिश की तो कांग्रेस नेताओं ने इसका विरोध किया। इस की जांच हेतु बारदोली जांच समिति का गठन किया। समिति ने 1926 ई. में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें लगान वृद्धि को अनुचित बताया गया। लगान वृद्धि के विरूद्ध **यंग इण्डिया, बाम्बेक्रानि कल, बाम्बे** समाचार, देशबन्धु, आदि समाचार पत्रों ने प्रकाशन कार्य किया।

1927 ई. में विधान परिषद के सदस्यों ने भी लगान वृद्धि के मुद्दे को उठाया। बारदोली के **खेदुत मंडल** में कृषकों की बैठकें आयोजित की गयी थी। 1927 ई. में किसानों का एक प्रतिनिधि मण्डल भीम भाई नाईक और शिव दासानी के नेतृत्व में बम्बई सरकार के राजस्व विभाग के प्रमुख अधिकारी से मिला। परिणाम स्वरूप सरकार ने लगान की वृद्धि 30 प्रतिशत से घटाकर 21.97 फीसदी कर दी थी। लेकिन कृषक व कार्यकर्ता इससे सन्तुष्ट नहीं थे। इस समय 60 गांवों के प्रतिनिधियों की बैठक कादोद संभाग के **कामनो गांव** में हुयी, जिसमें वल्लभ भाई पटेल को आन्दोलन का नेतृत्व करते के लिए औपचारिक रूप से आमंत्रित किया गया और जनवरी 1928 ई. के अंतिम सप्ताह में किसान समिति के सदस्य वल्लभ भाई को बारदोली आने का निमंत्रण देने के लिए अहमदाबाद गए। वल्लभ भाई पटेल 4 फरवरी 1928 ई. को बारदोली पहुंचे तथा किसानों के प्रतिनिधियों एवं संविधानवादियों से वार्तालाप की। पटेल ने

बम्बई के गवर्नर को पत्र लिखा कि लगान निर्धारण अनुचित नियम पर आधारित है। जिसकी जांच की जानी चाहिए।

12 फरवरी 1928 ई. में पटेल ने किसानों को लगान की अदायगी करने का निर्णय लिया। कृषकों ने इस समय प्रभु के नाम पर शपथ ली कि वे लगान नहीं देंगे। इस समय बारदोली में सत्याग्रह प्रारम्भ हो गया। वल्लभ भाई पटेल को सरदार की उपाधि दी गयी।

सरदार वल्लभ भाई पटेल ने बारदोली के पूरे इलाके को 13 कार्यकर्ता में बांट दिया था और प्रत्येक शिविर के संचालन के लिए एक–एक अनुभवीं नेता तैनात किए गए। प्रान्त के विभिन्न हिस्सों के लगभग 100 राजनीतिक कार्यकर्ता तथा 1500 स्वयंसेवीं जिसमें अधिकतर छात्र थे इस आन्दोलन की सेना थे। इस समय प्रकाशन विभाग की भी स्थापना की गयी। जहां से प्रतिदिन **बारदोली सत्याग्रह पत्रिका** का प्रकाशन होता था जिसमें सरल, व्यंग्यपूर्ण शैली में लेख प्रकाशित होते थे। आन्दोलन का अपना **गुप्तचर विभाग** भी था इस खुफिया विभाग का यह काम था कि कहीं कोई लगान तो नहीं रहा है। यदि दे रहा है अथवा देने का विचार कर रहा है तो उसे रोका जाता था। विभाग यह भी पता लगाता था कि सरकार अब क्या करने जा रही है।

बारदोली के कृषकों में संघर्ष के लिए जागृति उत्पन्न करने का कार्य मुख्य रूप से बैठकों, भाषणों, परचों के माध्यम से तथा घर–घर भ्रमण करके किया गया। महिलाओं को भी जागरूक करने का प्रयास किया गया। इस कार्य के लिए बम्बई की पारसी महिला मीठूबेन पेटिट, भक्तिबा (गोपालदास की पत्नी) मनीबेन पटेल (सरदार वल्लभ भाई की बेटी) शारदा बेन शाह और शारदा मेहता को विशेष रूप में लगाया गया था।

बारदोली के कृषक विद्रोह में निम्न जातियों–धोबी, कुम्हार, कहार, मजदूर, नाई आदि का तथा ग्राम पंचायतों का पूर्ण सहयोग रहा। परिणाम स्वरूप सरकारी अधिकारियों को खाद्य सामग्री, वाहन तथा आवश्यक वस्तुओं से वंचित रहना पड़ा। नौकर–चाकर भी नहीं मिल रहे थे। स्पष्ट है कि कृषक विद्रोह में अन्य वर्ग के लोगों का भी सक्रिय योगदान रहा। इस समय सरकार के समर्थक आदि भी कृषकों के खेमे में आने लगे तथा समर्थन करने लगे। कांग्रेस के नेताओं ने **सर्वेंट आफ इण्डिया सोसायटी** से अनुरोध किया कि वह किसानों की तमाम शिकायतों की जांच करें। जांच के पश्चात् सोसायटी ने जो रिपोर्ट दी उससे नरमपंथी नेता किसान संघर्ष के समर्थक हो गए। कृषक आन्दोलन की गतिविधियों के परिणाम स्वरूप गवर्नर की कार्यकारी परिषद भी दमनकारी सत्ता का समर्थन करने के पक्ष में नहीं थे। गवर्नर विलसन पर दवाब डाला गया कि वह मामले को शीघ्र निपटाने ब्रिटेन की संसद में भी कृषकों की समस्याओं के संबंध में चर्चाएं होने लगी।

बम्बई प्रेसीडेंसी के विभिन्न हिस्सों में किसान अपने लगान के पुन: निर्धारण के लिए आन्दोलन की धमकी दे रहे थे। जन समस्याओं और प्रदर्शनों की गतिविधियां निरन्तर बनी हुयी थी। 2 अगस्त 1928 ई. के दिन महात्मा गांधी बारदोली पहुंचे। इस समय सरदार पटेल व गांधी जी की सक्रिय गतिविधियों के कारण न्यायिक अधिकारी ब्रूम फील्ड और राजस्व अधिकारी मैक्सवेल ने सारे मामले की जांच की और अपने प्रतिवेदन में लिखा की 30 प्रतिशत लगान बढ़ोतरी अन्याय पूर्ण व गलत थी। इसे घटाकर 6.03 प्रतिशत कर दिया गया। इस संदर्भ में

लंदन में प्रकाशित **न्यूस्टेट्समैन** ने 5 मई 1929 ई. के अपने अंक में लिखा था कि जांच समिति की रिपोर्ट सरकार के मुंह पर तमाचा है ..... इसके दूरगामी परिणाम होंगे.....

9.6 चम्पारन, खेड़ा एवं बारदोली के किसान आन्दोलन का महत्व:

आधुनिक भारतीय इतिहास एवं भारत में हुए कृषक आन्दोलन की पृष्ठभूमि में चम्पारन, खेड़ा तथा बारदोली के किसान आन्दोलन का ऐतिहासिक महत्व माना जाता है। इन आन्दोलनों के विस्तृत, विश्लेषणात्मक विवेचन के आधार पर यह तथ्य उजागर होता है कि ये कृषक विद्रोह अन्य किसान विद्रोह की तुलना में अधिक प्रभावीं एवं सफल आन्दोलन थे। इन विद्रोहों में कृषकों को काफी सीमा तक विजय प्राप्त हुयी एवं दमनकारी सरकार को इन विद्रोहियों के समक्ष झुकना पड़ा अथवा उनकी समस्याओं को दूर करने के लिए कार्यशील होना पड़ा। इन कृषक विद्रोह के विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दृष्टि से प्रभाव हुए, जिनका वर्णन निम्नांकित रूप में विवेचित किया जा सकता है।

(1) चम्पारन, खेड़ा एवं बारदोली कृषक विद्रोह का महत्व इस रूप में महत्वपूर्ण माना जाता है कि इन विद्रोहों के परिणाम स्वरूप अंग्रेजी सरकार कृषकों के हितों, उद्देश्यों के अनुरूप कार्य करने के लिए तत्पर हुयी सरकार ने कृषकों को जमींदार, साहूकारों आदि के शोषण, अत्याचार से बचाने, उन्हें राहत पहुंचाने की नीति को अपनाना प्रारम्भ किया।

(2) इन विद्रोहों का यह महत्वपूर्ण परिणाम हुआ कि सरकार ने कृषकों के द्वारा जो भूराजस्व एवं लगान भुगतान किया जाता था उसके भुगतान की दर व राशि में न्यायोचित धन राशि का निर्धारण किया जिसकी वसूली नियमानुसार किए जाने की व्यवस्था की जाने लगी। इससे भी कृषकों को सहयोग व राहत मिली।

(3) कृषक आन्दोलन के कारण भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला चम्पारन, खेड़ा व बारदोली कृषक आन्दोलन के भी स्वरूप थे। इन आन्दोलनों को महात्मागांधी जी का नेतृत्व विशेष रूप में मिला। परिणाम स्वरूप कृषक आन्दोलन को सफलता मिलने के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता का भी मार्ग प्रशस्त हो सका।

(4) कृषक आन्दोलनों का **भारतीय स्वराज्य** के संदर्भ भी उल्लेखनीय महत्व माना जा सकता है। क्योंकि कृषक आन्दोलनों जिनमें चम्पारन, खेड़ा, बारदोली प्रमुख थे उनके परिणाम स्वरूप स्वराज्य आन्दोलन के नेता व कार्यकर्ता भारतीयों की स्वतंत्रता के नजदीक आ गए थे और उन्हें यह प्रेरणा मिली की वे भारतीयों कौ स्वतंत्रता हेतु अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध राष्ट्रीय व स्वतंत्रता आन्दोलन को तीव्रता व सक्रिय रूप प्रदान करें।

(5) कृषक आन्दोलनों के विशेष संदर्भ में चम्पारन, खेड़ा, बारदोली कृषक विद्रोही की यह भी प्रमुख विशेषता रही कि इस आन्दोलन को कांग्रेस कार्यकर्ताओं, संगठनों, आश्रमों, विभिन्न वर्गों से संबंधित लोगों के अतिरिक्त अंग्रेजी सरकार के समर्थकों का भी समर्थन मिला। परिणाम स्वरूप ये कृषक विद्रोह अपने उद्देश्य में सफल हुए। इस दृष्टि से बारदोली कृषक विद्रोह की उल्लेखनीय देन मानी जा सकती है।

(6) चम्पारन, खेड़ा एवं बारदोली कृषक विद्रोहों की यह भी उल्लेखनीय विशेषता रही कि इन तीनों कृषक विद्राहों को अन्य कार्यकर्ताओं के अलावा विशेष रूप में महात्मा गांधी जी का सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ। गांधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमिका में कृषक विद्रोहों को उचित दिशा, निर्देश प्रदान कर कृषक आंदोलनों को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

9.7 सारांश

इस प्रकार चम्पारन, खेड़ा तथा बारदोली के कृषक विद्रोहों का विस्तृत विवेचन करने से यह ऐतिहासिक जानाकारी प्राप्त होती है कि कृषक विद्रोही के संदर्भ में ये कृषक आन्दोलन भारतीय इतिहास एवं अर्थव्यवस्था में अपना उल्लेखनीय स्थान रखते हैं। भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन तथा स्वतंत्रता संघर्ष के विशेष संदर्भ में चम्पारन, खेड़ा एवं बारदोली के कृषक आन्दोलन का प्रमुख योगदान रहा।

चम्पारन, खेड़ा एवं बारदोली के कृषक विद्रोह को प्रोत्साहित करने वाली विभिन्न आर्थिक सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियां थी, जिनके उक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इन क्षेत्रों के कृषकों के प्रति शोषण अत्याचार लगान फ़ी अत्यधिक वसूली, सरकार की उपेक्षा पूर्ण नीति विद्यमान थी।

आन्दोलनों के विश्लेषणात्मक विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि कृषकों ने संगाठित होकर सरकार, साहूकारों व जमींदारों के विरूद्ध आन्दोलन किया। इन आन्दोलनों को प्रभावीं व सक्रिय बनाने में महात्मा गांधी, सरदार वल्लभ भाई पटेल व अन्य सहयोगियों का योगदान रहा। चम्पारन, खेड़ा तथा बारदोली के कृषक विद्रोह काफी सीमा तक सफल रहे। परिणाम स्वरूप कृषकों के लगान में कमी, उनके शोषण व अत्याचार कम करने आदि स्थिति को प्रोत्साहन मिला। इसके अतिरिक्त भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन स्वतंत्रता आन्दोलन को भी विशेष बल मिला।

इस प्रकार चम्पारन, खेड़ा व बारदोली के कृषक विद्रोह आधुनिक इतिहास व कृषक आन्दोलनों की श्रेणी में उल्लेखनीय व महत्वपूर्ण विद्रोह माने जाते हैं।

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न–1

निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर पांच पंक्तियों मे लिखिए –

1. चम्पारन, खेड़ा एवं बारदोली के कृषक आन्दोलन से पूर्व हुए कृषक विद्रोही का उल्लेख कीजिए।

---

2. चम्पारन, खेड़ा एवं बारदोली के कृषक विद्रोही की प्रकृति को समझाइए।

---

3. चम्पारन, खेड़ा एवं बारदोली के कृषक विद्रोह के समय कृषकों की स्थिति का उल्लेख कीजिए।

---

4. चम्पारन, खेड़ा एवं बारदोली के कृषक विद्रोही को प्रोत्साहित करने हेतु विभिन्न कार्यकर्ताओं, संगठनों का उल्लेख कीजिए।

---

5. **तिनकठिया पद्धति** का अर्थ समझाइये। इस पद्धति में किस प्रकार का सुधार लाया गया।

---

6. पंजाब लैण्ड ऐलीनेशन एक्ट 1902–3 ई. के ऐतिहासिक महत्व को लिखिए

---

7. क्षेत्र में विद्यमान हाली पद्धति को स्पष्ट कीजिए।

---

8. बारदोली आन्दोलन को सक्रिय बनाने में महिलाओं के योगदान का वर्णन कीजिए।

बोध प्रश्न– 2

निम्नांकित वाक्यों को पढ़कर उनके सम्मुख सही (✓) अथवा गलत (×) का चिन्ह अंकित करें।

(1) भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन तथा महात्मा गांधी द्वारा प्रारम्भ किए गए के संदर्भ में चम्पारन, खेड़ा एवं बारदोली कृषक विद्रोही का विशेष महत्व माना जाता है ( )

(2) चम्पारन के कृषक विद्रोह का प्रमुख कारण वहां प्रचलित तिनकठिया का दोषपूर्ण होना था जो कि नील की खेती से संबंधित थी। ( )

(3) चम्पारन में जमींदार, साहूकार एवं सरकार कृषकों का शोषण नहीं करते थे ( )

(4) बारदोली के कृषक विद्रोह का प्रमुख कारण कृषकों द्वारा लगान का नहीं किया जाना था। ( )

(5) बारदोली के कृषक विद्रोह को महात्मा गांधी जी के द्वारा प्रारम्भ किए गए आन्दोलन का सक्रिय सहयोग मिला था। ( )

(6) खेड़ा के कृषक विद्रोह को गुजरात सभा का सक्रिय योगदान मिला जिसके अध्यक्ष महात्मा गांधी थे। ( )

(7) बारदोली क्षेत्र में अनाविल ब्राह्मण तथा पट्टीदार महत्वपूर्ण बिरादरियां थी नाम से आश्रम की स्थापना की गयी थी। ( )

(8) बारदोली के आदिवासी, अछूत व निम्न जातियों को कहा जाता था। ( )

(9) स्वर्णों या उच्चजातियों को बारदोली में उजलीपराज कहा जाता था। ( )

(10) कालिपराज साहित्य की रचना महात्मा गांधी जी ने की थी। ( )

(11) गांधी जी ने कालिपराज के स्थान पर रानीपराज अर्थात जंगल के वासी रख दिया था। ( )

बोध प्रश्न –3

निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में लिखिए :

(1) चम्पारन के कृषक विद्रोह के कारणों का वर्णन कीजिए?

(2) खेड़ा के कृषक विद्रोह की परिस्थितियों का विवेचन कीजिए?

(3) उन परिस्थितियों का विवेचन कीजिए जिनके कारण बारदोली के कृषक विद्रोह को प्रोत्साहन मिला?

(4) चम्पारन, खेड़ा व बारदोली के कृषक विद्रोहों में महात्मा गांधी जी के योगदान का वर्णन कीजिए?

(5) चम्पारन, खेड़ा तथा बारदोली के कृषक विद्रोही के महत्व को समझाइये?

9.9 संदर्भ ग्रंथों की सूची

(1) नटराजन - "पीजेन्ट अपराइजिंग इन इण्डिया"।

(2) डी. एन. धनाग्रे - "पीजेन्ट मूवमेन्ट इन इण्डिया"।

(3) डा. ताराचन्द - "फीडम स्ट्रगल इन इण्डिया" खण्ड–2, 3।

(4) विपिन चन्द्र – "भारत का स्वतंत्रता संघर्ष"।

(5) एन जी. रंगा एण्ड स्वामी सहजानन्द - "हिस्ट्री आफ दी किसान मूवमेंन्ट्स"।

(6) थोर्नर – "अग्रेरियन प्रोस्पेक्ट्स इन इण्डिया"।

(7) ए.आर. देसाई - "पीजेर स्ट्रगल्स इन इण्डिया"।

(8) एस. सेन – "अग्रेरियन रिलेशन्स इन इण्डिया"।

(9) अलवीं - "पीजेन्ट एण्ड रिवोल्यूशन्स"।

(10) बी एल. ग्रोवर एवं यशपाल – "आधुनिक भारत का इतिहास"।

(11) बेडन पावल - "लैण्ड रेवन्यू इन ब्रिटिश इण्डिया"।

(12) आर. सी. दत्त - "दी इकानामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया"।

(13) डी.एन. धनाग्रे - "एग्रेरियन मूवमेन्ट्स एण्ड गांधीयन पालिटिक्स"।

(14) जी. ब्लिन - "एग्रीकल्चरल ट्रेन्ड्स इन इण्डिया" (1891–1947 ई.)।

(15) एल पी. शर्मा – "आधुनिक भारत"।

इकाई – 10

बिजोलिया में सामंती एवं उपनिवेशी शासन के विरूद्ध कृषक विद्रोह (1887– 1930)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 बिजोलिया आन्दोलन की भूमिका और कारण 1887–1922
10.3 बिजोलिया आन्दोलन का प्रभाव और बेगूं आन्दोलन
10.4 बिजोलिया आन्दोलन – द्वितीय चरण 1927–1930
10.5 सारांश
10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
10.7 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे –

- राजस्थान के दक्षिण पूर्वी भाग में स्थित मेवाड़ रियासत में किसानों की अत्यन्त दयनीय स्थिति तथा उसे किस प्रकार से असहनीय कर प्रदान करने पड़ते थे।
- मेवाड़ रियासत के किसानों को किस प्रकार से सामंती एवं उपनिवेशी शासन के दोहरे दबावों में जीवन यापन करना पड़ रहा था।
- बिजोलिया में ऐसे कौन से कारण थे जिनके वशीभूत होकर इस क्षेत्र के किसानों ने सामंती एवं उपनिवेशी शासन के विरूद्ध विद्रोह किया और यह आंदोलन कैसे सफल हुआ।
- भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को इस किसान आंदोलन ने किस प्रकार प्रभावित किया।

10.1 प्रस्तावना

इस इकाई में बिजोलिया किसान आन्दोलन का विवरण दिया गया है तथा इस आंदोलन को 1855–57 के मध्य संथाल किसानों, 1860 के नील की खेती करने वाले किसानों तथा 1872–73 एवं 1875 के पाबना और बोगरा एवं मराठा किसानों के आन्दोलनों के संदर्भ में समझने का प्रयत्न किया गया है। इस इकाई में इस आंदोलन की सफलता के कारणों तथा उन कारकों का भी विश्लेषण किया गया है जिनके वशीभूत होकर यह स्वत : स्फूर्त आन्दोलन पनपा।

10.2 बिजोलिया आन्दोलन की भूमिका और कारण 1887–1922

राजस्थान में भूप्रबन्ध की व्यवस्था देश के अन्य भागों की तुलना में विशिष्ट व भिन्न थी इस व्यवस्था के अन्तर्गत किसान भूमि का स्वामी म होकर केवल खेतिहर मजदूर ही था। इस दृष्टि से मेवाड़ की स्थिति और भी अधिक दयनीय थी। ब्रितानी साम्राज्यवाद के बावजूद भी

मेवाड़ संवैधानिक एवं प्रशासनिक सुधारों की दृष्टि से पिछड़ा हुआ था। इन सुधारों के अभाव में सामान्य किसान को अनेक असहनीय करों का बोझ ढोना पड़ रहा था जिसके फलस्वरूप कृषक समुदाय में अत्यन्त उत्तेजना एवं असंतोष भरा हुआ था। इसके प्रमाण 19वीं सदी के अंत व 20वीं सदी के कम में देखने को मिलते है।

समस्त राजस्थान और मेवाड़ में सर्वप्रथम किसान आंदोलन का श्रेय बिजोलिया को जाता है। बिजोलिया तत्कालीन मेवाड़ राज्य का प्रथम श्रेणी का ठिकाना था। यह प्रचलित भाषा में "ऊपर माल" नाम से विख्यात था। इसके पूर्व में बूंदी, उत्तर–पश्चिम में मेवाड़ का खालसा प्रदेश और दक्षिण में ग्वालियर की सीमाएं मिली होने के कारण यहाँ के किसानों का सीमावर्ती क्षेत्रों के किसानों से सम्बन्ध व व्यवहार था। यातायात की सुविधा के अभाव में इस क्षेत्र के समुदाय की जीविका का मुख्य आधार कृषि व पशुपालन था। ऐसी स्थिति में भूराजस्व और लाग–बेगार का प्रश्न यहाँ के किसानों के लिए अत्यन्त गंभीर संकट उत्पन्न कर देता था।

बिजोलिया के किसानों ने संगठित रूप में प्रथम बार असंतोष के विरूद्ध प्रदर्शन किया जो 1897 में हुआ, जब गिरधरपुरा गाँव के गंगाराम धाकड़ के पिता के मृत्यु भोज के अवसर पर किसान एकत्र हुए तो स्वाभाविक रूप से उनका आपसी समस्याओं पर विचार–विमर्श हुआ। जिसके फलस्वरूप उन्होंने यह निर्णय लिया कि हम, किसानों की ओर से बेरीसाल गाँव के नानजी पटेल व गोपाल निवास के ठाकरी पटेल, उदयपुर जाकर महाराणा को अपने कष्ट कहें। परिणामस्वरूप महाराणा से वे आकर मिले और महाराणा ने सहायक माल हाकिम को बिजोलिया भेजा परन्तु वह प्रमाणों के अभाव में लागतों व बेगारों के अनौचित्य को सिद्ध न कर सके और किसानों का यह प्रथम प्रयास असफल हो गया। "1899–1900 के भीषण दुर्भिक्ष में कुल 12670 वर्ग मील के क्षेत्र में से कुल 9513 वर्ग मील क्षेत्र में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा था"। "इसी वर्ष हैजा भी एक महामारी के रूप में फैल गया जिसने किसानों को निम्नतम स्तर का जीवन व्यतीत करने पर विवश कर दिया था"। लगान की ऊँची दरों, विभिन्न प्रकार की लाग–बेगार तथा ऋण की ऊँची ब्याज दरों के कारण किसान भुखमरी व अर्धमानवींय जीवन व्यतीत कर रहे थे। उपयुक्त विपरीत परिस्थतियों के कारण रियासत में कृषकों को महाजनों से राहत दिलाने हेतु "तकावीं" को प्रारंभ किया जिससे किसानों को कुछ राहत अनुभव हो सके इसके अन्तर्गत किसानों को सहायता हेतु काफी धन बांटा गया।

लागतों और बेगारों के इतिहास से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में जो लाग–बेगार किसान राज्य व ठिकाने को प्रदान करते थे, उनका आधार पारस्परिक समझौतों होता था। धीरे–धीरे इन लाग बेगारों का स्वरूप बदलता गया और ठिकानेदारों ने अपने वैभव व सुख को अधिक बेहतर बनाने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार की गैर–जरूरी लाग–बेगार किसानों पर लगा दी जिनमें से कुछ बेगार तो ऐसी थी जो किसानों की मृत्यु तक का कारण बन जाती थी।

1900 के दुर्भिक्ष से किसान सम्पन्न भी नहीं पाए थे कि 1903 में बिजोलिया में एक नया कर "चंवरी" लगा दिया गया। इस अमानवींय कर से पीड़ित होकर किसान राव कृष्ण सिंह से मिले तथा उनसे इस कर को समाप्त करने की विनय की, राव द्वारा उनकी बात न माने

जाने पर किसानों ने विरोध स्वरूप को जोतना छोड़ दिया तथा वे समीपवर्ती क्षेत्रों को चले गये। इस निर्वसन का परिणाम यह हुआ कि राव को "चंवरी" के साथ अन्य बेगारों को भी समाप्त करना पड़ा तथा किसानों ने उन्हें भूमि परती. न छोड़ने का वचन दिया।

1906 में राव कृष्णा सिंह की नि:सन्तान मृत्यु हो गई और ठिकाने की गद्दी पर पृथ्वी सिंह बैठे पृथ्वी सिंह ने शासन को संभालने ही "तलवार बन्दी" नयी लाग किसानों पर आरोपित कर दी। इसके विरोध में किसानों ने 1913 में जागीरदार के महल पर धरना दे दिया, परन्तु इससे कोई परिणाम निकलता न देख किसानों ने पुन: एक बार भूमि को परती रख दिया और वे अपने जीवन यापन हेतु समीपवर्ती क्षेत्रों पर खेती करने लगे। यह आंदोलन काफी संगठित था। इस बार लगभग 15,000 किसानों ने भूमि को परती छोड़ा था। इस आंदोलन का नेतृत्व करने वालों में साधु सीताराम दास, फतेहलाल चारण, पं. ब्रह्मदेव दाधीच, नाथूलाल कामदार व रामजीलाल सुनार के नाम प्रमुख थे। इस संगठित आंदोलन का परिणाम यह हुआ कि इसके नेताओं को विभिन्न प्रकार से दंडित किया गया तथा किसानों को भयभीत करने की कोशिश की गई। अंत में 81 प्रकार की लाग बेगारों में से 6 लागों को समाप्त कर दिया गया। इसी वर्ष राव पृथ्वी सिंह का शरीर शान्त हो गया और उनका अल्प वयस्क पुत्र बिजोलिया का जागीरदार बना। पुत्र की अल्पावस्था के कारण दरबार में अमर सिंह रणावत को 'मुसरिम' व डूंगर सिंह भाटी को 'सहायक मुसरिम' नियुक्त किया गया। यह किसानों का सौभाग्य था कि उन्हें मुसरिम के रूप में ऐसे व्यक्ति प्राप्त हुए जो किसानों के हित चिन्तक थे तथा इस दृष्टि से उसने किसानों द्वारा ठिकाने को दिये जाने वाले हिस्से को 1/3 करने की अनुशंसा महकमा खास से की तथा कामदार हीरालाल को महकमा खास से आदेश लेने भेजा परन्तु दो कामदार हीरालाल तथा मुन्शी अजीज मोहम्मद ने, जो ठिकानेदारों के हमदर्द थे तथा उनका हित साधन में ही उनकी सुरक्षा थी, किसानों को बहला–फुसला कर इस बात के लिए तैयार कर लिया कि वे बेदलाराव को अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर लेवें। किसानों के इस भोलेपन के कारण कोई उपयुक्त निर्णय नहीं हो सका, अन्तत: किसानों को इस निर्णय को स्वीकार कर 1914 में परती रखी भूमि को पुन जोतना और बोना स्वीकार करना पड़ा।

इसी मध्य दो और घटना ऐसी घटित हुई जिसने किसान असन्तोष को और अधिक गहरा कर दिया। 1916 ई. में मेवाड़ रेजीडेन्ट के बिजोलिया आगमन के अवसर पर बेगार करते समय गिरधारी कुम्हार की मृत्यु हो गयी थी। इसी क्रम में 1917 में बिजोलिया राव की माता राणावत जी को "घाडेना–धूणा" की माताजी के दर्शन हेतु जाना पड़ा था जिसमें किसानों को 15 दिन की बेगार करनी थी, अत: किसानों ने जब इस बेगार का प्रतिरोध किया तो मारपीट कर बेगार के लिए विवश किया गया। परिणामस्वरूप बेगार से लौटने पर 300 किसानों ने बेगार न देने की प्रतिज्ञा की। दृढ़ प्रतिज्ञा होने के पश्चात् भी किसान नेतृत्व के अभाव में दिशाहीन और असफल ही रहे और इसी कमी को विजय सिंह पथिक आने वाले वर्षों में पूरा किया। जनवरी 1915 में पथिक, जिनका वास्तविक नाम, भूप सिंह था, रामबिहारी बोस के आदेश पर राजस्थान आ गये थे, क्योंकि ब्रितानी खुफिया पुलिस को उनकी तलाश थी। राजस्थान में सुरक्षा

के लिए इधर–उधर भटकने के पश्चात् पथिक चित्तौड़ के समीप ओछड़ी के ठाकुर गोपाल सिंह के पास आ गए। यही पथिक ने बिजोलिया आकर कुछ किसान नेताओं से सम्पर्क किया। कुछ दिनों पश्चात् पथिक ने ओछड़ी भी छोड़ दिया और वे अपने मित्र ईश्वरीदान के निवास पर बिजोलिया में रहने लगे। बिजोलिया आकर उन्होंने विद्या प्रचारिणी की भी स्थापना की जिसके माध्यम से उन्होंने एक पुस्तकालय, पाठशाला व अखाड़े को भी विकसित किया। इस कार्य में डूंगर सिंह भाटी का सहयोग उन्हें प्राप्त हुआ जिससे उसको विस्मित नहीं किया जा सकता। क्योंकि उनके सहयोग के अभाव में यह कार्य सम्पन्न होना संभव नहीं था। सभा के माध्यम से जहाँ उन्होंने एक ओर तो विद्यार्थियों में शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का संचार किया, वही दूसरी ओर रात्रि में उन्होंने सभा के माध्यम से अन्य कार्य–कर्ताओं के साथ गाँव–गाँव की यात्रा की तथा किसानों को संगठित कर ठिकाने के अत्याचारों के विरूद्ध लड़ने के लिए उत्साहित किया। इस समय ठिकाने की स्थिति भी काफी दयनीय थी। एक ओर तो 1916 के भीषण अकाल से उन्हालू की फसल पूरी प्रकार से नष्ट हो गयी थी, दूसरी ओर ठिकाने के अधिकारी रियासत की पुलिस के साथ मिलकर प्रथम महायुद्ध में दिए जाने वाले चन्दे को निर्ममता से वसूल कर रहे थे। इन सभी परिस्थितियों ने पथिक के अनुकूल रुख बना दिया और वे किसानों को संगठित कर विद्रोह के लिए प्रेरित कर सकने में सफल हो सके। जब इस प्रकार के समाचार रेजीडेन्सी पहुँचे तो रेजीडेन्ट ने मुंसिफ के पास पथिक को गिरफ्तार करने के आदेश प्रेषित किए। परन्तु पथिक अपनी कुशल क्रान्तिकारी योजना के कारण मुंसिफ के सहयोग से बिजोलिया से सुरक्षित जाने में सफल हो सके। यहाँ से पथिक दरलाजी पटेल के घर पहुँचे तथा प्रात: काल होने से पूर्व ही वे यहाँ से निकल भागे तथा गाँव –गाँव घूमते हुए अनेक स्थानों – बैरीसाल निवास, उमाजी का खेड़ा, गोविन्द निवास, हजीरापुर में छिपकर रहे। यहाँ से पथिक ग्वालियर राज्य के सिंगोली क्षेत्र में चले गए, यहाँ उन्होंने प्लेग से ग्रस्त बीमार व्यक्तियों का उपचार किया तथा साथ ही साथ वह यहाँ राष्ट्रीय व राजनीतिक चेतना के प्रचार–प्रसार का कार्य भी करने लगे। यहाँ भी पुलिस ने उनका पीछा नही छोड़ा।

बिजोलिया में रहते हुए पथिक इस बात से परिचित हो चुके थे कि बितानी खुफिया पुलिस की गतिविधियों के कारण उन्हें कभी भी बिजोलिया छोड़ना पड़ सकता है। अत: इस दृष्टि से उन्होंने एक ओर तो अत्यन्त द्रुतगति से किसानों को संगठित करने का काम किया, दूसरी ओर उन्होंने ऐसे कार्यकर्ताओं का निर्माण करना भी प्रारम्भ किया जो उनकी अनुपस्थिति में नेतृत्व का संचालन सफलतापूर्वक कर सके। ऐसे व्यक्तियों में माणिक्यलाल वर्मा का नाम अग्रणी है। माणिक्यलाल वर्मा ने पथिक का सहयोगी बनने के पश्चात् आजीवन उनके बताये मार्ग का अनुसरण करने का अखण्ड व्रत लिया था। जब पथिक बिजोलिया से चले गए तब किसानों के नेतृत्व को सफलतापूर्वक संचालित भी किया। वर्मा जी के अलावा डूंगर सिंह भाटी, साधु सीतारामदास, गणेश शंकर विद्यार्थी (तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के), हरिभाऊ उपाध्याय व रामनारायण चौधरी भी उन प्रमुख प्रथम पंक्ति के कार्यकर्ताओं में थे जिनके अभाव में किसान आन्दोलन की सफलता संदिग्ध थी। इस आन्दोलन के अन्तर्गत पथिक ने एक अन्य विशिष्टता का परिचय दिया जो उनकी क्रान्तिकारी विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। पथिक द्वारा नायब

मुंसरिम का सहयोग प्राप्त करना तथा उनकी व ईश्वरीदान की सहायता से बिजोलिया ठिकाने व रियासत के मध्य होने वाली लिखा–पढ़ी की समस्त सूचना प्राप्त करते रहना एक ऐसी सूझ–बूझ व दूर दृष्टि का परिचायक है जिसके कारण यह आन्दोलन अत्यधिक उग्र व प्रभावकारी हो सका। अस्तु पथिक ने किसानों को संगठित करने हेतु उन सभी तत्कालीन सूत्रों का उपयोग किया जो किसी भी आन्दोलन की सफलता के लिए आवश्यक होते थे। गाँव–गाँव घूम कर जन–जागराण करने के अलावा उन्होंने हस्तलिखित मेवाड़ी भाषा के पत्र को भी गाँव–गाँव पहुँचाने का प्रयत्न किया, ऐसे पत्र का नाम "ऊपरमाल का डंका" था तथा इसमें किसानों की समस्याओं तथा किसानों द्वारा मेवाड़ दरबार पूर्व ठिकाने से किए जाने वाले संघर्ष का विवरण होता था।

ब्रितानी शासन से बचने के लिए पथिक सीमावर्ती क्षेत्र में चले गए तथा उन्हें जैसे ही वर्मा जी का यह संदेश प्राप्त हुआ, कि किसान आन्दोलन के लिए तैयार है तथा आप शीघ्र आयें, वे शीघ्र उमाजी का खेड़ा पहुँच गए। यहाँ उन्होंने एक वींरान मकान को अपनी गतिविधियों का केन्द्र स्थल बनाया। किसानों को संगठित करने व आन्दोलन प्रारम्भ करते समय उन्हें यह भान हुआ कि किसानों के एक ऐसे संगठन की आवश्यकता है जो स्थाई संगठन हो। इस हेतु तथा आन्दोलन का श्री गणेश करने के उद्देश्य से उन्होंने हरियाली (श्रावणी) अमावस्या का दिन निश्चित किया। ठीक हरियाली अमावस्या के दिन सभी ऊपरमाल के किसान बेरीसाल गाँव में एकत्र हुए तथा उनके सामने किसानों के स्थाई संगठन की आवश्यकता का प्रस्ताव रखा गया, जिसमें पंचायत–बोर्ड की स्थापना का निर्णय लिया गया। इस प्रस्ताव का समर्थन तो प्राय सभी किसानों ने किया, परन्तु इस पंचायत का सरपंच होना किसी को भी स्वीकार नहीं था। अंत में पथिक ने मन्नाजी पटेल को इस महान ऐतिहासिक कार्य के लिए तैयार किया। पंचायत स्थापना इसलिए आवश्यक है। लगान बन्दी, लागतों व बेगारों के विरूद्ध आन्दोलन प्रारम्भ होगा तो यह आन्दोलन धीरे–धीरे सम्पूर्ण मेवाड़ व ब्रितानी शासन के विरूद्ध हो जाएगा। ऐसे समय में इन आंदोलन के परिणामों से निपटने के लिए पंचायत जैसा सुदृढ़ व व्यवहारिक संगठन आवश्यक था। यह पंचायत वित्तीय दृष्टि से मेवाड़ से बाहर के किसी भी संगठन या संस्था पर निर्भर नहीं थी तथा इनके स्वयं सेवकों ने ठिकाने के प्रशासन के समानान्तर इस प्रतिभा से शासन सूत्र का संचालन किया जिसके परिणाम स्वरूप किसान अपने आंदोलन को अधिक कारगर रूप से सम्पन्न कर सके। पंचायत के अलावा प्रत्येक गाँव में किसान सभा का गठन करना किसानों को एकताबद्ध करने की दृष्टि से आवश्यक था।

धीरे–धीरे किसान आन्दोलन तीव्रतर होता गया जिसके परिणाम स्वरूप ठिकाने व राज्य ने सम्मिलित रूप से दमन चक्र को तीव्रतर कर दिया। ठिकाने व राज्य के आंतक से किसानों ने घबराने के स्थान पर यह घोषणा की कि जब तक उनकी माँगों पर निर्णय नहीं लिया जायेगा तब तक हम किसी भी प्रकार की लगान व बेगार नहीं देंगे। प्रति उत्तर में राजा ने डूंगरसिंह भाटी जैसे उदारमना व्यक्ति के स्थान पर दीपलाल को और अन्तत माधोसिंह कोठारी को नायब–मुंसरिम बनाकर बिजोलिया भेजा जिससे वह अपनी दमनात्मक नीतियों से आन्दोलन को कुचल सके। परन्तु राज्य व ठिकाने को इसमें सफलता नहीं मिली। जिस समय बीजोलिया आन्दोलन का स्वरूप अपने उत्कर्ष पर था, उसी समय पथिक ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य यह

किया कि उन्होंने माणिक्यलाल वर्मा जैसे कार्यकर्ता को दिल्ली में दिसंबर 1918 में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में भेजकर आन्दोलन और उसके नेताओं को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने का प्रयत्न किया तथा स्वयं भी वह फरवरी 1918 में बम्बई गए और वहाँ गाँधीजी से मिले तथा उन्हें –आन्दोलन की प्रगति से परिचित कराया। इसके अतिरिक्त दिसम्बर 1919 व 1920 में पथिक ने अमृतसर व नागपुर के अधिवेशन में भाग लेकर आन्दोलन को एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में स्थापित कर बिजोलिया के किसानों की समस्या को एक सुदृढ आधार देने का यत्न किया, दूसरी ओर उन्होंने प्रताप, मराठा, अर्जुन, नवयुग संदेश, यंग राजस्थान, बॉम्बे क्रोनिकल जैसे समाचार पत्रों में इस आन्दोलन को प्रमुखता से स्थान दिलवाया उससे भी इस आन्दोलन का प्रभाव व्यापक हुआ।

पथिक के आह्वान व मन्नाजी पटेल के नेतृत्व में किसानों द्वारा किसी भी प्रकार की बेगार, चन्दा व ऋण न चुकाने का निर्णय पूर्व में ही लिया जा चुका था। जिस कारण ठिकाने के कर्मचारियों ने गोविन्द निवास गाँव के नारायण पटेल को गिरफ्तार कर लिया। कुछ समय पश्चात् सीतारामदास व प्रेमचन्द को भी बन्द कर लिया गया। इन बन्दियों से किसान विचलित न हुए। अन्तत 1300 किसानों ने एक ही प्रकार का बयान दिया "हमकों युद्ध का ऋण और चन्दा न देने हेतु किसी ने नहीं उकसाया.... हम भूखे और नंगे रहकर किसी भी प्रकार का चन्दा नहीं दे सकते है।"

मेवाड़ रियासत व ठिकाने द्वारा किए जाने वाले दमन चक्र की विस्तृत सूचना पथिक ने बाल गंगाधर तिलक को भेजी, जिसे तिलक ने अपने अंग्रेजी पत्र मराठा में विस्तार से प्रकाशित किया तथा उन्होंने महाराणा को भी उनके पूर्वजों के स्वतन्त्रता प्रेम का स्मरण कराते हुए यह लिखा कि ऐसा करना कलंक की बात है। पथिक इस तथ्य से परिचित थे कि ऐसे संकट के समय जब पुरुष आन्दोलन में व्यस्त है, घर की स्त्री का सम्बल बनाए रखना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा आन्दोलन को आघात पहुँच सकता है। इस हेतु उन्होंने स्त्रियों को भी सभाओं में भाग लेने के लिए उत्साहित किया। परिणामस्वरूप स्त्रियाँ भी सभाओं में एकत्र होने लगी। वे सभाओं में एकत्र होती तथा माणिक्यलाल वर्मा व द्वारा रचित गीतों को गाती। इसके फलस्वरूप स्त्रियों ने भी एक ऐसे वातावरण का किया जो आन्दोलन को गति प्रदान करने की दृष्टि से आवश्यक व अनुकूल था।

आन्दोलन के गतिवान होने पर ठिकाने तथा राज्य ने सम्मिलित रूप से दमन चक्र बढ़ा दिया, परिणामस्वरूप कुछ व्यक्ति आन्दोलन से हट गए। धीरे–धीरे राज्य ने यह निर्णय लिया कि राज्य व ठिकाने के कर्मचारी सरपंच अथवा पंचायत के नाम से भी प्रार्थना व आवेदन को स्वीकार नहीं करें। इस निर्णय के पीछे यह उद्देश्य कार्य कर रहा था कि इस प्रकार से पंचायत का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा और आन्दोलन को आघात पहुँचेगा। प्रतिक्रिया में बिजोलिया के किसानों ने पथिक के परामर्श के यह निर्णय लिया कि कोई भी किसान व्यक्तिगत व सम्मिलित रूप से बिना पंचायत के माध्यम से कोई भी आवेदन नही करेगा। इस निर्णय से ठिकाने व राज्य का बौखला जाना स्वाभाविक ही था।

इस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि अप्रैल, 1919 में महारानी ने एक जाँच कमीशन नियुक्त किया जिसके सदस्य मांडलगढ़ हाकिम बिन्दुलाल भट्टाचार्य। अफजल अली हाकिम दीवान तथा अमरसिंह राणावत थे। इसके पश्चात् महाराणा ने एक अन्य कमीशन 1920 में नियुक्त किया था जिसका उद्देश्य किसानों की शिकायतों को सुनना तथा उनका निराकरण करना था। कुछ पंच–बोर्डों ने इन कमीशनों की नियुक्ति का स्वागत किया तथा उन्होंने कमीशनों में किसानों के प्रतिनिधित्व की माँग की। कमीशन की होने पर यह निर्णय लिया गया कि जब तक कमीशन रिपोर्ट नही देता है तब तक आन्दोलन स्थगित रखा जायेगा। इस पंच–बोर्ड के सम्मुख अपना पक्ष रखने के लिए पंच बोर्ड ने साक्षियों की सूची तैयार की, जिसे आयोग के सम्मुख पेश करना था। 1920 के जाँच अयोग के सदस्य मेहता तख्तसिंह, पंडित रमाकान्त मालवींय और राव बेदला थे। कमीशन से कैदियों को छुड़ा लेना किसानों की एक ऐसी सफलता थी जिससे पंचायत की धाक जम गयी। अभी तक पंचायत में केवल धाकड़ ही अधिकारी थे, अब उसमें और जातियों के व्यक्ति भी अधिकाधिक संख्या में सम्मिलित हो गए। इससे ठिकाना क्रोधित हो उठे तथा उसके अधिकारियों ने उन जातियों के मुखिया को गिरफ्तार कर लिया। इससे किसान फिर आन्दोलित हो उठे और उन्होंने निर्णय लिया कि तुम माल की भूमि को जोतो और अहाण भूमि को परती छोड़ दो। परन्तु इसे ठिकाने ने स्वीकार नहीं। अंत में राज्य को यह आदेश देना पड़ा कि किसानों ने जिस भूमि को जोता है उसी की मालगुजारी ली जावे।

महाराणा फतेहसिंह द्वारा नियुक्त कमीशन में बिजोलिया पंचायत की ओर से माणिक्यंलाल वर्मा के नेतृत्व में मोतीचन्द खेड़ा, हीरालाल जावदा, गोकुल जावदा, गिरधरपुरा तथा कालूजी कल्याणपुरा ने भाग लिया था। इस कमीशन ने भी पूर्व के की भांति लागतों व बेगारों को समाप्त करने, मालगुजारी निश्चित करने तथा लाटा व कूंता समाप्त करने का निर्णय लिया। परन्तु अंत में जो फैसले की शर्ते निश्चित हुई दोनों ही पक्षों को स्वीकार्य नही थी। मालवींयजी ने भी किसी मान्य समझौते के लिए प्रयत्न किया, परन्तु कोई फैसला न हो सका।

उपर्युक्त फैसले के अभाव में पुन: सत्याग्रह प्रारम्भ हे गया। 1919 में पथिक बिजोलिया से वर्धा चले आए थे तथा यहाँ से उन्होंने राजस्थान केसरी पत्र निकालना प्रारम्भ कर दिया था, इस पत्र को जमनालाल बजाज द्वारा वित्तीय सहायता दी गई थी। अब बिजोलिया आन्दोलन का नेतृत्व पूर्ण रूप से मणिका लाल वर्मा के हाथों में आ गया था। इस बार बिजोलिया के किसानों को ठिकाने व राज्य दोनों की सम्मिलित दमन नीति का शिकार होना पड़ा परन्तु वर्मा के नेतृत्व में किसान पंचायत ने संयमित रहकर कार्य किया। वर्धा में भी पथिक निरंतर बिजोलिया के लिए चिंतित रहे। अन्तत: वह अजमेर आ गए और यहाँ से आन्दोलन का संचालन करने लगे। निरन्तर आन्दोलन से ठिकाने की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी तथा राव बिजोलिया के लिए दैनिक खर्चो को वहन करना भी कठिन हो गया था और वह बौखलाए हुए थे। ऐसे समय में पथिक ने अर्जुनलाल सेठी के बिजोलिया पहुँचने पर राव बिजोलिया से समझौते की इच्छा प्रकट की। बड़गाँव में ठिकाने व पंचायत प्रतिनिधियों के साथ सप्ताह भर चर्चा हुई, परन्तु बेगार प्रथा के प्रश्न पर ठिकानेदार सहमत नहीं हुए अत: कोई समझौता न हो

सका। पथिक ने समझौते के लिए प्रयत्न किया, वे स्वयं कोटा आए परन्तु ठिकाने के प्रतिनिधियों के अनुपस्थित रहने के कारण वे जयपुर चले गए। पथिक की अनुपस्थिति में राव बिजोलिया ने समझौता वार्ता पुन: प्रारम्भ करने का प्रयास किया, परन्तु किसान प्रतिनिधियों ने स्वीकार नहीं किया। पथिक ने रामनारायण चौधरी को समझौता करने की दृष्टि से बिजोलिया भेजा। राव बिजोलिया ने वार्ता करना तो दूर चौधरी को बिजोलिया से निकालने का आदेश प्रदान कर दिया। अन्त में पथिक के नेतृत्व में किसान प्रतिनिधि, ठिकानेदारों के प्रतिनिधि व पंचायत के पंच राजसगन सेवा संघ के कार्यालय में वार्ता के लिए एक साथ एकत्र हुए, 15 दिनों तक संधि वार्ता चलती रही। अंत में कुछ बातों पर ठिकाने के प्रतिनिधियों ने समझौते से इंकार कर दिया। आश्चर्य का विषय है कि इन्हीं बातों को उन्होंने बिजोलिया में आकर स्वीकार कर लिया, जिन पर वे अजमेर में सहमत नहीं थे। परन्तु किसानों ने पथिक की राय के बिना समझौता करने से इन्कार कर दिया। निरंतर आन्दोलन ने बिजोलिया के समीपवर्ती जागीरों में भी प्रभाव डालना प्रारम्भ कर दिया था। इससे ब्रितानी शासन घबरा उठा और ब्रितानी शासन ने ए.जी.जी. हॉलैण्ड, सेक्रेटरी ओगली मेवाड़ रेजीडेन्ट विल्किंसन को समझौते हेतु भेजा। मेवाड़ राज्य की ओर से प्रभासचन्द्र चटर्जी, बिहारीलाल सायर तथा ठिकाने की ओर से कामदार हीरालाल, फौजदार तेजसिंह व मास्टर जालिम सिंह ने भाग लिया।

5 फरवरी, 1922 को ब्रितानी प्रतिनिधि–मण्डल ने किसानों को बुलाया तो उन्होंने राजस्थान सेवा संघ के नुमाइन्दों को बुलाने पर बल दिया। फलत: संघ ने रामनारायण चौधरी को ए.जी.जी. के पास संधि वार्ता हेतु भेजा तथा सत्याग्रहियों की ओर से माणिक्यलाल वर्मा, सरपंच तथा मोतीचन्द्र गए। आठ दिन तक बहस होती रही, अंत में सभी लागतें माफ कर दी गई। बेगार के प्रश्न पर काफी वाद–विवाद हुआ और अंत में बेगार समस्या का भी समाधान हो गया कि किसान राव, ठिकाना व महाराणा की सेवा का कोई मूल्य नहीं लेंगे तथा किसान अपना यह सामाजिक धर्म स्वीकारते है कि उनके मार्ग में जब कोई आएगा तो वे उसके लिए सवारी, मजदूरी व सामान जुटायेंगे।

10.3 बिजोलिया आन्दोलन का प्रभाव और बेगूं आन्दोलन

बिजोलिया आन्दोलन की सफलता तथा राजस्थान सेवा–संघ के जन जागरण के कार्य ने सम्पूर्ण मेवाड़ और निकटवर्ती क्षेत्रों में एक ऐसी जागृति उत्पन्न कर दी थी जिसके परिणामस्वरूप अनेक क्षेत्रों में आन्दोलन होने प्रारम्भ हो गये। जिनमें मोगर व सिरोही का भील आन्दोलन तथा बेगूं का किसान आन्दोलन काफी प्रसिद्ध है। बेगूं के किसान आन्दोलन ने उस समय उग्र स्वरूप धारण कर लिया था। जब बेगूं के एक छुटभैया ठाकुर ने एक मालिन को सरे बाजार घसीटवाया तथा एक भीलनी को औंधी लिटाकर पीटा। इन सब अत्याचारों से दु:खी होकर बेगूं के किसान प्रतिनिधियों ने संघ से सम्पर्क किया। फलत: रामनारायण चौधरी को बेगूं भेजा गया। बेगूं में, जिसको उस क्षेत्र में "आतरी" कहा जाता है, रामनारायण चौधरी ने किसान पंचों से परिचय किया तथा पंचायत में भाषण दिया। तीसरे पहर तक स्त्री–पुरुषों के झुण्ड के झुण्ड गाँव में एकत्र हो गये। किसानों के बढ़ते हुए असंतोष को देखकर राव बेगूं ने समझौते का प्रयास

प्रारम्भ किया जिसके फलस्वरूप पथिक के नेतृत्व में राजस्थान सेवा संघ ने ठिकाने तथा पंचायत की स्वीकृति से निर्णय किया, परन्तु इस फैसले को मेवाड़ व ब्रितानी शासकों ने स्वीकार नहीं किया तथा ठिकाने को ही जज करने का निर्णय ले लिया। मेवाड़ शासकों ने बेगूं के राव पर इस बात के लिए दबाव डाला कि वह अमृतलाल को कामदार के पद पर नियुक्त कर ले, जिसे राव के स्वीकार न करने पर राज्य द्वारा बेगूं पर बलपूर्वक मुंसरमात बिठा दी गई। साथ ही ट्रैंच बन्दोबस्त आयुक्त को किसानों की शिकायतों की जाँच हेतु नियुक्त कर दिया, जिसका किसानों ने बहिष्कार किया। ट्रैंच ने किसानों के बहिष्कार की अवहेलना करते हुए एकपक्षीय फैसला दे दिया, जिसके विरोध में किसान पंचायत ने बेगूं पट्टे के सभी गाँवों के पंचों को गोविंदपुरा में विचार–विमर्श करने हेतु बुलाया तथा उन्होंने समझौते का विचार अभिव्यक्त किया। परन्तु किसानों ने पंचायत की माँग को अस्वीकार कर दिया। इसके पश्चात किसानों ने विरोध स्वरूप अखण्ड–पंचायत करने का निर्णय लिया, जो लगभग पाँच माह तक निरन्तर चलती रही। किसानों की इस नीति से ठिकाना तथा राज्य विचलित हो गया। किसानों की इस अखण्ड–पंचायत को समाप्त करने के उद्देश्य से ट्रैंच ने अमृतलाल को आदेश दिया कि पंचायत को सेना द्वारा घिरवा दिया जाए जिसके परिणामस्वरूप अन्ततः गोली चली तथा 500 किसानों को गिरफ्तार किया गया तथा अनेकों व्यक्तियों को अपनी जान भी गवानी पड़ी। इन अत्याचारों से बेगूं के कुछ किसान घबरा गये जिससे आन्दोलन की गति मंद हो गयी ऐसे समय में पथिक ने बेगूं में नेतृत्व संभालने का निश्चय किया और वह बेगुं आ गए तथा उन्होंने किसानों को संगठित कर उनमें उत्साह का संचार करना प्रारम्भ किया जिससे किसान पुनः संगठित हो गए तथा उन्होंने पथिक के निर्देशानुसार उस किसान से बेटी का सम्बन्ध समाप्त करने का निर्णय लिया जो किसी भी प्रकार की लगान, लाग या बेगार देगा। निर्णय के परिणाम काफी अनुकूल निकले तथा अनेक छोटे जागीरदारों ने संघ द्वारा निर्धारित लगान को लेना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार से वह किसानों की एक बहुत बड़ी विजय थी। इसी मध्य 1923 में पथिक बीमार हो गये और उन्हें गिरफ्तार भी कर लिया गया। गिरफ्तारी के पश्चात् पथिक पर लगभग 3–1/2 वर्ष तक मुकदमा चला और अन्त में पथिक रिहा कर दिए गए, परन्तु महकमा खास ने समस्त तर्कों व कानूनों की अवहेलना करते हुए औथिक को लम्बी सजा प्रदान की। परिणामस्वरूप पथिक 1928 में ही जेल से रिहा हो पाए। सन 1923 में ही लार्ड विन्टरटन का भारत आगमन हुआ और उन्होंने देशी राज्यों की स्थिति का अध्ययन करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि भारत सरकार को देशी रियासतों के सभी आन्दोलनों को कुचलने की नीति का अनुसरण करना चाहिए। इस नीति के अन्तर्गत तथा इससे प्रभावित होकर भी संभवतः पथिक की गिरफ्तारी की गयी थी। पथिक की गिरफ्तारी का सर्वाधिक दुष्परिणाम राजस्थान सेवा संघ पर हुआ जिसके फलस्वरूप संघ निष्प्राण होकर अन्तत टूट ही गया।

10.4 बिजोलिया आन्दोलन – द्वितीय चरण 1927–1930

सन 1922 से 1927 तक बिजोलिया बिल्कुल शान्त रहा। सर 1927 में बिजोलिया में पुनः अनेक समस्याओं ने जोर पकड़ना प्रारम्भ कर दिया जिसका कारण राव बिजोलिया का

पुराने आन्दोलनों से कोई लाभ न उठाते हुए लगान व अन्य करों में वृद्धि करना था और वैसे भी ठिकाने का यह कृत्य 10 अक्टूबर, 1922 के समझौते का सीधा उल्लंघन था।

अब बिजोलिया का नेतृत्व माणिक्यलाल वर्मा के सबल हाथों में था। यद्यपि किसान पंचायत ने वर्मा के माध्यम से जमनालाल बजाज को अपना मार्गदर्शक बनाया था और जमनालाल बजाज ने हरिभाऊ उपाध्याय को पंचायत का परामर्शदाता मनोनीत किया था। इस सब तथ्यों के पश्चात् भी बिजोलिया की प्रजा के नेता माणिक्यालाल वर्मा ही थे। इस दृष्टि से 1922 के पश्चात् के युग को वर्मा युग कहा जा सकता है। इस असन्तोष का कारण 1926 ई. में ट्रैंच के नेतृत्व में हुए अभिवींक्षण के पश्चात् निर्धारित की गयी बन्दोबस्त की नई दरें थी। यह लगान दर लगभग 25 प्रतिशत अधिक थी। वर्मा व रामनारायण चौधरी की सहायता से इस असन्तोष को समाप्त करने की दृष्टि से 6 फरवरी, 1927 को ठिकाने व किसानों के मध्य ट्रैंच की अध्यक्षता में कार्यवाही प्रारम्भ हुई, परन्तु इस मध्यस्थता से जो परिणाम निकले वे दुराग्रह से पूर्ण तथा असन्तोष उत्पन्न करने वाले थे। फलत: किसानों ने इस निर्णयों को स्वीकार नहीं किया।

मई, 1927 में जब पथिक जेल से छूटे तो किसान पंचायत, महिला मण्डल व युवक दल ने 9 मई, 1927 को अजमेर जाकर पथिक से बिजोलिया आने की पेशकश की। परिणामस्वरूप पथिक, रामनारायण चौधरी, ब्रह्मचारी हरजी व शोभालाल गुप्त के साथ ग्वालियर सीमा पर स्थित फुलेसिया ग्राम पहुँच गए जहाँ पर एकत्र किसानों को पथिक ने माल–भूमि को त्यागने का आदेश दे दिया। यह प्रश्न अत्यन्त विवादास्पद है कि क्या पथिक ने माल की भूमि की बुआई बन्द करने का आदेश दिया था अथवा नहीं। इस सम्बन्ध में रामनारायण चौधरी व साधु सीताराम का यह मत है कि पथिक ने ऐसी कोई बात किसानों को नहीं कही थी तथा जब किसानों ने भूमि परती रखने का निर्णय लिया तो पथिक जेल में थे तथा बिजोलिया का नेतृत्व वर्मा के द्वारा ही किया जा रहा था। बीकानेर अभिलेखागार में बिजोलिया सम्बन्धी फाईलों से प्राप्त कामदार मकसूद अली के पत्र से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि किसानों ने माल की जमीन को त्यागने का निर्णय पथिक के जेल से छूटने से पूर्व ही ले लिया था। मकसूद अली कामदार ने मेवाड़ दीवान को 21 मार्च, 1927 के पत्र में लिखा है "ऐसा सुना जाता है कि पथिक जेल से छूटने पर बिजोलिया आयेंगे अत: पथिक व रामनारायण चौधरी के बिजोलिया प्रवेश पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया जावे।" यहाँ यह भी दृष्टव्य है कि पथिक 27 अप्रैल, 1927 को जेल से छूटे थे। यहाँ पर एक अन्य प्रमाण का विवरण देना समीचीन प्रतीत होता है जिसके अनुसार भैरोसिंह व गोपालसिंह धाकड़ जो पथिक से संभवत: 1927 में मिले थे, के द्वारा पथिक ने माणिक्यलाल वर्मा को पत्र लिखकर भेजा जिसका आशय था कि मेरा तो मत है कि माल हासिल जमीन को उस समय तक पड़त रख दिया जाये, जब तक ठिकाना मजबूर होकर माल का हासिल कम नहीं करता है।

किसानों ने अन्तत: भूमि का सामूहिक त्यागपत्र ठिकाने को दिया जिसे ठिकाने द्वारा स्वीकार नहीं किया गया। अंत में ट्रैंच की युक्ति के आधार पर किसानों की भूमि के व्यक्तिगत

त्यागपत्र स्वीकार करा लिए गए, इसके पीछे ठिकाने का उद्देश्य इस भूमि को नीलाम करना था और यही ठिकाने ने किया। व्यक्तिगत त्यागपत्र देकर किसानों ने एक भयंकर भूल की जिसके दुष्परिणामों को उन्हें भुगतना भी पड़ा। ठिकाने के राव ने इसी मध्य एक और कूटनीतिक कार्य किया। राव ने माणिक्यलाल वर्मा को विश्वास में लेकर मकसूद अली को कामगर के पद से हटवा दिया तथा उसके स्थान पर गोवर्धन सिंह व तेजसिंह की नियुक्ति करवा ली। यह दोनों व्यक्ति सामन्ती वृति के थे और इनके द्वारा राव अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में अधिक सक्षम रूप से कार्यवाही कर सकता था। यद्यपि ट्रैंच ने किसानों को जून, 1927 में इन त्यागपत्रों के विरूद्ध चेतावनी दी थी, परन्तु किसानों ने उसको गंभीरता से नहीं लिया, फलत: ठिकाने ने किसानों की भूमि महाजनों को नीलाम करनी प्रारम्भ कर दी। इस नीलामी में कुल 8000 बीघा जमीन उठाई गयी, जिसमें से 6 हजार बीघा का स्वामी काश्तकारी पट्टा और 2 हजार बीघा को अस्थायी काश्तकारी पट्टा दिया गया। पथिक द्वारा आन्दोलन का नेतृत्व न स्वीकारने के कारण अन्तत: 1929 में किसान पंचायत का नेतृत्व हरिभाऊ उपाध्याय ने स्वीकार किया।

उपाध्याय ने प्रारम्भ से ही समझौते की नीति का ही अनुसरण किया। सर्वप्रथम समझौते के लिए किसानों को तैयार किया तत्पश्चात् वह ट्रैंच से मिले, ट्रैंच द्वारा भी उपाध्याय को स्वीकृति प्राप्त हो गयी। दोनों आपसी विचार विमर्श के पश्चात् इस निर्णय पर पहुंचे कि ठिकाना 1922 के समझौते को पूर्ण रूप से मानेगा तथा "छटून्द" नामक लागत लगान में स्वीकार कर ली जावेगी तथा लगान में एक आना प्रति रुपया कम ऋण दिया जावेगा। इसके अतिरिक्त ठिकाने के पास जो भी विवादास्पद भूमि है उसे उसके मूल–भू–स्वामियों को लौटा दी जावेगी। 30 जून, 1929 को किसानों की भरी सभा में उपर्युक्त माँगों को स्वीकार किया गया तथा इस सम्बन्ध में किसान पंचायत में उपाध्याय द्वारा एक घोषणा पारित कर महकमा खास को धन्यवाद पत्र भेजा जो त्यागभूमि में प्रकाशित भी हुआ, परन्तु ठिकाने ने इस समझौते को लागू नही किया। दूसरे उपाध्याय काफी विचलित हुए और उन्होंने ट्रैंच तथा मेवाड़ प्रधानमंत्री सुखदेव प्रसाद को पत्र लिखा तथा महाराणा से मिलने की इच्छा प्रकट की, परन्तु जब उन्हें कोई सार्थक उत्तर नही मिला तो इस विवाद को समाप्त करने के लिए दो मार्गों को सुनिश्चित किया। प्रथम के अन्तर्गत किसान भूमि के नए स्वामियों को निश्चित समय देकर बलपूर्वक अपनी–अपनी भूमि जोतना प्रारम्भ कर दें, द्वितीय वे भूमि से अपना स्वामित्व त्याग दें। अन्त में उपाध्याय नेतृत्व में किसानों ने यह निर्णय लिया कि 21 अगस्त, 1931 (अक्षया तृतीया अथवा अक्खा तीज) तक यदि उनकी भूमि नहीं लौटाई गयी तो वे बलपूर्वक उसी दिन जमीन की जुताई प्रारम्भ कर देंगे। अत: अक्खा तीज के दिन आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया गया। इस में 400 किसानों ने मालभूमि को बलपूर्वक जीता जिसमें माणिक्यलाल वर्मा सहित 26 प्रमुख किसान गिरफ्तार हुए। इस आन्दोलन में सत्याग्रहियों पर अनेक प्रकार के अत्याचार किए गए तथा ठिकानों ने नृशंसता की सीमा को पार कर महिलाओं तक को नहीं छोड़ा। ठिकाने द्वारा एक महिला सत्याग्रही श्रीमती रमा देवीं को बेइज्जत किया गया तथा अनेक किसानों की पत्नियों को पीटा तथा उनके घरों को लूटा। पुलिस ने सामान्य किसानों पर तो अत्याचार किए

ही थे, माणिक्यलाल वर्मा जैसे सत्याग्रही को भी नहीं छोड़ा। अन्त में 29 अप्रैल, 1931 को कुछ शर्तों के साथ नए कब्जेदार जमीन पर से कब्जा लौटाने को तैयार हो गए परन्तु यह नए कब्जेदार अपने वचन पर टिके नहीं रहे।

इस मध्य माणिक्यलाल वर्मा गिरफ्तार हो गए तथा हरिभाऊ किसी बीमारी के सम्बन्ध में आपरेशन हेतु बम्बई चले गये तो जमनालाल बजाज ने बिजोलिया प्रजा की रक्षार्थ प्रयत्न किया। उन्होंने शोभालाल गुप्त को अपना प्रतिनिधि बना कर बिजोलिया भेजा जहाँ उन्हें अत्यन्त अपमानित होना पड़ा। जब इन घटनाओं का ज्ञान मालवींय जी को हुआ तो उनको भी सुखदेव प्रसाद से अपमानित होना पड़ा। 17 मई, 1931 को भी कुछ ऐसी घटनाऐं घटी जिससे वातावरण और भी अधिक दूषित हो गया। 21 मई व 23 मई, 1931 को आर्य मार्तण्ड व त्याग भूमि में यह सूचना प्रकाशित हुई कि बिजोलिया में गोरखा प्लाटून भेजी जाने वाली है जिससे आन्दोलन का दमन किया जा सके। जून माह में माणिक्यलाल वर्मा को अमानवींय यातनाऐं दी गयी। अनेक प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि वर्मा जी को कड़ी धूप में कम्बल लपेटकर बलपूर्वक बैठने की सजा, जिसे "घूंघट" कहा जाता है, दी गयी तथा हरिभाऊ जैसे नेता के मेवाड़ प्रवेश पर बन्दी लगा दी गयी। हरिभाऊ उपाध्याय ने इस सब परिस्थितियों का विवरण 1931 की अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद में किया। जिसके परिणाम स्वरूप परिषद ने जुलाई के प्रथम सप्ताह में 3 दिन बिजोलिया व 2 दिन उदयपुर जाने का प्रस्ताव पारित किया। 19 जून, 1931 को बजाज द्वारा भेजे गए तार के उत्तर में सुखदेव प्रसाद, बजाज से मिलने बम्बई गए तथा वहाँ पर यह निर्णय लिया गया कि इस समस्या के समाधान हेतु बजाज उदयपुर जाएगें। इस मध्य किसान गाँधी व बजाज की सलाह पर आन्दोलन स्थगित कर चुके थे।

इस सम्बन्ध में 20 जुलाई को बजाज ने उदयपुर में महाराणा भोपालसिंह व सुखदेव प्रसाद से विचार–विमर्श किया जिसमें महाराणा की ओर से यह आश्वासन दिया गया कि राज्य के अधिकारी किसानों की सन्तुष्टि हेतु अधिकाधिक प्रयत्न करेंगे तथा समान आधार पर वे भूमि को लौटाने का भी यत्न करेंगे। इसके अलावा बिजोलिया से सेना व पुलिस को हटा लिया जावेगा तथा सत्याग्रहियों के साथ उचित व्यवहार होगा। इस समझौते की प्रमुख शर्तें निम्न थी:–

1. जमीने धीरे–धीरे पुराने जागीरदारों को लौटा दी जावेगी।
2. सत्याग्रह में जो किसान तथा कार्यकर्ता गिरफ्तार हुए और ठिकाने की अदालत ने उन्हें दण्डित कर दिया वे अपील करें तो राज्य तुरन्त उन्हें छोड़ देने की आज्ञा निकाल देगा और उच्च न्यायालय उनको दोषमुक्त कर देगा।
3. जुर्माने में नीलाम किए हुए पशु वापिस लौटा दिए जावेंगे और आगे पशुओं का नीलाम किया जाना रोक दिया जावेगा।
4. 1922 के फैसले की शर्तों के अनुसार शिक्षा के लिए उपयुक्त शिक्षक की नियुक्ति होगी तथा चिकित्सक की व्यवस्था भी ठिकाना करेगा।
5. कार्यकर्ताओं व किसानों के साथ जो मारपीट व दुर्व्यवहार किया गया है, उसकी जाँच होगी और दोषी ठिकाने के अधिकारियों को दण्ड दिया जावेगा।

इसके पश्चात् जमनालाल बजाज ने शोभालाल गुप्ता को जब बिजोलिया समझौते हेतु भेजा तो उसके साथ अत्यन्त निन्दनीय व्यवहार किया गया। यह व्यवस्था, राज्य व ठिकाने की इस प्रवृति का द्योतक थी कि वह समझौता करना नहीं चाहता है। माल–भूमि को अभी भी किसान प्राप्त नहीं कर सके थे। इस हेतु 1931 से 1939 तक संघर्ष होता रहा। अन्त में 1939 में महाराणा ने बिजोलिया की इस भूमि को लौटाने हेतु एक आदेश निकाला कि पूर्व के आन्दोलन के दौरान किसानों ने जिस भूमि को त्याग दिया था वह उन्हें लौटा दी जावेगी। यह निर्णय रेवेन्यू–मिनिस्टर डॉ. मोहनसिंह मेहता और माणिक्यलाल वर्मा के सहयोग से हुआ था। किसानों की ओर से इसमें पंचायत के सरपंच किसना पटेल, कल्याणपुरा तथा किसान पंचायत के कार्यकर्ता गणपतलाल वर्मा का भी सराहनीय सहयोग रहा।

10.5 सारांश

बिजोलिया किसान आन्दोलन का अध्ययन सम्पूर्ण भारत के किसान आन्दोलन के परिपेक्ष्य में किया जाना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा बिजोलिया किसान आन्दोलन के प्रभाव को भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के संदर्भ में सही रूप में आँकना संभव नहीं होगा। अत: इस दृष्टि से 19वीं शताब्दी के मध्य और 20वीं सदी में कांग्रेस के अंतर्गत विकसित किसान आन्दोलनों पर एक दृष्टिपात करना आवश्यक है।

आधुनिक भारत के इतिहास में 1855–57 के मध्य संथाल किसानों का ऐसा प्रथम विद्रोह था जिसको सही अर्थों में वास्तविक जन संघर्ष कहा जा सकता है। यद्यपि इससे पूर्व भी अनेक छोड़े–बडे किसान आन्दोलन ब्रितानी शासन के विरोध में उठे परन्तु वे बहुत अधिक प्रभावीं सिद्ध न हो सके। संथाल किसान आन्दोलन के पश्चात् 1860 का नील की खेती करने वाले किसानों का आन्दोलन, 1872–73 का पाबना और बोगरा का किसान आन्दोलन तथा 1875 के मराठा किसान आन्दोलनों का भी एक महत्व है। यह आन्दोलन भी शोषण के विरूद्ध किये गये थे तथा इनका प्रमुख विरोध ब्रितानी शासन द्वारा की गयी नवींन व्यवस्थाओं तथा जमीदारों के प्रति था।

इसी कड़ी में बिजोलिया आन्दोलन भी मेवाड़ में 1897 में प्रारम्भ हो चुका था, जो इस बात का द्योतक है कि मेवाड़ का किसान भी सम्पूर्ण भारत की तरह असन्तोष का शिकार था तथा अपने शोषण के विरूद्ध संघर्ष करने को आतुर था। प्रारम्भिक वर्षों में यह आन्दोलन। भी सफल रहा। बीसवीं सदी के प्रथम दशक के मध्य में स्वदेशी आन्दोलना भी प्रारम्भ हो। चुका था तथा इस आन्दोलन के प्रमुख केन्द्र नगर ही थे, गाँव स्तर पर यह आन्दोलन केवल बंगाल और पंजाब में अपना स्वरूप विकसित कर सका था। राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय कांग्रेस ही एक ऐसा दल था जो स्वतंत्रता के आन्दोलन को चला रहा था भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस प्रथम युद्ध से पूर्व उच्च वर्गीय बुर्जुआओं तथा मध्यवर्गीय पढें–लिखे लोगों का ही दल था तथा इसके घोषित उद्देश्यों में कृषक वर्ग का स्थान नगण्य था। राष्ट्रीय स्तर पर महात्मा गांधी ने प्रथम बार चम्पारण और खेरा मे किसानों के असन्तोष को समझा तथा उसके लिए वह लड़े। संगठित रूप से सर्वप्रथम 1917 में किसान सभा की इलाहाबाद में स्थापना की गयी थी तथा कुछ किसानों

के प्रतिनिधियों ने दिल्ली कांग्रेस अधिवेशन में भाग भी लिया था। इसके पश्चात् के खिलाफत और असहयोग आन्दोलनों में भी कृषक समुदाय ने भाग लिया तथा अनेक आन्दोलन भी किए, परन्तु इन सभी आन्दोलनों का नेतृत्व दूसरे वर्ग के हाथों में था। राष्ट्रीय स्तर पर इन किसानों का नेतृत्व करने वाले व्यक्ति बुर्जुआ थे। इस राष्ट्रीय बुर्जुआ समुदाय का साम्राज्यवादी बुर्जुआ समुदाय से विरोध था तथा इसके लिए यह अधिक सुगम था कि वह स्वतन्त्रता आन्दोलन हेतु कृषक समुदाय से अपना सम्बन्ध स्थापित करें। इस प्रकार अपरोक्ष रूप से भारतीय कृषक स्वतन्त्रता के संघर्ष का एक प्रमुख सूत्र बन गए, यद्यपि वह प्रत्यक्ष रूप से इससे परिचित भी न थे।

इन सभी सन्दर्भों में बिजोलिया का आन्दोलन अलग था। बिजोलिया में कृषक समुदाय सामूहिक रूप से अपने संघर्ष की बागडोर अपने हाथों में लिए हुए था। तथा उसे आन्दोलन के उद्देश्यों का भी पूर्ण ज्ञान था। उनके संघर्ष का नेतृत्व बुर्जुआ समाज नहीं कर रहा था। इसके प्रमाण को आन्दोलन के 1922 तक के चरण की घटनाओं में समझा जा सकता है। 1922 तक के आन्दोलन का घटनाक्रम इस तथ्य का द्योतक है कि बिजोलिया का किसान संघर्ष भारत के नव–जागरण में कृषक जनता के सबसे पहले सामूहिक प्रतिरोधों में से था तथा इस आन्दोलन के उपकरण आतंरिक थे जिसके लिए किन्हीं भी अन्य उपकरणों का सहारा नही लिया गया था।

1922 के पश्चात् जब इस आन्दोलन की बागडोर राष्ट्रीय नेताओं के हाथों में आई तो किसानों को अनेक असफलताओं का सामना भी करना पड़ा तथा आन्दोलन की सफलता के अपने अधिकारों को दूसरे के हाथों सौंपना भी पड़ा। बिजोलिया के आन्दोलन का 1922 तक का चरण इस तथ्य का द्योतक है कि किसान स्वयं परिवर्तन व क्रान्ति का एक साधन बन सकते है बशर्ते उस आन्दोलन का नेतृत्व और साधन उन्हीं के मध्य में से विकसित किए हुए हों। इन्हीं साधनों व उपकरणों तथा नेतृत्व के प्रश्न को यदि राष्ट्रीय स्तर पर भी स्वीकार किया जाता तो सम्पूर्ण राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप ही कुछ अलग होता और स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत के नव–निर्माण में देश की सत्तर प्रतिशत जनता का व्यापक सहयोग अधिक कारगर तरीके से लिया जा सकता था।

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 बिजोलिया आंदोलन के संदर्भ में उन कारणों का विवेचन कीजिए जिनके कारण यह आंदोलन विकसित हुआ?

प्रश्न 2 बिजोलिया आंदोलन में पथिक के योगदान का विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए

प्रश्न 3 बिजोलिया आंदोलन ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को किस प्रकार प्रभावित किया तथा राष्ट्रीय नेताओं की इस आंदोलन में क्या भूमिका रही, स्पष्ट कीजिए।

10.7 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. सक्सैना, शंकर सहाय : बिजोलिया किसान आंदोलन का इतिहास
2. सक्सैना, शंकर सहाय : पथिक–एक जीवनी
3. मेहता, पृथ्वीसिंह : हमारा राजस्थान

4. शिवकुमार : पीजेन्ट्री एण्ड द इंडियन नेशनल मूवमेन्ट
5. चौधरी, पी. एस. : राजस्थान बिटवींन टू वर्ल्ड वार्स
6. शर्मा, डॉ. बृजकिशोर : सामंतवाद एवं किसान संघर्ष
7. शर्मा, डॉ. बृजकिशोर : पीजेर मूवमेंट्स इन राजस्थान
8. शर्मा, डॉ. बृजकिशोर : आधुनिक राजस्थान का आर्थिक इतिहास
9. पाण्डे, राम : एग्रेरिअन मूवमेन्ट इन राजस्थान

इकाई – 11

प्रथम विश्व युद्धोत्तर कृषि समस्याऐं और जागृति

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 प्रथम विश्व युद्धोतर काल की कृषि समस्याऐं

11.2.1 लगान का बढ़ता हुआ भार

11.2.2 जमींदारों एवं उनके कारिदों, ग्राम समुदायों, लम्बरदारों और भू–राजस्व अधिकारियों का शोषण

11.2.3 प्रशासनिक व न्यायिक व्यवस्थाओं में किसानों की राहत के लिये समुचित प्रबन्धों का अभाव

11.2.4 भूमि का विखण्डीकरण

11.2.5 भूमि पर बढ़ती हुई आबादी का दबाव

11.2.6 ग्रामीण ऋणग्रस्तता

11.2.7 सिंचाई के पर्याप्त साधनों की कमी

11.2.8 देशी राज्यों में कृषि की पिछड़ी दशा

11.2.9 प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव

11.2.10 रूसी क्रांति का प्रभाव

11.3 प्रथम विश्व युद्धोत्तर काल के किसान आंदोलन

11.3.1 बिजोलिया आन्दोलन

11.3.2 बेगूं आन्दोलन

11.3.3 असहयोग आन्दोलन की अवधि में किसान आंदोलन

(1) अवध व संयुक्त प्रांत के अन्य भागों के आन्दोलन

(2) पंजाब में अकाली आन्दोलन

(3) मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में भील किसानों का आन्दोलन

(4) मोपला आन्दोलन

(5) आंधप्रदेश के आन्दोलन

(6) बिहार में आन्दोलन

(7) बंगाल, असम व उड़ीसा में आन्दोलन

11.4 प्रथम विश्व युद्धोत्तर काल के कृषक आन्दोलन का स्वरूप

11.4.1 कृषकों की मुख्य माँग

11.4.2 सरकार व जमींदार वर्ग का रवैया

11.4.3 भिन्न–भिन्न प्रदेशों के आन्दोलनों की प्रकृति में आधारभूत समानताऐं

11.4.4 कृषि ढाँचे में आमूल परिवर्तन कराने की चेष्टा का अभाव
11.4.5 अहिंसात्मक आन्दोलन
11.4.6 राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बद्धता
11.4.7 कृषक आन्दोलन के नेताओं में सामंजस्य
11.4.8 मोपला विद्रोह में साम्प्रदायिकता की भावना
11.4.9 किसानों में चेतना का उदय
11.4.10 आन्दोलनों की व्यापकता
11.4.11 दीर्घकालीन संगठन शक्ति
11.5 प्रथम विश्व युद्धोत्तर काल के किसान आन्दोलनों के परिणाम
11.6 सारांश
11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
11.8 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

11.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य प्रथम विश्व युद्धोत्तर काल में कृषि की समस्याओं तथा किसानों में जागृति से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपको यह ज्ञात हो जायेगा कि –

- 1916 तक के कृषक आन्दोलनों का स्वरूप किस प्रकार का था,
- प्रथम विश्वयुद्ध के पहले तथा युद्धोत्तर काल में कृषि की समस्याओं को जान पायेंगे तथा यह ज्ञात होगा कि वे लगभग समान थीं।
- प्रथम विश्वयुद्ध तथा रूसी क्रान्ति का प्रभाव जान सकेंगे।
- प्रथम विश्व युद्धोत्तर काल के कृषक आन्दोलनों के स्वरूप तथा परिणामों को जान सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

ब्रिटिश शासन में भारत के कृषकों की दशा बिगड़ती चली गई। अंग्रेजों ने अपनी आमदनी बढ़ाने के लिये भू–राजस्व की दरों में अनेक बार वृद्धि की। स्थायी बन्दोबस्त के तहत जमींदारों तथा रैयतवाड़ी व्यवस्था में प्रत्येक नये बन्दोबस्त के समय लगान की दर में वृद्धि की गई। महलवाड़ी व्यवस्था में ग्राम समुदायों ने भी ऐसा ही किया। प्रशासनिक अधिकारियों में कृषकों के प्रति सहानुभूति का अभाव था। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत के अनेक भागों में बार–बार अकालों व सूखों के प्रकोपों ने किसानों की कमर तोड़ दी। सरकार ने सिंचाई के लिये विशेष प्रयत्न नहीं किये इन सबके फलस्वरूप किसान कर्ज के जाल में फंसते चले गये। साहूकारों ने उनका भरपूर शोषण किया। ऐसी परिस्थितियों से तंग आकर किसानों ने समय–समय पर अपना असन्तोष प्रकट किया। उन्होंने सरकार के विरूद्ध विद्रोह किये।

1757 से 1916 तक के कृषक विद्रोहों के उद्देश्य सीमित थे। उनकी अधिकांश माँगे आर्थिक थी। यद्यपि उन्होंने बागानों के विदेशी मालिकों, स्थानीय जमींदारों, साहूकारों व सरकारी अधिकारियों के उत्पीड़न के विरूद्ध आवाज उठाई लेकिन उस समय के आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन

कराने का प्रयत्न नही किया, जो उनके शोषण की प्रक्रिया का प्रमुख आधार था। उस समय के कृषक आन्दोलन देश के विभिन्न भागों में समय–समय पर हुए थे लेकिन आमतौर पर वे अपने क्षेत्र तक ही सीमित रहे। उनमें दीर्घकालीन संगठन का भी अभाव था। जब भी कभी किसी आन्दोलन के कुछ खास उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती थी तो उसके बाद आन्दोलनकारियों के संगठन की एकता समाप्त हो जाती थी। उस काल के आन्दोलनों के नेताओं में ठोस विचारधारा का भी अभाव था। उन्होंने किसानों को औपनिवेशिक सरकार की नीतियों के प्रभावों से अवगत कराने का भी प्रयत्न नही किया। इस अवधि के कृषक आन्दोलनों में साम्प्रदायिकता की भावना देखने को नहीं मिलती है। 1875 ई. के दक्कन उपद्रवों के पहले के किसान आन्दोलनों में सार्वजनिक संस्थाओं एवं समाचार पत्रों ने भी विशेष। रूचि नहीं ली।

यद्यपि 1870 के पश्चात ब्रिटिश सरकार ने कृषि की उन्नति के लिये प्रयत्न किये किन्तु वे प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुए। 1901–02 की मोरल एंड मेटीरियल प्रोग्रेस रिपोर्ट (Moral and Material Progress Report) के अनुसार सरकार द्वारा कराये गये कृषि–शोध कार्यों के परिणाम यदि कुछ हुए, तो वे किसानों के पास नही पहुँच सके। अत: बीसवीं सदी के आरंभ में कृषकों की समस्याओं का संतोषजनक समाधान नहीं हो सका। प्रथम विश्व युद्ध ने उनकी कठिनाईयों में ओर वृद्धि की। रूसी क्रांति के प्रभाव से भारत में किसान संगठन बने। कांग्रेस व अन्य राजनैतिक संस्थाओं ने भी कृषकों में चेतना जागृत की।

11.2 प्रथम विश्व युद्धोतर काल (1918–1922) की कृषि समस्याऐं

11.2.1 लगान का बढ़ता हुआ भार

इसका उल्लेख किया जा चुका है कि आरंभ से ही ब्रिटिश सरकार ने किसानों पर लगान के भार में समय–समय पर वृद्धि करने की नीति अपनाई थी। 1900 ई. में रमेश चंद्र दत्त ने वायसराय को खुली चिट्ठियों (Open Letters to Lord Curzon) में सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। केम्ब्रिज इकनोमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, खंड दो के अनुसार केन्द्रीय असेम्बली में इस विषय पर चर्चा के समय सरकार ने यह माना कि लगान की लगातार वृद्धि को रोकना और भूमि से प्राप्त होने वाले कर के अनुपात को शनै:शनै: कम करना चाहिए। लेकिन सरकार ने इस दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाए। यद्यपि बीसवीं सदी के आरम्भ में कुछ प्रदेशों में कृषि की उपज में कुछ वृद्धि हुई किन्तु सरकार ने अधिक दर पर लगान वसूल कर किसानों को उसके लाभ से वंचित किया। राधा कमल मुखर्जी ने 'लैंड प्रॉबलम्स ऑफ इंडिया' (Land Problems of India) में 1901–02 से 1923–24 के भू–राजस्व के आँकडों के आधार पर यह बताया है कि इस काल में बम्बई, मद्रास व संयुक्त प्रदेश में राजस्व की दरें तेजी के साथ बढ़ती गई। उनके मत में भू–राजस्व में अधिक वृद्धि, उसका नकदी में परिवर्तन और उसकी फसल की कटाई के समय वसूली से किसानों की दशा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। 1922 के बाद भी सरकार ने अपनी नीति में परिवर्तन नहीं किया। उदाहरण के तौर पर 1926

ई. में गुजरात के बारदोली तालुके में भू–राजस्व की दर में तीस प्रतिशत की वृद्धि की सिफ़ारिश की गयी थी।

11.2.2 जमींदारों एवं उनके कारिंदों, ग्राम समुदायों, लम्बरदारों और भू–राजस्व अधिकारियों द्वारा शोषण

सरकार ने जमींदारों, पूंजीपतियों व अन्य धनी वर्गों का समर्थन प्राप्त करने के लिये उनके शोषण को रोकने के प्रयत्न नही किये। अत: युद्धोत्तर काल में भी तत्वों के शोषण की प्रक्रिया में कोई अन्तर नहीं आया।

11.2.3 प्रशासनिक व न्यायिक व्यवस्थाओं में किसानों की राहत के लिये समुचित प्रबन्धों का अभाव

बिपन चन्द्र के मत में समुचित "औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों, भू–राजस्व की नई प्रणालियों और उपनिवेशवादी प्रशासनिक व न्यायिक व्यवस्था ने किसानों की कमर तोड दी।" ब्रिटिश अधिकारियों में भारतीय किसानों के हितों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी। वे किसानों की पहुँच के बाहर थे। किसानों की इतनी सामर्थ्य नही थी कि वे–सरकारी न्यायालयों का दरवाजा खटखटा सकें। उस समय की न्यायिक प्राणाली भ्रष्ट व खर्चीली थी।

11.2.4 भूमि का विखण्डीकरण

सरकार ने भूमि को व्यक्तिगत सम्पत्ति मानकर भूमि के विखण्डीकरण को प्रोत्साहित किया। इसके फलस्वरूप एक किसान की भूमि उसके उत्तराधिकारियों में बंटती चली गई तथा जोतों का आकार घटता चला गया। यह प्रक्रिया 1918 के बाद के सालों में भी जारी रही।

11.2.5 भूमि पर बढ़ती हुई आबादी का दबाव

डेविस के अनुसार "1920 के बाद आबादी में तेजी से वृद्धि पिछड़ेपन का मुख्य कारण थी।" 1911 ई. में भारत की आबादी 303 मिलियन थी। 1921 ई. में यह बढ़कर 305.7 मिलियन हो गई। इसके बाद भी आबादी बढ़ती चली गई। 1921 से 1951 ई. के मध्य जनसंख्या में 44 प्रतिशत की वृद्धि हो जाने से किसानों की औसत आय कम होती चली गई और भूमि पर आश्रितों की संख्या बढ़ती गई। 1921–22 की जनगणना के अनुसार बम्बई प्रांत में 5 एकड से कम के जोतों की संख्या 20,24,261 थी जो 8,72,485 भू–स्वामियों के पास थी। ये भू–स्वामी समस्त भू–स्वामियों की संख्या के 46 प्रतिशत थे। अन्य प्रान्तों में भी लगभग यही दशा थी।

11.2.6 ग्रामीण ऋणग्रस्तता

बीसवीं सदी के आरंभ तक भारत के अधिकांश किसान कर्ज के जाल में फंस गये थे। साहूकारों के चंगुल से मुक्त करने और किसानों को बेदखली से बचाने के लिए सरकार द्वारा बनाये गये कानून सफल नहीं हुए। कर्जदारों ने काश्तकारों की गर्दन नहीं छोड़ी। वस्तुत: ऋण

कानूनों ने ऋणदाताओं का विश्वास डिगा दिया। प्रथम विश्वयुद्ध में खाद्य पदार्थों की बढ़ती हुई कीमतों के कारण भी किसानों को कर्ज लेना पड़ा। सहकारी संस्थाऐं भी किसानों के लिए सहायक सिद्ध नही हुई। 1954 ई. के कृषि सर्वेक्षण समिति के प्रतिवेदन से ज्ञात होता है कि वे कुल आवश्यकता की तीन प्रतिशत की ही पूर्ति करती थी। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि 1919–1922 की अवधि में इसकी राशि कुछ कम ही होगी। 1920 ई. में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार उस समय ब्रिटिश प्रान्तों में कृषकों पर 876.45 करोड़ रुपये ऋण का भार था। 1932 ई. में यह राशि 220 अरब रुपये हो गई। उस समय लगभग अस्सी प्रतिशत किसान कर्जदार थे।

11.2.7 सिंचाई के पर्याप्त साधनों की कमी

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटिश सरकार ने कुछ प्रदेशों में नहरें बनवाई लेकिन आवश्यकता के अनुकूल इस पर धन व्यय नहीं किया गया। सुमित सरकार के अनुसार उस समय की बनाई गई नहरें प्राय: कच्चे कुओं की तुलना में स्थानीय परिस्थितियों के कम अनुकूल होती थी तथा कभी–कभी तो उनसे दलदल एवं अत्याधिक खारेपन की समस्याऐं पैदा हो जाती थी। इन नहरों का प्रयोग केवल समृद्ध किसान ही कर सकते थे क्योंकि सिंचाई शुल्क अधिक था। इनसे गन्ना, कपास व गेहूँ जैसी फसलों को ही प्रोत्साहन मिलता था। अतएव मोटे अनाज व दालों का उत्पादन घट गया था। 1900–1901 ई. में सिंचाई आयोग ने बताया कि भारत में खेती की जाने वाली भूमि लगभग 1/5 भाग ही किसी न किसी सिंचाई योजना का लाभ उठाता था। 1901 से 1919 तक इसमें विशेष वृद्धि नहीं हुई। प्रथम महायुद्ध के समय सिंचाई कार्यों में पहले की अपेक्षा बहुत कम धन व्यय किया गया।

11.2.8 देशी राज्यों में कृषि की पिछड़ी दशा

अधिकांश देशी राज्यों में कृषि की दशा अपेक्षाकृत पिछड़ी हुई थी। साधनों के अभाव में वहाँ पर कृषि की उन्नति के लिए प्रयत्न नहीं किये गये थे। इसके अतिरिक्त वहाँ का किसान सामंतवाद के विशेषाधिकारों से पीड़ित था। सामंत किसानों का शोषण करते थे। वे लगान के अतिरिक्त अनेक प्रकार की लग–बाग वसूल करते थे। वे किसानों से बेगार लेते थे। भूमि से बेदखल करना एक मामूली बात थी। प्रथम महायुद्ध की अवधि में प्रयत्नों के लिये सरकार को चंदा देने के लिये अनेक राजाओं व सामंतों ने किसानों विशेष कर लगाया। मेवाड़ के बिजोलिया जागीर के जागीरदार ने अपने किसानों से इसके लिये धन वसूल किया।

11.2.9 प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव

प्रथम विश्व युद्ध ने भारतीय अर्थ व्यवस्था को व्यापक रूप से प्रभावित किया। युद्ध के कारण जनता पर भारी कर लगाये गये। युद्ध के समय में सरकार ने उद्योगों के विकास पर ध्यान दिया। 1916 ई. में सरकार ने कुछ उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिये औद्योगिक नीति की घोषणा की। 1914–18 के मध्य युद्ध की आवश्यकताओं की पूर्ति पर ध्यान दिया गया।

इंग्लैंड को युद्ध कार्यों के लिये अधिक जूट की आवश्यकता पड़ी। इसके फलस्वरूप बंगाल व उसके पास के क्षेत्रों में जूट का उत्पादन बढ़ा। कपड़े का भी अधिक निर्यात किया गया। इसके कारण कपास के उत्पादन में वृद्धि हुई। लेकिन शेष कृषि उत्पादों की मात्रा में कमी आई। इससे किसानों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। युद्ध की आवश्यकताओं ने कृषि उत्पादों एवं अन्य रोजमर्रा की आवश्यकताओं को दुर्लभ बना दिया। इससे उनकी कीमतों, में वृद्धि हुई। निर्धन वर्ग, जिनमें किसान भी सम्मिलित थे, के जीवन स्तर में गिरावट आई। किसानों की ऋणग्रस्तता में और वृद्धि हुई। इसका लाभ उन पूंजीपतियों व साहूकारों ने जिन्होंने युद्ध के समय धन कमाया था। युद्धोत्तर काल में सरकार को असहयोग आन्दोलन सामना करना पड़ा। क्योंकि किसान अपनी स्थिति से असन्तुष्ट थे इसलिये वे राष्ट्रवादी आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। 1920–23 ई. के मध्य अनेक प्रान्तों में किसानों के आन्दोलन हुए।

11.2.10 रूसी क्रांति का प्रभाव

रूसी क्रांति (1917) की सफलता ने राष्ट्रवादी नेताओं को प्रभावित किया उन्होंने यह अनुभव किया कि जनसाधारण का राजनीतिक संघर्ष में सम्मिलित होना आवश्यक है। अत: 1920 में मजदूर और किसान संगठनों तथा ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना हुई। 1921 में जब पूरे उत्तर प्रदेश में किसान सभा की स्थापना हुई तो टाइम्स के संवाददाता ने लिखा कि भारत में किसान सोवियत की स्थापना हो गई है। ब्रिटिश सरकार ने भारत में जन साधारण के प्रत्येक संघर्ष को साम्यवादियों द्वारा चलाया गया संघर्ष मानना शुरू किया। इसका ज्वलन्त उदाहरण बिजोलिया के किसान आन्दोलन पर साम्यवादी प्रभाव होने का सरकार का संदेह है। आरंभ में आन्दोलन के वामपंथी नेताओं तथा कांग्रेस के तत्वाधान में किसानों के लिये कार्य करने वाले नेताओं में सामंजस्य बना रहा किन्तु बाद में उनमें मतभेद उभरे। इसके फलस्वरूप साम्यवादी नेतृत्व में तेभागा और तेलंगाना में कृषक आन्दोलन हुए। वास्तव में रूसी क्रान्ति ने भारत के राजनैतिक आन्दोलन में सर्वहारा वर्ग, जिनमें किसान भी सम्मिलित थे, को चेतना फैलाने में सहयोग प्रदान किया।

उपरोक्त परिस्थितियों के अध्ययन से स्पाट है कि युद्ध व युद्धोत्तर काल में कृषकों की समस्याओं, जो लम्बे समय से चली आ रही थी, का समाधान नहीं हुआ अपितु विश्व युद्ध के कारण उनमें और वृद्धि हुई। इस काल में कांग्रेस व किसान संगठनों ने कृषकों को अपने आन्दोलनों में सम्मिलित किया। इस अवधि में देश के अनेक भागों में किसानों के आन्दोलन हुए। सामान्यत: ये आन्दोलन राजनीतिक आन्दोलन के एक अंग थे। यद्यपि मेवाड़ के बिजोलिया व बेगूं ठिकानों के किसानों के आन्दोलनों को प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों के विरूद्ध स्वतंत्रता संघर्ष का एक भाग नहीं कहा जा सकता लेकिन इन आन्दोलनों में सामंतवादी शोषण के विरूद्ध उठाई गई आवाज के कारण इनका महत्व भी कम नहीं है।

11.3 प्रथम विश्व युद्धोत्तर काल के किसान आंदोलन

यह पहले बताया गया है कि 1757 से 1916 तक के किसान आन्दोलनों में सार्वजनिक संस्थाओं ने कुछ अपवादों को छोड़कर विशेष रूचि नही ली। 1907 ई. में पंजाब में

लाला लाजपत राय और अजीत सिंह ने किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया। गांधी जी ने भारत आगमन के बाद चम्पारन व खेड़ा में किसानों की माँगों का समर्थन किया। इसके पश्चात् कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन के समय किसानों को भी उसमें भाग लेने का आह्वान किया। अनेक प्रान्तों में किसानों ने लगान की ना अदायगी आदि के कार्यक्रम अपनाये। 1918 ई. से 1923 ई. तक के किसान आन्दोलनों का विवरण यहाँ पर दिया गया है।

11.3.1 बिजोलिया आन्दोलन

राजस्थान में मेवाड़ राज्य की बिजोलिया जागीर में किसानों से लगान के अतिरिक्त 84 प्रकार की लागतें वसूल की जाती थी। इसके विरूद्ध यहाँ किसानों में काफी समय से असंतोष व्याप्त था। प्रथम महायुद्ध में वहाँ के जागीरदार ने किसानों से युद्ध का चंदा वसूलना शुरू कर दिया। इस पर किसानों ने सत्याग्रह आरम्भ किया। कुछ समय बाद इसका नेतृत्व विजय सिंह पथिक ने सम्भाला। उनके नेतृत्व में आन्दोलन तेज हो गया। महाराणा ने एक जाँच आयोग नियुक्त किया जिसने किसानों का पक्ष लिया किन्तु महाराणा ने कोई निर्णय नही लिया। 1920 ई. में पथिक अपने साथियों–माणिक्य लाल वर्मा तथा सीताराम दास के, साथ नागपुर में गांधी से मिले। उनके बिजोलिया लौटने पर किसानों ने लगान व लागतों की ना अदायगी और बेगार न करने का निश्चय किया। शीघ्र ही यह आन्दोलन आस–पास के स्थानों में फैल गया। इससे ब्रिटिश सरकार को चिन्ता हुई। बिजोलिया के आन्दोलन के संगठन व स्वरूप को देखकर सरकार को उसका साम्यवाद की तरफ झुकने का सन्देह हुआ। अतएव उसने मेवाड़ की सरकार सै समझौता करने पर दबाव डाला। 1922 ई. में अंग्रेज अधिकारी हॉलैंड की मध्यस्थता से यह समझौता हुआ इसमें 35 लागतें हटायी गई, अस्थाई कामगार निकाले गये तथा किसानों पर चलाये गये मुकदमें वापिस लिये गये। उनकी जब्त की हुई भूमि वापिस लौटा दी गई। लेकिन 1923 में बेगार की समस्या पर आन्दोलन पुन: आरम्भ हुआ। 1923 से 26 ई. में इस प्रदेश में सूखे की स्थिति में भी लगान वसूल किया गया। इसके विरोध में किसान पंचायतों ने अपनी "माल" (उपजाऊ) भूमि छोड़ने का निश्चय किया। ऐसी भूमि को दूसरों ने खरीद लिया। कुछ समय बाद जमनालाल बजाज की मध्यस्थता से दोनों पक्षों में समझौता हुआ। इस समझौते का पूर्ण रूप से पालन नही किया गया, इसलिए किसानों का आन्दोलन चलता रहा। अन्त में 1941 ई. में किसानों की भूमि लौटाई गई।

11.3.2 बेगूं आन्दोलन (1921–1923 ई.)

बिजोलिया आन्दोलन का प्रभाव उसकी निकटवर्ती जागीर बेगूं पर भी पड़ा। इस जागीर में भी किसानों की समस्यायें बिजोलिया के समान थी। विजय सिंह पथिक ने राजस्थान सेवा संघ के तत्वाधान में वहाँ 1921 ई. में किसानों का आन्दोलन आरंभ किया। उन्होंने लगान की ना अदायगी व बेगार न करने का निश्चय किया। उनका विरोध वहाँ के तथा आस–पास के जागीरदारों ने किया। मेवाड़ की सरकार ने उसे समर्थन दिया। किसानों को हर प्रकार से क्षति पहुँचाई गई। दो वर्ष के संघर्ष के बाद दोनों पक्षों में एक समझौता हुआ जिसे मेवाड़ की सरकार

ने नहीं माना। उसनने एक अंग्रेज अधिकारी ट्रैंच को वहाँ भेजा। उसके इकपक्षीय निर्णय के विरूद्ध संघर्ष चलता रहा। 1923 ई. में किसानों की एक सभा पर गोलियां चलाई गईं जिसमें दो व्यक्ति मारे गये। 500 से अधिक किसान गिरफ्तार किये गये। सरकार ने पथिक को भी गिरफ्तार किया तथा उन्हें पाँच साल की सजा दी। इसके बाद आन्दोलन शिथिल पड़ता गया।

11.3.3 असहयोग आन्दोलन की अवधि में किसान आंदोलन

बिपन चंद्र के अनुसार बीसवीं शताब्दी के कृषक आन्दोलनों पर स्वतंत्रता संघर्ष का गहरा प्रभाव दिखाई देता है तथा दूसरी ओर इन आन्दोलनों ने राष्ट्रीय आन्दोलनों को भी प्रभावित किया। महात्मा गांधी नहीं चाहते थे कि किसानों और जमींदारों में संघर्ष हो उन्होंने इस प्रकार के विचार 1921 ई. में फैजाबाद में दिये गये एक भाषण तथा 9 मार्च, 1921 ई. के 'यंग इण्डिया' में प्रकट किये थे लेकिन फिर भी जो किसान आन्दोलन असहयोग आन्दोलन के समय में हुए उनमें इन दोनों पक्षों के मध्य तनाव अवश्य दिखाई देता है।

(1) अवध व संयुक्त प्रांत के अन्य भागों के आन्दोलन:

1918 ई. में उत्तर प्रदेश में किसान सभा की स्थापना हुई। अवध में प्रतापगढ़ व अन्य इलाकों में 1920 ई. की ग्रीष्म ऋतू में अनेक स्थानों पर किसानों की सभाऐं हुई। इस अवधि में बाबा रामचन्द्र नामक एक साधु ने इसका नेतृत्व सम्भाला। यद्यपि अगस्त, 1920 ई. में उसे गिरफ्तार किया गया परन्तु किसानों की एक भीड़ के प्रदर्शन के कारण उसे छोड़ दिया गया। किसानों के आन्दोलन को दबाने के लिए तालुकेदारों ने उनकी फसलें नष्ट की तथा जबरदस्ती लगान वसूल किया। इसके फलस्वरूप किसानों ने दंगे किये। गांधी जी ने काश्तकारों को सलाह दी कि वे जमींदारों का विरोध न करें बल्कि सरकार के विरूद्ध संघर्ष करें इस बीच कांग्रेस के कुछ नेताओं ने अपनी एक पृथक किसान सभा स्थापित की। शीघ्र ही किसान आन्दोलन रायबरेली व फैजाबाद कें क्षेत्रों में भी फैल गया। किसानों व पुलिस में कई स्थानों पर मुठभेड़ हुई। 1922 ई. में यह आन्दोलन संयुक्त प्रान्त के अन्य भागों में भी फैल गया। लेकिन धीरे–धीरे यह आन्दोलन शिथिल पड़ गया। इसका एक कारण अवध रेंट एक्ट, 1921 (Oudh Rent Act, 1921) का पारित होना था। इसमें काश्तकारों के स्थायित्व के लिये कुछ प्रावधान थे। दूसरा प्रमुख कारण संगठनात्मक कमजोरी थी। यद्यपि कुछ कांग्रेसी नेताओं ने इसमें भाग लिया था किन्तु कुछ स्थानों पर हिंसा के प्रदर्शन के बाद उन्होंने कृषकों के हितों के स्थान पर असहयोग कार्यक्रमों को अधिक महत्व दिया। सुमित सरकार के अनुसार 1921 ई. के मध्य तक असहयोग आन्दोलन बड़ी सीमा तक किसान आन्दोलन को निगल चुका था। किसानों की माँग पीछे धकेल दी गईं थी। संयुक्त प्रान्त की घबराई हुई सरकार ने तालुकेदारों को इस बात के लिए राजी कर लिया था कि वे 'अवध रेंट एक्ट' के तहत किसानों को कुछ रियायतें दें।

बिहार के किसानों का आन्दोलन : असहयोग आन्दोलन के समय बिहार में ग्रामों के पास चरागाहों में पशुओं को चराने की मुक्त सुविधा तथा लगान में कमी के लिये किसानों ने आन्दोलन किया। यह आन्दोलन उत्तरी बिहार के चम्पारन, सरन, मुजफ्फरपुर और पूर्णिया जिले में सबसे अधिक हुआ।

बंगाल मे कृषक आन्दोलन : असहयोग आन्दोलन की अवधि में मिदनापुर जिले के ग्रामीणों ने नवगठित यूनियन बौर्ड और उनके दारा लगाये गये कर का विरोध किया। उत्तरी बंगाल में कृषकों ने लगान की नाअदायगी आरंभ की।

असम में कृषकों की असहयोग आन्दोलन मे भूमिका : अनेक स्थानों पर किसानों ने लगान अदा नही किया।

उडीसा के किसानों की असहयोग आन्दोलन में भूमिका : उड़ीसा के कुछ भागों में किसानों ने सामंतों को अबवाबों की अदायगी देने से मना किया।

(2) पंजाब में अकाली आन्दोलन:

पंजाब में जमींदारों व गुरूदारों के महन्तों के पास काफी भूमि थी। जमींदार किसानों का शोषण करते थे। महन्त जमीनों सें प्राप्त राजस्व की आमदनी का उचित उपयोग सिक्खों के लिये नहीं करते थे। अत: इन दोनों के विरूद्ध किसानों ने आन्दोलन प्रारम्भ किया। 1920–22 ई. में इसने साम्राज्यवाद विरोधी रूप भी धारण कर लिया। अकालियों ने गुरूद्वारों की कुछ भूमि पर अधिकार कर लिया तथा गुरूद्वारों के प्रबन्ध पर भी नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश की। अब गुरूद्वारों के प्रबन्ध के मामले का आन्दोलन में महत्व बढ़ गया। सरकार ने महन्तों का पक्ष लिया। 1922 ई. में गुरू बाण नामक स्थान पर पुलिस ने गोलियां चलाई जिसमें कुछ व्यक्ति मारे गये।

(3) मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में भील किसानों का आन्दोलन:

1921 ई. में मेवाड़ के एक ओसवाल मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में भील कृषकों का एक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। मोतीलाल गांधी जी का अनुयायी था तथा सिद्धान्तों पर इस आन्दोलन को चलाना चाहता था। उसने राज्य सरकारों द्वारा भीलों से लिये जाने वाले लगान की दरों, सामंतों के शोषण तथा उनके एवं सरकारी अधिकारियों द्वारा बेगार लेने की प्रथा के विरूद्ध आवाज उठाई। वह अपने अनुयायियों को 'एकी ' की शपथ दिलाता था। शीघ्र ही उसके अनुयायियों की संख्या बढ़ गई। मेवाड़ की सरकार ने उसकी गिरफ्तारी के आदेश जारी किये किन्तु 1922 ई. तक मोतीलाल मेवाड़, सिरोही,, ईडर रेवाकांथा आदि प्रदेशों में भीलों के साथ घूम कर प्रचार करता रहा। गुजरात में रेवाकांथा में विजयनगर के पास 'मेवाड़ भील कार्प्स' के कमांडर ने उसकी एक सभा पर गोलियां चलाई जिसमें काफी संख्या में भील मारे गये। कुछ समय बाद उसने गांधीजी की सलाह पर आत्मसमर्पण कर दिया।

(4) मोपला आन्दोलन:

उन्नीसवीं सदी में मालाबार के मोपला के किसानों, जो मुसलमान थे, ने अपने हिन्दू जमींदारों (जन्मियों) के विरूद्ध कई बार विद्रोह किये। उनमें ब्रिटिश विरोधी भावनाऐं भी जागृत हो गई थी। स्थानीय मौलवियों व काजियों ने उनमें धार्मिक जोश भी भर दिया था। 1916 ई. में मालाबार में 'टेनेंसी एसोसिएशन' की स्थापना हुई। सुमित सरकार के अनुसार इस समय से उस प्रदेश में विकसित हुए कृषक आन्दोलन को खिलाफत आन्दोलन ने अपने हाथ में ले लिया। खिलाफत आन्दोलन की सभाओं में किसानों की माँगों का समर्थन किया जाता था। आरम्भ में

इस आन्दोलन में साम्प्रदायिक भावना का अभाव दिखाई देता है लेकिन शीघ्र ही इसका नेतृत्व मौलवियों व हाजियों (थुंगलो) के हाथ में आ जाने से साम्प्रदायिकता की आग भड़क उठी। मोपलाओं ने कचहरियों, सरकारी कार्यालयों, डाकखानों, रेलवे व तार की लाईनों को नष्ट किया। स्थिति को नियंत्रण में लाने के लिये सरकार ने "मार्शल लॉ" लगा दिया। बिपन चंद्र के अनुसार इसके बाद मोपला विद्रोहियों ने उन हिंदुओं पर भी आक्रमण शुरू किये जिन्होंने बाध्य होकर सरकार का समर्थन किया था। इसके फलस्वरूप जो आन्दोलन अब तक मुख्य रूप से सरकार और भू–स्वामी विरोधी था, उसने अब साम्प्रदायिक रूप भी धारण कर लिया। इससे मोपला विद्रोहियों तथा असहयोग आन्दोलन के नेताओं में मतभेद पैदा हो गया। सरकार ने बड़ी सख्ती के साथ विद्रोह का दमन किया। 1922 ई. के प्रारम्भ तक मोपला विद्रोह को दबा दिया गया। इस विद्रोह में 2377 विद्रोही मारे गये तथा 45,404 विद्रोहियों ने या तो आत्म समर्पण किया अथवा उन्हें गिरफ्तार किया गया।

(5) आंध्र प्रदेश के आंदोलन

1921 ई. तक की अवधि में आंध्र प्रदेश के मुहाना क्षेत्र में मालगुजारी की नाअदायगी का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। इसका आरम्भ वहाँ के ग्राम अधिकारियों ने सरकार उनके महत्वपूर्ण विशेषाधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने के विरोध में किया। उनका साथ किसानों ने दिया जिनकी फसल 1921 ई. में कम वर्षा के कारण खराब हो गई थी। किसानों में यह भी धारणा घर कर गई थी कि गांधीजी का स्वराज्य आने वाला है तथा कर देने की आवश्यकता नहीं है। इस आन्दोलन के फलस्वरूप जनवरी, 1922 ई. में राजस्व की प्राप्ति। 14.73 लाख रुपये से घट कर केवल चार लाख रुपये रह गई। अंततः 10 फरवरी को गांधीजी की सलाह पर आंध्र कांग्रेस के नेताओं ने आन्दोलन वापस ले लिया।

भद्राचलम से पार्वतीपुरम के क्षेत्र में अल्लूरी श्री रामा राजू के नेतृत्व में आदि निवासियों ने साहूकारों व व्यापारियों के शोषण, बेगार व घने वनों के क्षेत्र में सड़क बनाने का विरोध किया। उनकी एक माँग यह भी थी कि उन्हें अपने पुराने तरीके से 'पोडू' की खेती करने दी जाय। यद्यपि अल्लूरी श्री रामा राजू गांधी जी का अनुयायी था तथा अहिंसात्मक ढंग से आन्दोलन का संचालन करना चाहता था किन्तु वह अपने अनुयायियों को नियन्त्रण में नहीं रख सका। 1922– 24 के इस आन्दोलन में कुछ हिंसात्मक घटनायें हुईं। अंत में राजू के आत्म समर्पण से यह आन्दोलन समाप्त हुआ।

(6) राजस्थान के अन्य कृषक आंदोलन

1925–26 ई. में अलवर रियासत में भू–राजस्व में पचास प्रतिशत की वृद्धि का विरोध करने के लिये वहाँ के किसानों ने आन्दोलन किया। मई, 1925 ई. में नीमूचाना नामक स्थान पर राज्य की पुलिस ने उनकी एक सभा पर मशीनगनों से गोलियां चलाई। इसमें 156 व्यक्ति मारे गये तथा 600 घायल हुए।

1926 ई. में नयूनराम शर्मा के नेतृत्व में बूंदी रियासत के किसानों ने लगान में वृद्धि, बेगार प्रथा तथा लागतों की वसूली के विरूद्ध आन्दोलन किया। इस आन्दोलन में स्त्रियों ने भी

भाग लिया। डाबी नामक गाँव में किसानों की एक सभा पर गोलियां चलाई गई जिसमें नानक भील मारा गया।

(7) बारदोली सत्याग्रह

1921–22 ई. से ही गुजरात में सूरत जिले के बारदोली तालुके में गांधीजी के कार्यक्रम के अनुसार रचनात्मक कार्य आरंभ हुआ था। स्थानीय नेताओं ने अछूतों व आदिवासियों, जो 'कलिपराज' कहलाते थे, के उत्थान का कार्य भी हाथ में ले लिया। अधिकांश कलिपराज उच्च जाति के हिन्दू पाटीदारों के यहाँ 'हाली' का कार्य करते थे। ये पाटीदार उनका शोषण करते थे। 1926 ई. में इस तालुके से भू–राजस्व की दर में तीस प्रतिशत की वृद्धि की सिफारिश की गई। कांग्रेस द्वारा इसकी जाँच के लिये नियुक्त एक समिति के अनुसार ऐसा करना अनुचित था। गांधीजी ने इस निर्णय का समर्थन किया। जुलाई, 1927 ई. में सरकार ने लगान की वृद्धि दर को घटा कर 21.97 प्रतिशत किया। किसानों का नेतृत्व सरदार वल्लभ पटेल ने किया। सरकार से उनकी वार्ता असफल रही। इस पर बारदोली में सत्याग्रह आरम्भ हुआ। सरदार पटेल ने समस्त तालुके को 13 भागों में बाँट कर प्रत्येक में एक अनुभवीं नेता तैनात किया। बढ़े हुए लगान को अदा करने वाले किसानों तथा राजस्व विभाग के कर्मचारियों का सामाजिक बहिष्कार किया गया। शीघ्र ही सारे देश में इस आन्दोलन के समर्थन में आवाजें उठाई गई। अगस्त, 1928 ई. में गांधीजी वहाँ गये। उन्होंने कहा कि सरदार पटेल के गिरफ्तार होने की स्थिति में वे स्वयं इसका नेतृत्व करेंगे। सरकार ने एक राजस्व अधिकारी को लगान की दर में वृद्धि की जाँच करने के लिये नियुक्त किया। उसने इसको अनुचित बताते हुए केवल 6.03 प्रतिशत वृद्धि की सिफारिश की। इस निर्णय के फलस्वरूप आन्दोलन समाप्त किया गया।

सुमित सरकार के अनुसार ग्रामीण संगठन और आंदोलन के विशिष्ट गांधीवादी तरीकों को पहले–पहल वास्तविक शक्ति 1928 ई. में बारदोली की अनोखी सफलता के साथ मिली। यद्यपि गांधी जी ने स्वराज्य प्राप्ति की दिशा में इसे एक प्रत्यक्ष संघर्ष नही माना किन्तु उनके मत में बारदोली जैसा प्रत्येक प्रयत्न स्वराज्य को नजदीक लाने का कार्य करेगा।

(8) 1930 से 1939 ई. तक के कृषक आंदोलन

1929 ई. में बिहार में स्वामी सहजानंद ने बिहार प्रान्तीय कांग्रेस सभा की स्थापना की। इसके पश्चात् देश के अन्य भागों में भी किसान संगठन बने। अप्रैल, 1926 ई. में एन.जी. रंगा और कुछ अन्य किसान नेताओं के प्रयत्नों से लखनऊ में अखिल भारतीय किसान कांग्रेस बनाई गई। केन्द्रीय प्रान्तों के किसान संगठनों ने किसानों की माँगो के लिये कई स्थानों पर आन्दोलन किये।

1930 ई. में आरम्भ किये गये सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय देश के कई भागों में कृषकों ने लगान की नाअदायगी के लिये आन्दोलन किये। उन्हें बारदोली की सफलता से भी प्रेरणा मिली थी। ऐसे आन्दोलन आंध प्रदेश गुजरात, बिहार, बंगाल व उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में हुए

अखिल भारतीय किसान सभा ने किसानों की माँगों का एक घोषणा पत्र तैयार किया जिसे 1937 ई. में कांग्रेस ने स्वीकार किया। इसकी मुखर माँग थी– भू–राजस्व मे पचास प्रतिशत की कमी, ऋणों में छूंट, सामंती लाग अबवाबों की समाप्ति, काश्तकारों को भूमि जोतने के स्थायी अधिकार, खेतीहर मजदूरों के लिये उचित पारिश्रमिक और किसान यूनियनों को मान्यता।

बिपन चंद्र के अनुसार 1937 ई. में अनेक प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रिमंडलों के निर्माण से किसान आन्दोलन का एक नया चरण शुरू हुआ 1937 से सितम्बर, 1938 ई. तक कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने उनके हितों के लिये कुछ कानून पारित किये। इन कानूनों के प्रति कृषकों ने या तो अपना संतोष व्यक्त किया अथवा उनमें कुछ और सुधार करने की माँग की। इसके लिये कई किसान सभाऐं आयोजित की गई जिनमें किसानों ने उत्साह के साथ भाग लिया। उनमें एक नया जोश देखने को मिला। 1939 ई. में कांग्रेस मंत्रिमंडलों के त्यागपत्र के बाद किसानों तथा समाजवादी नेताओं की गिरफ्तारी के फलस्वरूप किसान आन्दोलनों पर अंकुश लगा।

11.4 प्रथम विश्व युद्धोत्तर काल के कृषक आंदोलन का स्वरूप

11.4.1 कृषकों की मुख्य माँग

इस समय कृषकों ने सामंतों, तालुकदारों. जन्मियों व जमींदारों द्वारा वसूल किये जाने व वाले लाग–अबवाब व बेगार का विरोध किया। उन्होंने लगान की नाअदायगी भी की। बिहार में चरागाहों में अपने पशुओं को बिना शुल्क चराने की सुविधा के लिये माँग पेश की गई।

11.4.2 सरकार व जमींदार वर्ग का रवैया

सरकार व जमींदार वर्ग ने इन माँगों को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने इसे राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित माना।

11.4.3 भिन्न–भिन्न प्रदेशों के आन्दोलनों की प्रकृति में आधारभूत समानताएं

बिपन चंद्र के अनुसार इन आन्दोलनों की प्रकृति तथा कृषकों के सहयोग लेने के तरीकों में भिन्न–भिन्न प्रदेशों में आम तौर पर समानता पाई जाती है। कांग्रेस व किसान संगठनों ने आम तौर पर सभाओं, सम्मेलनों, प्रदर्शनों और जुलूसों आदि के माध्यम से किसानों को आन्दोलन में भाग लेने के लिये प्रेरित किया। लगान व अबवाबों की नाअदायगी प्रत्यक्ष कार्यवाही के रूप में उभरी।

11.4.4 कृषि ढाँचे में आमूल परिवर्तन कराने की चेष्टा का अभाव

पहले की भांति प्रथम विश्व युद्धोत्तर के किसान आन्दोलनों में समकालीन कृषि ढाँचे में आमूल परिर्वतन लाने की चेष्टा नहीं की गई। इन आन्दोलनों में कृषकों के प्रति अन्यायों के प्रतिकार के लिये सरकार को सचेत करना था।

11.4.5 अहिंसात्मक ढंग से चलाने का प्रयत्न

महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन को अहिंसात्मक सिद्धान्तों पर चलाने का निश्चय किया था। अतएव इस समय के कृषक आन्दोलनों में नेताओं ने हिंसा को महत्व नहीं दिया। आंध्र प्रदेश में आदिवासियों के आन्दोलन का आरम्भ इसी सिद्धांत के आधार पर किया गया किन्तु बाद में इसमें हिंसात्मक घटनायें हुई।

11.4.6 राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बद्धता

प्रथम विश्व युद्धोत्तर काल के कृषक आन्दोलन असहयोग आन्दोलन के एक अंग थे। इस प्रकार प्रथम बार वे व्यापक रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बद्ध हो गये। इसके पश्चात् राष्ट्रीय आन्दोलन की बढ़ती हुई व्यापकता ने किसान आन्दोलनों को शक्ति प्रदान की।

11.4.7 कृषक आन्दोलन के नेताओं मे सामंजस्य की भावना

युद्धोत्तर काल में कुछ किसान संगठनों के नेता और कांग्रेस ने मिलकर आन्दोलन का संचालन किया। कुछ समय पश्चात् उनके मतभेद उभरे तथा वामपंथी नेता व कांग्रेस के किसान नेताओं में अलगाव हुआ। इस अवधि में किसान आन्दोलन का नेतृत्व मुख्य रूप से कांग्रेस के पास रहा।

11.4.8 मोपला विद्रोह मे साम्प्रदायिकता की भावना

मालाबार में मोपला किसानों ने असहयोग आन्दोलन के प्रारंभ में साम्प्रदायिक भावना का प्रदर्शन नही किया था किन्तु मौलवियों और काजियों के प्रभाव में आकर उन्होंने हिंदूओं का कत्ल किया तथा उनकी सम्पत्ति नष्ट की।

11.4.9 किसानों में चेतना का उदय

युद्धोत्तर काल में देश के अनेक भागों के किसानों में एक साथ चेतना का उदय हुआ।

11.4.10 किसान आन्दोलनों की व्यापकता

इसके पहले के किसान आन्दोलन अपने क्षेत्रों तक ही सीमित रहते थे तथा कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के बाद अथवा सरकारी दमन के साथ समाप्त हो जाते थे किन्तु युद्धोत्तर काल के किसान आन्दोलन देश के विभिन्न भागों में एक साथ हुए इसके बाद भी वे समय–समय पर अनेक भागों में एक साथ होते रहे।

11.4.11 दीर्घकालीन संगठन शक्ति

विभिन्न प्रान्तों में स्थापित किसान सभाओं तथा राजनैतिक दलों ने किसानों के आन्दोलनों को चलाने के लिये लगातार प्रयास किये।

11.5 प्रथम विश्व युद्धोत्तर काल के किसान आंदोलनों के परिणाम

यद्यपि इस अवधि के किसान आन्दोलनों को अपनी माँगों को मनवाने में सफलता नही मिली किन्तु उन्होंने किसानों को अपने अधिकारों से अवगत कराया। किसानों में जागृत इस चेतना को भावीं किसान आन्दोलनों का आधार बनाया गया।

इसके पश्चात् 1947 ई. तक के किसान आन्दोलनों तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों में निकट का सम्पर्क बना रहा। इनमें उन्हीं तरीकों को अपनाया गया जो युद्धोत्तर काल में कांग्रेस और किसान संगठनों ने अपनाये थे।

11.6 सारांश

इकाई के आरंभ में ब्रिटिश शासन काल में किसानों की बिगड़ती हुई दशा का अवलोकन किया गया है। 1757 से 1916 तक के कृषक आन्दोलन के स्वरूप की व्याख्या की गई। यह दर्शाया गया है कि प्रथम महायुद्ध के पहले किसानों की जो समस्याऐं थी युद्धोतर काल में भी लगभग वही रही। इन समस्याओं का विस्तृत रूप अध्ययन किया गया है इस अध्ययन से ज्ञात होता है कि लगान के बढ़ते हुए भार, वर्ग तथा सरकारी अधिकारियों की शोषण की प्रवृत्ति, ग्रामीण ऋणग्रस्तता, बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण भूमि पर बढ़ता हुआ दबाव, सरकार द्वारा कृषकों के हितों की, सिंचाई के पर्याप्त साधनों का अभाव, देशी राज्यों में कृषकों का सामंतवादी तत्वों शोषण तथा सरकार द्वारा कृषि उन्नति के कार्यो की उपेक्षा के कारण किसानों की शोचनीय बनी रही। प्रथम विश्व युद्ध में बढ़ती हुई महंगाई ने उनकी कठिनाईयों में और वृद्धि की। रूसी क्रांति का प्रभाव भी यहाँ के किसान आन्दोलनों पर पड़ा। साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होकर भारत में भी किसान संगठन स्थापित हुए जिन्होंने आरंभ में कांग्रेस के साथ मिलकर, किसानों में चेतना का संचार किया।

1918 से 1923 ई. तक के किसान आन्दोलनों का भी वर्णन किया गया है। इसमें ब्रिटिश प्रान्तों के अतिरिक्त राजपूताना के मेवाड़ राज्य की बिजोलिया व बेगूं जागीर के आन्दोलन पर भी प्रकाश डाला गया है। इनमें किसानों की माँग, आन्दोलन के समय उनका व्यवहार, किसान सभा व कांग्रेस की भूमिका की विवेचना की गई है।

प्रथम विश्व युद्धोत्तर काल के किसान आन्दोलनों के स्वरूप का निरूपण किया गया है। इसमें कृषकों की मुख्य माँग, सरकार व जमींदारों का रवैया, भिन्न–भिन्न प्रदेशों के आन्दोलनों में आधारभूत समानताऐं, आन्दोलनों का अहिंसात्मक रूप, राष्ट्रीय आन्दोलन से इनकी सम्बद्धता, कृषक आन्दोलनों के नेताओं में सामंजस्य की भावना, मोपला विद्रोह के अतिरिक्त शेष। कृषक आन्दोलनों में साम्प्रदायिकता की भावना का अभाव, आन्दोलन की व्यापकता और दीर्घकालीन संगठन शक्ति की विवेचना की गई है।

युद्धोत्तर काल के किसान आन्दोलन अपनी माँगों को मनवाने में सफल नहीं हुए किन्तु उन्होंने किसानों में चेतना का सूत्रपात किया। यह चेतना स्वतंत्रता प्राप्ति तक के किसान आन्दोलनों का आधार बनी तथा इसके बाद के सब किसान आन्दोलनों तथा राष्ट्रीय आन्दोलन

में निकट का सम्पर्क बना रहा। उनमें लगभग उन्ही तरीकों को अपनाया गया जो युद्धोत्तर काल में आन्दोलनों में अपनाये गये थे।

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 प्रथम विश्व युद्धोत्तर काल की कृषि समस्याओं की विवेचना की कीजिये।

प्रश्न 2 बिजोलिया व बेगूं के किसान आन्दोलनों की विवेचना कीजिए।

प्रश्न 3 विभिन्न ब्रिटिश प्रान्तों में असहयोग आन्दोलन के समय किये गये किसान आन्दोलनों, का वर्णन कीजिये।

प्रश्न 4 प्रथम विश्व युद्धोत्तर काल के किसान आन्दोलनों के स्वरूप और परिणामों की विवेचना कीजिए।

11.8 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. Sunil Sen : Peasant Movements in India - Mid Nineteenth and Twentieth Century, Calcutta, 1982.
2. A.R. Desai (Editor) : Peasant Struggles in India, Bombay, 1979.
3. Sumit Sarkar : Adunik Bharat (Hindi), New Delhi, 1992.
4. Dharma Kumar (Editor) : The Cambridge Economic History of India, Volume II (1757&1970), Delhi, 1982.
5. Bipan Chandra and others: India's Struggle for Independence, Delhi, Reprint, 1989.
6. Tara Chand :The Freedom Movement in India, Volume III (Hindi), New Delhi, 1984.
7. B.K. Sharma : Peasant Movements in Rajasthan.
8. B.K.Sharma : Tribal Revolts

इकाई – 12

मोपला विद्रोह (1920–22 ई.)

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 मोपला कृषकों की स्थिति

12.3 उन्नीसवीं सदी के मोपला विद्रोह

12.4 मोपला विद्रोह (1920–22 ईस्वी) के कारण

(1) जन्मियों व कनामदारों द्वारा मोपला किसानों का शोषण

(2) जन्मियों व कनामदारों द्वारा सामाजिक श्रेष्ठता का प्रदर्शन

(3) कृषकों की दशा सुधारने के प्रयत्नों में उत्साह का अभाव

(4) सरकार द्वारा विद्रोहों के क्रूर दमन से उत्पन्न ब्रिटिश विरोधी भावनायें।

(5) थुंगलों का प्रभाव

(6) आबादी में वृद्धि

(7) मलाबार टेनेंटस् एशोसियेशन का प्रचार

(8) कांग्रेस द्वारा मोपला कृषकों की माँगों का समर्थन

(9) सहयोग व खिलाफत आन्दोलन का प्रभाव

(10) सरकारी अधिकारियों में इस विद्रोह के कारणों पर विभिन्न मत।

12.5 विद्रोह की घटनायें

12.6 विद्रोह का स्वरूप

(1) हिंसा का प्रयोग

(2) धार्मिक जोश

(3) हिन्दू विरोधी भावना

(4) मोपला विद्रोहियों में प्रबल साम्राज्यवादी–विरोधी भावना

12.7 विद्रोह के परिणाम

(1) ब्रिटिश सरकार का मोपला विद्रोहियों के साथ क्रूर व्यवहार

(2) टेनेंसी नियमों में सुधार

(3) साम्प्रदायिकता की भावना का प्रदर्शन तथा मोपलाओं का मुस्लिम लीग की ओर झुकाव।

(4) असहयोग आन्दोलन अप्रभावित।

12.8 सारांश

12.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.10 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

12.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप उन्नीसवीं सदी के कृषक आन्दोलनों से मोपला विद्रोह (1920–22 ईस्वी) के स्वरूप में भिन्नताएं तथा मलाबार में भूमि की व्यवस्था एवं उसमें मोपला किसानों की शोचनीय स्थिति का अध्ययन करेंगे।

उन्नीसवीं सदी में समय–समय पर हुए मोपलाओं के विद्रोह, उनमें मुस्लिम धार्मिक नेताओं की भूमिका तथा मोपलाओं में ब्रिटिश विरोधी भावनाओं का जागृत होना।

12.1 प्रस्तावना

बंगाल सूबे में ब्रिटिश सरकार की स्थापना के समय से ही शासित प्रदेशों में अनेक स्थानों पर कृषकों के विद्रोह हुए। प्रथम महायुद्ध तक हुए इन आंदोलनों के उद्देश्य सीमित थे। इन आन्दोलनों में कृषकों ने बागानों के विदेशी स्वामियों, जमीदारों, साहूकारों व सरकारी अधिकारियों के उत्पीड़न के विरूद्ध आवाज उठाई थी। उन्होने उस समय के कृषि ढाँचे में परिवर्तनों के लिये प्रयत्न नही किये, जो उनके शोषण की प्रक्रिया का आधार थे। आम तौर पर ये आन्दोलन कम समय तक चले और अपने क्षेत्रों तक ही सीमित रहे। सामान्य रूप से इनके नेताओं में भी ठोस विचारधाराओं का अभाव दिखाई देता है। मोपला विद्रोहों को छोड़कर सामान्यत: इन आन्दोलनों में साम्प्रदायिकता। की भावना का भी अभाव पाया जाता है। ब्रिटिश सरकार ने इन आन्दोलनों का आसानी के साथ दमन कर दिया। यद्यपि 1875 ई. के दक्कन उपद्रवों में पुन: सार्वजनिक सभा ने किसानों की माँगों का समर्थन किया तथा नील बगावत में भी समाचार पत्रों ने किसानों के पक्ष में प्रचार किया लेकिन वास्तव में उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशकों से स्थापित राजनीतिक संस्थाओं ने किसानों में ब्रिटिश सरकार की औपनिवेशिक नीतियों के विरोध में भावनाऐं जागृत की। इनमें उन्नीसवीं। सदी में मलाबार के मोपला किसानों में तीव्र ब्रिटिश विरोधी भावनाऐं देखने को मिलती है। ऐसी भावनाओं को उभारने में धार्मिक नेताओं का भी हाथ था। 1920–22 ईस्वी का मोपला विद्रोह, जो आरंभ में देशव्यापी आन्दोलन का एक भाग था, ने शीघ्र ही एक ऐसा रूप धारण कर लिया जो इन वर्षों में देश के अन्य भागों में चल रहे कृषक आंदोलनों से भिन्न था। इस आन्दोलन में उग्र साम्प्रदायिकता की भावना ने विकराल रूप धारण कर लिया। इसमें हिंसा का व्यापक इस्तेमाल हुआ। सरकार ने भी अत्यन्त क्रूरता के साथ इस विद्रोह का दमन किया। लेकिन इसका यह रूप स्थानीय ही रहा। देश के अन्य भागों में चल रहे कृषक आन्दोलनों में हिंसा व साम्प्रदायिकता की भावना को नहीं उभारा गया।

12.2 मोपला कृषकों की स्थिति

मोपलों का मूल निवास स्थान अरब था। वहाँ से वे लगभग एक हजार वर्ष पूर्व आकर मलाबार में बस गये थे। उनमें से अधिकांश खेती या छोटा–मोटा व्यापार थे। मलाबार में मोपला किसानों की दशा अच्छी नहीं थी। केम्ब्रिज इकनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, जिल्द दो, (पृष्ठ 236–37) में मलाबार में भूमि व्यवस्था की विवेचना की गई है। इसके अनुसार वहीं पर भू–स्वामी "जन्मी" कहलाते है जिनमें से अधिकांश नम्बूद्रीपाद ब्राह्मण और नायर थे। वे स्वयं

खेती नहीं करते थे। वे अपने स्वामित्व के अधिकारों को बेच सकते थे अथवा कुछ समय के लिए उसे ठेके पर दे सकते थे। सुमित सरकार के अनुसार टीपू सुल्तान ने काफी संख्या में जन्मियों को मलाबार से खदेड़ दिया था। उनकी अधिकांश भूमि पर उनके ठेकेदारों, जो कि "कनामदार" कहलाते थे, तथा शेष पर मोपला कृषकों ने अधिकार कर लिया था। लेकिन अंग्रेजों की मलाबार विजय के बाद वे इस प्रदेश में वापस आ गये। अंग्रेजों ने जन्मियों का समर्थन प्राप्त करने के लिये उन्हें भूमि पर वापस अधिकार दे दिये। इस प्रकार मोपला किसान फिर से उनके काश्तकार (वेरूम–पत्तमदार) बन गये।

ब्रिटिश शासन काल में आम तौर पर एक जन्मी अपनी भूमि को बारह वर्ष या उससे कम समय के लिए कनामदार को ठेके पर उठा देता था। प्रारम्भ में एक ठेकेदार जन्मी को एक निश्चित रकम (कनाम) अदा करता था तथा जन्मी कनामदारों से लगान वसूल करता था। ठेके की अवधि समाप्त होने पर जन्मी या तो कनाम की रकम लौटा देता था अथवा ठेके की पुनरावृत्ति कर देता था। कभी–कभी एक कनामदार कम दरों पर ऐसी भूमि को ठेके पर ले लेता था जहाँ पैदावार कम होती थी अथवा लगान वसूल करने में खर्च अधिक होता था। अधिकांश कनामदार नायर जाति के थे। शेष हिन्दुओं की निम्न जातियों के थे। कुछ कनामदार स्वयं खेती करते थे अथवा पटट्मदारो को भूमि खेती के लिये देते थे। कोई कोई पट्टमदार भूमि को वेरूम पट्टमदारों को खेती के लिये दे देता था। इस प्रकार की व्यवस्था में मोपला किसानों की दशा दयनीय थी। जन्मी और कनामदारों को उन्हें भूमि से बेदखल करने का अधिकार था। उन्हें लगान वसूल करने के अतिरिक्त भूमि से कोई लगाव नहीं था। कृषकों को भूमि में की गई उन्नति का पूरा लाभ नहीं मिलता था क्योंकि उसे अपनी। बढ़ी हुई पैदावार का निश्चित भाग भी लगान के रूप में अदा करना पड़ता था। 1881–82 ईस्वी में मलाबार स्पेशल आयोग के कमिश्नर लोगान ने लिखा कि कृषकों की दशा बिगड़ गई है। भूमि पर बेदखली से, जो भी कुछ परम्परागत प्रतिबन्ध थे, वे कमजोर हो चुके है। 1862 व 1880 ई. के बीच बेदखली के मामलों में 45 प्रतिशत की वृद्धि हो गई है। भूमि की उन्नति के लिये कोई मुआवजा भी नहीं दिया जाता है। उसके मत में काफी संख्या में कृषक दास की तरह जीवन व्यतीत करते है।

12.3 उन्नीसवीं सदी के मोपला विद्रोह

उन्नीसवीं शताब्दी में मोपला किसानों ने समय–समय पर विद्रोह किये। 1836 से 1854 ई. तक मलाबार में 22 विद्रोह हुए, इनमें 1851 ई. का विद्रोह सबसे भयंकर था। इसका नेतृत्व मौलवीं सैयद अली व उसके पुत्र फजल अली ने किया था। पिछले 20 सालों में मलाबार के किसानों में मौलवियों तथा हाजियों का, जो "थुंगल" कहलाते थे, प्रभाव बहुत बढ़ गया था। इस अवधि में इस प्रदेश में मस्जिदों की संख्या 637 से बढ़कर 1058 हो गई थी। थुंगलों ने मोपलाओं को हिन्दू जन्मियों के विरूद्ध उकसाया। ब्रिटिश सरकार ने इन सब उत्पातों का सख्ती के साथ दमन किया। उन्होंने अपराधियों को कड़ी सजाऐं दी। इससे मोपलो में ब्रिटिश विरोधी भावनाऐं जागृत हुई। 1855 ईस्वी में एच.वीं. कोनोली नामक एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट की हत्या हुई। कोनराड वुड नामक एक विद्वान, जिन्होंने मोपला विद्रोहों का अध्ययन किया है, लिखते है

कि इससे उनमें ब्रिटिश विरोधी भावनायें बढ़ती चली गई। वे कहने लगे कि इस प्रदेश में मुसलमानों के लिये कोई स्थान नही है और हम पर श्वेत मनुष्यों द्वारा काफी अत्याचार किये जा रहे है।

1856 ईस्वी के बाद भी कई विद्रोह हुए। 1880 के विद्रोह के बाद इस मामले की जाँच के लिये लोगान की अध्यक्षता में एक विशेष आयोग बिठाया गया। उसने मोपला किसानों की शोचनीय दशा का वर्णन किया। 1885 ई. में मलाबार लैंड टेन्योरस कमेटी (Malabar Land Tenures Committee) ने मलाबार की भूमि व्यवस्था की जाँच करके यह निष्कर्ष निकाला कि किसानों को भूमि स्वामित्व अधिकार देना न तो ऐतिहासिक परम्पराओं के परिपेक्ष्य में और न ही राजनीतिक दृष्टि से आवश्यक है। इससे स्पष्ट है कि इस मामले में ब्रिटिश सरकार ने अपने हितों के अनुसार निर्णय लिया था। जिस प्रकार पश्चिम बंगाल में ब्रिटिश सरकार को जमींदारों का समर्थन प्राप्त था उसी प्रकार से मलाबार में उसे जन्मियों का समर्थन मिला हुआ था और वे उसे खोना नहीं चाहती थी। अत: जन्मियों के अधिकारों को कम करने तथा मोपलाओं को भूमि पर स्वामित्व के अधिकार देने के पक्ष में जो अधिकारी थे उनकी राय को महत्व नहीं दिया गया। अतएव मोपलाओं के और विद्रोह हुए। 1882–85 ईस्वी और 1896 में विद्रोह हुए। 1896 ई. के विद्रोह में जन्मियों की सम्पत्ति पर आक्रमण के अतिरिक्त मंदिरों को नष्ट किया गया। यह कार्य मोपलाओं के छोटे–छोटे दल करते थे। पुलिस से उनका सामना होता था तो वे आत्महत्या कर लेते थे। क्योंकि उनका ऐसा विश्वास था कि वे ऐसा करके सीधे बहिशत जायेंगे। कोनराड बुड के अनुसार 1919 ई तक मोपलाओं के आक्रमण के 82 शिकारों में 62 हिन्दू (22 नम्बूद्रीपाद और नायर) थे। जिन अन्य 70 लोगों के बारे में जानकारी मिलती है यह ज्ञात होता है कि उनमें से 58 जन्मी अथवा साहूकार थे।.

12.4 मोपला विद्रोह (1920–22 ईस्वी) के कारण

(1) जन्मियों व कनामदारों द्वारा मोपला किसानों का शोषण:

ब्रिटिश शासन काल में जन्मियों तथा कनामदारों ने, जो स्वयं नही करते थे, किसानों का शोषण किया। उन्होंने किसानों से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित नही किया। वे तो उनसे मनमाना लगान वसूल करते रहे। लगान न अदा करने की स्थिति में उन्हें भूमि से बेदखल किया। गरीब किसानों की इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि वे कचहरियों में जाकर मुकदमें लड़े। 1882 ई. में लोगान ने उनकी स्थिति का सही मूल्यांकन किया था किन्तु इससे उनकी दशा में सुधार नहीं हुआ।

(2) जन्मियों व कनामदारों द्वारा सामाजिक श्रेष्ठता का प्रदर्शन

लोगान के अनुसार जन्मियों द्वारा अपनी सामाजिक श्रेष्ठता का परम्परागत प्रदर्शन सीमा का अतिक्रमण कर चुका था और सामाजिक व आर्थिक अत्याचारों ने बढ़ते हुए असंतोष को जन्म दिया है।

(3) कृषकों की दशा सुधारने के प्रयत्नों में उत्साह का अभाव

मलाबार पर अधिकार करने के बाद ब्रिटिश सरकार ने जन्मियों का प्राप्त करने के लिये उन्हें पुन: स्थापित किया। अपनी आय बढ़ाने के लिये ब्रिटिश सरकार ने लगान की दरों में वृद्धि की। उपजाऊ भूमि पर 50 प्रतिशत और कम उपजाऊ भूमि पर 33 प्रतिशत की वृद्धि की गई। इससे किसानों पर भार बढ़ा। 1830 ई. व 1831. में खाद्य पदार्थ के मूल्यों में कमी होने से किसानों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, जिल्द दो, के अनुसार ट्रावनकोर के मुकाबले में मलाबार में भू–राजस्व की दर अधिक थी। 1854 ईस्वी के कानून के अनुसार यदि एक जन्मी व कनामदार के बीच हुए समझौते में करार की अवधि का उल्लेख न हो तो उसे बारह वर्ष की ही माना जाना चाहिए। लेकिन इसमें किसानों के हितों के ये कोई व्यवस्था नहीं की गई। यद्यपि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अनेक ब्रिटिश प्रान्तों में काश्तकार अधिनियम (Tenancy Acts) पारित किये गये किन्तु मालाबार में ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया गया। यहाँ तक कि लोगान के प्रतिवेदन के बाद भी 1885 ई. में राजनीतिक कारणों से इस दिशा में सुधार करना ब्रिटिश सरकार ने उचित नहीं समझा। ढांगरे के अनुसार वास्तव में 1929 ई. कें पहले मलाबार में कृषकों के लिये कोई टेनेंसी अधिनियम बनाया ही नहीं गया। केवल दो अधिनियम पारित किये गये। 1887 ई. में भूमि में उन्नति के लिये मुआवजा देने के लिये एक अधिनियम बनाया गया लेकिन इसके प्रावधानों में कुछ कमियों के कारण यह प्रभावशाली नहीं हो सका। 1900 ई. में इसमें संशोधन किया गया लेकिन भूमिपतियों ने मुआवजा देने के स्थान पर किसानों को बेदखल करने की धमकियाँ देकर इसे भी सफल नहीं होने दिया। इसके अतिरिक्त यह भी अनुमान लगाना कठिन था कि भूमि पर जो भी उन्नति की गई है वह वास्तविक है या नहीं।

(4) सरकार द्वारा विद्रोहों के क्रूर दमन से उत्पन्न ब्रिटिश विरोधी भावनायें:

उन्नीसवीं शताब्दी के मोपला विद्रोहों का ब्रिटिश सरकार ने बड़ी सख्ती के साथ दमन किया। 1855 से 1896 ई. तक सरकारी अधिकारियों के पत्र व्यवहार के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे मोपलाओं को 'असभ्य' व 'जंगली' समझते थे तथा सदैव इनका सख्ती के साथ दमन करने की सिफारिश करते थे। इस सम्बन्ध में कोनराड वुड के मत का उल्लेख किया जा चुका है। इन परिस्थितियों में मोपलाओं में ब्रिटिश विरोधी भावनाओं की जड़ें मजबूत होती गई तथा 1921–22 में ये भावनाऐं ब्रिटिश शासन का अन्त करने के प्रयत्नों में परिलक्षित हुई।

(5) थुंगलों का प्रभाव:

उन्नीसवीं सदी से ही मालाबार के मोपलाओं पर थुंगलों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। वे उन्हें हिन्दू जन्मियों तथा कनामदारों के विरूद्ध उकसाते थे 1851 ई. में तिरूंगेगुडी के निकट माम्बरम के थुंगल बेयद अलावीं और उसके पुत्र फजल अली मोपलाओं के धार्मिक राजनीतिक नेताओं के रूप में उभरे। उन्होंने 1851 ई. के विद्रोह का नेतृत्व भी किया। इस विद्रोह के बाद उन्हें निर्वासित किया गया किन्तु अन्य मौलवीं धार्मिक प्रचार करते रहे। यद्यपि असहयोग आन्दोलन के आरंभ में मलाबार में हिन्दुओं व मुसलमानों ने सहयोग की भावना प्रदर्शित की।

किन्तु शीघ्र ही हिंदू विरोधी भावनाऐं उभरी तथा किसानों ने हिन्दू भू–स्वामियों का कत्ल किया अथवा उन्हें लूटा।

(6) आबादी में वृद्धि

केम्ब्रीज इकनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, जिल्द दो (पृष्ठ 488) पर दिये गये आकड़ों के अनुसार 1851 से 1921 ई. तक भारत के सभी प्रदेशों में आबादी 171.9 मिलियन से बढ़कर 305.7 मिलियन हो गई। इस अवधि में मलाबार में भी आबादी में लगातार वृद्धि हुई। इसका प्रभाव वहाँ के किसानों पर भी पड़ा। भूमि पर दबाव बढ़ा तथा किसानों को पहले की अपेक्षा छोटी जोतों पर खेती करनी पड़ी। उनकी उत्पादन क्षमता कम' हो गई तथा अनेक किसान समय पर लगान अदा न करने के कारण भूमि से बेदखल हो गये। इस अवधि में अन्य जाति के लोगों ने भी खेती के पेशे को अपनाया तथा उन्होनें जन्मियों व कनामदारो से भूमि जोतने के अधिकार प्राप्त किये। इस प्रकार मोपलाओं में भूमिहीन किसानों की संख्या बढ़ गई। 1921–22 ई. के मोपला विद्रोह की जाँच के फलस्वरूप मद्रास की सरकार ने स्वीकार किया कि कुछ हद तक आबादी में वृद्धि होने के परिणाम भी इसके लिये जिम्मेवार थे।

(7) मलाबार टेनेंटस् एशोसियेशन (Malabar Tenants Association) का प्रचार:

1916 ई में इस संस्था की स्थापना हुई। इसके अधिकांश सदस्य कनामदार थे जिन्होंने धन देकर जन्मियों से भूमि का स्वामित्व प्राप्त कर लिया था। 1922 ई. में के.एम. नायर ने लिखा कि मलाबार में टेनेन्सी ऐशोसियेशन द्वारा किया गया प्रचार कनामदारों के वकीलों, बैंकरों व राजनीति में भाग लेने वाले व्यक्तियों ने किया था न कि कृषकों भूमिहीन श्रमिकों ने। यह प्रचार जन्मियों के वर्चस्व के विरूद्ध था। 1920 ई. में इस संस्था का अधिवेशन मंजेरी में हुआ। इसमें वक्ताओं ने भूमि सुधार पर जोर दिया। एर्नाड और वालुवनाड में भी सभाऐं आयोजित की गई। इनमें मोपला किसानों ने भाग लिया। उस किसी को यह आभास नहीं हुआ कि शीघ्र ही किसान विद्रोह करेंगे।

(8) कांग्रेस द्वारा मोपला कृषकों की माँगों का समर्थन:

गाँधीजी ने चम्पारन व खेड़ा में किसानों के आन्दोलनों का समर्थन किया। इसके बाद कांग्रेस भी सक्रिय रूप से किसानों की माँगों का समर्थन करने लगी। 1920 ई. में मलाबार जिला कांग्रेस ने मोपला किसानों की माँगों का समर्थन किया।

(9) सहयोग व खिलाफत आन्दोलन का प्रभाव:

1920 ई. में गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन के साथ खिलाफत आन्दोलन भी आरम्भ किया। ब्रिटिश सरकार के साथ असहयोग की नीति तथा उसके बहिष्कार के कार्यक्रमों ने सारे देश में किसानों के आन्दोलनों को प्रोत्साहित किया। अनेक ब्रिटिश प्रान्तों मे किसानों ने लगान की नाअदायगी (Non–Payment of rent) का अभियान चलाया। पंजाब में किसान आन्दोलन ने अकाली मोर्चे का रूप धारण किया। आगरा के प्रदेशों तथा अवध में सामंतवाद के विरूद्ध आन्दोलन आरम्भ हुआ। वहाँ पर राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं ने किसान सभा स्थापित की। 1920 ई. में प्रतापगढ़ में बाबा रामचन्द्र के नेतृत्व में जमींदारों के विरूद्ध आन्दोलन आरंभ

हुआ, जो निकट के प्रदेशों में भी फैल गया। बिहार मे भी कृषकों ने लगान देना बंद कर दिया। बंगाल के कुछ भागों में भी इसी प्रकार के आन्दोलन हुए। आंध्रप्रदेश के किसानों ने भी आन्दोलन किया। गांधी जी, शौकत अली, अबुल कलाम आजाद और हकीम अजमल खाँ ने मलाबार का दौरा किया। उनकी सभाओं में मोपला किसान भी काफी संख्या में उपस्थित रहते थे।

(10) सरकारी अधिकारियों में इस विद्रोह के कारणों पर विभिन्न मत:

इस विद्रोह को भड़काने वाले तत्वों कें सम्बन्ध में स्थानीय सरकारी अधिकारी एक मत नहीं थे। मलाबार के स्थानापन्न कलक्टर इन्स का विचार था कि मलाबार में बार–बार भड़क उठने वाली गड़बड़ी का मूल कारण उनकी आर्थिक दुर्दशा थी। लेकिन मलाबार के उच्च अधिकारियों के मत में मोपलाओं के असंतोष की जड़ें आर्थिक स्थिति में नहीं अपितु राजनीतिक उत्तेजना में खोजी जानी चाहिए थी। मद्रास सरकार ने इन्स से सहमति व्यक्त करते हुए लिखा, "इस निष्कर्ष से बच निकलना कठित प्रतीत होता है कि कम से कम कुछ हद तक वे सब बातें जो उत्तर भारत में गत शताब्दी में देखी गई, यथा आबादी में वृद्धि, मूल्यों का बढ़ना, ग्राहकों की जगह प्रतिद्रन्द्रियों का आगमन और फलत: जमींदारों और काश्तकारों के संघर्ष एवं उसके बाद में होने वाले दुष्परिणाम–मामले–मुकदमे, बेदखली, जबरन लगान वसूली आदि केरल के इन भागों में भी पाई जाती है। "तारा चन्द के अनुसार तत्कालीन आर्थिक परिस्थिति ने दंगों के लिए यथेष्ठ प्रष्ठ–भूमि तैयार कर दी थी! खिलाफत और स्वराज्य के देशव्यापी आन्दोलनों द्वारा उत्तेजित भावनाऐं इस दिशा में एक अतिरिक्त तत्व सिद्ध हुई। धार्मिक भावना भी भड़काई गई और शीघ ही धर्मान्धता ने क्रूरता का नंगा नाच आरम्भ कर दिया।

उपरोक्त मतों के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 1920–22 ई. के मोपला विद्रोह की जड़ें आर्थिक असंतोष में फैली हुई थी तथा उसमें अन्य परिस्थितियों में अपना सहयोग प्रदान किया।

12.5 विद्रोह की घटनायें

केरल में 16 फरवरी को सरकार ने असहयोग आन्दोलन के चार नेताओं को, जिनमें दो हिन्दू व दो मुसलमान थे, गिरफ्तार किया। इनके नाम थे – के. माधवन नायर, पी. मोईदन कोया, यू. गोपाल मेनन और याकूब हुसैन। इससे उत्तेजना बड़ी और अनेक स्थानों पर प्रदर्शन हुए। सरकार ने कुछ अन्य कार्यकर्ताओं को भी गिरफ्तार किया। इस प्रकार विद्रोह के आरम्भ में साम्प्रदायिक सद्भावना देखने को मिलती है। सबसे पहले गिरफ्तार किये जाने वाले किसानों। में नम्बूद्रीपाद और चार नायर थे। इस बीच अली मुसालियर, जिसने सात वर्ष मक्का में बिताये थे तथा मलाबार में अनेक मदरसे खोले थे, खिलाफत आन्दोलन के नेता के रूप में उभरा। ढांगरे के अनुसार उसका साथ अन्य थुंगलों व हाजियों ने दिया। तारा चन्द लिखते है कि खिलाफत सम्बन्धी सभाओं में इस्लाम के प्रति किये गये व्यवहार के जो वर्णन प्रस्तुत किये गये उनसे धार्मिक जोश ने और जोर पकड़ा। अतएवं अधिकारियों नै आन्दोलन को कुचलने की कौशिश की। अगस्त, 1921 ई. में जब पुलिस अली मुसालियर और अन्य नेताओं को गिरफ्तार करने गई

तब यह अफवाह फैल गई कि सेना ने मम्ब्राथ की मस्जिद को घेर लिया है। इस अफवाह को सुन कर दक्षिण मलाबार के विभिन्न प्रदेशों से मोपला वहाँ आने लगे। पुलिस ने मोपलाओं की एक उत्तेजित भीड़ पर गोली चलाई। इससे मोपलाओ में और उत्तेजना फैली। सरकार ने राजगोपालाचारी और याकूब हुसैन आदि को मलाबार में प्रवेश करने से रोका। आर. के. मिलर ने केरल के 'मेपिल्ला मुस्लिम' नामक पुस्तक में लिखा है कि अगस्त 1921 व नवम्बर 1921 ई. के मध्य मोपला विद्रोहियों तथा सेना में दो गंभीर मुठभेड़ें हुई जिनमें 600 मोपला मारे गये। इस अवधि में रेलवे की सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाया गया तार की लाइनें काटी गयी, डाकखाने, सरकारी कार्यालय और पुलिस चौकियों पर हमले किये तथा उन्हें जलाया गया। सुनील सैन के अनुसार इरनाड और वालुवनाद तालुकों में मोपलाओं ने अपना राज्य स्थापित किया, फतवे जारी किये, कर वसूल किये लूटपाट बंद करने के आदेश दिये। अनेक स्थानों पर खिलाफत गणराज्य स्थापित किये गये, जिनके राष्ट्रपति कुन अहमद हाजी, कलातिगंल मुहम्मद अली मुसालियर, सीडी कोया थंगल और इम्बीयी कोया थंगल थे। 26 सितम्बर को एक अंग्रेज कमांडर ने लिखा कि स्थिति अब युद्ध की है। मोपलाओं ने छापामार युद्ध की नीति अपना ली है तथा संघर्ष प्रबल होता जा रहा है। उसने सशस्त्र लड़ाकों की संख्या लगभग दस हजार बताई।. सरकार ने क्रूरता के साथ विद्रोह का दमन किया। तारा चन्द के अनुसार इन दंगों को दबाने के लिए किये गये उपाय भी उतने ही क्रूर थे जितने स्वयं ये दंगे थे। नेपाल, गढ़वाल, और बर्मा की फौजी टुकड़ियों को मलाबार बुलाया गया। गुरखा, गढ़वाली और बर्मी सैनिकों के लिए मोपला एकदम अजनबी थे। इसलिये दमन की कार्यवाही करते हुए सैनिकों में कोई भी हमदर्दी नहीं हो सकती थी। अक्टूबर 1921 ई. में मार्शल ला लागू कर दिया गया। सेना की तोपों और बन्दूकों का मुकाबला करने के लिये मोपला विद्रोहियों ने तलवारों और भालों का प्रयोग किया तथा छापा मार पद्धति अपनाई। इससे प्रशासन ठप्प पड़ गया। उत्तेजित मोपलाओं ने हिन्दू पड़ोसियों को भी काफी संख्या में मारा।

मार्शल लॉ के अन्तर्गत विद्रोहियों को कड़ी से कड़ी सजा दी गई। 2226 मोपला लड़ाई में मारे गये, 1615 घायल हुए, 5688 को पकड़ लिया गया तथा 38256 ने आत्म समर्पण किया। गिरफ्तार व्यक्तियों में अली मुसालियर व कुछ नेता भी थे।

इस विद्रोह की सबसे दर्दनाक घटना थी जिसमें 150 मोपलाओं को मालगाड़ी के एक डिब्बे में कालीकट से मद्रास ले जाया गया था। जब रास्ते में पोदनूर पर उस डिब्बे को खोला गया तो 66 व्यक्तियों की मौत दम घुटने से हो चुकी थी शेष की हालत गम्भीर थी। सुमित सरकार ने इसे कलकत्ता की काल–कोठरी घटना, यदि घटना सत्य है, से भी भयानक बताया है। अली मुसालियर की गिरफ्तारी के बाद विद्रोह का नेतृत्व बेरियन कुन्नाथ कुन अहमद काजी ने किया। जनवरी, 1922 ई. में उसे भी गिरफ्तार किया गया। कुछ समय बाद उसे गोली से उड़ा दिया गया।

1922 ई. में आरम्भिक महीनों तक में विद्रोह का दमन हो गया था। विद्रोहियों में से अनेक को फाँसी की सजा दी गई। लगभग 1200 मोपलाओं को कारावास को आजन्म कारावास

की सजा दी गई तथा उन्हें अण्डमान द्वीप में भेजा गया। भारी संख्या में विद्रोहियों को भिन्न–भिन्न अवधियों के लिये कैद की सजा दी गई।

12.6 विद्रोह का स्वरूप

(1) हिंसा का प्रयोग:

असहयोग आन्दोलन की अवधि में देश के अनेक प्रदेशों में किसानों ने अहिंसात्मक तरीकों से आन्दोलन का संचालन किया था। पंजाब, मद्रास और उत्तर प्रदेश के किसानों ने हिंसा का सहारा नहीं लिया था। लेकिन मोपलाओं ने सरकारी दमन का मुक़ाबला तलवारों और ढालों से किया। उन्होंने व्यापक रूप से हिंसा को अपनाया।

(2) धार्मिक जोश:

देश के अन्य भागों के किसान आन्दोलनों का नेतृत्व ऐसे व्यक्तियों के हाथ में रहा जो कांग्रेस के अनुयायी थे। लेकिन कुछ समय बाद मोपला विद्रोहियों का नेतृत्व मौलवियों और हाजियों के हाथ में आ गया। उन्होंने अपने अनुयायी में धार्मिक जोश का उन्माद की सीमा तक पहुँचा दिया।

(3) हिन्दू विरोधी भावना:

आरम्भ में मलाबार में असहयोग व खिलाफत आन्दोलन में हिन्दू और मुसलमानों में सहयोग की भावना दिखाई दी किन्तु कुछ समय बाद वहाँ पर हिन्दू विरोधी भावनाओं को उकसाया गया।

(4) मोपला विद्रोहियों में प्रबल साम्राज्यवादी–विरोधी भावना:

उनमें प्रबल साम्राज्यवादी–विरोधी भावना दिखाई देती है। इस समय यह अफवाह फैल गई थी कि ब्रिटिश सरकार का शीघ्र ही अन्त होने वाला है।

12.7 विद्रोह के परिणाम

(1) ब्रिटिश सरकार का मोपला विद्रोहियों के साथ क्रूर व्यवहार:

ब्रिटिश सरकार ने न केवल मोपला विद्रोह का क्रूरता के साथ दमन किया अपितु विद्रोहियों को सख्त सजाऐं दी। कुछ को फाँसी दी गई। लगभग 1200 मोपलाओं को अण्डमान द्वीप में आजन्म कारावास की सजा भुगतने के लिए भेजा गया। 1926 ईस्वी में वहाँ पर 1123 मोपला कैदी थे। भारतीय समाचार पत्रों में उनके प्रति किये जाने वाले दुर्व्यवहार के समाचार प्रकाशित हुए इसके फलस्वरूप सरकार ने चार सदस्यों का एक आयोग नियुक्त किया। वह इस मामले की जाँच के लिये वहाँ गया। इसके तीन मुस्लिम सदस्यों के अनुसार उनकी दशा शोचनीय थी। भारतीय कारागृहों में भी मोपला कैदियों की दशा ठीक नहीं थी।

(2) टेनेंसी नियमों मे सुधार:

कुछ वर्षों के विचार–विमर्श के पश्चात् 1929 ई. में मलाबार टेनेंसी अधिनियम (Malabar Tenancy Act) पारित किया गया। इस अधिनियम में सब प्रकार के जोतदारों के लिये लगान की दर निश्चित की गई। यह प्रबन्ध भी किया गया कि एक जोतदार को जब तक वह लगान अदा करते रहे भूमि से बेदखल नहीं किया जाय। लेकिन सुनील सेन के अनुसार

कानून में विशेष रूप से कनामदारो के हितों का ध्यान रखा गया और जो किसान उनकी भूमि पर खेती करते थे उनके स्थायित्व की सुरक्षा नहीं की गई।

(3) साम्प्रदायिकता की भावना का प्रदर्शन तथा मोपलाओं का मुस्लिम लीग की ओर झुकाव।

मोपला विद्रोह के समय सैकड़ों की संख्या में हिन्दुओं को मारा गया। नम्बूद्रीपाद के व अनुसार उस प्रदेश में जहाँ चार लाख हिन्दू रहते थे, छः सौ मारे गये तथा 25,000 को मुसलमान बनाया गया। सुमित सरकार के मत में ये आँकड़े कुछ कम मालूम होते है क्योंकि कट्टरपंथियों ने चार महीनों तक इस क्षेत्र पर कब्जा किया हुआ था। लेकिन इसमें कोई सन्देह नही कि साम्राज्यवादी–विरोधी भावना के साथ साम्प्रदायिकता की भावना भी उभरी थी। तारा चन्द भी मानते है कि मोपला विद्रोह में साम्प्रदायिकता की आग भड़क उठी थी। उनके अनुसार मुस्लिम सम्प्रदाय के लोगों ने या तो उन क्रूर घटनाओं के अस्तित्व से ही इन्कार किया या उन्हें कम करके बताया और इसके लिये दूसरों पर दोष मढ़ने का प्रयास किया। वे आगे लिखते है कि इसके साथ–साथ धार्मिक जोश और बहादुरी के मोपलाओं की सराहना की गई। इससे हिन्दू सम्प्रदायवादी भड़क उठे। जो अतिरंजित समाचार उत्तर भारत में पहुँचे उनसे और उत्तेजना फैली। 'हिन्दू धर्म खतरे में है' के नारे लगाये गए और "शुद्धि" तथा "संगठन" आन्दोलनों की योजना बनाई गई। आरोपों और प्रत्यारोपों का कुचक्र चल निकला जिससे उत्पन्न आँच में हिन्दू–मुस्लिम एकता का कोमल पौधा लगा।

सुनील सेन ने मोपला विद्रोह को एक दुखान्त घटना माना है क्योंकि यह आन्दोलन अपने धर्म निरपेक्ष आदर्श पर स्थिर नही रह सका। मोपलाओं का झुकाव लीग की ओर हो गया तथा इसके बाद उन्होंने कृषक आन्दोलन में कोई महत्वपूर्ण भाग नहीं लिया।

सुमित सरकार के मत में जहाँ पहले होने वाले मोपला विद्रोह का स्वरूप 'आनुष्ठिक' होता था। जिनमें हिंसात्मक कार्यो में भाग लेने वाले "मुट्ठी भर लोग होते थे' वही अब ब्रिटिश राज के आसन पतन की अफवाह व निरंतर विरोध को एक जन–विद्रोह में बदल दिया।

(4) असहयोग आन्दोलन अप्रभावित:

ताराचंद के मत में मोपला विद्रोह के गंभीर आघात के बावजूद आन्दोलन का जोर घटने के कोई चिन्ह नजर नहीं आये। देश के अन्य भागों में आन्दोलन चलता रहा। इसी प्रकार अन्य प्रदेशों में किसान आन्दोलन की प्रगति में भी यह विद्रोह बाधक नही हुआ। फरवरी, 1922 ई. में चौरी–चौरा हत्याकांड के कारण महात्मा गांधी द्वारा असहयोग आन्दोलन को स्थगित करने के बाद यह आन्दोलन शिथिल पड़ने लगा।

मोपला विद्रोह ने यह स्पष्ट संकेत दे दिया कि असहयोग आन्दोलन के खिलाफत आन्दोलन को जोड़ना उचित नही था। 1921 ई. में मलाबार के धार्मिक नेताओं खिलाफत के नाम पर मोपलाओं में धार्मिक जोश भर दिया जिसके फलस्वरूप इस प्रदेश में साम्प्रदायिकता का जोर बढा।

12.8 सारांश

इस इकाई में आपने उन्नीसवीं सदी के कृषक आन्दोलनों की प्रकृति तथा ,1920–22 ई. के मोपला आन्दोलन के स्वरूप में भिन्नताओं का संक्षिप्त रूप में अध्ययन किया । 19वीं शताब्दी तथा 20वीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में मलाबार में भूमि के स्वामी जन्मियों तथा उनके एजेंटों कनामदारों द्वारा मोपला किसानों के शोषण के बारे में जानकारी प्राप्त की। इस शताब्दी में मोपला किसानों के विद्रोहों के कारणों में धार्मिक नेताओं के प्रभाव तथा विद्रोहों का सख्ती के साथ दमन से उत्पन्न ब्रिटिश विरोधी भावनाओं का अध्ययन किया । 1920–22 ई. के मोपला विद्रोह के कारणों का विस्तृत अध्ययन भी इस इकाई में किया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस विद्रोह की जड़े आर्थिक असंतोष में फैली हुई थी तथा उनमें कुछ अन्य परिस्थितियों ने अपना सहयोग प्रदान किया। विद्रोह की घटनाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमें व्यापक हिंसा का प्रयोग किया गया तथा साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित होकर विद्रोहियों ने काफी संख्या में दूसरे धर्म के अनुयायियों को कत्ल किया। ब्रिटिश सरकार ने इस विद्रोह का दमन अत्यन्त सख्ती के साथ किया। इस इकाई में इस विद्रोह के स्वरूप में उस समय संचालित अन्य कृषक आन्दोलनों से भिन्नता तथा इसके परिणामों का भी अध्ययन किया गया है।

12.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 मलाबार की भूमि–व्यवस्था में मोपला कृषकों की दशा का वर्णन कीजिए। उन्नीसवीं सदी में मोपला कृषकों के विद्रोहों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 2 मोपला विद्रोह (1920–22 ई.) के कारणों का विश्लेषण कीजिए।

प्रश्न 3 मोपला विद्रोह (1920–22 ई.) के स्वरूप व परिणामों की विवेचना कीजिए।

12.10 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. Sunil Sen : Peasent Movement in India–(Mid Nineteenth and Twentieth Century) Calcutta, 1982.
2. Dhangre, D.N. : Conflict, Religion and Politics: The Mopla Rebellion in Past and Present, February, 1927.
3. Wood C. : The Mopla Rebellion in Economic and Social History Review, January - March, 1978.
4. A.R. Desai (Editor) : Peasent struggles in India, Bombay, 1979.
5. K.N. Pannikar : Against Lord and the State.
6. Sumit Sarkar : Adhunik Bharat (Hindi), New Delhi, 1992.
7. Dharma Kumar (Editor) : Cambridge Economic History of India, Volume II, Delhi, 1984.

8. Tara Chand : Freedom Movement in India, Volume III (Hindi), New Delhi, 1982.

इकाई – 13

यू.पी. के किसान आन्दोलन में काँग्रेस और किसान सभा की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 किसान असंतोष के कारण
13.3 किसान सभाओं का संगठन और इनके कार्य
13.4 प्रतापगढ़ में किसान संघर्ष
13.5 रायबरेली में किसान विद्रोह
13.6 एका आन्दोलन
13.7 किसान आन्दोलनों का स्वरूप
13.8 काँग्रेस और किसान संघर्ष
13.9 1922–29 के मध्य किसान संघर्ष
13.10 लगान – बन्दी आन्दोलन की परिस्थितियां
13.11 1920–22 और 1930–32 के किसान आन्दोलनों की तुलना
13.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

वर्तमान उत्तर प्रदेश (और इसके पूर्व संयुक्त प्रान्त अथवा यू.पी.) के अवध क्षेत्र के प्राय: बारह जिलों में 1920–22 और 1930–32 में हुए किसान आन्दोलन देशव्यापी किसान संघर्षो में अपना प्रमुख स्थान रखते है। मूलत: ये आन्दोलन जमींदारों के प्रभुत्व, उनके दबाव और अत्याचारों के विरुद्ध थे। इस कारण किसानों के असंतोष की व्याख्या करके ही इन आन्दोलनों को स्पष्ट किया जा रहा है। इसके साथ–साथ यह भी उल्लेख करना होगा कि यह मात्र संयोग नही था कि यू.पी. के ये दोनों आन्दोलन उसी समय हुए जब इस प्रान्त में और देश में असहयोग और सविनय अवज्ञा आन्दोलन हुए। किस प्रकार राष्ट्रवादी संघर्ष ने किसानों कौ संघर्ष हेतु प्रेरित किया अथवा किस सीमा तक वे राजनीतिक आन्दोलनों से प्रभावित हुए इसकी विवेचना प्रस्तुत की जा रही है। एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष पर भी ध्यान केन्द्रित करना है। यह विचार करना होगा कि किसानों ने स्वत: प्रेरित होकर स्वतन्त्र रूप से स्थानीय संघर्ष कब किया और किस समय उन्हें बाहर से प्रेरणा मिली। आन्दोलनो के स्थानीय आधार और "बाहर" अथवा "ऊपर" के नेतृत्व पर लगातार ध्यान रखना होगा। किसान आन्दोलनों के विषय में प्राय: यही कहा जाता है कि वे स्वत प्रेरित नहीं होते, किसानों को संगठित करने और उन्हें संघर्ष हेतु आगे आने की प्रेरणा अन्य सामाजिक वर्ग, विशेषकर के मध्यम वर्ग देते है। यू.पी. में हुए आन्दोलनों के नेतृत्व और इनके स्वरूप की चर्चा करते समय इस प्रश्न का उत्तर दिया जाएगा।

13.2 किसान असंतोष के कारण

यह उचित ही होगा कि प्रथम महायुद्ध के बाद यू.पी. के अवध क्षेत्र में उपजे असन्तोष के कारणों की समीक्षा की जाये। आरम्भिक और सबसे प्रमुख कारण था ब्रिटिश सरकार की दोषपूर्ण नीतियां। अंग्रेजों ने केवल अधिक से अधिक लगान वसूल करने की ओर ध्यान दिया। शासकों ने किसानों के हितों की लगातार उपेक्षा की, कृषि के विकास की अनदेखी की तथा जमींदारों की सहायता से गाँवों की समस्याओं का निदान तलाशने के प्रयास किये।

किसान असन्तोष का दूसरा प्रमुख कारण था उनमें व्याप्त असुरक्षा की भावना। की। कृषि भूमि पर किसान खेती तो करते थे लेकिन उस भूमि का स्वामी कोई ओर था। इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अवध क्षेत्र में केवल दो प्रतिशत किसानों को भूमि पर स्वामित्व प्राप्त था। बहुसंख्यक किसानों को कभी भी, किसी न किसी आधार पर, उनकी कृषि भूमि से बेदखल किया जा सकता था। बेदखली की काली छाया से किसानों और भूस्वामियों के सम्बन्ध कटु बने रहे।

बड़े जमींदारों और ताल्लुकदारों तथा किसानों के बीच तनावपूर्ण सम्बन्धों का तीसरा प्रमुख कारण यह था कि 1858 के विद्रोह के उपरान्त अंग्रेजों ने जमींदारों को अधिकाधिक अधिकार प्रदान करके उन्हें प्रशासन का आधार स्तम्भ बनाया और किसानों पर अंकुश रखने की उन्हें खुली छूट दे दी। अवध के इलाकों के ताल्लुकदारों के प्रभुत्व के सामने किसानों की आवाज को सुनने वाला कोई नहीं था। इसी से कहीं–कहीं किसानों ने उत्तेजित होकर हिंसात्मक तरीकों से अपना असंतोष प्रकट किया।

बढ़ती हुई लगान का बोझ किसानों के असन्तोष का एक और कारण साबित हुआ। अवध के क्षेत्र में अस्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था के परिणामस्वरूप हर जिले की लगान एक निश्चित अवधि के बाद फिर से निर्धारित की जाती थी। अधिकतर क्षेत्रों में तीस वर्षीय बन्दोबस्त लाग था। इस अवधि के पश्चात् जैसे ही नया बन्दोबस्त लागू होता था किसानों द्वारा दी जाने वाली लगान बढ़ा दी जाती थी और यह सिलसिला लगातार चलता रहता था। लगान से बचने का कोई भी उपाय नहीं था और किसी भी स्थिति में किसान को लगान चुकाना ही पड़ता था चाहे अपने निजी साधनों द्वारा अथवा कर्ज के द्वारा। इस विकट स्थिति में वह जमींदार और साहूकार दोनो के जाल मे फंसा रहता था और उसे इस फंसाव से निकलने का कोई रास्ता भी नहीं सूझता था।

किसानों के असन्तोष का एक अन्य कारण था नजराना देने की मांग। नजराना एक प्रकार का अतिरिक्त लगान था जो जमींदार किसानों से वसूल करता था। इसका कोई हिसाब किताब नही था और न इसकी कोई निर्धारित दर थी। यदि कोई किसान नजराना देने में देरी करता था अथवा आनाकानी करता था तो उसे बेदखल करके उसकी कृषि भूमि पर खेती करने का अधिकार किसी और किसान को सौंप दिया जाता था। जमींदार मनमाने तरीके से नजराना और बेदखली के हथकण्डों का उपयोग करते थे। बड़ती हुई जनसंख्या के परिणाम स्वरूप की मांग करने वाले किसानों की संख्या बढ़ती रही लेकिन कृषि योग्य भूमि उसी प्रकार बनी रही। इसका नतीजा यह हुआ कि जमींदार का लालच बढ़ा और उसके हस्तक्षेप करने के अवसर भी।

13.3 किसान सभाओं का संगठन और इनके कार्य

बदलते राजनीतिक वातावरण में किसानों के उत्पीड़न की ओर राष्ट्रवादियों का ध्यान गया और 1918 से इस प्रान्त के किसानों को संगठित करने और उनकी समस्याओं पर सभी पक्षों का ध्यान आकर्षित करने का निर्णय लिया गया। किसान सभाओं को गठित करने का सबसे पहला प्रयास मदनमोहन मालवींय ने 1918 से किया। एक वर्ष में ही उनके प्रयासों से करीब 450 किसान सभाओं की स्थापना कर ली गयी। यू.पी. किसान सभा ने सक्रिय तरीके से गाँवों में संगठन कार्य किये। शीघ्र ही किसान सभा और कांग्रेस एक ही दिशा की ओर तब बढ़ते हुए दिखायी दिये जब इस किसान संगठन के प्रयासों के कारण बड़ी संख्या में यू.पी. के किसानों ने 1918 और 1919 के कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में भाग लिया। जाहिर है कि समस्याओं से छुटकारा पाने हेतु किसान राष्ट्रीय नेताओं की ओर उन्मुख हुए।

सितम्बर 1920 के विशेष काँग्रेस अधिवेशन द्वारा असहयोग आन्दोलन आरम्भ करने के साथ–साथ एक व्यापक जन आन्दोलन की सफलता के लिये किसानों की भागीदारी की ओर यू.पी. कांग्रेस नेताओं का ध्यान गया। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि यू.पी. किसान सभा के अलावा एक और किसान सभा का गठन किया गया। प्रतापगढ़ में अवध सभा नामक नए किसान संगठन का पहला अधिवेशन अक्टूबर 1920 में आयोजित किया गया। इस किसान सभा को गठित करने वाले प्रमुख नेता थे जवाहर लाल नेहरू, माताबदल पांडे और बाबा रामचन्द्र। कुछ समय में ही इसकी देखरेख में अलग–अलग जगहों में 300 से अधिक किसान सभाओं को संगठित कर लिया गया। अवध किमान सभा के उद्देश्य थे किसानों को प्रेरित करना कि वे ऐसी भूमि पर खेती न करें जिससे किसी को बेदखल किया गया हो। इस प्रकार बेदखली के खिलाफ आवाज उठायी गयी, किसानों को बेगारी न करने की सलाह दी गयी और उनसे यह भी कहा गया कि वे आपसी मतभेद पंचायत द्वारा दूर करें। अपनी शक्ति प्रदर्शित करने और एकता की भावना जगाने के उद्देश्य से अवध किसान सभा ने दिसम्बर 1920 में फैजाबाद में किसानों का एक विशाल सम्मेलन आयोजित किया। बाबा रामचन्द्र का नेतृत्व इसमें प्रभावीं रूप मे उभरा।

इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन के गतिशील होने के साथ–साथ किसान सभाओं को संगठित और सक्रिय किया गया। ऊपर से राष्ट्रीय नेताओं ने किसान सभाओं को उत्साहित किया ओर उन्हें सहयोग का विश्वास दिलाया। लेकिन इसके साथ–साथ स्थानीय स्तर के नेता भी अलग–अलग ग्रामीण अंचलों में उभरे। स्थानीय और प्रान्तीय राष्ट्रवादी नेताओं के सहयोग के कारण किसान सभाएँ सक्रिय तरीके से कार्य कर सकीं। किसान सभाओं और कांग्रेस ने मिलकर किसान आन्दोलन चलाया जो कभी शान्तिप्रिय रहा तो कभी उग्र और हिंसात्मक हो गया।

13.4 प्रतापगढ़ में किसान संघर्ष

असहयोग आन्दोलन आरम्भ होने के पहले ही इलाहाबाद की सीमा से जुड़े जिले प्रतापगढ़ के किसानों को संगठित करने के प्रयासों का विस्तृत विवरण जवाहर लाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में दिया है। नेहरू के विवरण से स्पष्ट है कि प्रतापगढ़ के किसानों को जागृत करने में बाबा रामचन्द्र की उल्लेखनीय भूमिका रही। वे एक प्रमुख स्थानीय नेता के रूप में

उभरे। 1920 में यहाँ के किसानों ने अनेक जनसभाएँ की। यहाँ का आन्दोलन प्राय: शान्तिपूर्ण रहा और सभाओं तथा प्रदर्शनों के द्वारा किसानों ने अपनी समस्याओं को सुलझाने के प्रयास किये। आवश्यकता पड़ने पर ये किसान जुलूस बनाकर इलाहाबाद तक गये और उन्होंने अपनी दयनीय स्थिति का विवरण कांग्रेस नेताओं को दिया।

13.5 रायबरेली में किसान विद्रोह

अवध क्षेत्र के रायबरेली जिले के अनेक स्थानों में जनवरी 1921 के आरम्भिक सप्ताहों में किसानों के विद्रोह ने अचानक उग्र रूप धारण कर लिया। इसके पूर्व अलग–अलग स्थानों पर किसान संगठित हो रहे थे, सभाएँ कर रहे थे और प्रदर्शन आयोजित कर रहे थे। लेकिन रायबरेली का किसान संघर्ष अचानक क्यों हिंसात्मक हो उठा और किसान क्यों उत्तेजित हो गये, इसका विवरण देना होगा। यह किसान संघर्ष एक स्थानीय संघर्ष के रूप में अचानक ही प्रारम्भ हुआ। इस कारण मूलत: इसके स्थानीय स्वरूप को स्पष्ट करते हुए यह विचारना होगा कि यह स्थानीय किसान संघर्ष बाद में व्यापक राष्ट्रीय आन्दोलन से कैसे जुड़ गया।

रायबरेली की घटनाओं की विवेचना करके किसान असंतोष के स्वरूप को स्पष्ट किया जा सकता है। पहली घटना इस जिले के चंदनियां गॉव में 5 जनवरी, 1921 को हुई। स्थानीय ताल्लुकदार ने विवाहित पत्नी के अलावा किसी अन्य महिला को अपने यहां रखा हुआ था। दो–तीन सौ किसानों ने ताल्लुकदार के मकान के सामने प्रदर्शन करके उससे आग्रह किया कि वह अपनी विवाहिता पत्नी को मान–सम्मान के साथ रखे और दूसरी महिला को निष्कासित कर दे। इस ताल्लुकदार के व्यक्तिगत जीवन को लेकर बड़ी संख्या में स्थानीय किसानों के विरोध को देखकर यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि इस समय तक किसान जागरुक हो चुके थे और स्थानीय ताल्लुकदार के मनमानी करने के खिलाफ संघर्ष करने पर तुले हुए थे। सभी तथ्यों से जानकारी मिलती है कि शान्तिपूर्ण और नियंत्रित तरीके से विरोध किया गया। इसी बीच स्थानीय अधिकारी पर्याप्त पुलिस दलबल के साथ वहां पहुंचे। इसे देखकर भीड़ तो हट गयी। लेकिन फिर भी पुलिस ने कुछ स्थानीय नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। यह एक अनावश्यक कदम था और इससे जनआक्रोश और भी बढ़ा।

दूसरे दिन इसी नगर के पास फुरसतगंज बाजार में दंगा हो गया। 6 जनवरी को लगभग दस हजार किसान इस बाजार में एकत्रित हो गये। जाहिर है कि ये किसान इसके पूर्व के दिन के पुलिस के हस्तक्षेप का विरोध करने के इरादे से आये थे। लेकिन पुलिस ने धैर्य से काम लेने के बजाय ताकत का प्रदर्शन किया। पुलिस ने बाजार की दुकानें बन्द करा दी और यह आरोप लगाया कि भीड़ लूटपाट करने पर आमादा थी। पुलिस और भीड़ की मुठभेड़ ने तुरन्त ही हिंसात्मक रूप ले लिया और पुलिस ने गोली चलाकर भीड़ को नियंत्रित करने की कोशिश की। पुलिस की गोली रो चार किसानों की मृत्यु हो गयी और अनेक आहत हुए। इस बीच दोनों पक्षों के बीच किसी प्रकार की बातचीत नहीं हुई। यत्न संवादहीनता की स्थिति को दर्शाता है और जनसंघर्ष को दबाने की पुलिस की अक्षमता का प्रमाण है।

रायबरेली मैं तीसरे दिन 7 जनवरी, 1921 को भी किसानों के संघर्ष का सिलसिला जारी रहा। आतंकित होने के बजाय किसानों का क्रोध बढ़ रहा था। इसके पहले की घटनाओं से

जुड़े अनेक किसानों और इनके नेताओं को बन्दी बनाए जाने का विरोध करने वे मूंशीगंज पुल के निकट जमा हुए। इनका इरादा प्रशासन पर जोर डाल कर अपने नेताओं और साथियों की रिहाई की मांग करना था। वे जिले के मुख्यालय जाना चाड रहे थे। धीरे–धीरे किसान प्रदर्शनकारियों की संख्या दस हजार के लगभग हो गयी। इस बार भी इसके पहले की दिन की कहानी दुहरायी गयी और प्रदर्शनकारियों को तितर–बितर करने की और किसानों की उग्र भीड़ को नियंत्रित करने की दृष्टि मे जिले के प्रशासनिक अधिकारियों ने पुलिस को गोली चलाने की आज्ञा दे दी। लगभग दस–बारह किसान मारे गये और छह सौ को बन्दी बना लिया गया। स्थानीय प्रशासन ने शक्ति के बलबूते पर किसान आन्दोलन पर काबू पाया।

रायबरेली के निकटवर्ती क्षेत्रों के तीन दिनों की किसानों की उत्तेजना किसान सभाओं की संगठन की शक्ति और जमींदारों के विरुद्ध उनके उग्र होते स्वर से यह जाहिर हो गया कि अवध क्षेत्र के किसानों में गहरा असंतोष था और केवल पुलिस की गोलियों के सहारे ग्रामीण इलाकों में व्याप्त विरोध पर काबू नही पाया जा सकता था।

रायबरेली के किसान उपद्रवों के अलावा इसके अनेक निकटवर्ती क्षेत्रों किसानों के असंतोष और उनके विरोध के उदाहरण सामने आए। सेहगांव–पश्चिम नामक गाँव में किसानों ने जमींदारों के खिलाफ उपद्रव किये। निकट के क्षेत्रों में किसानों के विरोध से उत्साहित होकर इस ग्रामीण क्षेत्र के किसानों ने स्थानीय जमींदार के खेतों को अति पहुंचायी और जब पुलिस ने हस्तक्षेप किया तो किसानों और पुलिस के बीच संघर्ष हुआ।

प्रतापगढ़ की सीमा पर स्थित करहैया बाजार के किसान उपद्रव से यह प्रकट हुआ कि जमींदारों के पक्ष में पुलिस के हस्तक्षेप सै क्रोधित होकर यहां के किसानों ने संघर्ष किया। यहाँ का संघर्ष जितना जमींदार विरोधी था उतना पुलिस विरोधी भी। यहां संघर्ष मार्च 1921 में हुआ जो यह प्रकट करता है कि जनवरी से आरम्भ अवध क्षेत्र के किसान कई महीनों तक अलग–अलग क्षेत्रों में चलते रहे। यहां भी पुलिस की गोली से कुछ मारे गये और कई और घायल हुए निहत्थे किसानों को पुलिस के बलबूते पर काबू किया गया।

फैजाबाद में भी मूलतः कृषिक–मजदूरी करने वाले और भूमिहीन किसानों ने आन्दोलन किया। इन किसानों ने जमींदारों, व्यापारियों, सुनारों और बड़े कृषकों के घरों में दो–तीन दिनों तक लूट–पाट की। बाजारों में भी लूट की गयी। यह लूट पर्याप्त व्यापक पैमाने पर की गयी। इससे यह प्रकट हुआ कि हताश होकर कुछ किसान सभाओं ने किसानों को इस सीमा तक उत्तेजित कर दिया कि उन्होंने लूटपाट करने का रास्ता अपनाया। इस तरीके सै न तो किसानों के और न किसान सभाओं के उद्देश्य पूरे हो सके। 1

13.6 एका आन्दोलन

जनवरी–फरवरी 1922 को अवध के हरदोई और बहराइंच जिलों के ग्रामीण अंचलों में एक और किसान आन्दोलन सक्रिय हुआ जो एका आन्दोलन के नाम से जाना गया। एका आन्दोलन का सगठन अन्य किसान सभाओं से अलग था। अत यह स्वतन्त्र रूप मे चला।

इन 'जिलों के किसानों का संगठन पर्याप्त प्रभावीं था क्योंकि आरम्भ में ही अलग–अलग क्षेत्रों के किसान एक स्थान पर एकत्र होकर गड्ढा खोदते थे और इसमें पानी भर देते थे।

इस पानी को गंगाजल मानकर उपस्थित किसान पूजा करके शपथ लेते थे और यह वायदा करते थे कि वे एकजुट रहकर जमींदारों का विरोध करेंगे। उनकी मुखर शिकायत यह थी कि इन जिलों के जमींदार निश्चित लगान से अधिक धनराशि किसानों से वसूल करते थे और अपने खातों में कम लगान अंकित करने थे। इससे वे किसानों से अतिरिक्त और बढ़ाये गये लगान की वसूली करते थे और सरकार की मांग से बचने के लिये खातों में कम लिखते थे और रसीद प्राय : किसानों को देते ही नहीं थे। इसका किसानों ने एकजुट होकर विरोध करने का निश्चय किया, निर्धारित लगान के अलावा और धनराशि न देने का निर्णय किया, रसीदों की मांग की और बेगारी करने तथा इसी प्रकार के जमींदारों के अन्य कार्य न करने की शपथ ली।

इन जिलों के जमींदारों को शीर्घ ही आने वाले संकट का आभास हो गया। सभी जमींदारों ने सभाएं की, वकीलों तथा राजनीतिक नेताओं का समर्थन जुटाया और सरकार से मदद की मांग की। सम्भावित वर्ग–संघर्ष पर काबू पाने और शान्ति स्थापित रखने के उद्देश्य से पुलिस दल संगठित किये गये और एका आन्दोलन कर रहे किसानों गर काबू पाने के कठोर कदम उठाये गये। यहां तक कि सैनिकों ने भी प्रभावित क्षेत्रों का दौरा किया। सरकार की शक्ति के आगे कुछ समय में यह एका आन्दोलन समाप्त हो गया।

13.7 किसान आन्दोलनों का स्वरूप

1921–22 के यू.पी के किसान आन्दोलन में दो प्रकार की गतिविधियॉ देखी गयी क्योंकि इसमें भाग लेने वाले किसान दो अलग–अलग श्रेणियों के थे। किसानों का एक वर्ग ऐसा था जा पर्याप्त सम्पन्न था और जो इतना अनाज उत्पादित कर लेता था जिससे वह सुविधापूर्वक रह सकता था। इतिहासकारों ने इन्हें मध्यम वर्गीय किसान कहा है। इन किसानों की प्रमुख मांग थी कृषि भूमि पर स्थायी अधिकार प्राप्त करना। वे बेदखली के जमींदारों के अधिकार के विरोधी थे। प्रान्तीय सरकार पर दबाव डालकर वे अपनी कृषि भ्रम पर स्थायी अधिकार प्राप्त करना चाहते थे। इसी क्रम में उन्होंने कांग्रेस से भी समर्थन मांगा।

दूसरे वर्ग के किसान वे थे जो प्राय : कृषक मजदूरी पर निर्भर थे, जिन्हें जब चाहे बेदखल कर दिया जाता था और जिन्हें स्थायी तौर पर खेती योग्य किसी भी भूमि पर अधिकार प्राप्त नहीं थे। किसान आन्दोलनों के समय यही गरीब बहुसंख्यक किसान कई बार उकसावे में आकर उग्र हो उठे, स्थान–स्थान पर उन्होंने बाजारों को, बनियों को या जमींदारों को लूटा तथा उपद्रव किये। इन दो वर्षों में किसानों के उपद्रव इन्द्री किसानों द्वारा किये गये और कुछ किसान सभाओं के स्थानीय नेताओं ने इन्द्र उपद्रव करने को प्रेरित किया। लेकिन कुछ समय में ही किसान उपद्रवों को कठोरता से दबा दिया गया, पुलिस ने गोली चलाने में संकोच नहीं किया और यातनाओं के सम्मुख इन किसानों को झुकना पड़ा। इससे साबित हो गया कि सरकार के खिलाफ केवल छुटपुट उपद्रव करके किसानों के उत्पीड़न और उनकी मूल समस्याओं को दूर नहीं किया जा सकता था। इन वर्षो में जमींदार वर्ग पर प्रान्तीय सरकार की विशेष कृपा थी और जमींदारों का समर्थन शासन के लिये उपयोगी था। अत प्रान्तीय सरकार ने जमींदारों का पक्ष लेते हुए किसानों और किसान सभाओं को दबाने की नीति अपनायी। किसान सभा के नेताओं को हर समय उपद्रवीं तत्वों के प्रेरक के रूप में प्रस्तुत किया गया। चाहे यह तथ्य केवल

कही,कही ही सही था तो भी प्रान्तीय सरकार की दमनकारी नीति के आगे किसान लगाई नेताओं की एक न चली।

13.8 कांग्रेस और किसान संघर्ष

1920–22 में हुए किसान आन्दोलनों के स्वरूप से उन परिस्थितियों का सहज अनुमान हो जाता है जिनमें कांग्रेस ने किसान आन्दोलनों के प्रति दमनकारी अपनायी।

किसान आन्दोलनों के समय स्थानीय स्तर पर दो प्रकार के नेता थे। इन्हीं के नेतृत्व में किमान संघर्ष चला। एक प्रकार के स्थानीय नेता वे थे जो पेशों से जुड़े थे जैसे वकील, पत्रकार, अध्यापक आदि। ये मध्यम वर्ग के लोग थे जो गांधी जी की नीतियों का दल– करते थे और किसानों तथा राष्ट्रीय नेताओं के बीच की पूरी थे। इन्होनें किसानों को अहिंसा का माग अपनाने की सलाह दी। दूसरे तरह के स्थानीय नेता अधिक प्रभावशाली साबित हुए इनमें बाबा रामचन्द्र का उल्लेख किया जा सकता है। इन्होंने किसानों के असंतोष को बढ़ावा दिया और जमींदारों की सम्पत्ति पर हमला करने तथा आवश्यकता पड़ने पर लूटपाट करने और हिंसात्मक मार्ग अपनाने की सलाह दी। परिणामत : इन ग्रामीण नेताओं ने एक प्रकार का वर्ग संघर्ष छेड़ दिया और रायबरेली तथा प्रतापगढ़ की अवध किसान सभाओं के माध्यम से जमींदारों के खिलाफ संघर्ष आरम्भ कर दिये।

कांग्रेस नेतृत्व को शीर्घ ही ज्ञात हो गया कि वे स्थानीय स्तर पर किसान संघर्ष को अहिंसात्मक रूप से संचालित करने की स्थिति में नहीं थे। कांग्रेस ने किसी भी स्थिति में हिंसात्मक आन्दोलन करने का विरोध किया और बार–बार स्थानीय नेताओं पर लगाम लगाकर, उनको हिंसा का रास्ता न अपनाने की सलाह दी। जवाहरलाल नेहरू तथा गांधी जी ने अवध के कुछ प्रभावित नेत्रों का दौरा किया और किसानों को संयम अपनाने का परामर्श दिया। कांग्रेस के कुछ नेताओं के सम्मुख एक नीति सम्बन्धी प्रश्न भी था। कांग्रेस किसान और जमींदार के बीच के संघर्ष की विरोधी थी। कांग्रेस ने इन दोनों वर्गो को एक दूसरे की समस्याओं को समझने और " मार्ग अपनान का परामर्श दिया। स्वाधीनता के मूल लक्ष्य को प्राप्त करने और राष्ट्रीय आन्दोलन मे सभी वर्गो के सहयोग की आवश्यकता अनुभव करते हुए कांग्रेस ने किसान और जमींदार दोनों का समर्थन और सहयोग प्राप्त करने की नीति अपनायी।

कांग्रेस की इस नीति का एक कारण यह भी था कि 1920–22, ग्रामीण इलाकों तक कांग्रेस की पकड़ कमजोर थी, उनका संगठन ग्रामीण क्षेत्रों तक नहीं पहुंचा था और अचानक उन्हें जब किसान आन्दोलनों के प्रति नीति अपनानी पड़ी तो वे ऐसा कुछ भी नहीं कर सकते थे जिससे उनका राष्ट्रीय संघर्ष का स्वरूप प्रभावित हो। असहयोग आन्दोलन के समय किसानों के उपद्रवों का समर्थन करने का कांग्रेस जोखिम नहीं उठा सकती थी।

13.9 1922–29 के मध्य किसान संघर्ष

आरम्भिक सक्रिय विरोधों और उपद्रवों के पश्चात् जब किसान संघर्ष एक बार थमा तो फिर इसके बाद के आठ वर्षो तक यह प्राय : रुका ही रहा। इसका कारण यह नहीं था कि जमींदार–किसान सम्बन्धों में कोई सुधार हो गया था। इन दोनों वर्गो के बीच यदि कटुता उसी

प्रकार से बनी रही तो फिर इससे एकमात्र यही निष्कर्ष निकलता है कि इस अवधि में राजनीतिक सक्रियता की कमी के कारण किसानों को संगठित प्रतिरोध हेतु प्रेरित करने के प्रयास नहीं किये गये। किसान सभाओं के संगठन की कमजोरी भी इससे प्रदर्शित हुई। इस अवधि में किसान सभाओं में भी किसी प्रकार की सक्रियता का अभाव रहा।

यह भी दिखाई दिया कि 1992 के पश्चात जहाँ एक ओर किसान सभाऐं प्राय : शक्ति हीन बनी रही वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में कांग्रेस ने अपने प्रभाव का विस्तार करने के कदम उठाये। गाँधी ने "रचनात्मक कार्य" करने के कार्यक्रम बनाए और कताई–बुनाई, खादी, स्वच्छता, शिक्षा तथा अछूतोद्वार के कार्यक्रम को गांवों तक पहुँचाया। काँग्रेस सेवा दलों को गाँवों में भेजा गया। इस प्रकार काँग्रेस का संदेश गाँवों तक पहुँचाया और भविष्य में किसानों कौ संगठित करने में काँग्रेस को मदद मिली।

13.10 लगान–बन्दी आन्दोलन की परिस्थितियाँ

1929–30 से आरम्भ हुई विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी और सविनय अवज्ञा आन्दोलन से उत्तर प्रदेश में परिस्थितियाँ तेजी से बदली। इनके फलस्वरूप लगानबन्दी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इसके वास्तविक स्वरूप की चर्चा की जा रही है।

1929 से विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी का दौर चला। यह कुछ वर्षों तक काबू में नहीं किया जा सका। इसका प्रभाव भारत के किसानों के साथ–साथ यू पी. की कृषि से जुड़े सभी वर्गों पर पड़ा। अचानक ही अनाज की कीमतों में भारी गिरावट का क्रम चला जो दो तीन वर्षों तक लगातार चलता रहा। अचानक आई हुई अनाज की इस गिरावट का सबसे अधिक असर किसानों पर पड़ा। अनाज की पैदावार से होने वाली उनकी आमदनी घटती गयी। इससे सबसे अधिक नुकसान उन मध्यम वर्ग के किसानों पा पड़ा जो अधिक लगान देते थे। एक ओर इन किसानों की आमदनी घटने से उन्हें लगान की अदायगी करना कठिन होता गया वहीं जमींदारों और ताल्लुकदारों द्वारा लगान कम वसूल होने पर सरकार को मालगुजारी अदा करना कठिन हो गया। जमींदारों ने कठिनाई का सामना करने का सीधा उपाय खोज निकाला। उन्होंने किसी भी तरह और किसी भी कीमत पर पहले से भी अधिक लगान वसूलने पर जोर दिया। यदि समय गर किसान लगान नहीं दे सके तो उनके खिलाफ बेदखली का नोटिस न्यायालयों में दाखिल कर दिया गया। इस विकट स्थिति का सामना करने के लिए पहले से ही कर्ज में डूबे किसानों को और भी अधिक कर्ज साहूकार से लेना पड़ा। साहूकार और जमींदार की दोहरी मार से दबे किसानों ने काँग्रेस से अपील की। यह एक विडम्बना ही थी कि किसानों के कष्टों को न तो जमींदारों ने समझा और न सरकार ने।

विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी से उपजा आर्थिक संकट एक गम्भीर चुनौती था। किसानों ने असंतोष को दिशा देने और ग्रामीण अंचलों में उन्हें संगठित करने का कार्य काँग्रेस ने किया, न कि किसान सभाओं ने। 1920–22 के आन्दोलन की तुलना में यह एक बड़ा अन्तर था। इस बार किसान सभाओं के माध्यम से संघर्ष करने के बजाय किसानों ने काँग्रेस के नेतृत्व में संघर्ष किया। जैसा पहले उल्लेख किया जा चुका है कि काँग्रेस इस उत्तरदायित्व को निभाने को

1930–34 में अधिक तैयार थी। उसने ग्रामीण अंचलों के महत्व को समझ लिया था और सविनय अवज्ञा आन्दोलन के साथ–साथ किसान संघर्ष को प्रेरित करने का कार्य भी किया।

उत्तर प्रदेश में 1930 के आरम्भिक महीनों में जो किसान आन्दोलन शुरू किया गया उसे लगान बन्दी आन्दोलन कहा गया। यह दो चरणों में, कभी मन्द गति से और कभी सक्रिय रूप से, चलाया गया। लेकिन कभी भी यह 1920–22 के समान ऐसा प्रभावकारी आन्दोलन न हो सका जिससे या तो जमींदार या सरकार चिन्तित होती अथवा उन्हें कोई खतरा दिखाई देता। इन दोनों चरणों की विवेचना करके इसके वास्तविक स्वरूप को समझा जा सकता है।

उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के, पहले ही लगान–बन्दी आन्दोलन शुरू कर दिया था। यह आन्दोलन रायबरेली से आरम्भ हुआ। यहां के संघर्ष की शुरूआत रफी अहमद किदवई ने मोतीलाल नेहरू की प्रेरणा से की। जवाहरलाल नेहरू ने रायबरेली में अनेक किसानों की सभाओं में भाषाण दिये। फरवरी 1930 की उनकी जनसभाओं में जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि किसान बढ़ाये गए लगान की अदायगी जमींदार को न करे। बाद में प्रान्तीय काँग्रेस कमैटी ने लगान बन्दी के लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए कहा कि किसान लगान अदायगी को रोक दें और जमींदार भी सरकारी को मालगुजारी न दें। अत. प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी ने किसी. भी सम्भावित वर्ग–संघर्ष से बचने के उद्देश्य से दोनों वर्गों को कर न देने का आग्रह किया था। लेकिन काँग्रेस का एक लक्ष्य पूरा नहीं हुआ। वह जमींदार और काँग्रेस को एक मंच पर न ला सकी। जमींदारों ने सरकार को मालगुजारी देने का सिलसिला जारी रखा। इसक अर्थ यह हुआ कि जमींदारों ने काँग्रेस के परामर्श की कोई परवाह,, नहीं की और उन्होंने सरकार के समर्थन से ग्रामीण इलाकों में अपना वर्चस्व बनाये रखने की नीति अपनायी। इसी के फलस्वरूप काँग्रेस भी धीरे–धीरे अधिक जमींदार विरोधी होती गयी। उसे आभास हो गया कि प्रान्तीय सरकार का विरोध करने के साथ–साथ जमींदारों का विरोध करना होगा। जमींदारों का साथ ने देने से यह आन्दोलन कर–विरोधी आन्दोलन के बजाय लगान–बन्दी आन्दोलन दे गया। किसानों के समर्थन और सहयोग से यू. पी. के कुछ गिने–चुने जिलों में प्रयोगात्मक रूप से इसे 1930 में चलाया गया।

अपने पहले दौर में लगानबन्दी आन्दोलन उत्तर प्रदेश में कभी भी नहीं हो सका। फरवरी–मार्च 1930 में इसे शुरू का दिया गया। पर इसी बीच अप्रैल में कर आन्दोलन का दौर चल पड़ा। इसके कारण काँग्रेस का ध्यान लगानबन्दी आन्दोलन से हटकर नमक सत्याग्रह पर लग गया। किसानों ने नमक सत्याग्रह मैं कोई रूचि नहीं दिखायी। अत : सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्राय : नगरों तक ही सीमित रहा। यह किसानों को आकर्षित न सका। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के पहले दौर में काफी समय तक किसान तटस्थ ही रहे थे। 1930 के समाज होते–होते किसानों को सविनय अवज्ञा आन्दोलन हेतु प्रोत्साहित करने के पुन : तेज किए गये। पर ऐसे प्रयत्नों के सफल होने के पूर्व ही गान्धी–इरविन समझौता मार्च 1931 में हो गया। इससे काँग्रेस ने लगानबन्दी आन्दोलन को स्थगित कर दिया।।

मार्च से दिसम्बर 1931 तक यत्न आन्दोलन स्थगित रहा। परन्तु सरकार को ज्ञात था कि भविष्य में कांग्रेस इसे पुन : आरम्भ कर सकती थी जमींदारों ने के आग्रह करने पर भी किसानों को लगान की छूट उस अनुपात में प्रदान नही की जिस में सरकार ने विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी के कारण मालगुजारी की दरें कम कर दी थी। यही का मुख्य मुद्दा था। किसान चाहते थे कि आर्थिक मन्दी के कारण उनकी लगान की माग पर्याप्त कम कर दी जाए और आवश्यकतानुसार जमींदार लगान की वसूली स्थगित करें और के मुकदमे दायर न करें। पर्याप्त विचार विमर्श के बाद भी काँग्रेस नेताओं और प्रान्तीय के बीच हुई वार्ताओं का कोई नतीजा नहीं' निकला। न तो सरकार ने किसानों को राहत पहुंचाने के महत्वपूर्ण और प्रभावीं उपाय किये और न जमींदारों ने। परिणामस्वरूप लगान–बन्दी आंदोलन दूसरा दौर आरम्भ करने का प्रान्तीय काँग्रेस ने निर्णय लिया।

यह स्मरण रखना होगा कि यू.पी के लगान–बन्दी आन्दोलन को आरम्भ करने का नेतृत्व जवाहरलाल नेहरू ने किया। जवाहरलाल नेहरू को यह स्पष्ट अनुमान हो चुका था के सरकार और जमींदार की साठगांठ से किसानों को काट से छुटकारा मिलने की सम्भावना थी। बातचीत के सभी प्रयास निरर्थक साबित होने पर जवाहरलाल के नेतृत्व में उ. प्र. काँग्रेस कमेटी ने लगान बन्दी आन्दोलन का दूसरा दौर आरम्भ करने की घोषणा 5 दिसम्बर 1931 कर दी। अवध के रायबरेली ओर उन्नाव जिलों और आगरा क्षेत्र के इलाहाबाद और इटावा जिले को लगानबन्दी आरम्भ करने हेतु चुना गया। इससे गांधी–इरविन समझौते के अन्त होने की नौबत आ गयी। गांधीजी इस बीच द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिये लंदन में थे। दिसम्बर 1931 के समाप्त होते–होते जब तक वे स्वदेश वापस आये लगान बन्दी आन्दोलन यू. पी. के इन चार जिलों में गतिशील हो चुका था, सरकार ने जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य को गिरफ्तार कर लिया था और गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के पुन : आरम्भ करने की घोषणा कर दी। जाहिर है कि यू. पी. के लगानबन्दी आन्दोलन के फलस्वरूप काँग्रेस को सविनय अवज्ञा आन्दोलन का दूसरा दौर आरम्भ करना पड़ा।

यू पी. में, और विशेष रूप से अवध क्षेत्र में, दिसम्बर 1931 से जुलाई 1932 तक अनेक प्रमुख जिलों में लगानबन्दी आन्दोलन और इसी से जुड़ा हुआ सविनय अवज्ञा आन्दोलन काँग्रेस द्वारा सक्रिय रूप से चलाया गया। इसी स्थिति के कारण आन्दोलनात्मक संघर्ष गांवों और शहरों में समान रूप से चला। जब राजनीतिक संघर्ष शहरों की सीमाओं से निकलकर सुदूर ग्रामीण इलाकों तक फैला तो इसका वेग पूर्ण प्रभाव स्पाट दिखायी दिया। केन्द्र और प्राप्त की सरकारों ने जनवरी 1932 से ही कठोर दमनकारी उपायों द्वारा प्रदर्शनों, जुलूसों, स्कूल–कालेजों तथा दुकानों के बहिष्कार और सभी प्रकार की विरोध सभाओं पर रोक लगा दी। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के पहले दौर की तुलना में इस बार काँग्रेस को अपने सन्देश और कार्यक्रमों को जनता तक पहुँचाने का अवसर नहीं दिया गया। फिर भी लगानबन्दी आन्दोलन लगातार सक्रिय रहा।

इस बीच प्रान्तीय सरकार ने आन्दोलन से जुड़े हुए हजारों कार्यकर्ताओं और समर्थकों को गिरफ्तार करने का सिलसिला जारी रखा। दिसम्बर 1931 से जुलाई 1932 के बीच दस हजार

से अधिक किसानों, काँग्रेस कार्यकर्ताओं और अन्य लोगों को गिरफ्तार किया गया। इन प्राप्त आकड़ों से यह निर्धारित करना आसान न होगा कि कितने लोग लगानबन्दी से जुड़े थे। और कितने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेने के कारण गिरफ्तार किये गये। ये दोनों आन्दोलन साथ–साथ एक दूसरे से जुडे हुए चले। अत : गिरफ्तार लोगों को अलग–अलग संघर्षों से जोड़ना सम्भव नहीं होगा। फिर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि प्रान्त की राजनीति में पहली बार किसानों ने राजनीतिक आन्दोलन में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया।

लगानबन्दी आन्दोलन का नेतृत्व पेशेवर राजनीतिज्ञों और शहरी मध्यवर्गीय लोगों के हाथों में रहा। काँग्रेस ने कालेजों और विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों के माध्यम से तथा जगह–जगह के स्थानीय व्यक्तियों की मदद से लगानबन्दी कार्यक्रम चलाया। इन स्थानीय लोगों में से अनेक छोटे जमींदार और वकील थे। इससे स्पाट हो गया कि किसानों के बीच से नेतृत्व नहीं उभरा। बाबा रामचन्द्र तथा उन्हीं के समान अन्य स्थानीय नेता इस आन्दोलन से दूर ही रहे अथवा दूर रखे गये। नेतृत्व के इस स्वरूप का मुखर कारण यह था कि लगानबन्दी आन्दोलन के अधिकतर समर्थक मध्यवर्गीय और सम्पन किसान थे। अत्यन्त गरीब, भूमिहीन किसान इस संघर्ष से दूर रहे। बाबा रामचन्द्र और उन्हीं के समान नेताओं का प्रभाव इन्हीं खेतिहर कृषि मजदूरी करने वाले किसानों तक सीमित था।

लगानबन्दी आन्दोलन का एक उल्लेखनीय पक्ष यह भी है कि इस संघर्ष की बागडोर काँग्रेस के हाथ में रही। यह इसी से प्रकट हो जाता है कि प्राय : दस वर्षों तक चले इस किसान आन्दोलन के समय किसी प्रकार की हिंसा नहीं हुई। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दूसरे दौर के समय सरकार द्वारा की गयी अनेक दमनकारी कार्यवाही के समय भी किसानों ने किसी प्रकार की हिंसा नही की।

13.11 1920–22 ओर 1930–32 के किसान आन्दोलनों की तुलना

इन दोनों किसान आन्दोलनों का पहला उल्लेखनीय पहलू यह है कि पहली और दूसरी अवधि के आन्दोलनों के समय की वर्ग–चेतना, नेतृत्व और सामाजिक भागीदारी में अन्तर था।1920–22 में गरीब और भूमिहीन किसानों ने संघर्ष किया और उन्हीं के हितों पर ध्यान केन्द्रित करने वाले बाबा रामचन्द्र के समान नेताओं के हाथ में इसका नेतृत्व था। इस वर्षो बाद आन्दोलन में स्थिति इससे भिन्न थी।

इन संघर्षों का दूसरा पहलू यह है कि 1920–22 का किसान आन्दोलन आकस्मिक था और जमींदारों के अत्याचारों के खिलाफ खुला विरोध था और असहयोग आन्दोलन इसका जुड़ा होना महज संयोग था। इसके विपरीत सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दूसरे दौर का संघर्ष पूरी तरह से लगानबन्दी आन्दोलन से जुड़ा हुआ था, इससे प्रेरित और प्रभावित था

तीसरे, यह ध्यान देने योग्य है कि काँग्रेस की पकड़ 1920–22 के समय कमजोर थी और बाद के आन्दोलन के समय पर्याप्त प्रभावशाली। इस कारण काँग्रेस बाद के आन्दोलन को अपने कार्यक्रम के अनुसार संचालित कर सकी।

तुलनात्मक समीक्षा का चौथा बिन्दु यह है कि दोनो किसान आन्दोलन को प्रेरित करने वाली आर्थिक परिस्थितियाँ एक दूसरे से अलग थी और इसी से उन पर पड़ने वाले प्रभाव भी। इसी से पहली बार गरीब किसान जितने उत्तेजित थे उस प्रकार वे दूसरे दौर के समय थे।

अन्त में यह स्मरण रखना होगा कि काँग्रेस का मूल उद्देश्य स्वतंत्रता संघर्ष था। इससे वह वर्ग सहयोग की नीति अपना रही थी वर्ग सहयोग की नही। अत : काँग्रेस ने किसानों जमींदारों के बीच के संघर्ष पर अंकुश बनाये रखा। इसी कारण काँग्रेस ने ग्रामीण क्षेत्रों में हिंसात्मक उपद्रवों का समर्थन नहीं किया। काँग्रेस ने राजनीतिक उद्देश्यों से किसान असंतोष को बढ़ावा भी दिया और उस पर अंकुश भी रखा। काँग्रेस द्वारा अपनायी गयी इस प्रकार की नीति का एक अर्थ यह भी लगाया जाता है कि मध्यवर्गीय और धनीमानी किसानों की वह अधिक पक्षधर थी।

13.12 अभ्यासार्थ प्रश्न:

1 यू पी. में किसान असंतोष के कारणों का संक्षिप्त में विश्लेषण कीजिये।

2 1920–22 के दौरान यू पी. के प्रमुख किसान आंदोलनों की व्याख्या कीजिये।

3 930–32 के दौरान यू पी. के किसान आंदोलनों की मुख्य विशेषताओं का विश्लेषण कीजिये।

इकाई – 14

बिहार के किसान आन्दोलनों में काँग्रेस और किसान सभा की भूमिका (1920–1939)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 बिहार प्रान्तीय किसान सभा का संगठन और इसके प्रारम्भिक कार्य
14.3 किसान सभा और काँग्रेस समाजवादियों में सहयोग
14.4 काँग्रेस मंत्रिमंडल की समझोतावादी नीति से किसानों में असंतोष
14.5 बकाश्त आन्दोलन
14.6 किसान सभा का घटता हुआ प्रभाव
14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
14.8 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

14.0 उद्देश्य

(i) दो विश्वयुद्धों के मध्य भारतीय किसानों में उत्पत्र असंतोष से अवगत करवाना।

(ii) बिहार के विशोष सन्दर्भ मे 1920 से 1939 के मध्य किसान संघर्ष के स्वरूप की विश्लेषणात्मक जानकारी देना।

(iii) 1920–1939 के दौरान बिहार के किसान आन्दोलनों में किसान आन्दोलनों और काँग्रेस की भूमिका की आलोचनात्मक प्रस्तुति करना।

14.1 प्रस्तावना

दो विश्वयुद्धों के बीच भारत के किसी भी प्रान्त में संभवत: किसानों की दशा इतनी दयनीय नहीं थी जितनी बिहार में। इस स्थिति के कारणों में सबसे पहले उस स्थायी बन्दोवस्त की ओर ध्यान जाता है जो बंगाल सूबे में लागू किया गया था और चुंकि 1912 तक इसी सूबे का भाग था इस कारण यहाँ भी इस व्यवस्था के आधीन धीरे–धीरे जमीन्दारों का प्रभुत्व स्थापित होता गया। स्थायी बन्दोवस्त के फलस्वरूप जमींदारों का प्रभुत्व तो ग्रामीण अर्थव्यवस्था में स्थापित हो गया परन्तु किसानों की दशा धीरे–धीरे खराब होती गयी। किसानों की स्थिति शोचनीय होने का अन्य कारण था। जनसंख्य का लगातार बढना। बीसवीं सदी के आते आते बिहार के किसान एक कठिन भंवर जाल में फंसते गये। एक और स्थायी भूमिव्यवस्था के अधीन उन्हें जमींदारों का मुकाबला करने के नाममात्र के अधिकार प्राप्त थे तो दूसरी, ओर जब खेती करने योग्य भूमि कम होती गयी, ओर किसानों के परिवार बढ़ते गये तो खेती करने के लिये किसान बहुत अधिक हो गये और भूमि बहुत कम। जमींदारों ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुए लगातार यह कोशिश की कि किसान खेती तो करें परन्तु भूमि पर उनका स्थायी अधिकार न हे। परिणामत: 1931 की जनगणना से यह ज्ञात हुआ कि अस्सी प्रतिशत

बिहार के किसान ऐसे थे जिन्हें कृषि भूमि पर स्थायी अधिकार नहीं थे, जिस कृषि भूमि पर वे कृषि करते थे उससे उन्हें कभी भी बेदखल किया जा सकता था। ये किसान एक प्रकार से कृषि कार्य में लगे श्रमिक थे और उनकी एकमात्र और उचित मांग थी कृषि भूमि पर उनका सदा के लिये अधिकार या स्वामित्व। इस प्रकार जमींदारों और किसानों के हित अलग–अलग थे और इसी से बिहार में 1920 और 1930 के दशक में वर्ग संघर्ष उपजा।

1920–30 में विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी के फलस्वरूप बिहार के किसानों की समस्याएं और भी पेचीदी होती गयीं। इस आर्थिक मन्दी के कारण आनाज के दाम लगातार गये और इससे किसानों की आमदनी घटी। लेकिन उन पर लगान का बोझ और बकाया देने के दवाब की ओर न तो जमींदारों ने ध्यान दिया और न सरकार ने। किसान समय पर लगान अदा न कर सके। इस स्थिति का लाभ उठाकर बिहार के अनेक जिलों के किसानों को उनकी भूमि से बेदखल कर दिया गया, उनकी कृषि भूमि नीलाम हो गयी और अधिकतर ऐसी भूमि को जमिन्दारों ने खरीद लिया। बेदखल किये गये किसानों ने आगे चलकर पुन : जब अपनी कृषि भूमि पर स्वामित्व का अधिकार प्राप्त करना चाहा तो जमींदारों ने इसका विरोध किया। अत: जब अपनी कृषि भूमि पर स्वामित्व का अधिकार प्राप्त करना चाला तो जमींदारों ने इसका विरोध किया। अत विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी के परिणामस्वरूप किसानों को इस स्थिति से उबारने के लिये जिला ओर प्रान्तीय स्तर पर किसान सभाएं स्थापित की गयीं। किसान असंतोष पक पैमाने पर था और सभी प्रकार के किसानों में बेचैनी थी। इस स्थिति में किसानों को संगठित करना और उनको एकजुट करने का कार्य किसान सभाओं ने किया।

किसान–असंतोष को दिशा देने का कार्य मध्यवर्गीय नेताओं ने किसान सभा और काँग्रेस के मंच से किया। 1930–32 से ये दोनों संगठन कभी एक साथ मिलकर और कभी अलग–अलग किसानों के हितों पर विचार करने लगे, उन्हे संगठित करने लगे और उन्हें राहत पहुंचाने के उपाय तलाशने लगे।

14.2 बिहार प्रान्तीय किसान सभा का संगठन और इसके प्रारम्भिक कार्य

1920 से 1930 के बीच स्थानीय स्तरों पर बिहार के किसी न किसी जिले में किसान संघों को स्थापित करने के प्रयास किये गये और किसानों की मांगों को सरकार के सम्मुख पेश भी किया गया। ऐसे उपाय अधिक कारगर साबित नहीं हुए

1928 से किसानों को संगठित करने में स्वामी सहजानन्द ने प्रभावीं भूमिका निभायी और स्वतंत्रता की प्राप्ति तथा उसके उपरान्त तक भी वे लगातार बिहार के प्रमुख किसान नेता बने रहे। देश में ऐसे बिरले ही उदाहरण मिलेंगे जब किसी सन्यासी ने बिना किसी निजी स्वार्थ के किसानों की दयनीय दशा की ओर सभी का ध्यान खींचा। उन्होंने बिहार के किसानों को संगठित किया और लगातार उनकी कठिनाइयों को दूर करने ए प्रयास किये। लेकिन बिहार और देश की राजनीति के साथ वे तालमेल न बिठा सके और इस कारण समन–समय पर विवादों के घेरे में आये।

स्वामी सहजानन्द ने एक राष्ट्रवादी और काँग्रेसी के रूप में अपना सार्वजनिक जीवन शुरू किया। 1928 में उन्होंने पहली बार पटना किसान सभा की स्थापना की। 1929 में उनके प्रयासों से बिहार किसान सभा का पहला अधिवेशन सारन जिले के सोनपुर मेले में हुआ। इस अधिवेशन में बिहार के प्रमुख काँग्रेसी नेता उनके साथ थे। इस गया ने किसानों को संगठित करने हेतु एक स्थायी संगठन की आवश्यकता अनुभव की। सहजानन्द को प्रान्तीय किसान सभा का अध्यक्ष बनाया गया और श्रीकृष्ण सिंह इसके सचिव बनाने गये। इस प्रकार प्रान्तीय स्तर पर किसान संगठन बना। लेकिन 1933 तक वह अधिक सक्रिय नहीं रह सका। इसका कारण था सविनय अवज्ञा आन्दोलन। इस आन्दोलन के समय प्रान्तीय किसान सभा ने राष्ट्रीय संघर्ष को सफल बनाना अधिक आवश्यक समझा।

1933 से बिहार प्रान्तीय किसान सभा पुन: सक्रिय हुई। स्वामी सहजानन्द ने सैकड़ों सभाएँ आयोजित कीं, स्थान–स्थान पर प्रान्तीय किसान सभा की शाखाएं खोली और इसके सदस्य बनाए। 1935 तक इस सभा ने पांच सौ से अधिक जनसभाएं की और तेंतीस हजार सदस्य बनाए। इससे एक मजबूत संगठन के रूप में प्रान्तीय किसान सभा की छाप जम गयी।

शुरू के वर्षो मे प्रान्तीय किसान सभा ने वर्ग–संघर्ष के बजाय वर्ग–सहयोग का मार्ग अपनाया। इस समय स्वामी सहजानन्द का रूख समझौतावादी था। उन्होंने जमीन्दारों से सहयोग करके और उनका समर्थन प्राप्त करके किसानों की समस्याएं सुलझाने की कोशिश की। उन्होंने सभाएं आयोजित करके और जुलूस निकाल कर किसानों को जागृत किया। वार्षिक सम्मेलन करके किसानों को एकजुट किया गया। इन वर्षो में स्वामी जी ने गांधीवादी मार्ग अपनाया। उनका विश्वास था कि धीरे–धीरे जमींदारों को राजी कर लिया जायगा और वे किसानों को सुविधाएं देने और उनकी स्थिति सुधारने को तैयार हे जायेंगे।

1928 से 1936 तक स्वामी सहजानन्द के दृष्टिकोण के कारण कॉग्रेस और प्रान्तीय किसान सभा के रूख में कोई विशेष अन्तर नही थे क्योंकि काँग्रेस भी जमींदारों के समर्थन से कृषकों का हितसाधन करना चाहती थी। काँग्रेस किसानों की कठिनाइयों को दूर करना तो चाहती थी परंतु इसके साथ–साथ वह जमींदारों को नाराज भी नही करना चाहती थी। अत काँग्रेस ने लगातार जमींदारों और किसानों का समझौती कराकर किसानों के कष्टों के निवारण की नीति अपनायी। 1936 के पश्चात किसान सभा का दृष्टिकोण बदला। वर्ग–सहयोग की नीति का परित्याग करके उसने वर्ग–संघर्ष का नारा दिया। अत किसान सभा और काँग्रेस के बीच मतभेद उभरने लगे जो आगे चल कर बढ़ते गये।

14.3 किसान सभा और काँग्रेस समाजवादियों मे सहयोग

समाजवादी विचारधारा से प्रभावित राष्ट्रवादियों ने 1934 में काँग्रेस के अन्दर रहकर एक गुट बना लिया। ये राष्ट्रनेता कॉग्रेस समाजवादी कहलाए। बिहार में जयप्रकाश नारायण इनके अग्रणी नेता थे। 1935 के पश्चात इन काँग्रेस समाजवादियों और किसान सभाई नेताओं ने मिलकर कार्य करने का निर्णय लिया। इससे दोनों को लाभ हुआ। किसान सभा का सैद्धांतिक आधार सबल हुआ और इसे प्रभावीं काँग्रेस समाजवादी नेताओं का समर्थन प्राप्त हुआ। काँग्रेस

समाजवादियों को किसान सभा के मंच से ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव बढ़ाने का अवसर मिला, विशाल जनाधार मिला और सामाजिक–आर्थिक सिद्धान्तों को प्रचारित करने का रास्ता भी मिला। जाहिर है कि बिहार किसान सभा का स्वरूप भी बदला। स्वामी सहजानन्द के चमत्कारी नेतृत्व और सिद्धान्तों के सामंजस्य से एक शक्तिशाली, संघर्षरत और वर्गहित का ध्यान रखने वाले संगठन के रूप में प्रान्तीय किसान सभा कार्य करने लगी।;

इस तालमेल से काँग्रेस पर भी प्रभाव पड़ा क्योंकि इस राष्ट्रीय संगठन को यह निश्चित करना पड़ा कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष में एक बड़े वर्ग के रूप में किसान किस प्रकार की भूमिका निभायें और उनकी स्थिति सुधारने हेतु काँग्रेस किस प्रकार की नीतियॉ अपनाए। काँग्रेस में वामपक्ष और दक्षिण पंथी विचारधारा के बीच में मनभेद इसी समय से उभरे और इससे समूची प्रान्तीय राजनीति प्रभावित हुई।

समाजवादी विचारधारा से किसान सभा की दिशा भी बदली। अब यह किसानों के हितों को वर्गहित में सोचने लगी और यह विचार उभरा कि जमींदारों से सहयोग से उसे कुछ भी नही मिलेगा। जमींदारों के हित और किसानों के हितों में टकराहट के स्वर इसी से उभरने लगे। जुलाई 1936 में बिहार प्रान्तीय किसान सभा ने स्पष्ट रूप से अपनी मांगों का घोषणा पत्र तैयार आगामी कार्यक्रम निर्धारित किया।

1936 में प्रान्तीय किसान सभा ने अपनी प्रमुख मांगों की विधिवत घोषणा की। सभा की मुख मांगें इस प्रकार कीं भूमि पर स्थायी स्वामित्व, केवल उन्ही खेतों पर कर की मांग जो उपजाऊ हें, लगान की प्रदायगी केवल धन के रूप में की जाये, किसान के अधिकार में कम से कम इतनी भ्रम हो जो उसकी जीविका हेतु पर्याप्त हो और किसान के खेतों को न तो बेची जा सके और न किसी भी स्थिति में उससे छीना जा सके। यह मांग भी की गयी कि किसान और जमीन्दार के मध्य बिचौलियों की भूमिका समाप्त हो और किसानों के हितों को ध्यान में रखते हुए एक कानून बने।

महत्वपूर्ण यह है कि किसानों की मांगों को स्पष्ट रूप से रखा जाने लगा और यह आधारभूत सिद्धान्त अपनाया गया कि भ्रम पर उसी का स्वामित्व हों जो उस पर खेती करे। किसानों ' बड़े और बहुत बड़े जमींदारों के खिलाफ आवाज उठायी थी, छोटे जमींदारों के बारे में वे चुप रहे। जमीन्दारी प्रथा को स्वीकार करते हुए किसान हितों को सुरक्षित रखने की नीति इस समय तक अपनायी गयी।

किसान सभा की ये प्रमुख मांगे काँग्रेस की नीतियों से मेल नहीं खाती थीं। और 1937 में जब बिहार' में कांग्रेस की सरकार बनी तो कॉग्रेस और किसान सभा में विरोध बढ़ा। 1936–37 में प्रान्त में विधान सभा के चुनावों में कांग्रेस और किसान सभा ने मिलकर चुनाव लड़ा था। इन चुनावों में इन' दोनों प्रमुख संगठनों ने एक दूसरे का साथ दिया था। अत 1935 के संविधान 'के अधीन प्रान्तीय विधान सभा में कांग्रेस की जब भारी जीत हुई तो इसका एक कारण यह भी था कि ग्रामीण क्षेत्रों में कांग्रेस को विजय दिलाने में किसान सभाओं ने भी उल्लेखनीय भूमिका निभायी थे।

14.4 कांग्रेस मंत्रिमंडल की समझौतावदी नीति से किसानों में असंतोष

जुलाई 1937 में कांग्रेस मंत्रिमंडल द्वारा सत्ताग्रहण करने से किसानों को आशाएं बंधी, उनमें आशा का संचार हुआ।. और नये वातावरण में उन्होंने कांग्रेस से बड़े परिवर्तनों की उम्मीद की। किसान सभा और कांग्रेस के लिये यह निर्णायक अवसर था। किसान के हितों के लिये कांग्रेस के निर्णयों से उसके रूख का अनुमान हो गया और कांग्रेस की समझौतावादी नीतियों से अनेक कठिनाइयां सामने आयीं।

कांग्रेस मंत्रिमंडल द्वारा पदभार ग्रहण करते ही किसान सभा ने पचास हजार से अधिक किसानों का पटना में एक विशाल प्रदर्शन किया। इससे जाहिर है कि कांग्रेस पर शीघ्र कार्यवाही करने हेतु जोर डाला जा रहा था। प्रदर्शनकारियों की मुख्य मांगें थी कि बकाया लगान माफ कर दिया जाय, मालगुजारी घटा कर आधी कर दी जाय, कर्जों को समाप्त कर दिया जाय, किसानों से ब्याज न लिया जाय और जिन किसानों का लगान बाकी हो उनके विरूद्ध कानूनी कार्यवाही न हो। विधान सभा के 60 सदस्यों ने किसानों के पत्रक पर हस्ताक्षर किये थे। किसान सभा ने अन्य विधान सभा के सदस्यों को भी ऐसा ही करने को कहा। अनेक स्थानों पर किसान सभा ने जुलूस निकाले, विशाल प्रदर्शन किये और नारेवाजी की। किसान सभा की कार्यवाहियां 1937–38 में धीरे–धीरे उग्र. होती गयीं। नये वातावरण में किसानों ने यह मान लिया कि उन्हें उग्र प्रदर्शन की छूट थी।

किसानों के बीच बढती हुई बेचैनी और व्यापक असंतोष के समय कांग्रेस और किसान सभा के बीच के मतभेद बढ़ना शुरू हो गये। यह एक विडंबना ही थी कि कांग्रेस मंत्रिमंडल बनने के बाद ये दरिया और भी बढ़ी। इसका पहला कारण यह था कि कांग्रेस ने जमींदारों और किसानों को समान रूप से प्रसन्न करने की नीति अपनायी। जबकि किसान सभा और समाजवादियों की मांग थी कि कांग्रेस मंत्रिमंडल किसानों के हितों को प्रमुखता दे और ऐसा हो जाने के बाद जमींदारों या किन्ही अन्य वर्गों के बारे में सोचे। स्वामी सहजानन्द तो चाहते थे कि धनवानों की अनदेखी करके किसानों के कल्याण पर विचार किया जाये। लेकिन कांग्रेस ऐसा करने को तैयार नहीं हुई। कांग्रेस ने जमींदारों का सहयोग प्राप्त करते हुए किसान–समस्या सुलझाने की जो नीति अपनायी वह एक समझौतावादी नीति थी और इससे यह जाहिर ते गया कि दक्षिणा पंथी विचारों का कांग्रेस के बड़े वर्ग पर वर्चस्व था।

1937 से 1939 के बीच के दो वर्षो में बिहार में जब कांग्रेस का शासन था उस समय उसके दारा अपनायी गयी नीतियों से यह प्रकट हो गया कि किसानों के प्रति उसकी नीतियों और किसान सभा की नीतियों में पर्याप्त अन्तर था। कांग्रेस सरकार ने इस अवधि में किसानों के कल्याण हेतु दो अधिनियम पारित किये इनमें से पहला था 1937 का बिहार काश्तकारी अधिनियम और दूसरा था 1938 का वकाश्त भूमि अधिनियम। इन नियमों से किसानों की मांगों को केवल आशिक रूप में पूरा किया गया। यह भी ध्यान देने योग्य है कि इन नियमों को जमींदारों के सहयोग से स्वीकृत किया गया। इससे किसान सभा ने यह समझा कि कांग्रेस केवल वहीं कदम उठाएगी जो जमींदारों को स्वीकार्य होंगे।

इन आपत्तियों के बावजूद किसान सभा ने कांग्रेस के नेतृत्व का स्वीकारते हुए उसके अधीन ही कार्य करने की नीति अपनायी। कांग्रेस से टक्कर लेने का विचार किसान. सभा नेताओं नही था। लेकिन प्रान्तीय कांग्रेस का रूख कठोर होता जा रहा था। उसने किसान सभा पर अंकुश लगाने और इसे कांग्रेस से अलग करने का निश्चय किया। ऐसे प्रमाण मिलने लगे थे कि किसान सभा के नेता कांग्रेस संगठन पर हावीं होने के प्रयास कर रहे थे। पटना, गया, दरभंगा, चंपारन, मुजफ्फरपुर और मुंगेर जिला कांग्रेस समितियों में किसान सभा और वामपंथी नेताओं का बोलबाला था और कांग्रेस का पक्ष कमजोर था। कांग्रेस की आशंका यह हुई कि ग्रामीण अंचलों में सर्वस्व स्थापित करके किसान सभा और कांग्रेस समाजवाटी स्थानीय नेताओं के गठजोड़ से कांग्रेस पर उनकी और उनकी विचारधारा की पकड़ मजबूत हो जायगी। इसी समय किसान सभा ने लाल झंठा अपना और उसके सम्मेलनों उग्रवादी जमींदार विरोधी स्वर उठने लगे थे। "मालगुजारी कैसे लोगे लाठी मेरा साथ है" तथा "जमींदारों का नाश हो" ऐसे नारे किसान सभा की सभाओं में गूंजने लगे। ऐसी सूचनाएं भी मिली कि स्वामी सहजानन्द भी "डन्डे " के प्रयोग करने की बात करके, किसानों को हिन्सा के रास्ते पर ले जा रहे थे। जब किसान असंतोष बेकाबू होता दिखायी दिया तो कांग्रेस ने किसान सभा से नाता तोड़ने का निश्चय किया और राजेन्द्र प्रसाद ने जवाहरलाल नेहरू को इस स्थिति की सूचना दी। कांग्रेसजनों को स्पष्ट निर्देश दे दिये गये कि वे किसान सभाओं से अलग हो जाये। बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने दिसम्बर 1937 को एक औपचारिक प्रस्ताव पास करके ऐसा निर्णय लिया।

14.5 बकाश्त आन्दोलन

1930 के दशक में बकाश्त भूमि का प्रश्न बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में सबसे महत्वपूर्ण होता गया और यह किसान असंतोष का सबसे प्रमुख कारण बना। 1930–32 की अवधि से विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी के फलस्वरूप विशेष रूप से दीक्षण बिहार के किसान अनाज की कीमतों मे हुई लगातार गिरावट के करण अपनी लगान न अदा कर सके और लगान की अदायगी' में विलम्ब होने के कारण लगान बकाया लेने लगा। अनेक जिलों के बड़े जमीन्दारों ने इस स्थिति का लाभ उठा कर लगान अदा न करने वाले सैकड़ों किसानों को बेदखल कर दिया। भूमि– व्यवस्था के प्रावधानों का लाभ उठा कर ऐसी कृषि भूमि पर इन जमींदारों ने अधिकार कर लिया। वे स्वयं इस पर खेती करने लगे। ऐसी कृषि भूमि को वकाश्त काश्तकारी भूमि कहा गया। बेदखल किये गये किसानों ने अपनी काश्त पर पुन : अधिकार करने हेतु लगातार संघर्ष किया और किसान सभा की यह प्रमुख मांग थी कि बकाश्त भूमि पर किसानों का पुन : स्वामित्व हो और उन्हे बकाश्त भूमि पर अधिकार मिले। 1935 से 1939) तक समूचे बिहार में अनेक बकाश्त आन्दोलन हुए ये आन्दोलन पहले तो शान्त थे परन्तु 1938 के पश्चात उग्र और हिंसात्मक हों गये।

बिहार मे जब 1937 से 1939 तक कांग्रेस की सरकार थी तो उसे बकाश्त भूमि समस्या का समाधान करने का पर्याप्त अवसर था। उसने 1938 में बकाश्त अधिनियम पास भी किया। यह अधिनियम जमींदारों का सहयोग प्राप्त करके बनाया गया और जाहिर है कि

जमींदारों के हितों का इसमें ध्यान रखा गया। कांग्रेस ने माध्यम मार्ग अपना कर जमीन्दार और किसान' दोनों को प्रसन्न करने की कोशिश की। परिणाम यह हुआ कि जमीन्दार तो संतुष्ट रहे परन्तु किसान पहले से भी अधिक बेचैन हो गये। 1938 के बकाश्त अधिनियम से किसानों की आशाओं पर पानी फिर गया। उन्होंने बकाश्त भूमि पर अधिकार करने के लिये उग्र और कभी–कभी हिंसात्मक आंदोलन की राह पकड़ी। स्वामी सहजानन्द के नेतृत्व में अनेक जिलों में किसानों ने अपना विरोध प्रकट किया।

बिहार के गया जिले में बकाश्त आन्दोलन सबसे अधिक सक्रिय और उग्र था। अत: यहां के आन्दोलन का विस्तृत विवरण देकर अन्य जिलों में चलाए गये आन्दोलनों के वास्तविक स्वरूप का आभास हो जाता है। किसान सभा के नेतृत्व में बेदखल किये गये किसानों ने उन खेती, पर जबरन कब्जा कर लिया जिन पर वे पहले खेती करते थे। जमीन्दारों ने तथा उनके आदमियों ने इन जबरन कब्जों का जब विरोध किया तो हिंसात्मक संघर्ष अनेक स्थानों पर हुए, लाठियां बरसी, अनेक किसान हताहत हुए और कुछ मारे भी गये। किसानों के सशक्त विरोध को पुलिस ने दबाया और हिंसा रोकने के लिए इस जिले के कुछ स्थानों में सेना को भी बुलाना पड़ा। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि किसानों ने किस व्यापक पैमाने पर हिंसात्मक संघर्ष किया। यह उनकी हताशा का प्रतीक था और इससे यह भी प्रकट हुआ कि किसान सभा के नेताओं ने शक्ति के बलबूते पर बकाश्त समस्या का समाधान करने की भावना को बढ़ावा दिया। इस समय प्रान्त में कांग्रेस मंत्रिमंडल था, और ऐसी स्थिति से सरकार और किसानों के बीच संवादहीनता स्पष्ट रूप से दिखायी दी।

कुछ अन्य वकाश्त आन्दोलनों का विवरण दिया जा सकता है। 1939 में मुंगेर के बरहिया ताल में जमींदारों के खिलाफ संघर्ष हुआ। यहां की किसान सभा के सचिव करयानन्द शर्मा ने आठ गावों में सत्याग्रह प्रारम्भ किया। उपलब्ध सूचनाओं से ज्ञात होता है कि इन गावों के चार सौ परिवारों ने सत्याग्रह करके जमीन्दारों को विवादास्पद खेतों पर खेती करने से रोकने की कोशिश की। यहां लाठियां और भालों की मदद से जमींदार के लठैतों ने इन्हें खदेड़ दिया। लेकिन किसानों ने शक्ति का सहारा नही लिया। दरभंगा, नवादा और सासाराम जिलों में भी किसानों और जमींदारों के आदमियों के बीच संघाई की सूचनाएँ मिली। अनेक स्थानों पर जमींदारों के, लठैतों ने शक्ति का प्रयोग किया। कभी किसानों ने इसका विरोध किया और कभी नहीं। इन उदाहरणों से यह स्पाट होता है कि अनेक स्थानों पर किसानों ने सत्याग्रह करके अपने पहले के कृषि क्षेत्रों पर दुबारा अधिकार पाने की कोशिशें की।

14.6 किसान सभा का घटता हुआ प्रभाव

जितनी तेजी से किसान सभा का प्रभाव बढ़ा था उतनी तेजी से ही यह 1935 से शक्तिहीन होती गयी। इसका एक बड़ा कारण था स्वामी सहजानन्द की काँग्रेस से बढ़ती हुई दूरी। स्वामी जी ने खुले आम गांधी के अहिंसा के विचारों की आलोचना की और कांग्रेस पर प्रहार किये। सुभाष वोस की फार्वड व्लाक पार्टी के वे समर्थक बन गये, और कांग्रेस समाजवादियों के साथ भी न चल सके। इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध के समय से वे किसान

सभा से अधिक राजनीति में रुचि लेने लगे। राजनीति में भी स्वामी जी एक के बाद दूसरे विवादास्पद कदम उठाते गये। गांधीवादी राजनीति और कांग्रेस के प्रमुख नेता से अपना राजनीतिक जीवन प्रारम्भ करने के पश्चात उन्होंने अनेक वर्षो तक प्रान्तीय राजनीति में समाजवादियों के साथ मिलकर कांग्रेस के समान्तर एक प्रभावीं विकल्प प्रस्तुत करना चाहा। जब ऐसा न हो सका तो धीरे धीरे मार्क्सवादी विचारधारा की ओर मुड़े और साम्यवादियों के साथ हो कर ब्रिटिश सरकार के समर्थक बन गये। द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने के समय से स्वामी जी की राजनीतिक गतिविधियों से बिहार का किसान आन्दोलन कमजोर हो गया।

1939 से आर्थिक परिदृश्य भी बदला। द्वितीय महायुद्ध के प्रभाव के कारण अनाज की कीमतें बढ़ने लगी। कम वर्गीय और बड़े किसानों की आर्थिक स्थिति सुधरी। कांग्रेस सरकार के निर्णयों से भी इस वर्ग के किसानों का स्थिति सुधरी थी। अत वे किसान आन्दोलन संघर्ष के मार्ग से हट गये। कांग्रेस दारा उपेक्षित, किसान सभा द्वारा दिशा न दिखाये जाने पर और सम्पन्न किसानों की उदासीनता के कारण सबसे गरीब और भूमिहीन किसान की चिन्ता करने वाला कोई नहीं बना। उसे खेतों की मजदूरी तलासने के अलावा कोई सहारा न रहा।

इन सभी कमजोरियों के बावजूद किसान सभा आन्दोलन ने अधिकारों के प्रति किसानों में जो जागृति उत्पन्न की थी वह उनको अनेकों वर्षों तक उत्साहित करती रही, और जब कभी अवसर मिला उन्होंने जमीन्दारों और जमींदारी व्यवस्था के शोषण के खिलाफ पुन: शंखनाद किया।

14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न:

1 दो विश्वयुद्धों के मध्य बिहार में किसान असन्तोष के कारणों की त कीजिये? (250 शब्द)

2 बिहार प्रान्तीय किसान सभा के गठन व इसकी प्रारम्भिक गतिविधियों पर प्रकाश डालिये। (250 शब्द)

3 बिहार के किसान आन्दोलनों में किसान सभा और कांग्रेस की भूमिका की आलोचना तथा विश्लेषण कीजिये। (250 शब्द)

4 बिहा के बकाश्त आन्दोलन पर टिप्पणी लिखिये। (250 शब्द)

14.8 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची:

1. Peasant Movements in India – D.N. Dhanagre
2. Peasant Struggles in India – A.R Desai (Ed)
3. Peasants and Congress – N.G. Ranga
4. Peasants Movements in India – Sunil Sen
5. History of Kisan Movements – Swami Sahjanand Saraswati and N.G.Ranga
6. Agrarian Movements and Social Development – A.N.Das

इकाई – 15

बंगाल में तेभागा आन्दोलन (1946–1947 ई.)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 भारत में कृषक आन्दोलन की पृष्ठ भूमि एवं स्वरूप (1818 ई.–1946 ई)
15.3 तेभागा कृषक आन्दोलन की प्रकृति
15.4 तेभागा विद्रोह के कारण
15.5 आन्दोलन का उद्भव घटना एवं विकास
15.6 तेभागा कृषक विद्रोह के प्रति सरकार की नीति
15.7 तेभागा विद्रोह के परिणाम
15.8 सारांश
15.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
15.10 संदर्भ ग्रंथों की सूची

15.0 उद्देश्य

उक्त इकाई में आप अध्ययन करेंगे कि

- भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषक विद्रोह महत्वपूर्ण अंग रहा है। ये कृषक विद्रोह जो कि विभिन्न समयों एवं परिस्थितियों में भारत के भिन्न–भिन्न इलाकों में हुए, अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का स्वरूप माना जाता है।
- इकाई के अन्तर्गत आप यह विश्लेषणात्मक अध्ययन करेंगे कि प्रारम्भ से ही कृषकों के समक्ष विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक समस्याएं, दोष बने रहे जिनका निराकरण सरकार जमींदारों के द्वारा नहीं किया गया परिणाम स्वरूप कृषकों में असंतोष व विद्रोह उत्पन्न हुआ, इस परिस्थिति से प्रेरित होकर कृषकों ने विद्रोह का सहारा लिया।
- आप यह अध्ययन करेंगे कि भारत में तेभागा आन्दोलन से पूर्व विभिन्न आन्दोलनों का प्रादुर्भाव हुआ था। इस दृष्टि से यहां केवल संक्षिप्त में उल्लेख रूप में अवलोकन करेंगे कि सन्थाल विद्रोह, नील विद्रोह, पूर्वी बंगाल का विद्रोह, मराठा कृषकों का विद्रोह, मोपाला कृषक आन्दोलन, असम में विद्रोह, पंजाब के किसानों का विद्रोह, चम्पारन का सत्याग्रह, रवेड़ा, बारदोली, तेलगाना, बर्ली आदि कृषक विद्रोह हुए जिन्होंने बंगाल में तेभागा कृषक विद्रोह को प्रेरित एवं प्रभावित किया।
- बंगाल में जो तेभागा विद्रोह हुआ, उसे प्रोत्साहित करने हेतु विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि कारणों ने सहयोग प्रदान किया था। उन सब कारणों का विस्तृत एवं विश्लेषणात्मक विवेचन करेंगे।
- इस इकाई में आप यह अध्ययन करेंगे कि तेभागा आन्दोलन का क्या स्वरूप रहा।

- इसी भांति आप इस विचार धारा का विश्लेषणात्मक अध्ययन' करेंगे कि तेभागा कृषक आन्दोलन का उद्भव किस प्रकार हुआ, इस काल ' क्या घटनाएं घटित हुई, सरकार, जमींदारों आदि की क्या नीति रही तथा ' इस विद्रोह की क्या प्रगति का स्वरूप बना रहा।
- इकाई के अन्तर्गत इस दृष्टिकोण पर विचार किया जायेगा कि तेभागा विद्रोह का भारतीय इतिहास एवं कृषक आन्दोलन के क्षेत्र में क्या महत्व माना जाता है।

15.1 प्रस्तावना

आदिकाल से सभ्यता के निर्माण के समय के साथ कृषि प्रमुख रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से स्पष्ट है कि भारत का बहुसंख्यक वर्ग कृषकों का है। आधुनिक भारतीय इतिहास एवं भारत में हुए कृषक आन्दोलनों की दृष्टि से भारत में अंग्रेजी राज्य का एक प्रमुख अंग भारतीय कृषि व्यवस्था को प्रभावित करना था। अंग्रेजी शासनकाल में नवींन भूराजस्व नीति ने नए प्रकार के भूमिगत उत्पन्न कर दिए थे। अंग्रेजी शासन काल में अंग्रेजों की लगान व्यवस्था, व्यापारिक एवं उद्योगों के विनाश के प्रति उदासीनता की नीति ने किसानों की सख्य में वृद्धि को संभव बनाया था। इस वर्ग का ब्रिटिश सरकार के अतिरिक्त जमींदारों, साहूकारों आदि के द्वारा अत्यधिक शोषण किया जाने लगा।

भारतीय स्वतंत्रता से पूर्व बंगाल में तेभागा कृषक आन्दोलन हुआ उसका ऐतिहासिक महत्व माना जाता है। ऐतिहासिक रूप में यह तथ्य पूर्ण है बंगाल में अँग्रेजी गवर्नर जनरल कॉर्नवालिस के शासनकाल में भूमि की स्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था को 1793 ई. में लागू किया गया था, परिणाम स्वरूप बंगाल प्रांत के विभिन्न क्षेत्रों, में भूराजस्व व्यवस्था को स्थायी आधार पर लागू किया गया था, जिसके अनुसार यह व्यवस्था अंग्रेजी सरकार व जमींदारों के मध्य स्थापित की गयी थी। जमींदारों को निश्चित लगान निश्चित समय पर नियमित रूप में स्थायी आधार पर अंग्रेजी कोष में जमा कराने की व्यवस्था की गयी थी। ' व्यवस्था के कारण किसानों को भूमिका पर प्राकृतिक अधिकारों से वंचित होना पड़ा और जमींदारों भूमि पर किसानों से जो खेती करवाते थे, उसमें शोषण की नीति को अपनाया जाता। किसानों से परिश्रम अधिक व पारिश्रमिक कम दिया जाता था। किसानों से अत्यधिक लगान की वसूली की जाती थी, जिसके आधार पर ही जमींदार लगान अंग्रेजी कोष में जमा करवाते थे। इस परिस्थिति में कृषकों के शोषण की स्थिति को प्रोत्साहन मिला था। इसके अतिरिक्त कृषकों को लगान का भुगतान करने, कृषि उपकरण खरीदने, बीज, खाद आदि के उद्देश्य से साहूकारों से अधिक व्याज दर पर ऋण लेना होता था अत : इस वर्ग के द्वारा भी शोषण किया जाता था। इस परिस्थिति के फलस्वरूप बंगाल में तेभागा कृषक विद्रोह को प्रोत्साहन मिला।

15.2 भारत में कृषक आन्दोलन की पृष्ठ भूमि एवं स्वरूप (1818 ई. –1946 ई.)

बंगाल में तेभागा कृषक विद्रोह यद्यपि 1946 ई. में प्रादुर्भावित हुआ तथापि इससे पूर्व भारत में हुए कृषक आन्दोलनों के संक्षिप्त इतिहास की विवेचना करना आवश्यक है। 1818 ई से 1946 ई. के बीच भारत के अनेक प्रान्तों में कृषक आन्दोलन हुए।

कृषक आन्दोलनों की श्रेणी में 1855–56 ई. में सन्थाल विद्रोह का प्रादुर्भाव हुआ था 1857 ई. में अवध और उत्तर प्रदेश के कृषकों ने अंग्रेजी शासन व जमींदारों के शोषण के विरूद्ध आन्दोलन किया था। 1859–60 ई. में नील विद्रोह को प्रोत्साहन मिला था। क्योंकि अवकाश प्राप्त यूरोपीय प्राप्त यूरोपीय अधिकारी बंगाल और बिहार में कृषकों से भ्रम प्राप्त करके नील की खेती करने लगे थे। अंग्रेजों का यह वर्ग कृषकों का शोषण व अत्याचार किया करता था। इस स्थिति में उत्तेजित होकर बंगाल के अधिकांश क्षेत्रों के कृषकों ने विद्रोह प्रारम्भ कर दिए थे। इस का परिणाम भी कृषकों के हित में हुआ कि विद्रोह से तंग आकर अंग्रेजी सरकार ने नील आयोग की नियुक्ति की जिसके द्वारा किसानों की कठिनाईयों का निराकरण किया गया। इस विद्रोह के अन्तर्गत पाबना व बोगरा का कृषक विद्रोह ऐतिहासिक महत्व रखता है।

1857 ई. में दक्षिण के किसानों ने महाराष्ट्र में मारवाड़ी साहूकारों के विरूद्ध विद्रोह किया था। 1896– 1900 ई. के मध्य पंजाब में सरकार के मध्य संबंधी कानूनों और साहूकारों के शोषण के विरूद्ध कई स्थानों पर कृषकों ने संघर्ष किया। 1917–18 ई. में चम्पारन और खेड़ा कें किसानों ने महात्मा गांधी के सहयोग से शांतिपूर्ण आन्दोलन किया। 1919 ई. में महाराष्ट्र के इलाके खेड़ा के किसानों ने लगान देने से इन्कार कर दिया। इसी प्रकार 1928–29 ई. और 1930–31 ई. में गुजरात के बारदोली जिते में किसानों ने आन्दोलन किया, जिसमें सरदार बल्लभभाई पटेल और गांधीजी ने नेतृत्व प्रदान किया।

इसी भांति स्वतंत्रता प्राप्ति से साम्यवादियों के प्रभाव के कारण किसानों के सशस्त्र विद्रोह प्रारम्भ हुए। इन आन्दोलनों में तेलंगाना आन्दोलन, तेभागा विद्रोह तथा वर्ली विद्रोह प्रमुख थे।

इस प्रकार भारतीय किसानों के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति से विभिन्न आन्दोलन प्रारम्भ किए गए थे।

15.3 तेभागा कृषक आन्दोलन की प्रकृति

आधुनिक भारतीय इतिहास एवं अंग्रेजी शासनकाल में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व हुए कृषक आन्दोलन के विशेष संदर्भ में बंगाल में कृषक आन्दोलन का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्वरूप रहा है।

बंगाल में कृषकों के द्वारा जो आन्दोलन किया गया वह राजस्व व्यवस्था के विरूद्ध आन्दोलन था। तेभागा दोषपूर्ण भूराजस्व व्यवस्था थी जिसमें कृषकों को अपने कुल उत्पादन का 1/2 हिस्सा भूराजस्व के रूप में जोतदार को (धनिक कृषक वर्ग, जिनका भूमि पर अधिकार

होता था) को भुगतान करना होता था। जबकि फसल के भागीदार कृषक यह मांग कर रहे थे कि कुल उत्पादन का 2/3 हिस्सा वे अपने पास रखें।

तेभागा से प्रभावित कृषकों ने अपने शोषण, अत्याचारों, कठिनाईयों, समस्याओं के विरूद्ध एवं उनके निराकरण हेतु अंग्रेजी सरकार एवं भूमि सै संबंधित विभिन्न वर्गों के अधिकारियों के विरूद्ध 1946–47 ई. में सक्रिय आधार पर विद्रोह प्रारम्भ किया था।

कृषकों की विभिन्न श्रेणियां थी वर्गदार (फसल के भागीदार), अधिकार (निर्धन कृषक), धनी कृषक (जोतदार) आदि। जो कृषक दयनीय एवं शोषण की स्थिति में' थे उन्होंने जोतदार, साहूकारों, व्यापारियों, अंग्रेजी प्रशासकों के विरूद्ध आन्दोलन किया था। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व फसल के भागीदार कृषक निरन्तर रूप में यह मांग कर रहे थे कि कुल, का 2 /3 हिस्सा उन्हें प्राप्त हो और लगान में कमी की जाए।

इस आन्दोलन का यह स्वरूप रहा कि यह विद्रोह अपने प्रभाव तथा विस्तार की दृष्टि से सीमित आन्दोलन था। तेभागा विद्रोह उन परिस्थितियों में प्रारम्भ किया गया था, जबकि भारत में स्वतंत्रता प्राप्त होने वाली थी, एवं उपमहाद्वीप का विभाजन होने वाला था।

तेभागा, आन्दोलन की यह प्रकृति रही कि कृषकों को संगठित करने, उन्हें विद्रोह करने हेतू प्रेरित करने की दृष्टि से विभिन्न संगठनों का सक्रिय सहयोग मिला था। इस दृष्टि से "**वर्क्स एण्ड पीजेण्ड पार्टी**" जो कि भारतीय कम्युनिस्ट दल की प्रमुख पार्टी मी और जिन्हें नलिनी गुप्ता एवं मुजफ्फर अहमद का नेतृत्व प्राप्त था, ने कृषकों को अपनी उचित मांगों को मनवाने व शोषण, अत्याचार से मुक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से विद्रोह हेतु प्रोत्साहित किया। इसी प्रकार "**रैव्यत कृषक सभा**" (टीनेन्ट्स एण्ड पीजेणट्स एसोसिएशन), दि कृषक प्रजापार्टी, बंगाल किसान सभा का विशिष्ट योगदान रहा।

कृषक विद्रोह की यह उल्लेखनीय प्रकृति रही कि 1945 ई. तक "दि किसान सभा" निर्धन कृषक का शक्तिशाली एवं महत्वपूर्ण संगठन बन गया था, जिसके कि प्राकृतिक प्रकोपों के समय सहायता कार्यों को सम्पन्न किया। इस स्थिति में कृषक विद्रोह प्रभावीं स्वरूप प्राप्त हुआ।

तेभागा कृषक विद्रोह का यह भी महत्वपूर्ण स्वरूप रहा कि वास्तविक आन्दोलन सितम्बर 1946 ई. में प्रारम्भ किया गया। इस समय कृषकों की यह प्रत्यक्ष कार्यवाही रही कि कृषकों को कुल उत्पादन का दो तिहाई हिस्सा प्राप्त हो।

तेभागा कृषक विद्रोह का यह भी स्वरूप रहा कि यह विद्रोह अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो सका तथापि आन्दोलन के दूरगामी परिणाम संभव हुए।

15.4 तेभागा विद्रोह के कारण

बंगाल में 1946–47 ई. के बीच जो कृषक विद्रोह हुआ, उस विद्रोह को निम्नलिखित परिस्थितियों ने सक्रिय योगदान दिया था।

1 कृषकों की अव्यवस्थित दशा:

तेभागा आन्दोलन का महत्वपूर्ण कारण कृषकों की दयनीय एवं अव्यवस्थित स्थिति होना था। बंगाल में भिन्न–भिन्न स्तर के कृषक थे। इस दृष्टि से वर्गदार, निर्धन कृषक, धनीकृषक प्रमुख थे। इनमें वर्गदार (फसल के भागीदार) और निर्धन कृषक (अदियार) वर्ग की स्थिति काफी शोचनीय थी। इन कृषकों के द्वारा वास्तविक रूप में परिश्रम एवं कृषि कार्य किया जाता था और उन्हें लगान का भुगतान उनके कुल उत्पादन के औसत का अधिक हिस्सा देना होता था। उनका शोषण व अत्याचार बना हुआ था। इसी प्रकार कृषकों को निवास, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, खाद, बीज, उपकरण लेने की सुविधाएं प्राप्त नहीं थी। उन्हें साहूकारों से ऋण लेना होता था, जिससे वे अधिक गरीब बन गए थे। इस और सरकार व संबंधित अधिकारियों के द्वारा किसी प्रकार के राहत व सुविधा के कार्य नहीं किए गए थे। परिणाम स्वरूप कृषकों में असंतोष एवं विद्रोह की भावना उत्पन्न हुई, उनके वशीभूत होकर उन्होंने प्रारम्भ विद्रोह किया।

2 खाद्यान्नों की कमी एवं मूल्यों मे वृद्धि:

बंगाल में 1943 ई. में अकाल की स्थिति उत्पन्न हुई थी, जिससे खाद्यान की अत्यधिक कमी और उसके मूल्यों में काफी वृद्धि हो गयी थी। 1939 ई. की तुलना में 1944 ई. तक कृषकों और मजदूरों की मजदूरी अर्थात पारिश्रमिक कम और खाद्यानों की कीमतें अधिक बड़ी। इस स्थिति में भी कृषक व सामान्य व्यक्ति अव्यवस्थित स्थिति में हो गया था। इस स्थिति को सामान्य बनाने में सरकार के द्वारा किसी प्रकार के प्रयास नहीं किए गए थे। परिणाम स्वरूप कृषकों में असंतोष बढ़ा। निम्नांकित तालिका से यह स्थिति इस रूप में स्पष्ट हो जाती है कि–

क.स.	वर्ष	खाद्य सामग्री का मूल्य	सन	कृषि मजदूरी
1	1339	93	1939-40	100
2	1940	100	1940-41	110
3	1941	109	1941-42	115
4	1942	160	1942-43	125
5	1943	385	1943-44	130-300
6	1944	280	1944-45	400-500

(यह तालिका भारत सरकार अकाल इन्क्वायरी कमीशन की फाइनल रिपोर्ट 1945 ई. में दर्शायी गयी है)

कृषकों के पास जो संग्रहित खाद्यान्न था उसे सरकार द्वारा कम मृत्यु पर खरीद कर ऊंचे दामों में बेचा गया जिससे किसानों को आर्थिक हानि हुई इस स्थिति में किसानों ने विद्रोह किया।

3 कृषकों का शोषण:

कृषकों का अत्यधिक शोषण 'भी विद्रोह का अन्य कारण संभव हुआ था। कृषकों को कम पारिश्रमिक उत्पादन का कम लाभ मिलने के अतिरिक्त उनका शोषण इस रूप में भी विद्यमान था कि उन्हे भूमि से किसी भी प्रकार का आरोप लगाकर बेदखल कर दिया जाता था।

वे जो ऋण साहूकारों से लेते थे वह अधिक रूप में खाने में लिख लिया जाता था। ऋण की ब्याज दर ऊंची होती थी, ऋण की वसूली कठोरता से की जाती थी। इसके कारण कृषकों का शोषण होता था। इस स्थिति में कृषकों में असंतोष व विद्रोह की भावना उत्पन्न हुई।

4 भूराजस्व की अत्यधिक वसूली:

बंगाल में भूस्वामियों, जमींदारों एवं सरकार के द्वारा कृषकों से जो भूराजस्व प्राप्त किया जाता था वह कृषकों उत्पादित उपज, आमदनी के अनुपात से अधिक होता था जो 1/2 व उससे अधिक होता था जबकि कृषक यह मांग कर रहे थे कि उन्हे 2/3 उत्पादन का हिस्सा प्राप्त हो। इसी मुद्दे को लेकर कृषकों व सरकार अथवा भूमि संबंधी अधिकारियों के बीच मतभेद, गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हुई। इस परिस्थिति में कृषकों ने आन्दोलन करने की नीति को अपनाया।

5 भूराजस्व के अतिरिक्त आर्थिक भार:

कृषक भूराजस्व के अलावा अन्य प्रकार के करों के भार से भी दबे हुए थे। उन पर करारोपण का भार था। कृषकों को विभिन्न प्रकार के अतिरिक्त कर जैसे मेले, त्यौहार एवं सामाजिक, धार्मिक अवसरों पर कर, पथकर, डाक, व्यय, जन्म, मृत्यु आदि शुल्क भी भुगतान होते थे, जिसके कारण आर्थिक भाव बढ़ गया था। कृषकों को इसका दोषी पाये जाने पर कठिन यातनाऐं दी जाती थी। इस स्थिति से मुक्ति प्राप्त करने हेतु भी कृषकों ने विद्रोह किया।

6 पुलिस, न्यायालयों व सरकारी तंत्रों का असहयोग:

कृषकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्र में किसी भी प्रकार की कठिनाई पूर्ण स्थिति उत्पन्न हाने पर सरकार, पुलिस व न्यायालय का सहयोग व संरक्षण प्राप्त नहीं था। इसके विपरीत ये संस्थाएं जमींदारों, साहूकारों व बिचौलियाओं को पूर्ण संरक्षण प्रदान करती थी। इस स्थिति के परिणाम स्वरूप कृषकों की स्थिति काफी गंभीर व शोचनीय बन गयी थी। इस स्थिति में जमींदार, ताल्लुकदार, जोतदार, साहूकार शक्तिशाली एवं प्रभावशाली हो गए थे। इस अव्यवस्थित स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए कृषकों ने आन्दोलन किया।

7 आवागमन, संचार के साधनों का अभाव:

बंगाल में कृषक क्षेत्रों में आवागमन व संचार साधनों का पूर्ण अभाव था। इस क्षेत्र में सरकार एवं जमींदारों के द्वारा सुधार पूर्ण कार्य नही किए गए थे। इस स्थिति में कृषकों के लिए अपने उत्पादित माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पहुँचाने, सूचनाएं व जानकारी करने में काफी कठिनाइयाँ महसूस की गयी। परिणाम स्वरूप कृषकों ने इन सुविधाओं को प्राप्त करने के उद्देश्य से आन्दोलन प्रारम्भ किया।

8 राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव:

तेभागा कृषक विद्रोह को राष्ट्रीय आन्दोलन के परिणामस्वरूप भी प्रोत्साहन मिला था। इस समय जबकि भारत में महात्मा गांधी, नेहरू, पटेल के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप 1942–43 ई. भारत छोड़ो आन्दोलन, 'भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति की परिस्थितियां बनी हुई थी, उस वातावरण में इस आन्दोलन को विशेष बल मिला। कृषकों ने इससे प्रेरणा प्राप्त

करके अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध विद्रोह करने की नीति को क्रियान्वित स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया परिणाम स्वरूप 1946–47 ई. में कृषकों का विद्रोह प्रारम्भ हो सका।

9 भारत के अनेक प्रांतों को कृषक आन्दोलन से प्रेरणा:

बंगाल में 1946–47 ई. में जो कृषक आन्दोलन हुआ उससे पूर्व भारत के अनेक प्रांतों में कृषक आन्दोलन घटित हो चुके थे। इन कुश्क आन्दोलनों में सन्थाल विद्रोह अवध और उत्तर प्रदेश के विद्रोह, चम्पारन विद्रोह, बारदोली, नेलगाना के विद्रोह उल्लेखनीय है। इन विद्रोहों में कृषकों की लगभग समान दोषपूर्ण सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियाँ थी, जिसके कारण उन्होंने. विद्रोह किया था। उसी प्रकार तेभागा प्रभावित कृषकों ने भी यह प्रेरणा प्राप्त कर अपने अधिकारों को प्राप्त करने, शोषण, अत्याचार: से मुक्त होने के उद्देश्य मे विद्रोह की नीति को अपनाया था।

10 विभिन्न संगठनों का नेतृत्व:

तेभागा कृषकों को विभिन्न सहयोगी संगठनों का सक्रिय सहयोग. नेतत्व प्राप्त होने के कारण भी इस विद्रोह को विशेष बल मिला। इस दृष्टि से बंगाल की कम्युनिस्ट आन्दोलन की प्रमुख कार्यकर्ता नलिनी गुप्ता, मुजफ्फर अहमद और उनके द्वारा स्थापित "**वर्क्स एण्ड पीजेण्ट पार्टी**" इसी भांति "**रैयत कृषक सभा**", **"दि कृषक प्रजा पार्टी"** का सक्रिय योगदान मिला। इस क्षेत्र में विशेष रूप में कृषक प्रजा पार्टी ने अपना विशेष प्रभाव स्थापित किया जिसके समर्थकों व सदस्यों की संख्या 1944 ई में 77, 629 हो गयी थी। इस सभा में शिक्षक, जोतदार परिवार के लोग विशेष रूप में सम्मिलित थे। इन्होंने कृषकों की विभित्र समस्याओं को दूर करने, उन्हें उचित पारिश्रमिक, उत्पादन का हिस्सा, अधिकार दिलाने, उन्हे नेतृत्व प्रदान करने के प्रयास किए। इन परिस्थितियों में कृषक आन्दोलन को सक्रिय आधार मिला। 1945 –46 ई तक "दि किसान सभा" गरीब कृषकों की शक्तिशाली संस्था व संगठन बन गयी थी।

इस प्रकार उपर्युक्त परिस्थितियों में तेभागा कृषक आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला था।

15.5 आन्दोलन का उद्भव, घटनाएं एवं विकास

उक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि, बंगाल में तेभागा कृषकों के द्वारा विद्रोह किया गया था। ऐतिहासिक दृष्टि से यह तथ्य पूर्ण है कि यह आन्दोलन सितम्बर 1946 ई में सर्वप्रथम अपनी वास्तविक स्थिति में कृषकों के द्वारा प्रादुर्भावित हुआ। अत : आन्दोलन का उद्भव क्रियान्वित रूप में सितम्बर 1946 ई. से मानो जा सकता है। यद्यपि इस विद्रोह की ज्वाला पहले से ही विद्यमान थी तथापि इसे तात्कालिक स्वरूप सितम्बर 1946 ई. में उस समय प्राप्त हुआ जबकि फसल के भागीदार कृषकों ने प्रत्यक्ष रूप में यह मांग उठाई कि उनके पास कुल उत्पादन का 2/3 हिस्सा रहना चाहिए। और वे जोतदार के उत्पादन का आधा लगान की धनराशि का भुगतान नही करेंगे। इस मांग के साथ वास्तविक संघर्ष की शुरूआत हुई।

तेभागा कृषक आन्दोलन बंगाल के विभित्र –क्षेत्रों में प्रारम्भ हुआ था। इस दृष्टि से उत्तर–पश्चिम में अटवारी, दिनाजपुर आदि गाँवों में कृषकों के द्वारा (बरगदार) अपनी काटी हुई

फसल अपने स्वयं के खमर (फसल से उत्पादित माल निकालने) में ले गए न कि जोतदार के यहां, जैसा कि वे किया करते थे। इस संबंध में पुलिस द्वारा हस्तक्षेप किया गया। परिणाम स्वरूप कृषकों व पुलिस के मध्य संघर्ष प्रारम्भ हुआ। इस समय किसान सभा व कम्युनिस्ट नेताओं के द्वारा कृषकों को नेतृत्व प्रदान किया गया था।

दिसम्बर 1946 ई तक यह आन्दोलन काफी स्थानों पर प्रभावशाली रूप में विस्तृत हो गया था। इस समय लगभग 1,000 किसान सभा कार्यकर्ता और कृषक नेतागण गिरफ्तार कर लिए गए थे। जनवरी 1947 ई. में कृषकों ने पुलिस स्टेशन व पोस्ट ऑफिस पर हमला किया। उन्होंने जमींदार की कचहरी (कार्यालय) पर अधिकार कर लिया। इस समय हजोंग गांव के कृषकों ने हिंसात्मक आन्दोलन को प्रोत्साहित किया। तेभागा आन्दोलन में दिनाजपुर क्षेत्र महत्वपूर्ण केन्द्र था। इस क्षेत्र के हजबंशी फसल के भागीदार किसान (शेयरक्रापसं) और संथाल भूमिहीन मजदूरों को इस आन्दोलन में शामिल किया और यह मांग रखी कि उनके द्वारा उत्पादित फसल उनके पास ही रहेगी।

जलपायगुरी में तेभागा आन्दोलन अत्यधिक प्रभावशाली था। यहां सन्तल एवं और ओन जाति के किसानों ने चुंगी का भुगतान न करने, फसल को अपने यहां रखने का आहवान किया। इस समय जोतदार भाग छूटे। कुछ मजदूरों ने भी इस आन्दोलन में बरगदर कृषकों के साथ अपने को शामिल कर लिया। जिससे तेभागा विद्रोह शक्तिशाली हो गया।

बरगदर किसानों (ऐसे किसान जिनके पास भूमि के अधिकार नहीं थे) का यह संघर्ष इतना प्रभावशाली था कि बंगाल की सरकार को यह महसूस हुआ कि कृषकों की समस्याओं पर शीघ विचार किया जाए। इस स्थिति के फलस्वरूप बंगाल की सरकार के द्वारा 'बरगदर्स बिल ' लागू किया गया। इसके द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि बरगदर्स किसानों हेतु भूमि पर अधिकार व सुरक्षा प्रदान की जाएगी। कृषक अपने पास दो तिहायी उपज का हिस्सा रख सकने और जोतदार को वे एक तिहायी भाग का भुगतान करेंगे। यह अस्थायी व्यवस्था थी। इससे स्पष्ट है कि तेभागा आन्दोलन को अपने प्रथम स्तर पर सफलता प्राप्त हुई थी।

बंगाल सरकार के द्वारा बिल का जो गजट नोटिफिकेशन किया गया वह बरगदर वर्ग के किसानों को सन्तुष्ट नही कर सका। परिणामस्वरूप फरवरी 1947 ई में आन्दोलन पुन : प्रारम्भ हो गया। लेकिन इस समय पुलिस के दमनकारी तरीकों के कारण आन्दोलन को कुचलने का प्रयास किया गया। कृषकों से यह कहा गया कि वे अपने आपको समर्पित कर दें। 20 फरवरी के दिन खानपुरा नामक स्थान पर जबरदस्त मुठभेड़ कृषकों व पुलिस के मध्य हुई। किसान सभा' व कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं ने खाइयां खोद रखी थी, जिससे पुलिस के आक्रमणों, दमनकारी नीतियों का सामना किया जा सकें। इस प्रकार की घटना थुमनिया नामक स्थान पर घटित हुई। कई किसान मृत्यु को प्राप्त हुए एवं बंदी बना लिए गए। इसी भांति महाबारी, कजापुर आदि स्थानों पर भी मुठभेड़ व संघर्ष की घटनाएं घटित हुए। लेकिन मार्च 1947 ई. के बाद से तेभागा आन्दोलन कमजोर होता चला गया। राजनीतिक परिस्थितियों एवं सरकार की दमनकारी नीति के फलस्वरूप यह आन्दोलन अपने उद्देश्यों में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सका।

15.6 तेभागा कृषक विद्रोह के प्रति सरकार की नीति!

तेभागा आन्दोलन की ऐतिहासिक घटनाओं के विवेचन से यह तथ्य पूर्ण प्राप्त होती है कि बंगाल की सरकार की इस आन्दोलन के प्रति दमनकारी नीति का रहा। बंगाल की सरकार ने तेभागा कृषकों के साथ किसी प्रकार की सौहार्दपूर्ण वार्ता, सभाएं, का प्रयास नहीं किया। सरकार ने आन्दोलनकारियों के प्रति प्रत्यक्ष नीति को क्रियान्वित देने का प्रयास किया था। इस नीति के अन्तर्गत सरकार की यह नीति रही कि आन्दोलनकारियों के साथ सख्ती से निपटा जाए।

बंगाल की सरकार ने यद्यपि प्रारम्भ में आन्दोलन व आन्दोलनकर्ताओं के छूते हुए प्रभाव को देखते हुए अस्थायी रूप में 'बरगदर्स बिल ' को लागू करने की घोषणा की थी उद्देश्य किसानों को संतुष्ट करना व आन्दोलन को शिथिल बनाना था। लेकिन यह निरन्तर रूप मे बढ़ता चला गया। सरकार के द्वारा पुलिस का विशेष रूप में सहयोग गया, जिस दृष्टि से पुलिस ने आन्दोलनकारियों के प्रति हिंसात्मक नीति व दमनकारी नीति कों अपनाया। इस नीति के अन्तर्गत आन्दोलनकर्ताओं को पकड़ने, उन पर डंडे बरसाने, गोलियाँ व गैस छोड़ने की नीति को अपनाया गया, परिणाम स्वरूप आन्दोलनकर्ताओं का धैर्य, टूट गया एवं आन्दोलन कमजोर होता चला गया।

यद्यपि आन्दोलनकर्ताओं को 'किसान सभा ' व कम्यूनिस्टों का सहयोग हुआ लेकिन मुस्लिम व धनिक वर्ग से संबंधित कृषकों ने तेभागा आन्दोलनकर्ताओं को सहयोग नही किया। इस स्थिति के कारण सरकार की नीति को विशेष बल मिला। सरकार को सफलता इस रूप में प्राप्त हुई कि आन्दोलनकारियों की गतिविधियों का सरलतापूर्वक दमन कर दिया गया।

15.7 तेभागा विद्रोह के परिणाम

तेभागा आन्दोलन के विद्रोहियों को अपने उद्देश्यों में आंशिक सफलता प्राप्त हो सकी थी, जिसे सीमित सफलता कहा जा सकता है। तेभागा आन्दोलनकारियों का मुख्य उद्देश्य केवल इस सीमित मांग पर आधारित था कि जो कृषक (फसल के भागीदार अर्थात् वर्गदार), 'शेयर क्रापर्स ' है उन्हें यह अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए कि वे उत्पादन का 2/3 (दो तिहाई) हिस्सा अपने पास रखें। इस संबंध में आन्दोलनकारियों हेतू केवल उन कृषकों को जिनके, पास भूमि के अधिकार नही थे व जिन्हें बरगदर्स कहा जाता था उनके लिए बरगदर्स बिल पारित कर उक्त मांग के अनुसार सुविधा दिए जाने की व्यवस्था की गयी थी। लेकिन विभिन्न वर्गो संबंधित कृषकों को इससे किसी प्रकार का लाभ प्राप्त नही होना था।

इस विद्रोह के परिणाम स्वरूप बंगाल की सरकार को इस बात से प्रेरणा मिली कि कृषकों की कठिनाइयों समस्याओं, शोषण, अत्याचार को मध्यनजर रखते हुए भूराजस्व व कृषि की नीति को बनाया जाना चाहिए।

तेभागा आन्दोलन अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका। इस आन्दोलन को कुछ सामाजिक व राजनीतिक शक्तियों ने कमजोर बनाने का प्रयास किया था।

बंगाल के विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग जातियों से संबंधित कृषक निवास करते थे। उन सभी का सहयोग आन्दोलनकर्ताओं को प्राप्त नहीं हुआ, जिस स्थिति में यह आन्दोलन कमजोर

पड़ गया। इसमें राजवंशी, सन्थाल जाति के लोगों ने ही, आन्दोलन में भाग लिया। मुस्लिम किसानों ने किसी प्रकार का सहयोग नहीं दिया। इसी प्रकार जिन लोगों ने आन्दोलन में हिस्सा लिया वे भी भाग छूटे अथवा पुलिस के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया।

किसान सभा की सफलता एक पक्षीय सफलता थी। बंगाल जैसे मुस्लिम बहुमत प्रांत में सम्प्रदायवाद की राजनीति बढ़ रही थी उसके परिणाम स्वरूप भी तेभागा आन्दोलन प्रभावित हुआ। अधिकांश मुस्लिम कृषकों ने किसान सभा को छोड़ दिया था और उन्होने कृषकों के आन्दोलन में भाग लेने से मना कर दिया था।

तेभागा आन्दोलन के परिणाम स्वरूप कोई विशेष सफलता अर्जित नहीं की गयी। कृषकों के आन्दोलन के कारण किसी भी जोतदार के मकान कों जलाया या नष्ट नहीं किया गया, न ही कोई जोतदार मृत्यु को प्राप्त हुआ। यद्यपि काफी जोतदार आन्दोलन के परिणाम स्वरूप भाग गए थे। उस स्थिति में बरगदर्स और उनके नेताओं ने न तो उनकी भूमि को छीना और न ही उन पर अपनी कोई संस्था अथवा प्रशासन को स्थापित किया।

इसी प्रकार तेभागा आन्दोलन के नेता शहरी मध्यम वर्ग भद्रलोक परिवार से संबंधित थे। ग्रामीण स्तर पर किसान सभा समितियों का प्रतिनिधित्व रहा। तेभागा आन्दोलन की प्रमुख शक्ति गरीब कृषकों में निहित थी। इस आन्दोलन में मध्यम वर्ग के कृषकों ने भाग नही लिया।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तेभागा आन्दोलन अपने उद्देश्यों में असफल रहा। यह आन्दोलन स्पष्ट रूप में बंगाल के वर्ग के राजनीतिकरण का परिणाम था। इसी प्रकार किसान सभा व कम्यूनिस्ट दल की गतिविधियों के बिना तेभागा आन्दोलन विकसित नहीं हों सकता था।

15.8 सारांश

इस प्रकार उक्त विवेचन के आधार पर यह तथ्य पूर्व हो जाता है कि बंगाल में 1946–47 ई. के बीच कृषकों के द्वारा अपनी कठिनाइयों, समस्याओं के निराकरण तथा अत्याचारों व शोषण से मुक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से सरकार के विरूद्ध सक्रिय आन्दोलन किया गया था।

इस ऐतिहासिक विवेचन से यह भी स्पष्ट होता है कि तेभागा कृषकों को किसान सभा व कम्यूनिस्टों का विशेष योगदान मिला था। उनके सहयोग के बिना यह आन्दोलन विकसित नही हो सकता था।

तेभागा कृषक विद्रोह का प्रमुख लक्ष्य कृषकों के द्वारा इस मांग को प्रमुख रूप में सरकार से स्वीकार कराना था कि वे जोतदार को अपने कुल उत्पादन का एक तिहाई हिस्से का भुगतान करें और दो तिहायी भाग कृषक अपने पास रखें, जिसका उद्देश्य लगान में कमी करना था।

यह आन्दोलन जिस तीव्र गति से सक्रिय हुआ उस गति से उसे अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त नहीं हुई। सरकार ने पुलिस के सहयोग से इस आन्दोलन का दमन कर दिया था। आन्दोलन में कई कृषक मृत्यु को प्राप्त हुए एवं अत्यधिक संख्या में उन्हें बंदी बना लिया

गया। यह आन्दोलन सीमित आन्दोलन था जिसमें सभी वर्गों के लोगों का सहयोग प्राप्त नही हुआ। परिणाम स्वरूप यह आन्दोलन कमजोर पड़ गया।

तेभागा कृषक विद्रोह वास्तविक रूप में बंगाल के कृषक वर्ग के राजनीतिकरण का परिणाम था।

15.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न– 1

निम्नांकित प्रश्नों के पांच पंक्तियों में उत्तर लिखे –

(1) तेभागा आन्दोलन की प्रकृति को समझाइये।

(2) बंगाल के कृषकों की स्थिति को बताईये।

(3) तेभागा कृषकों की विपिन श्रेणियों का उल्लेख कीजिए।

(4) किसान सभा व कम्युनिस्ट दल के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

(5) तेभागा कृषकों के मुख्य लक्ष्य को उल्लेखित कीजिए।

बोध प्रश्न–2

निम्नांकित वाक्यों को पढ़कर उसके सम्मुख सही (✓) या गलत (X) का अंकित करें।

(1) तेभागा आन्दोलन बंगाल का महत्वपूर्ण आन्दोलन था ( )

(2) तेभागा कृषकों को किसान सभा व कम्युनिस्ट दल ने सहयोग नहीं। ( )

(3) तेभागा आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य कृषकों को कुल उत्पादन का 2/3 हिस्सा अपने पास रखने व 1/3 हिस्सा जोतदार को भुगतान नहीं करना था। ( )

(4) तेभागा आन्दोलन को सरकार का समर्थन प्राप्त हुआ था। ( )

(5) बंगाल की सरकार ने कृषकों हेतु 'बरगदर्स बिल' पास किया था। ( )

(6) वर्क्स एण्ड पीजेण्ट पार्टी के प्रमुख नेता नलिनी गुप्ता और मुजफ्फर अहमद थे। ( )

(7) तेभागा आन्दोलन अपने उद्देश्य में पूर्णरूप से सफल रहा। ( )

बोध प्रश्न–3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 100 शब्दों मे लिखिए–

(1) उन परिस्थितियों का विवेचन कीजिए जिनके फलस्वरूप बंगाल में कृषक विद्रोह को प्रोत्साहन मिला।

(2) तेभागा कृषक विद्रोह की घटनाओं एवं प्रगति का वर्णन कीजिए।

(3) तेभागा आन्दोलन के परिणामों की विवेचना कीजिए।

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

(1) डी.एन. धनाग्रे 'पीजेण्ट मूवमेन्ट्स इन इण्डिया' (1920–1950 ई.)

(2) ए.आर. देसाई 'पीजेण्ट स्ट्रगल्स इन इण्डिया'

(3) डी.एन. धनाग्रे 'एग्रेरियन मूवमेंन्ट्स एण्ड गांधीयन पालिटिक्स'

(4) एल. नटराजन 'पीजेण्ट अपराइजिंग इन इण्डिया'

(5) एस. सेन 'अग्रेरियन रिलेशन्स इन इण्डिया'
(6) इ व्हाइट काम्ब 'अग्रेरियन कन्डीशन्स इन नार्दन इण्डिया'
(7) रिपोर्ट आफ कांग्रेस अग्रेरियन रिफोर्म्स कमेटी 1949 ई.
(8) जी. ब्लिन 'एग्रीकल्चरल ट्रेन्डस इन इण्डिया' (1991–1947 ई)
(9) पी. सिन्हा 'नाइन्टीन्थ सैम्च्युरी बंगाल'
(10) एस.के. सेन 'अग्रेरियन स्ट्रगल्स इन बंगाल' (1946–47 ई)
(11) आल्वी 'पीजेण्टस एण्ड रिवोल्यूशन्स '
(12) एस. गुप्ता 'दि शेयर क्रोपर्सएण्ड दि तेभागा बिल आफ बंगाल '
(13) आर. मुखर्जी 'इकनामिक स्ट्रगल आफ रूरल बंगाल '
(14) ए मिश्रा एन एकाउण्ट आफ दि लेण्ड मैनैजमेंट इन वेस्ट बंगाल ' (1870–1950ई)
(15) थोर्नर 'अग्रेरियन प्रोस्पेक्ट्स इन इण्डिया '
(16) स्वामी सहजानन्द सरस्वती एण्ड एन जी रंगा 'हिस्ट्री आफ दि किसान मूवमेन्ट्स '
(17) जे सी. बंगाल 'पीजेण्ट रिवोल्यूशन्स इन बंगाल '
(18) डब्ल्यू. डब्ल्यू. हण्टर 'एनल्स आफ बंगाल '

इकाई – 16
शेखावाटी का किसान आन्दोलन

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 शेखावाटी का इतिहास
16.3 शेखावाटी में जागीरदारी व्यवस्था
16.4 किसानों की कठिनाईयाँ तथा ठिकानों में उनकी स्थिति
16.5 शेखावाटी के किसानों में असंतोष तथा आंदोलन का सूत्रपात (1922–1926)
16.6 शेखावाटी में किसान जागति के विभिन्न प्रयास व किसान पंचायतों का गठन (1926–1934)
16.7 शेखावाटी में किसान आन्दोलन व किसानों की विजय (1934–1936)
16.8 शेखावाटी में झूम बन्दोबस्त और जयपुर राज्य प्रजामण्डल के अधीन किसान आन्दोलन (1936– 1946)
16.9 शेखावाटी किसान आन्दोलन का उत्तरार्द्ध तथा जागीरदारी प्रथा की समाप्ति (1946–1952)
16.10 अभ्यासार्थ प्रश्न
16.11 संदर्भ ग्रन्थ

16.0 उद्देश्य

(i) शेखावाटी के इतिहास से अवगत करवाना।

(ii) शेखावाटी में सामंती प्रथा के अन्तर्गत जागीरदारों व किसानों की स्थिति की विश्लेषणात्मक जानकारी देना।

(iii) शेखावाटी के किसानों की जनजागृति व आन्दोलन के विभिन्न चरणों का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करना।

(iv) शेखावाटी के किसान आंदोलन की सफलता व जागीरदारी व्यवस्था के उन्मूलन की जानकारी देना।

16.1 प्रस्तावना

शेखावाटी क्षेत्र (अब राजस्थान के सीकर व झुंझुनूं जिले) पहले जयपुर राज्य के अन्तर्गत था जिसका क्षेत्रफल 13,784 वर्ग किलोमीटर था। इस क्षेत्र में सीकर, झुंझुनूं खेतड़ी, फतेहपुर, नवलगढ़, उदयपुर, लक्ष्मणगढ़, मण्डावा, रामगढ़ आदि मुख्य नगर थे। शेखावाटी का यह इलाका सीकरवाटी, खण्डेलावाटी, झुंझुनूंवाटी, उदयपुरवाटी, सिंघानावाटी, नरहडवाटी आदि इलाकों में बंटा हुआ था। सिंघाना व उदयपुर के कुछ हिस्से को छोड़कर बाकी शेखावाटी का सारा इलाका रेतीला था जिसमें मोठ, बाजरा, ग्वार के सिवाय कोई दूसरी चीज पैदा नहीं होती थी।

प्राकृतिक उपज में फले व खेजडा बहुतायत से पाया जाता था। खेती अधिकतर वर्षा पर निर्भर व पुराने तरीकों से ऊंटों द्वारा की जाती थी। इस इलाके में वर्षा कम होने से समय–समय पर अकाल की स्थिति बनी रहती थी, जिससे जनता त्रस्त रहती थी। खेती के अलावा शेखावाटी के किसान पशुपालन भी करते थे जिसमें गाय, भैस, बकरी, भेड व ऊंट मुख्य थे।

16.2 शेखावाटी का इतिहास

शेखावाटी का यह नाम अति प्राचीन नहीं है। 15वीं सदी से पहले इस इलाके पर चौहानों की सत्ता थी। 1445 ई. में जहाँ आमेर राज्य के छुटभइयों में शेखा नामक व्यक्ति ने कुछ इलाके को जीतकर अमरसर नामक राज्य स्थापित किया था, वही चौहानों की ही एक नव मुस्लिम कायमखानी शाखा ने 1450 ई. में झुंझुनूं को तथा 1451 ई में फतेहपुर को जीतकर वहाँ दो नवाबियाँ कायम की थी। ये दोनों नवाब दिल्ली के मुस्लिम शासकों के अधीन शासन करते रहे, वहीं शेखा के वंशज, जो शेखावत कहलाये, भी बाद में मुगलों की अधीनता स्वीकार कर मुगल बादशाहों की सेवा करने लग गये। शेख के वंशजों में रामसल बड़े योग्य शासक हुए जो अकबर के दरबार में "राजा रायसल दरबारी" के नाम से प्रसिद्ध हुए। अकबर ने उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर उन्हें कासली, रैवासा, खण्डेला, उदयपुर आदि इलाके जागीर में दिये, जिससे उनका राज्य काफी विस्तृत हो गया। मरने से पूर्व उन्होंने अपना राज्य अपने पुत्रों में बराबर बाँट दिया जिसमें प्रथम पुत्र गिरधर के वंशज खण्डेला के दोनों राजा, तृतीय पुत्र भोजराज के वंशज उदयपुरवाटी के शासक तथा चतुर्थ पुत्र तिरमल के वंशज सीकर के रावराज हुए।

उदयपुर के शासक भोजराज के बाद, टोडरमल की मृत्यु के पश्चात् उदयपुर राज्य को उसके पाँचों पुत्रों ने भी बराबर भागों में बाँट लिया। इस प्रकार शेखावतों में के समान बंटवारे की प्रथा की शुरुआत हुई। टोडरमल के पुत्र जुझारसिंह के वंशजों में शार्दूलसिंह बड़े योग्य व्यक्ति हुए। उन्होंने 1730 ई. में झुंझुनूं के नवाब रूहेलाखां की के बाद झुंझुनूं पर अधिकार कर लिया। नरहड़, केड़, बडवासी आदि छोटी नवाबियों का भी इसके साथ ही पतन हो गया। शार्दूलसिंह की मदद से अगले वर्ष 1731 ई. में सीकर के रावराजा शिवसिंह ने फतेहपुर को जीतकर वहाँ की कायमखानी नवाबी को समाप्त कर दिया। इस प्रकार झुंझुनूं व फतेहपुर इलाकों पर शेखावतों का अधिकार स्थापित हो गया। अब यह सम्पूर्ण क्षेत्र शेखावाटी के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पहले यह इलाका मुगलों के आगरा सूबे के अन्तर्गत था। 1722 से 1737 ई. तक जयपुर के शासक सवाई जयसिंह मुगलों की ओर से आगरा सूबे के गवर्नर थे। इस समय उन्होंने मुगलों की पतनोन्मुख स्थिति को देखकर शेखावाटी के इस सारे इलाके मुगलों से इजारे पर लेकर इस पर अपना सीधा अधिकार स्थापित कर लिया। अब के विभिन्न शेखावत शासक मुगलों के स्थान पर जयपुर को ट्रिब्यूट देने लगे और अगले 200 वर्षों तक जयपुर के अधीन इस प्रदेश पर शासन करते रहे।

16.3 शेखावाटी मे जागीरदारी व्यवस्था

शार्दूलसिंह की मृत्यु के बाद उसका राज्य भी उसके पाँचों पुत्रों में बंट गया जो पंचपाना के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके बाद उनके वंशज भी अपनी जागीरों को अपने पुत्रों बराबर बांटते

रहे। इससे शेखावाटी में एक ऐसी जागीरदारी व्यवस्था स्थापित हुई जैसी राजस्थान में कहीं पर भी नहीं थी। बाकी जगह जागीरदार का बड़ा पुत्र ही जागीर का मालिक बनता था बाकी पुत्रों को गुजारे लायक भूमि दे दी जाती थी। जबकि शेखावाटी में जागीरें बराबर बंटते रहने से कुछ जागीरें तो इतनी छोटी हो गई कि कुछ एकड़ भूमि ही जागीर में आई, जबकि कुछ जागीरें, जिनके कम संतानें थी, बड़ी बनी रही। केवल सीकर व खेतड़ी के ही बड़े ठिकाने थे। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि एक एक गाँव भी दो तीन भागों में बंट गया था। अब इन ठिकानों के पास इतनी आमदनी नहीं रह गई थी कि वे शासनतंत्र के संचालन एवं चोर डाकुओं से प्रजा की रक्षा तथा शांति व व्यवस्था बनाये रखने हेतु उपयुक्त व्यवस्था कर सके। ऐसी स्थिति में सीकर व खेतड़ी को छोड़कर पंचपाना ठिकानों के फौजदारी, दीवानी, पुलिस आदि अधिकार जयपुर महाराजा द्वारा ले लिये गये तथा इनकी व्यवस्था हेतु 1868 ई. में झुंझुनूं में निजामत कायम कर वहाँ नाजिम की नियुक्ति कर दी गई तथा शेखावाटी के इन ठिकानों में जगह जगह पुलिस थाने कायम कर दिये गये।

इन ठिकानों में प्रशासन की दृष्टि से कोई कानून कायदे नही थे। ठाकुर के हुक्म ही कानून थे। ठिकाने का सारा काम कामदार नामक एक अधिकारी देखता था जो चौधरियों की सहायता से किसानों से लगान वसूल करता था। लगान की वसूली की व्यवस्था भी भिन्न–भिन्न थी। कहीं पर इजारेदारी प्रथा थी जिसमें ऊँची रकम लगाने वाले को गांव एक या अधिक वर्ष के लिए इजारे पर दे दिया जाता था। कही खड़ी फसल की ममाने ढंग से कूंत करके उसका प्राय : आधा भाग 'गढ ' में पहुँचाने का आदेश दिया जाता था तो कहीं वास्तविक अनाज का आधा हिस्सा लगान में वसूल किया जाता था, तो कहीं प्रति बीघा लगान नकद में वसूल होता था।

16.4 किसानों की कठिनाईयाँ तथा ठिकानों में उनकी स्थिति

शेखावाटी में जागीरें बंटती रहने से बहुतों के पास थोड़ी–थोड़ी जमीनें रह गई थी, फिर भी वे अपने को किसी बड़े जागीरदार से कम नहीं मानते थे और राजा–महाराजाओं जैसे नखरे करते थे। रहने के लिए गढ़, दास–दासियाँ, नौकर–चाकर, घोड़े इत्यादि उनकी आवश्यकता के अंग थे। इस पर जागीरदारों के खर्चे आधुनिक शान–शौकत की वजह से और अधिक बढ़ गये थे, जबकि आय का एकमात्र स्रोत किसान था जिससे प्राप्त होने वाली आय से वे पर्दे में रहने वाले अपने पूरे परिवार का पालन–पोषण करते थे। इसलिए वहाँ का जागीरदार किसान से प्राप्त भूमिकर को दो–गुना, चार गुना और जितना वह जोर–जबरदस्ती से वसूल कर सकता था, करने का प्रयत्न करता था। लगान के अलावा ठिकानेदार अपने किसानों से अनेक प्रकार की लागे (अन्य कर) भी लेता था। ये लागे भी वैसी ही निर्दयता और पाबन्दी के साथ वसूल की जाती थी। लोगों की संख्या बढ़ते–बढ़ते 37 तक पहुँच गई थी। जिसमें मलबा, खूंटाबन्दी, पान–चराई, न्यौता, बाइजी का हाथ, कुंवरजी का कलेवा, जाजम, हलबेठिया, धुंआलाग, ढोल लाग, नाता लाग, हरी लाग व हरि का ब्याज लाग, कडवीं का लादा आदि लागें प्रमुख थी। दिन प्रतिदिन नई लागें भी लगा देते थे।

लोगों के अलावा भेंट और थी जो दशहरे, होली आदि त्यौहारों पर लोगों से वसूल की जाती थी। जब भी किसान कभी ठाकुर के पास जाता था या ठाकुर किसी गाँव में जाता तो किसानों को उसे भेंट देनी पड़ती थी। ठिकानेदार जब जोतने के लिए जमीन देते तो किसान से नजराना और लेते थे। किसान को ठिकानेदार के जन्म से मृत्यु तक के प्रत्येक कृत्य पर टैक्स देना पड़ता था और अपने यही के प्रत्येक शुभ अवसर पर ठिकानेदार को भेंट देनी होती थी।

इन लाग–बागों, भेंट–नजराना आदि के अलावा किसानों को ठिकाने की बेगार करनी पड़ती थी। ठिकाने का प्रत्येक कार्य बेगार में होता था और इसमें सबसे ज्यादा बेगार किसानों को करनी पड़ती थी, जिसका कोई मूल्य नहीं दिया जाता था।

ठिकाने में किसानों से सारी वसूलियाँ जूते के जोर से होती थी। इसके लिए किसानों को खूब कष्ट दिया जाता था। जुर्माना करना, कोठड़ी में बन्द कर शारीरिक यातनाऐं देना, भूखे–प्यासे रखना, मारपीट करना जैसे दण्ड बहुत सामान्य थे। ठिकानों में शारीरिक दण्ड देने के लिए काठ ' का प्रयोग किया जाता था। यह एक प्रकार का लकड़ी का तख्ता होता था, जिसमें निश्चित नाप पर छेद होते थे। उनमें व्यक्ति के दोनों पैर दो छेदों में डाल दिये जाते थे जिससे व्यक्ति को बहुत पीड़ा होती थी। इसके अतिरिक्त, कोड़े लगवाना, पेड पर रस्से से लटकाना, फसल कुड़क करना, पशु नीलाम कर देना, घर का सामान लूट लेना, भूमि से बेदखल कर. देना, चोरियाँ करवा देना आदि तरीके भी सामान्य रूप से ठिकानों में प्रचलित थे।

शेखावाटी का किसान चुपचाप इन अत्याचारों को सहन करता था। उसकी हालत यह थी कि वह मोटे कपड़े की धोती बाँधता था और बाकी शरीर या तो नंगा रहता था या फटे पुराने कमीज को पहनकर काम चलाता था। कई बार किसान को ठिकानेदारों की लम्बी चौड़ी माँगों को पूरा करने के लिए साहूकारों से कर्ज तथा कभी–कभी अपनी लड़कियों तक को बेचना पडा था। अधिकतर किसानों के पास निवास के लिए एक या दो कच्ची छप्परदार खुडियॉ एवं झुंपे होते थे और इसी से वह अपना काम चलाता था। शेखावटी के किसान के लिए नीचे धरती और ऊपर आसमान के सिवाय राजा, माई–बाप, भगवान, अन्नदाता आदि सब कुछ ठिकानेदार ही थे। कुल मिलाकर शेखावाटी के किसान की स्थिति बड़ी दयनीय तथा अर्द्धदास की सी थी। मोटा अनाज खाकर और मोटा कपड़ा पहनकर अपने दिन काटता था। शेखावाटी के इन गरीब किसानों की रगो में भी खून दौड़ा, जब जागीरदारों के अत्याचार, लगान, लाग–बाग तथा बेगार चरम सीमा तक पहुँच गये और उस हो गये।

16.5 शेखावाटी के किसानों में असंतोष तथा आंदोलन का सूत्रपात (1922–1926)

1920 ई. में देश के राजनीतिक वातावरण में गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन से काफी चेतना थी। इससे पूर्व प्रथम विश्व युद्ध में शेखावाटी इलाके से बड़ी संख्या में किसानों के लड़के फौज में भर्ती होकर विदेशों में लड़ने गये थे और एक नई लेकर पेंशन पर लौटे थे। इस समय मेवाड़ व सिरोही में बिजोलिया बेगूं व भीलों के किसान आन्दोलन चल रहे थे जिसका नेतृत्व राजस्थान सेवा संघ के अधीन विजयसिंह पथिक व रामनारायण चौधरी कर रहे थे। इन सबका

असर शेखावाटी के किसानों पर हो रहा और उनमें कुछ– कुछ जीवट पैदा हो रहा था। ऐसे समय में शेखावाटी में सीकर में किसानों का असन्तोष 1922 ई. में शुरू हुआ जबकि राव राजा कल्याणसिंह ने गद्दीनसीन होते ही नये खर्चों के बहाने 25 से 50 प्रतिशत तक अधिक भू–राजस्व किसानों' से वसूल किया तथा अगले वर्ष रियायत देने का वायदा किया। अगले वर्ष 1923 ई.में फसल के खराब होते हुए भी बढ़ा हुआ कर वसूल करना चाहा। किसानों ने इसे साथ विश्वासघात समझकर बढ़ा हुआ कर देने से मना कर दिया। इस पर बड़ी संख्या में' किसान गिरफ्तार कर लिये गये और 'काठ ' में दे दिये गये। कई गाँवों में काफी दमन हुआ अत : किसानों को बाध्य होकर जयपुर जाकर सीकर ठिकाने के अत्याचारों के खिलाफ करनी पड़ी। जयपुर सरकार ने सीकर ठिकाने को किसानों के साथ मालगुजारी निश्चत करने व ज्यादा लगान न लेने का निर्देश दिया परन्तु समस्या का समाधान नहीं हुआ। अगले वर्ष ठिकाने द्वारा किसानों के साथ शक्ति करने पर किसान पुन : जयपुर गये और स्टेट के सभापति के सामने भूमि की किस्म व जलवायु के अनुसार भू–राजस्व निश्चित, लाग बाग गैर कानूनी घोषित करने, बेगार पूर्णतया समाप्त करने तथा काठ की सजा हटा देने पर जोर दिया। किसानों की उचित माँगों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। तब किसानों ने राजस्थान सेवा संघ, अजमेर के मंत्री रामनारायण चौधरी को मार्गदर्शन के लिए आमन्त्रित किया। चौधरी ने जयपुर व सीकर के अधिकारियों से किसानों की तकलीफें दूर करने हेतु काफी प्रयास किया, परन्तु कोई नतीजा नहीं निकला। तब उन्होंने व हरिजी ब्रह्मचारी ने सीकर ठिकाने के अनेक गाँवों का दौरा कर किसानों को संगठित करने का प्रयास किया। सीकर ठिकाने के निवेदन पर कि ये दोनों किसानों को भड़का रहे है, जयपुर सरकार ने रामनारायण चौधरी को जयपुर राज्य से निर्वासित कर दिया और हीरजी ब्रह्मचारी को तत्काल सीकर इलाके से चले जाने और भविष्य में सीकर इलाके में प्रवेश न करने को कहा गया। रामनारायण चौधरी द्वारा सम्पादित अखबार 'तरुण राजस्थान ' जिसमें किसानों की तकलीफों की खबरें छपती थी, के भी सीकर इलाके सहित जयपुर राज्य में आने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। उधर सीकर ठिकाने ने एक कमीशन नियुक्त किया जिसने किसानों से लिखवा लिया कि वे पुराने हिसाब से लगान देते रहेंगे। किसानों ने कोई दूसरा रास्ता नजर न आता देख इस समय शांत रहना ही उचित समझा।

सीकर के किसानों से प्रभावित होकर पंचपाना शेखावाटी के किसान भी जयपुर गये और वहाँ नवलगढ़, मण्डावा, बिसाऊ, मलसीसर व निराधनु के ठाकुरों के अत्याचार व ऊंचा लगान लगाने की शिकायतें की, परन्तु कोई राहत नहीं मिली। ठिकानों के अत्याचारों से किसान संगठित होने लगे। इसी समय अक्टूबर, 1925 ई. में पुष्कर में अखिल भारतीय जाट महासभा का वार्षिक जलसा भरतपुर के जाट महाराजा के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। जिसमें शेखावाटी से बड़ी संख्या में जाट किसान सम्मिलित हुए। इस जलसे से वे नई प्रेरणा लेकर वापिस आये और उन्होंने 5 नवम्बर, 1925 ई. को बगड़ में 'जाट सभा' कायम की। रामसिंह कंवरपुरा, हासन सांगासी, रतनसिंह पिलानी ने शेखावाटी का दौरा कर किसानों को संगठित करने का प्रयास किया, परन्तु उन्हें नाजिम एवं पुलिस अधीक्षक शेखावाटी द्वारा दबा दिया गया। साथ ही

उन्होंने किसानों की तकलीफों की रिपोर्ट भी जयपुर सरकार को भेजी जिसमें लगान लगातार बढ़ाने, लागबाग व बेगार लेने, भूमि से किसानों को बेदखल करने आदि की शिकायतें थी। जय सरकार ने शेखावाटी के ठाकुरों को सलाह दी कि वे किसानों के साथ सहानुभूति का व्यवहार करें, उनकी हर शिकायत को दूर करें और उनके साथ आपसी समझौते कर ले। अत: ठिकानों द्वारा उपज का आधा भाग देने की विज्ञप्तियाँ जारी कर किसानों से कहा गया कि वे इसे स्वीकार करें अन्यथा जमीनें न जोते। अत: किसानों के लिए शांत होने के अलावा कोई चारा नहीं था। किसानों में संगठन न होने, उचित नेतृत्व व मार्गदर्शन न मिलने तथा लिखित में विकल्प ले लेने की वजह से उन्हें चुप हो जाना पड़ा और इस प्रकार शेखावाटी में 1923 ई. से किसानों में जो ज्वार उठा था, शांत हो गया। परन्तु इसमें कोई दो राय नहीं कि इस समय के दौरान शेखावाटी के किसानों ने नींद से जागकर अंगड़ाई ली थी और हल्के से संगठित होकर शेखावाटी के जागीरदारों में एक भय पैदा किया था और यह आभास करा दिया था कि अगर उन्होंने किसानों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया तो वे गंभीर संकट में पड़ सकते है।

16.6 शेखावाटी में किसान जागृति के विभिन्न प्रयास व किसान पंचायतों का गठन (1926–1934)

शेखावाटी में हल्की सी इस जागृति ने यह स्थिति पैदा कर दी थी कि किसान अब ज्यादतियों का विरोध करने लगे थे। इसी समय शेखावाटी के जागीरदारों ने जनता पर एक नई जकात लगाई। मण्डावा के सेठ देवींबक्स सर्राफ ने इसके खिलाफ सिर उठाया और कानूनी लड़ाई के बाद वह इस जकात को समाप्त कराने में सफल हुए। इस घटना से सेठ देवींबक्स का किसानों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। अब उन्होंने न केवल किसानों में जागृति पैदा करनी शुरू की बल्कि उनमें आर्य समाज के माध्यम से अनेक सामाजिक सुधार भी किये। उन्होंने मण्डावा में आर्य समाज का अभूतपूर्व जलसा किया जिसमें हरलाल सिंह द्वारा ताला तोड़कर मन्दिर का जो उद्घाटन हुआ, वह शेखावाटी इलाके में अभूतपूर्व घटना थी। इससे जनता में बड़ा जोश पैदा हुआ। सेठजी के आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं ने गाँव व ढाणियों तक सम्पर्क करके लोगों में खूब चेतना पैदा की। इसी का परिणाम था कि 1930 ई में “खण्डेला वाटी जाट पंचायत" स्थापित हुई, जिसने किसानों में शिक्षा प्रचार व समाज सुधार का कार्य तेजी से किया। इसी दौरान 1931 ई. में धौलपुर के महाराजा उदयभानसिंह के सभापतित्व में अखिल भारतीय जाट महासभा का एक जलसा दिल्ली में हुआ, जिसमे शेखावाटी से बड़ी संख्या में जाट नेता वहाँ पहुँचे। वही पर "राजस्थान प्रादेशिक जाट क्षत्रिय सभा” की नींव डाली गई जिसके अध्यक्ष रतनसिंह, भरतपुर व मंत्री ठाकुर देशराज नियुक्त हुए। यह शेखावाटी का सौभाग्य था कि इस समय उन्हें ठाकुर देशराज जैसे योज्ञ व्यक्ति का नेतृत्व उन्हें प्राप्त हुआ। उन्हीं के प्रयत्न से 1931 ई. में "शेखावाटी किसान जाट पंचायत" झुंझुनूं में कायम हुई, जिसका उद्देश्य किसानों में बौद्धिक उन्नति करना व उन्हें जमीनों के हक हकूक दिलाना था। उन्हीं के प्रयास से अक्टूबर, 1931 ई. में अखिल भारतीय जाट महासभा का एक डेपूटेशन शेखावाटी के विपिन भागों में घूमा जिसने इस इलाके में चेतना व जागृति का एक भूचाल पैदा किया। फरवरी, 1932 ई. में

जाट महासभा का 23वां वार्षिक जलसा झुंझुनूं में आयोजित किया गया जिसमें करीब 60 हजार स्त्री–पुरुषों ने भाग लिया। यद्यपि यह उत्सव जाटों का था, किन्तु झुंझुनूं के प्रत्येक नागरिक ने इसका स्वागत किया था और यह जान पड़ता था कि यह उत्सव किसी एक जाति का नहीं वरन् इन तमाम लोगों का था जो सामंतशाही जुल्मों की चक्की में पिस रहे थे। इस उत्सव में ठाकुर ने शेखावाटी में नया जीवन पैदा करने के लिए लोगों के नाम, पहनावे और तक में परिवर्तन करने हेतु आवाज उठाई। उन्होंने कुछ जाट नेताओं को उपाधियाँ दी हरलाल को सरदार हरलालसिंह, रामसिंह को ठाकुर रामसिंह, पनेलाल को कुंवर पनेसिंह, आदि। उन्होंने जाटों के बच्चों के नाम के पीछे सिंह लगाने पर भी जोर दिया। झुंझुनूं का जलसा शेखावाटी की जागृति का प्रथम सुनहरा प्रभात था। जलसे के बाद ही जाटों में प्रचार हेतु झुंझुनूं में एक "जाट बोर्डिंग हाउस" की नींव रखी गई। बाद में यह संस्था "विद्याथी भवन, झुंझुनूं" के नाम से प्रसिद्ध हुई और किसान आन्दोलन की गतिविधियों का केन्द्र बनी।

उस दौरान किसानों का छुटपुट विरोध अपने जागीरदारों से बना से रहा। तभी सीकर में "जाट प्रजापति महायज्ञ" करने का विचार किया गया। किन्तु उससे पहले 1933 ई. में एक जलसा खण्डेलावाटी के गढ़वाल की ढाणी में चौधरी लादूराम रानीगंज के सभापतित्व में हो चुका था जिससे खण्डेलावाटी में काफी जागृति आई थी। इसी समय पिलानी में भी चौधरी सर छोटूराम की अध्यक्षता में "अखिल भारतीय जाट विद्यार्थी परिषद" का अधिवेशन आयोजित किया गया था जिससे शेखावाटी के जाट विद्यार्थियों में भी एक नई प्रेरणा व स्फूर्ति पैदा हुई थी। यज्ञ के लिए घी व पैसा इकट्ठा करने के लिए कई डेपूटेशन बनाये गये। उपदेशकों ने यह के लिए खूब प्रचार किया।

ठाकुर देशराज जो की इसके रचयिता थे, एक सप्ताह पहले ही आ गये थे। सर छोटूराम चौधरी यज्ञ को सफल बनाने के लिए दो दफा सीकर पधारे। के गाँवों ने दिल खोलकर इस यज्ञ के लिए घी व पैसा दिया। बसन्त में 20 जनवरी 1934 ई. को यह यज्ञ प्रारम्भ हुआ और अगले दस दिनों तक चला। इसमें करीब लाख स्त्री–पुरुषों ने भाग लिया। 20वीं सदी में जाटों का यह सर्वोपरि यज्ञ था। इस यह शेखावाटी के जाटों के पुराने समस्त हीन संस्कारों को समाप्त कर उन्हें एक वीर सैनिक के रूप में प्रकट किया, जिन्हें बाद में सीकर ही क्या सारे जयपुर की सम्मिलित शक्ति भी नहीं दबा सकी। यज्ञ के दौरान ही "सीकरवाटी किसान जाट पंचायत" की स्थापना कर दी गई। सीकर ठिकाने के किसान आन्दोलन के इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। इसने एक नवयुग के आगमन की घोषणा की। इस घटना ने सीकर ठिकाने को यह बता दिया कि सीकर के किसान अब अधिक समय तक शोषण को बर्दाश्त नहीं करेंगे और जरूरत हुई तो वे इस पंचायत के मार्फत शोषण व अन्याय का जबरदस्त विरोध करेगें। यह सीकर के किसानों का पहला संगठन था जिसके झण्डे के नीचे वे संगठित रूप से एक हुए थे जो अभी तक बिखरे हुए थे।

इस प्रकार 1926 ई. से 1934 ई. के बीच की महत्वपूर्ण घटनाओं ने शेखावाटी के किसानों के हौंसले बुलन्द किये थे और उनमें ठिकानों से संघर्ष करने की हिम्मत पैदा की थी। 1934 ई. तक खण्डेलावाटी जाट पंचायत, शेखावाटी किसान जाट पंचायत और सीकरवाटी जाट

पंचायत बन चुकी थी और शेखावाटी के किसान इन पंचायतों के अधीन एक संगठित शक्ति के रूप में बंध चुके थे। ऐसी स्थिति में थोड़े समय बाद ही, जब ठिकानों की ओर से किसानों पर ज्यादतियाँ शुरू हुई, किसानों का आन्दोलन शुरू हो गया।

16.7 शेखावाटी में किसान आन्दोलन व किसानों की विजय (1934–1936)

सीकर ठिकाने ने यज्ञ की सफलता से नाराज होकर उनके प्रमुख कार्यकर्ता कटराथल के गोरूसिंह, मास्टर चन्द्रभानसिंह आदि को कुछ आदमियों के साथ गिरफ्तार कर लिया तथा लगान बकाया के नाम पर जमीन से बेदखली, लगान की बढ़ोतरी, हवेलियों के मोहराने आदि की वसूली के नाम पर दमन का रुख अख्तियार कर लिया। सीकर ठिकाने के किसानों के लिए यह चुनौती थी। अत: 200 किसानों का एक दल जयपुर गया और जयपुर सरकार से माँग की कि भूमि का लगान निश्चित किया जाए, लागबागों को गैर–कानूनी घोषित किया जाए, बेगार व काठ की सजा समाप्त की जाए, चुंगीकर को हटाया जाए, ठिकाना अपनी आमदनी का 1/8 हिस्सा शिक्षा पर खर्च करे तथा मास्टर चन्द्रभानसिंह को बिना शर्त रिहा किया जाए।

सीकर ठिकाने को मालूम होने पर कि किसान उसके खिलाफ जयपुर गये है, और भी चिड़ गया और बड़ी संख्या में किसानों को गिरफ्तार कर उनके साथ ज्यादतियाँ की। इस पर सीकरवाटी किसान जाट पंचायत ने यह निर्णय लिया कि ठिकाने को लगान न दिया जाय। नतीजा यह हुआ कि मार्च, 1934 ई. से ही किसानों ने लगान देना बन्द कर दिया। ठिकाना दमन पर उतर आया। दमन सीकर तहसील से प्रारम्भ हुआ और सारे ठिकाने में फैल गया। शायद ही कोई गाँव ऐसा बचा था, जहाँ आतंक न फैलाया हो तथा लूटपाट व मारपीट न हुई हो। सीहोट ठाकुर ने तो स्त्रियों तक से मारपीट करने में संकोच नहीं किया। किसान पंचायत ने कटराथल में किसानों की भारी मीटिंग कर ठिकाने की आतंकवादी घटनाओं पर भारी रोष प्रकट किया। इधर 25 अप्रैल, 1934 ई. को स्त्रियों की भी एक वृहत् सभा अलग से हुई जिसमें सीहोट ठाकुर को दण्ड देने, किसानों की माँगें जल्दी पूरी करने व जयपुर सरकार की देख–रेख में भूमि बन्दोबस्त चालू कराने की माँग की गई।

सीकर ठिकाना, जितना ही बर्बरता पर उतरा था, उतना ही किसानों का पक्ष प्रबल हुआ। 21 मई 1934 ई. को 200 किसानों का एक प्रतिनिधि मण्डल फिर प्रेसीन्डेन्ट, स्टेट कौंसिल, जयपुर से मिला और उनकी शिकायतें दूर करने व उनके साथ न्याय करने की प्रार्थना की। अत: जयपुर सरकार ने ए.डब्लूयु. टी. वेब को सीनियर ऑफिसर सीकर के पद पर नियुक्त कर आदेश दिया कि वे किसानों की शिकायतों पर तत्काल ध्यान दें। मिस्टर वेब ने पद ग्रहण करने के बाद 15 जुलाई 1934 ई. को किसानों को कुछ रियायतें देने की घोषणा की, परन्तु किसान उससे सन्तुष्ट नहीं हुए। वे बड़ी संख्या सीकर में एकत्रित होने लगे। अत: वेब ने किसान प्रतिनिधियों से फिर बात की अन्त में 3 अगस्त, 1934 ई. को किसानों व ठिकाने के बीच समझौता हो गया जिसमें 12 लागे हटा दी गई; जमीनों पर किसानों के मौरूसी हक मान लिये

गये; सीकर ठिकाने में अंदरूनी जकात हटा दी गई; भविष्य में लगान की दर तय करते समय सीकरवाटी जाट पंचायत से सलाह मशविरा करना तय किया; बेगार पूर्णरूप से समाप्त कर दी गई; पाँच प्राथमिक जाट पंचायत द्वारा प्रस्तावित स्थानों पर खोली जाना तय हुआ; गोचर भूमि का सबको करने का अधिकार मान लिया; एक चलता फिरता अस्पताल चालू करना तय तथा जाटों को भी सार्वजनिक नौकरियों में समान अवसर दिये जाने की बात मान गई।

किसान इस समझौते से सन्तुष्ट हो गये परन्तु जिसके पास होती है, वो इतना जल्दी आसानी से थोड़ा ही झुकता है। सीकर ठिकाने ने किसान पंचायत से राय लिये बिना ही अगली फसल का लगान ज्यादा तय कर दिया। नतीजा यह हुआ कि आन्दोलन फिर शुरू हो गया। किसान फिर संगठित होने लगे और लगान की वसूली बिल्कुल ही बन्द हो गई। इस पर सीकर ठिकाने द्वारा निवेदन करने पर जयपुर सरकार ने 2 दिसम्बर, 1934 ई. को एक अध्यादेश जारी किया जिसमें लगान वसूली मुल्तवीं के लिए प्रोत्साहित करते पाये जाने वाले को स्टेट से बाहर निकालने, उसे 6 माह तक कैद व जुर्माना की सजा देने तथा अपराध नाकाबिल जमानत तथा हेड कान्स्टेबल तक जुर्म तय करने का अधिकार दिया गया। अब इस अध्यादेश के अन्तर्गत लगान न देने के लिए भड़काने के आरोप में गिरफ्तारियाँ शुरू हो गई तथा ठिकाने के अधिकारी व लगान वसूली में किसानों पर ज्यादतियाँ करने लगे। किसान पीटे गये व उनको बेइज्जत किया गया। लेकिन इन सबके बावजूद भी राजस्व वसूली नहीं हुई। अत: ठिकाने को बाध्य होकर 10 मार्च, 1935 ई. को फिर किसान प्रतिनिधियों से समझौता पड़ा जिसमें लगान में छूट देने, भूमि बन्दोबस्त हेतु यूरोपीय अनुभवीं सेटलमेन्ट ऑफिसर करने, जाटों को हाथी की सवारी करने, 7 बीघा भूमि जाट बोर्डिंग हाउस बनाने हेतु; 6 जाट अफसरों को नियुक्त करने तथा जेलों में बंदी किसानों को छोड़ने का निर्णय हुआ।

यह समझौता लागू होता, उससे पहले ही खूड़ी गाँव में जाट लड़की के विवाह पर वर द्वारा घोड़ी पर बैठकर तोरण मारने के मामले को लेकर जाट राजपूतों में विवाद छिड़ गया। जाट व राजपूत बड़ी संख्या में एकत्रित हो गये और स्थिति गंभीर हो गई। अत: सीनियर ऑफिसर वेब को जाकर उन्हें बिखर जाने का आदेश देना पड़ा। राजपूत तो बिखर गये परन्तु जाटों द्वारा ऐसा न करने पर लाठीचार्ज हुआ जिसमें 2 आदमी मारे गये व सौ के लगभग घायल हुए। इसके बाद सीकर के अधिकारियों ने जाटों पर होने वाले अन्याय की ओर से बिल्कुल ही आँखें मूंद ली। सीकर में जो भी जाट आया पुलिस वालों ने उसे पकड़ा व पीटा। कई स्थानों पर जाटों को गाँवों में भी पीटा गया। सरकार ने भी 10 अप्रैल 1935 ई. को दो आदेश जारी किये जिसमें जाटों के बाहरी नेताओं को जयपुर राज्य से निर्वासित करने तथा सीकरवाटी जाट पंचायत और किसान सभा को अवैधानिक संस्था घोषित कर इसमें भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगा।

अब किसानों से जबरदस्ती लगान वसूल करने का अभियान किया। उधर जाट भी संगठित होकर गाँवों में सामूहिक विरोध करने लगे। कूदन गाँव में जब जाटों ने विरोध किया तो पुलिस ने गोलियाँ चलाई जिसमें चार जाट मारे गये, तीन गंभीर व ग्यारह साधारण घायल हुए।

मिस्टर वेब ने आकर गाँव में आतंक फैला दिया और लूट की इजाजत दे दी। कूदन, गोठडा, पलथाना, भैरोंपुरा, कनलऊ, जेठवा, नाऊ, राजास, कोरू, कटराथल आदि गाँवों में लगान वसूली के नाम से भारी तबाही मचाई। अनेक घरों को लूटा गया तथा बहुत सी वस्तुऐं नष्ट कर दी गई। स्त्रियों तक को बेइज्जत किया गया और जबरदस्ती उनके गहने उतार लिये गये। कुछ गाँवों में तो रुपये और गहने प्राप्त करने हेतु मकानों के फर्श तक खोद डाले। किसानों द्वारा चलाई जाने वाली स्कूलों को बन्द करवा दिया। जो किसान डर के मारे घरों से भाग गये थे, उनकी सम्पति और ऊँटों को सस्ते दामों में नीलाम कर दिया। सीकर ठिकाने में एक तरह से आतंक का राज कायम कर मार्शल लॉ की सी स्थिति पैदा कर दी।

इन अत्याचारों की चर्चा समाचार पत्रों के माध्यम से सारे भारत में फैल गई। जगह–जगह सभाऐं आयोजित कर किसानों पर की गई अमानुषिक और बर्बरतापूर्ण ज्यादतियों की निन्दा की गई। अखिल भारतीय जाट महासभा का एक डेपूटेशन भी जयपुर सरकार से मिला, परन्तु कोई नतीजा नहीं निकला। तब यह तय किया गया कि सीकर के गाँवों में दमन की चक्की में पिसकर मरने से तो अच्छा है कि जयपुर में किसान सत्याग्रह करें। यह समाचार सुनकर जयपुर सरकार की हवा काफूर हो गई। उसने सीकर के मामले में फिर हस्तक्षेप किया जिसके अनुसार तमाम गिरफ्तार हुए किसानों को रिहा करने, 1932 ई. तक बकाया लगान माफ करने, भूमि बन्दोबस्त शुरू करने, गाँवों में पटवारी और अनुभवीं तहसीलदार नियुक्त करने, सीकर प्रशासन का पुनर्गठन करने, जाटों पर ज्यादतियाँ करने वाले मलिक मोहम्मद हुसैन को सुपरिन्टेन्डेट ऑफ पुलिस, सीकर के पद से हटाने तथा भूमि बन्दोबस्त न होने तक भू–राजस्व 1/2 के स्थान पर 2/5 भाग लेना तय किया गया। इस प्रकार सीकर के किसान आन्दोलन का पहला अध्याय भारी सफलता के साथ समाप्त हुआ।

सीकर के साथ ही पंचपाना शेखावाटी में भी किसान आन्दोलन शुरू हो गया था। वहाँ भी जागीरदारों की ओर से किसानों पर ज्यादतियों शुरू हो गई थी। 16 मई, 1934 को बलरिया (हीरवा) के ठाकुर कल्याण सिंह ने हनुमानपुरा को जला दिया था जिसमें 23 घर जलकर राख हो गये और हजारों रुपयों का नुकसान हुआ तथा दो गायें, कई भेड़ व बकरियाँ भी जल गई। इसी के कुछ समय बाद 21 जून, 1934 ई. को ढूढलोद ठाकुर के भाई ईश्वरी सिंह ने जयसिंहपुरा में निहत्थे खेतों में काम करते हुए किसानों पर गोलियाँ चलवा दी जिसमें टीकूराम मारा गया तथा मुन्ना, दूल्हा, किसना बुरी तरह घायल हुए। 8–9 स्त्रियों और लड़कियों के भी छरी व भालों से चोंटे आई। इस हत्याकाण्ड की सब जगह घोर निन्दा हुई। राजस्थान के विभिन्न स्थानों पर 21 जुलाई को 'जयसिंहपुरा गोलीकाण्ड दिवस'' मनाया गया जिसमें जयपुर नरेश से हत्यारों को गिरफ्तार करके उचित दण्ड देने की प्रार्थना की गई। शेखावाटी के जाट नेताओं ने इस हत्याकाण्ड के खिलाफ मुकदमा लड़कर जागीरदार व उनके आदमियों को 1–1/2 वर्ष से लेकर 20 वर्ष तक सजा दिलाने में सफलता प्राप्त की।

अब शेखावाटी किसान पंचायत ने यह तय किया कि लगान में कमी न करने पर ठिकानेदारों को लगान न दिया जाय तथा जो किसान जाट लगान दे उसे जातिच्युत कर दिया

जाय। इस पर किसानों ने लगान देना बन्द कर दिया और एक तरह से शेखावाटी में लगानबन्दी आन्दोलन शुरू हो गया। नतीजा यह हुआ कि किसानों व ठाकूरों के बीच संघर्ष प्रतिदिन की घटनाऐं हो गई। ऐसी स्थिति में पंचपाना सरदारों का एक प्रतिनिधि मण्डल 1 अक्टूबर, 1934 ई. को जयपुर सरकार से मिला और जाट आन्दोलन को रोकने हेतु कानून बनाने की माँग की। तब 125 जाट किसानों का भी एक प्रतिनिधि मण्डल जयपुर गया और सरकार को अपनी शिकायतों का प्रतिवेदन पेश किया। नतीजा भी नहीं निकला उल्टे जयपुर जाकर शिकायतें पेश करने तथा लगान रोक देने से के ठाकुरों का दृष्टिकोण किसानों के प्रति हिंसात्मक हो गया। किसानों पर हमले करना, लूटमार करना, धमकियां देना, झूठे मुकदमें बनाना जैसी बाते शेखावाटी में आम बात हो गई। जयपुर सरकार ने स्थिति की गंभीरता को देखकर किसानों व ठाकुरों के प्रतिनिधियों को जयपुर बुलाया और विचार–विमर्श के बाद एक समझौता करा दिया जिसमें पिछले साल के राजस्व में चार आना प्रति रुपया की छूट देने पर लगान अदा करने तथा बाकी शिकायतों की जाँच हेतु एक कमीशन नियुक्त करना तय हुआ। इसके साथ ही 24 दिसम्बर, 1934 ई. को जयपुर सरकार ने लगान की अदायगी न करने के लिये प्रोत्साहन देने के खिलाफ अध्यादेश जारी किया जिसमें प्रोत्साहन देने वाले व्यक्ति को गिरफ्तार कर उसे 6 माह की सजा व जुर्माना देने का प्रावधान किया गया।

चूंकि ठिकानेदार लगान प्राप्ति की रसीदें नहीं देते थे। अत: उन्होने पिछले साल से लगान ज्यादा बढ़ाकर उस पर चार आना छूट देकर लगान वसूल करने लगे। इसके साथ ही किसान नेताओं पर लगान न देने या भड़काने का आरोप लगाकर करवाने लगे। बड़ी संख्या में गिरफ्तारियाँ हुई। इस पर 27 फरवरी, 1935 ई. को किसानों का एक प्रतिनिधिमण्डल जयपुर सरकार से मिला और किसानों पर होने ज्यादतियों की जाँच की माँग की तथा अपनी माँगों का दुबारा स्मरण–पत्र पेश किया जयपुर सरकार ने अब ठिकानेदारों को स्पष्ट रूप से बता दिया कि अगर जल्दी ही उन्होंने अपनी रियाया से समझौता नहीं किया तो उन्हें उनके अधिकारों से वंचित किया जा सकता है। अत: सारी परिस्थितियों को देखते हुए ठिकानेदार इस बात पर राजी हो गये समस्या के स्थायी समाधान हेतु भूमि का बन्दोबस्त करा दिया जाय। जब तक भूमि बन्दोबस्त न हो, तब तक के लिए लगान वसूली की अन्तरिम व्यवस्था कर दी, जिसके अन्तर्गत ठिकानेदार किसानों के साथ आपसी समझौता द्वारा लगान तय कर ले। समझौता न होने की स्थिति में दोनों पार्टियाँ नाजिम, दीवान और अन्त में रेवेन्यू मिनिस्टर के यहाँ अपील कर है। जयपुर सरकार ने शेखावाटी में भूमि बन्दोबस्त शुरू करने का आदेश दे दिया। इस प्रकार शेखावाटी में भूमि बन्दोबस्त शुरू करवाने के साथ ही शेखावाटी के किसान आन्दोलन का एक अध्याय पूरी सफलता के साथ समाप्त हुआ। यद्यपि 1934 ई. से 1936 तक के इन तीन वर्षों के लम्बे संघर्ष में किसानों को घोर संकट के दिन देखने पड़े किन्तु इस संघर्ष में उनका ओज निखरा और तपस्या पूर्णता के निकट पहुँची। इस आन्दोलन का नतीजा यह निकला कि शेखावाटी में भूमि बन्दोबस्त शुरू होने के साथ किसानों पर वाजिब लगान लगने लगा और ठिकानेदारों द्वारा जो मनमाना भूमि कर तथा लागबागें वसूल थी उससे किसानों को मुक्ति मिली।

16.8 शेखावाटी में भूमि बन्दोबस्त और जयपुर राज्य प्रजामण्डल के अधीन किसान आन्दोलन (1936–1946)

शेखावाटी में भूमि बन्दोबस्त शुरू होने के साथ ही ठिकानेदार बन्दोबस्त के कागजों में अपने अनुकूल प्रविष्टियाँ कराने लगे जिससे जमीन पर किसान के अधिकार नहीं के बराबर भी नहीं रहे। किसान प्रतिनिधियों ने जयपुर सरकार से शिकायत की कि सेटलमेन्ट के कागजों में इन्द्राज सिर्फ ठिकाना आदमियों के निर्देशों के अनुसार ही किया जा रहा है, जिससे जोहड़, पड़त भूमि, पेड़ आदि पर ठिकानों का अधिकार माना जा रहा है। अत : इन बातों पर ध्यान देकर किसानों के हित सुरक्षित रखे जायें। इसी बीच 1938 ई. में सीकर राव राजा व जयपुर सरकार के बीच विवाद छिड़ गया जिसमें जाट नेताओं ने सीकर राव राजा का साथ न देकर जयपुर सरकार का साथ दिया और जयपुर फौज के लिए खाद्य सामग्री की व्यवस्था की। इससे किसानों के प्रति जयपुर सरकार का दृष्टिकोण उदार बना। उसने सीकर ठिकाने के खालसा गाँवों में 1941 ई. में खतौनी पर्चे बंटवा दिये जिसमें लगान की पुरानी बकाया सब माफ कर दी गई और भूमि पर किसानों के हक मानते हुए भूमि की किस्म के अनुसार वाजिब लगान तय कर दिया गया। इससे सीकर ठिकाने के किसानों की समस्या लगभग समाप्त हो गई, परन्तु पंचपाना शेखावाटी के किसानों की समस्या और उलझ गई जबकि उनके नेताओं ने जयपुर राज्य प्रजा मण्डल के साथ मिलना तय कर लिया और जयपुर प्रजा मण्डल के अध्यक्ष जमनालाल बजाज द्वारा जयपुर राज्य में प्रवेश पर लगे प्रतिबन्ध को तोड़कर राज्य में प्रवेश करने पर गिरफ्तार कर लेने पर सत्याग्रह में भाग लिया। झुंझुनूं सत्याग्रह का प्रमुख केन्द्र बना, जहाँ सत्याग्रह में भाग लेने वाले किसान स्त्री–पुरुषों पर खूब अत्याचार हुआ। इसके विरोध में 1 मार्च, 1939 ई. को 'किसान दिवस मनाया गया। अब जयपुर सरकार ने 'डिफेन्स ऑफ इण्डिया एक्ट' के अन्तर्गत शेखावाटी जाट पंचायत के नेताओं को गिरफ्तार करना शुरू कर दिया। 1938–39 ई में शेखावाटी में भीषण अकाल की स्थिति रही, जिससे किसान बिल्कुल तबाह हो गये। जयपुर प्रजा मण्डल ने किसानों की समस्या हेतु सरदार हरलालसिंह के संयोजकत्व में 'किसान उप समिति' का गठन किया, जिसने शेखावाटी में धीमी गति से चल रहे भूमि बन्दोबस्त पर असंतोष जाहिर किया। इस पर सरकार ने 1942 ई. में बन्दोबस्त की खतौनियाँ किसानों में वितरित करवाई खतौनियों को देखते ही किसानों का संशय कि बन्दोबस्त ठिकानों के पक्ष में हुआ है, सही साबित हुआ और उन्होंने खतौनियाँ नहीं लेने का निर्णय किया। अत: खतौनियाँ जयपुर सरकार को वापिस लौटाई जाने लगी। इस पर सरकार ने ऊँची लगान व लागबागों के बारे में किसानों के असन्तोष के औचित्य को मानते हुए 11 दिसम्बर, 1942 ई. को किसानों को निम्न रियायतें दी –

1 जमीन के लगान में 6 ¼ 0/0 यानि एक आना प्रति रुपया की कमी की।

2 खूंटाबन्दी और पानचराई की लागे हटा दी गई।

3 मलबा लाग गँवाई खर्च हेतु होगी और उस पर ठिकाना का अधिकार समाप्त कर दिया गया।

4 पटवार फण्ड दो पैसा प्रति रुपया वसूल होगा।

5 जोहड़ व गोचर भूमि सार्वजनिक कर दी गई।

शेखावाटी के ठिकानेदार व भूमियों ने इन रियायतों को अपने विरूद्ध समझा और उनका विरोध करते हुए सेटलमेन्ट के खिलाफ आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। अब वे खतौनियों के अनुसार लगान न लेकर तथा इस आदेश की अवहेलना करते हुए किसानों को परेशान करने लगे और मनमाना लगान वसूल करने के लिए बल प्रदर्शन करने लगे तथा किसानों को बेदखल कर खुदकाश्त के नाम पर जमीनें रखने लगे। ठिकानेदारों व किसानों में कई जगहों पर झगड़े भी हुए। अत: जयपुर सरकार ने $6^{1/40/0}$ के स्थान पर $3^{1/80/0}$ यानि आधा आना प्रति रुपया की छूट का आदेश निकालकर ठिकानेदारों व भूमियों को सन्तुष्ट का प्रयास किया, परन्तु उन्होंने इसे सरकार की कमजोरी समझकर किसानों से मनमाना लगान वसूल करने हेतु ज्यादतियाँ करना बराबर जारी रखा। उन्होंने जगह–जगह मीटिंग करके सरकार से शेखावाटी में बन्दोबस्त समाप्त करने तथा 500 बीघा जमीन खुदकाश्त हेतु रखने की माँग की। इधर जयपुर प्रजा मण्डल के नेतृत्व में किसानों के भी बड़े–बड़े जुलूस निकलने लगे। दोनों ओर तनाव की स्थिति बनती जा रही थी। तब सरकार ने शेखावाटी में निकालने निकालने, सभा करने आदि पर प्रतिबन्ध के साथ ही धारा 144 लागू कर दी। इसके साथ ही किसानों के साथ विश्वासघात करते हुए 8 जून, 1945 ई. को एक नया आदेश, जिसमें भूमि बन्दोबस्त को ही करीब–करीब समाप्त करते हुए 500 बीघा भूमि पर ठिकाने द्वारा खुद काश्त करने तथा पेड़ व जोहड़ों पर ठिकानों का अधिकार मानते हुए ठिकानोदारों को सन्तुष्ट करने का प्रयास किया। ठिकानेदार ऐसा चाहते ही थे। अत: अब वे 500 बीघा भूमि खुद काश्त के नाम पर किसानों को बेदखल करने लगे। परिणाम यह हुआ कि किसानों व भूमियों में लगान, बेदखली व पेड़ों के नाम पर खूनी संघर्ष शुरू हो गया। देवगाँव में पेड़ के मामले में 2 किसान मारे गये व 17 घायल हुए। इसी प्रकार की खिरोड़ में लगान के बांटे को लेकर हुई जिसमें 4 किसान मारे गये व 28 घायल हुये जिसमें 10 स्त्रियाँ थी। इस पर जयपुर प्रजा मण्डल ने यह तय किया कि जब तक सरकार इस विश्वासघाती आदेश को वापिस न ले तब तक लगान न दिया जाय। परिणाम यह हुआ कि लगान वसूल होना बिल्कुल बन्द हो गया और गाँव–गाँव में मीटिंगे होने लगी। इस पर सरकार ने किसान नेताओं को गिरफ्तार करना शुरू कर दिया और लगान वसूल करने का हर सम्भव प्रयास किया। पुलिस और ठिकानों के सशस्त्र प्रदर्शन तथा सुपरिन्टेंन्डेट ऑफ पुलिस, नाजिम व तहसीलदार के दौरों के बावजूद भी किसानों ने लगान नहीं दिया। तब बाध्य होकर जयपुर सरकार ने प्रजामण्डल के नेताओं से बातचीत की जिसमें पेड़ों पर किसानों के हक मानने, जोहड़ सार्वजनिक रूप से आम चराई के लिए खोलने, पक्के मकान बनाने हेतु मोहराने माफ करने, जेलों में बन्द लोग रिहा करने, जो लगान रुका हुआ है बिना किसी जुमनि–हर्जाने के अदा करने तथा बिना बन्दोबस्त के जो 46 गाँव रह गए थे, वहाँ बन्दोबस्त करना सरकार ने स्वीकार कर लिया। इससे किसानों की काफी माँगे स्वीकार कर लिये जाने पर 1946 ई. में जाकर पंचपाना शेखावाटी में, जहाँ बन्दोबस्त हो था, शांति स्थापित हुई।

16.9 शेखावाटी किसान आन्दोलन का उत्तरार्द्ध तथा जागीरदारी प्रथा की समाप्ति (1946–1952)

किसानों की समस्या अभी भी समाप्त नहीं हुई थी। अब उनकी समस्या बाकी बचे शेखावाटी के 46 गाँव तथा खानगी, बाढ़, माफी आदि में बची भूमि के बन्दोबस्त न होने की थी, जहाँ लगान ज्यादा व मनमाना वसूल होता था। उदयपुरवाटी के इन 46 गाँवों में अराजकता की सी स्थिति थी और स्थिति दिनों दिन बद से बदतर हो रही थी। तंग आकर किसान व प्रजामण्डल के नेता अपनी मीटिंगों में जागीरदारी व सामन्तशाही प्रथा का नाश हो के नारे लगाने लगे थे। उधर भूमियां लोग लगान वसूली में अपनी मनमानी कर रहे थे, क्योंकि उनके परिवार का भरण पोषण उनके अधीन एक–एक दो–दो कोठियों की जमीनों पर निर्भर था। फिर भूमियां लोगों ने देश की आजादी के बाद समझ लिया था कि सरकार किसानों के हित में कानून बनाकर उन्हें अपनी भूमि से बेदखल कर देगी। अत: वे अपनी–अपनी जमीनों से किसानों को हजारों की संख्या में बेदखल करने लगे। इस गम्भीर स्थिति को देखकर राजस्थान सरकार ने किसानों को संरक्षण देने के लिए जून, 1949 ई. में "काश्तकार संरक्षण अधिनियम, 1949" पारित किया जिसमें बेदखल हुए किसानों को उनकी जमीन वापिस दिलाने की व्यवस्था की गई। साथ ही भौमियों द्वारा लिये जाने वाले मनमाने लगान पर नियन्त्रण करने के लिए "राजस्थान उपज लगान नियमन अधिनियम, 1951" पारित किया। जिसमें यह व्यवस्था की गई थी कि जागीरदार उपज का 1/6 भाग लगान के रूप में अधिक से अधिक ले सकते थे।

जागीरदार व भौमियाँ लगान के 1/6 भाग को मानने के लिए तैयार नहीं थे। वे उपज का 1/2 भाग लेना चाहते थे। जबकि किसान सरकार द्वारा तय किये 1/6 भाग से अधिक देने को तैयार नहीं थे। अत: शेखावाटी में उदयपुरवाटी की स्थिति बहुत नाजुक व तनावपूर्ण हो गई। खलिहान रोक दिये गये। हर खलिहान पर एक युद्ध का सा दृश्य नजर आने लगा। सरकार के लिए एक गंभीर स्थिति बन गई थी। इस दौरान वकील करणीराम व रामदेवसिंह ने उदयपुरवाटी के किसानों का नेतृत्व किया। उन्होंने काश्तकारों की ओर से उस साल पैदावार का चौथाई हिस्सा लगान के रूप में देना स्वीकार कर लिया बशर्ते सरकारी अधिकारी मौके पर जाकर फसल का चौथा हिस्सा लगान के रूप में तुलवा दें व उसकी रसीद काश्तकारों को दिलवा दें। इस बात को भौमियों ने नहीं माना। उन्होंने करणीराम व रामदेवसिंह को अपना शत्रु माना और जब वे चंवरा में समझौता करवाने पहुँचे तो जागीरदारों के गुण्डों ने 13 मई, 1952 ई. को उन पर गोलियाँ चलाकर उन्हें वहीं मार डाला। यह जागीरदारों की तरफ से बड़ी भारी भूल थी। वस्तुत: ये गोलियाँ उन पर नहीं लगी थी बल्कि जागीरदारी सामन्ती व्यवस्था के पेट पर लगी थी। ऐसी स्थिति में राजस्थान सरकार ने 'राजस्थान लैण्ड रिफोर्म एण्ड रिजम्प्शन ऑफ जागीर एक्ट 1952' पास करके जागीरदारी व्यवस्था ही समाप्त कर दी तथा जागीरों को जज कर उनका मुआवजा दे दिया गया और इस प्रकार राजस्थान में 1954 से लेकर 1963 ई. तक पूरी तरह जागीरदारी व्यवस्था समाप्त हो गई। इसी बीच राजस्थान सरकार ने "राजस्थान टेनेन्सी एक्ट

1955" पास कर किसानों को खातेदारी अधिकार देकर किसान को जमीन का मालिक बना दिया। इस तरह से जागीरदारी प्रथा की समाप्ति के साथ ही शेखावाटी का यह किसान आन्दोलन पूरी सफलता के साथ समाप्त हुआ। जहाँ पहले किसान शेखावाटी के जागीरदारों के अत्याचारों से पीड़ित था। वह ही किसान अब स्वयं जमीन का मालिक था और हर तरह के अत्याचारों से मुक्त था।

16.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 शेखावाटी के किसान आंदोलन के प्रमुख कारण क्या थे?

2 1922 –1926 के दौरान शेखावाटी के किसान आन्दोलन के प्रेरक तत्वों की व्याख्या करते हुए इस काल के आन्दोलन की प्रमुख विशेषता बताइये।

3 शेखावाटी में किसान पंचायतों के गठन पर लेख लिखिये।

4 शेखावाटी किसान आन्दोलन में जयपुर राज्य प्रजामण्डल की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।

5 शेखावाटी किसान आन्दोलन के विभिन्न सोपानों के बारे में आप क्या जानते है?

16.11 संदर्भ ग्रन्थ

1 डॉ. पेमाराम : एग्रेरियन मूवमेंट इन राजस्थान

2 डॉ. बृज किशोर शर्मा : पीजेर मूवमेंटस इन राजस्थान (1920–1949)

3 डॉ. बृज किशोर शर्मा : सामंतवाद एवं किसान संघर्ष

4 डॉ. रामप्रसाद व्यास : राजस्थान का वृहत् इतिहास–2

5 डॉ. बृज किशोर शर्मा : आधुनिक राजस्थान का आर्थिक इतिहास (1818–1949)

इकाई - 17
श्री राम राजू का विद्रोह

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 आंध्र प्रदेश की जनजातियों की दशा
17.3 श्री राम राजू के नेतृत्व में पहाड़ी रेड्डियों के विद्रोह के पहले उनके द्वारा किये गये विद्रोह
17.4 श्री राम राजू का जीवन वृत
17.5 विद्रोह के कारण
17.6 विद्रोह की घटनायें
17.7 राजू की मृत्यु के बारे में विभिन्न मत
17.8 राजू की मौत पर जनता की प्रतिक्रिया
17.9 आन्दोलन का प्रभाव
17.10 आन्दोलन की असफलता के कारण
17.11 विद्रोह का स्वरूप
17.12 सारांश
17.13 अभ्यासार्थ प्रश्न
17.14 संदर्भ ग्रन्थ

17.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे –

- औपनिवेशिक काल में जनजाति समुदायों के प्रति विदेशी शासन की के मुख्य तत्व।
- उन्नीसवीं सदी में आंध्र प्रदेश में जनजाति समुदायों की दशा।
- 192 2–24 ईस्वी में राजू के विद्रोह के पहले आंध्र प्रदेश में पहाड़ी 'के विद्रोहों का विवरण।
- श्री राम राजू का जीवन वृत।
- विद्रोह के कारण व घटनायें।
- राजू की मृत्यु के बारे में विवाद तथा जनता की प्रतिक्रिया।
- आन्दोलन की असफलता के कारण तथा उसके प्रभाव।
- आन्दोलन के स्वरूप की विवेचना।

17.1 प्रस्तावना

प्राय: ऐतिहासिक युग से ही भारत के विभिन्न प्रदेशों के वनों तथा घनी पहाड़ियों में जनजातियाँ रहती है। हटन व कुछ अन्य अंग्रेज विद्वानों का यह मत सही है कि वे एकाकी जीवन व्यतीत करते थे। आर.एस. शर्मा के अनुसार प्राचीन काल में हिन्दू राजाओं ने जन–जाति क्षेत्रों में ब्राह्मणों व कुशल कारीगरों को इन क्षेत्रों में बसने के लिये प्रोत्साहित किया। व्यापार के

माध्यम से भी वनवासियों का सम्पर्क मैदानी इलाकों के निवासियों से हुआ। मध्यकालीन युग में इस प्रकार के सम्पर्क में वृद्धि हुई। आइने अकबरी के अनुसार मुगल सम्राटों व उनके अधिकारियों ने जन जाति क्षेत्रों में व्यापार व आवागमन की सुविधा के लिये सड़कें बनाई। इस समय तक भारत के अनेक प्रदेशों में जन–जातियों के छोटे राज्य स्थापित हो गये थे। ब्रिटिश काल में जन–जातियों के प्रति अपनाई गई नीतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विदेशी शासकों ने उनकी परम्पराओं, रीति–रिवाजों तथा हितों की अवहेलना की जिससे उनमें अंग्रेजों के प्रति विरोध की भावना बढ़ती गई तथा उन्होंने समय–समय पर विद्रोह किये।

आरम्भ में अंग्रेजों ने बंगाल सूबे में मुख्य रूप से निम्नांकित नीतियों का पालन किया:

1 जन जातीय क्षेत्रों में बड़ी संख्या में बाहर के निवासियों को कृषि व अन्य कार्यों के लिये बसाया।

2 इन क्षेत्रों में सेना के आवागमन हेतु तथा व्यापार की वृद्धि के लिये वनों को काट कर सड़कें बनाई।

3 सैनिक छावनियाँ व पुलिस चौकियाँ स्थापित की गईं।

4 कार्नवालिस के समय में स्थायी बन्दोबस्त लागू किया गया।

5 जनजातियों की परम्पराओं की अवहेलना करते हुए ब्रिटिश द्वारा पारित न्याय व्यवस्था को उनके क्षेत्रों में लागू किया गया।

6 'झुमटो' पद्धति के स्थान पर स्थायी रूप से कृषि करने के लिये उन्हें बाध्य किया गया।

7 आरम्भ से ही बंगाल में रहने वाली जनजातियों ने इन नीतियों का विरोध किया। उन्होंने ब्रिटिश सत्ता के विरूद्ध विद्रोह किया। इनमें हिंसा का प्रयोग किया गया। लेकिन ये विद्रोह नेतृत्वहीन और असंगठित होने के कारण अंग्रेजों की विशाल सैन्य शक्ति के सामने न टिक सके। 1832–33 ई. में बिहार के छोटा नागपुर क्षेत्र में भूमिज जनजाति के विद्रोह में पहली बार एक ऐसे नेता का आविर्भाव हुआ जिसने ब्रिटिश सत्ता का डट कर विरोध किया। लेकिन यह विद्रोह भी सख्ती के साथ दबा दिया गया। इस बार अंग्रेज प्रशासकों ने बिहार व बंगाल के जनजाति क्षेत्रों में शांति व्यवस्था बनाये रखने के लिये एक अंग्रेज अधिकारी को एजेण्ट नियुक्त किया। इस एजेण्ट को जनजातियों की समस्याओं का समाधान करने का भी निर्देश दिया गया। यद्यपि ब्रिटिश नौकरशाही के कारण यह व्यवस्था असफल रही किन्तु इसे भारत के कई अन्य प्रदेशों में भी लागू किया गया।

भूमिज विद्रोह के बाद जनजातियों के अनेक विद्रोह हुए। 1855–56 ईस्वी के संथाल विद्रोह में दोनों ओर से हिंसा का व्यापक सहारा लिया गया। 1895–1900 ईस्वी में बिरसा के नेतृत्व में मुंडाओं का विद्रोह भी भयंकर था। कुंवर सुरेश सिंह ने अपने शोध ग्रन्थ बिरसा मुंडा एण्ड हिज टाइम्स' में लिखा है कि बिरसा का आन्दोलन कृषि से सम्बन्धित समस्याओं को लेकर आरम्भ हुआ, तत्पश्चात् उसमें मुंडा जाति के पुन: उत्थान की भावना का समावेश हुआ तथा अंत में उसने राजनैतिक रूप धारण कर लिया तथा बिरसा का उद्देश्य ब्रिटिश सत्ता का उन्मूलन हो गया।

बीसवीं सदी के आरम्भ में भी भारत के कुछ प्रदेशों में जनजातियों के आन्दोलन हुए। इनका उद्देश्य अपनी जाति के प्राचीन गौरव को प्राप्त करना, सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में सुधार करना तथा सरकारी अधिकारियों, व्यापारियों, सूदखोरों व उनके क्षेत्रों में बाहर से आकर बसने वाले निवासियों द्वारा किये जाने वाले शोषण का अंत करना था। इन विरोध आन्दोलनों में भी हिंसा का आश्रय लिया गया। लेकिन भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी के प्रवेश ने जन–जातियों के कुछ विरोध आन्दोलनों की दिशा पलट दी। कुंवर सुरेश सिंह के अनुसार 1920 ईस्वी में भारत की जन जातियों के आन्दोलनों का एक नया युग आरम्भ होता है। वे इस प्रकार के आन्दोलनों को 'Tribal Sub–movements' की संज्ञा देते है तथा उन्हें स्वतंत्रता संघर्ष का एक अंग मानते है। असहयोग आन्दोलन के समय महात्मा गाँधी की विचारधारा से प्रेरित निम्नलिखित जन–जाति आन्दोलन हुए :–

1 छोटा नागपुर की ओरों (Oaron) जन–जाति में ताना भगत आन्दोलन को असहयोग आन्दोलन का एक अंग बना लिया गया।
2 राजस्थान के दक्षिण–पश्चिमी प्रदेशों तथा गुजरात के निकटवर्ती प्रदेशों में मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में 1922 के आरम्भ में भील कृषकों का आन्दोलन आरम्भ हुआ। मोतीलाल तेजावत महात्मा गाँधी की विचारधारा व कार्यक्रम से अत्यन्त प्रभावित था।
3 आंध्र प्रदेश में श्री राम राजू के नेतृत्व में पहाड़ी रेड्डी व कोया जन–जाति का आन्दोलन (1922–24)

17.2 आंध्र प्रदेश की जनजातियों की दशा

आंध्र प्रदेश में काफी संख्या में गौड, कोया, पहाड़ी रेड्डी, साबार,बगाता, बाल्मिकी, येरूकला और यनाडी आदि तैंतीस जन जातियाँ रहती है। 1765 ईस्वी में निजाम ने आंध्र प्रदेश के समुद्र तटीय प्रदेश, जिनमें वनवासी रहते है, अंग्रेजों को दिये थे। इस प्रदेश के कुछ जन–जाति क्षेत्रों में भी मद्रास सरकार ने ऐजेंसी व्यवस्था लागू की थी। 1961 ईस्वी की जनगणना के अनुसार ऐजेंसी व्यवस्था के अन्तर्गत 4,346 जन जाति थे जिनका क्षेत्रफल 29,683 मील था। पहाड़ी रेड्डी व कोया नामक जन–जाति मुख्य से गोदावरी नदी के दक्षिण में कोंडाल पर्वत की श्रृंखला के दोनों ओर रहती है। भारत की अन्य जन जातियों के समान पहाड़ी रेड्डी व कोया भी झुमटो पद्धति से खेती करते थे, पशुपालन करते थे, वनों की उपजों को एकत्रित करके स्वयं के काम में लाते थे तथा गाँवों में बेचते थे। वे आस–पास के प्रदेशों में चौकीदारी का कार्य भी करते थे। लेकिन उन्हें भी "झुमटो पद्धति" को त्याग कर स्थायी रूप से खेती करने के लिये विवश किया गया। अंग्रेजों द्वारा पारित वन कानूनों (Forest Laws) के तहत जंगलों से निशुल्क उपज को संग्रह करने पर उन्हें भी रोका गया तथा ठेकेदारों को वनों को काटने के ठेके दिये गये।

सरकारी अधिकारियों, व्यापारियों व साहूकारों के शोषण से वे भी त्रस्त– थे। अतएव उनमें लगातार असंतोष बढ़ता गया। इसके फलस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम तीन दशकों में उन्होंने बार–बार विद्रोह किये।

17.3 श्री राम राजू के नेतृत्व में पहाडी रेड्डियों के विद्रोह के पहले उनके द्वारा किये गये विद्रोह

1 1802–03 ईस्वी में पहला विद्रोह राम भूपति के नेतृत्व में रम्बा इलाके में हुआ।

2 1879 ईस्वी में हुए दूसरे विद्रोह का नेतृत्व चंद्रैया, सम्बैया, थमनडोरा और अम्बुल रेड्डी ने किया।।

राघवैया के अनुसार इन दो विद्रोहों का प्रमुख कारण मुत्तादारी ' के उत्तराधिकार का विवाद था। ईस्ट इंडिया कंपनी ने जन जाति क्षेत्रों में अपना बनाये रखने के लिये जन जातियों के कुछ मुखियाओं को मुत्ता (जागीर) प्रदान की थी। कंपनी ने इन्हें भू–राजस्व वसूल करने तथा अपने इलाकों में शांति व व्यवस्था बनाये रखने की जिम्मेदारी सौंपी थी। इन मुत्तादारों ने जन–जातियों के किसानों को डरा धमका कर भू–राजस्व के अतिरिक्त कई अन्य कर वसूल किये तथा भू–राजस्व को गैर अदायगी के कारण उन्हें भूमि से बेदखल किया।

यद्यपि इन दोनों विद्रोहों को दबा दिया गया लेकिन पहाड़ी रेड्डियों में व्याप्त असंतोष बना रहा।

3 तीसरा विद्रोह 1915–16 ईस्वी में हुआ। हेमेनडोर्फ (Haiemdorf) के अनुसार इस विद्रोह के कुछ सशस्त्र समूहों ने यदा–कदा आक्रमण करके शांति भंग करने की कोशिश की तथा इसमें जनता ने भाग नहीं लिया। अंग्रेजों ने इस को भी दबा दिया।

इन तीनों विद्रोहों से सरकार को यह आभास हो गया कि पहाड़ी रेड्डी व कोया अपनी वर्तमान परिस्थितियों से असंतुष्ट है। अतएव ऐजेन्सी की प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार करने की कोशिश की गई किन्तु ब्रिटिश नौकरशाही के तौर तरीकों के कारण इस प्रयास में उल्लेखनीय सफलता नहीं मिल सकी।

17.4 श्री राम राजू का जीवन वृत

1897 ईस्वी में श्री राम राजू का जन्म पश्चिमी गोदावरी जिले के मोगल्लू ग्राम के एक क्षत्रिय परिवार में हुआ। उसे बचपन में घुड़सवारी का शौक था। वह ज्योतिष व योग में विश्वास रखता था। उसने जड़ी–बूटियों द्वारा उपचार करने के बारे में भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया था। हाई स्कूल की परीक्षा देने के पहले ही उसने पढ़ाई छोड़ दी। अठारह वर्ष की आयु में वह सन्यासी बन गया तथा पहाड़ों में रहने लगा। उसने कुछ वन्य पशुओं को पालने में कुछ योग्यता प्राप्त कर ली। वनों में जीवन व्यतीत करते समय राजू ने अपने सेवा भाव से वनवासियों का विश्वास प्राप्त कर लिया तथा वे यह मानने लगे कि उसे अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त है। 1921 ईस्वी में राजू ने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। उसने कुछ गाँवों में पंचायतों का संगठन किया। आरम्भ में उसे पुलिस की निगरानी में रखा गया लेकिन कुछ समय बाद उस पर से यह प्रतिबंध हटा लिया गया। वह शाकाहारी था।

राघवैया के अनुसार उसने पहाड़ी रेडिड्यों व कोया जन–जातियों के कष्टों के निवारण के लिये गाँधी जी की शिक्षाओं का अनुसरण करने का निश्चय किया।

17.5 विद्रोह के कारण

राघवैया के अनुसार राजू ने वनवासियों की निमांकित शिकायतों को दूर कराने के लिये कार्य करने का निश्चय किया।

1 "पोडू" अथवा "झुमटो" पद्धति से खेती करने की परम्परा पर लगाये गये प्रतिबंध को हटाने का प्रयास करना।

2 वन कानूनों के माध्यम से लगाये गये प्रतिबंधों से वनवासियों तथा निकटवर्ती मैदानों के कृषकों को होने वाली हानि को रोकने के लिये उनका विरोध करना।

3 अंग्रेज तहसीलदार बेस्टन के अन्यायों को समाप्त करना। बेस्टन वनवासियों से नरसीपटनम– चिन्तापल्ली एजेंसी सड़क के निर्माण के लिये बेगार ले रहा था। उसके पहले इस प्रदेश के तहसीलदारों ने कोया व पहाड़ी रेडिड्यों से बेगार लेने में विशेष सफलता प्राप्त नहीं की थी। बेस्टन ने डरा–धमका कर जन–जाति क्षेत्रों में जाने वाले खाद्य पदार्थों को रोक कर, उनके पशुओं को जब्त कर तथा अन्य तरीकों से काफी सफलता प्राप्त की। उसके द्वारा किये गये अन्यायपूर्ण कार्य इस विद्रोह का आकस्मिक कारण बने।

4 सड़क के निर्माण से जनजाति क्षेत्रों में व्यापारियों व साहूकारों की संख्या बढ़ गई। उन्होंने जन जाति के किसानों का शोषण किया तथा उनकी भूमि खरीद ली।

5 यह पहले ही बताया जा चुका है कि काफी समय से वनवासी स्थानीय मुत्तेदारों की अनाधिकार चेष्टाओं से त्रस्त थे। ये मुत्तेदार उनसे भू–राजस्व के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अबवाब वसूल करते थे तथा बेगार लेते थे। समय पर लगान की नाअदायगी पर उन्हें भूमि से बेदखल कर देत थे।

6 पुलिस व अन्य सरकारी कर्मचारी मुत्तेदारों की मदद करते थे। उच्च अधिकारियों के पास किसानों का जाना लगभग असंभव था। न्यायालयों में मुकदमा लड़ने की सामर्थ्य उनमें नहीं थी।

समकालीन ब्रिटिश अधिकारियों ने यह माना है कि राजू ने विस्फोटक स्थिति में अपना कार्य आरम्भ किया।

17.6 विद्रोह की घटनायें

राजू द्वारा आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण करते ही उसके अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी। उसने अपने अनुयायियों को अहिंसात्मक तरीके से कार्य करने तथा भारतीय अधिकारियों को परेशान न करने का आदेश दिया। उसका लक्ष्य केवल अंग्रेज अधिकारी थे। आम तौर पर वनवासियों ने पुलिस स्टेशन पर सहसा हमले किये। 22 अगस्त, 1922 ईस्वी को तीन सौ पहाड़ी रेड्डीयों ने चिन्तापल्ली पुलिस स्टेशन से 5 तलवारें, 11 बन्दूकें, 1390 गोलियाँ और 14 भाले लूटे। अगले दिन राजू ने कृष्णा देवीं पेट पुलिस स्टेशन के अधिकारी को चेतावनी देकर हमला किया। राजू के आगमन के पहले पुलिस चौकी छोड़ कर चली गई। राजू व उसके अनुयायियों ने तीसरा हमला राजवोभोगी पुलिस स्टेशन पर किया। इसका उद्देश्य वीरैप्या डोरा नामक एक कैदी को छुड़ाना था जिसे 1918 ईस्वी में गिरफ्तार किया गया था। अपनी रिहाई

के बाद वीरैप्या डोरा राजू का प्रधान शिष्य बन गया। इस आक्रमण में भी राजू को 825 कारतूस व आठ कारबाईन प्राप्त हुए।

इस समय तक वनवासियों में राजू काफी लोकप्रिय हो गया था। पुलिस चौकियों पर हमलों के समय उसके अनुयायी संयम से काम लेते थे। अत: उसके की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। अब राजू ने अपना कार्य क्षेत्र बढ़ा लिया। उसने अन्य इलाकों में अपने गुप्तचर नियुक्त किये जो उसे आवश्यक सूचनाऐं भेजते थे। उसके कार्यकर्ता ग्रामों में उसके आन्दोलन का प्रचार करने लगे। समकालीन अंग्रेज अधिकारियों ने इन गुप्तचरों और कार्यकर्ताओं के कार्यों की प्रशंसा की है।

विद्रोह को दबाने के लिये मद्रास सरकार ने कीन साँडर्स और स्कॉट कोवार्ड को क्रमश : नरसीपट्टनम, अदातीगल्ला, कृष्णादेवींपेट और चिन्तापल्ली भेजा। तीन सितम्बर, 1922 ईस्वी को राजू ने ओंगरी घाट में एक पुलिस दस्ते को पराजित किया। इसी दिन अन्य संघर्ष में उसके अनुयायियों ने कोया के ग्रामों को जाने वाली रसद को रोकने में सफलता प्राप्त की। इस मुठभेड़ में अंग्रेज अधिकारी त्रिमनहीयर घायल हुआ। कुछ दिनों बाद एक विशेष पुलिस दस्तें ने धारकोंटा नामक स्थान पर राजू को उस समय घेरने की असफल कोशिश की जबकि वह काली की पूजा कर रहा था। इस घटना ने उसके अनुयायियों में उसके चमत्कारिक होने के विश्वास को पक्का कर दिया। इसके बाद राजू ने घाट से उतर रहे एक पुलिस दस्ते को सहसा घेर लिया। उसने भारतीय पुलिस को जाने दिया लेकिन अंग्रेज अधिकारियों पर हमला किया। इस संघर्ष में रेटर व स्काट नामक दो अंग्रेज अधिकारी मारे गये। छ:(303) राइफल व काफी संख्या में कारतूस राजू के हाथ लगे। डामनपल्ली पहाड़ी की तलहटी में दोनों पक्षों में एक और मुठभेड़ हुई।

इस समय तक राजू व उसके अनुयायियों ने छापामार पद्धति अपना ली थी। वे पुलिस दस्तों पर सहसा आक्रमण कर छिप जाते थे। इस इलाके के पुलिस कमिश्नर ने लिखा कि राजू के गुप्तचर हमारे गुप्तचरों से श्रेष्ठ है। निसंदेह उसके द्वारा अपनाये गये तरीके हमारे तरीकों के मुकाबले में बेहतर है। अतएव एजेंसी के कमिश्नर ने सैनिक सहायता तथा मलाबार से स्पेशल पुलिस बुलाने के लिए सरकार से अपील की।

29 व 30 सितम्बर, 1922 ईस्वी को राजू ने क्रमश: तारममीडी व लक्कावरा घुघेरा पुलिस स्टेशनों पर छापे मारे। इन छापों में एक भारतीय पुलिस सब इन्सपेक्टर को गिरफ्तार किया गया था, उसके माफी माँगने पर उसे छोड़ दिया गया। 12 अक्टूबर, 1922 ईस्वी को अदातिगल्ला तथा रामछोड़ावरम में राजू ने पुलिस दस्तों को खदेड़ दिया। इस हमले के समय उसने स्थानीय तहसीलदार को कहा कि अंग्रेजों के साथ भारतीय सिपाहियों के रहने से उसे परेशानी होती है क्योंकि वह अपने देशवासियों को मारना नहीं चाहता।

18 अक्टूबर, 1922 ईस्वी को इस क्षेत्र के कलेक्टर ने लिखा कि स्थिति काफी गंभीर है। राजू की सफलताओं ने हमारी प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचाया है। नवम्बर में राजू व उसके अनुयायियों ने पुलिस चौकियों पर हमले किये। सेकावरम (3 नवम्बर), चारतीयालेम व एसपोलु (17 नवम्बर) तथा अनतासंग्राम व वेलगापाडु, (30 नवम्बर) पर ये हमले किये गये थे।

6 दिसम्बर, 1922 ईस्वी को राजू को पहली बार हार का मुख देखना पड़ा। पेड्डागडयेलम नामक स्थान पर राजू व उसके अनुयायियों को घेर लिया गया। इस हमले में राजू घायल होकर संघर्ष के स्थान से भाग निकला। इस हमले में सरकारी दस्तों को काफी मात्रा में शस्त्र प्राप्त हुए।

इसी दिन एक अन्य स्थान पर राजू के अनुयायियों के एक दस्ते को हार का सामना करना पड़ा। सरकार ने राजू को जिंदा पकड़ने या मारने पर पंद्रह सौ रुपये का इनाम घोषित किया। उसके कुछ अनुयायियों की गिरफ्तारी अथवा कत्ल के लिये भी पचास रुपये से लेकर एक हजार रुपये तक के इनाम घोषित किये गये।

कुछ महीनों तक राजू घने जंगलों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर छिपता रहा। सरकारी अधिकारियों ने उसके अनुयायियों को प्रलोभन अथवा धमकी देकर वश में करने का प्रयत्न किया। कुछ ग्रामों के स्थानीय अधिकारियों को राजू से सम्पर्क रखने पर सजाऐं दी गई। 16 फरवरी, 1923 ईस्वी को राजू के चार अनुयायी गिरफ्तार किये गये। मार्च, 1923 ईस्वी में ऐसा दिखाई देने लगा कि राजू की ओर से खतरा समाप्त हो गया है। अतएव मलाबार पुलिस के दस्ते को वापस भेज दिया गया। लेकिन 18 अप्रैल, 1923 को राजू ने सहसा अनावरम की पुलिस चौकी पर छापा मारा। ग्रामवासियों ने उसका स्वागत किया। इसके बाद राजू व उसके अनुयायियों ने कुछ हमले और किये। सरकार ने अनेक ऐसे ग्रामों पर सामूहिक जुर्माना किया जिनके निवासियों ने राजू की सहायता की।

सितम्बर, 1923 ईस्वी में सरकार ने जन–जाति क्षेत्रों में जाने वाली रसद तथा पहाड़ी रेड्डीयों व निकटवर्ती प्रदेशों की जनता के पारस्परिक सम्पर्क को रोक दिया। सेना ने उनके इलाकों को चारों ओर से घेर लिया। सितम्बर, 1923 ईस्वी में अनेक मुठभेड़ों में राजू को असफलता का सामना करना पड़ा। उसकी निरन्तर हार से वनवासियों में निराशा की लहर दौड़ गई। धीरे–धीरे उसके अनेक अनुयायी गिरफ्तार किये गये। सरकारी अधिकारियों ने ग्रामों में जनता को अनेक तरह से परेशान करना शुरू किया। अपने अनुयायियों को तकलीफों से बचाने के लिये राजू ने निश्चय किया कि वह आत्मसमर्पण कर देगा।

7 मई, 1924 ईस्वी को राजू मेजर गुडाल के सड़क पर स्थित केन्द्र की ओर बढ़ा। उसे यह आशा थी कि आत्म समर्पण करने के बाद उसे एक युद्ध बंदी का दर्जा दिया जायेगा लेकिन जब उसे मेजर गुडाल के सामने मम्पर ग्राम में पेश किया गया तो गुडाल उसके साथ बदतमीजी से पेश आया। राजू के प्रतिवाद करने पर उसने अपने एक अधिकारी को गोली मारने का आदेश दिया। इस आदेश का तुरंत पालन किया गया तथा राजू की घटना स्थल पर मृत्यु हो गई।

8 मई, 1924 ईस्वी को राजू का शव कृष्णादेवींपेट ले जाया गया जहाँ पर एजेंसी के कमिश्नर का शिविर था। इसी दिन उसको दफनाया गया। मई व जून, 1924 ईस्वी में उसके कुछ प्रमुख अनुयायी भी मारे गये। सितम्बर, 1924 ईस्वी तक विद्रोह शांत हो गया।।

17.7 राजू की मृत्यु के बारे में विभिन्न मत

सरकारी अभिलेखों के अनुसार स्पेशल पुलिस का एक दस्ता राजू की खोज में लगा हुआ था। उसने एक स्थान पर राजू को देखा। पुलिस को देखते ही राजू भागा। इस पर पुलिस ने उस

पर गोली चलाई। भूमि पर गिरते समय राजू ने अपने बारे में बताया। घायल अवस्था में उसे कोयूश्र में असम राइफल के कमांडर मेजर गुडाल के सामने लाया गया। राजू ने भागने की कोशिश की और वह मारा गया। राजू का शव कृष्णादेवींपेट ले जाया गया। वहाँ पर उसकी पहचान कर उसको दफनाया गया। लेकिन राघवैया के मत में यदि राजू की मृत्यु भागते समय हुई तो गोली के निशान उसकी पीठ पर होने चाहिए थे जब कि उसकी छाती पर गोली के निशान थे। उसकी मृत्यु के समय वहाँ पर काफी लोग उपस्थित थे। जिनमें काफी सैनिक भी थे। इन सैनिकों के सामने दिन–दहाड़े उसका भागने का प्रयत्न करना तर्कसंगत नहीं दिखाई देता। इसके अतिरिक्त एजेंसी कमिश्नर रदरफोर्ड और कलेक्टर ब्रैकन द्वारा गुडाल को यह कहना कि उसने उचित कार्य नहीं किया है, इस वात का सबूत है कि गुडाल के आदेश पर उसे गोली मारी गई।

17.8 राजू की मौत पर जनता की प्रतिक्रिया

राजू की मौत पर आंध्र प्रदेश की काँग्रेस कमेटी ने उसके नेतृत्व व कार्यों की प्रशंसा के साथ उसके आन्दोलन में की गई हिंसा की भर्त्सना का प्रस्ताव पारित नहीं किया। 17 मई, 1924 ईस्वी को मद्रास से प्रकाशित तेलुगु दैनिक पत्र आंध्र पत्रिका ने शोक प्रकट करते हुए लिखा कि हिंसा का प्रयोग व्यर्थ है, हम सबको गाँधीजी के अहिंसा के सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। विद्रोह की अवधि में मद्रास लेजिस्लेटिव कौंसिल में विद्रोह के कारणों की जाँच करने की माँग की गई। अनेक सदस्यों ने विद्रोह को शांत करने के बाद उसके कारणों की जाँच करने की राय जाहिर की। विद्रोह में हिंसा के प्रयोग के साथ वनवासियों पर पुलिस के अन्यायों की भर्त्सना की गई। 1927 ईस्वी में काँग्रेस के दो नेताओं पट्टाभि सीतारमैया और मदूरी अनापूर्वोया ने प्रथम बार राजू की भरपूर प्रशंसा की।

17.9 आन्दोलन का प्रभाव

1 **वनवासियों में चेतना का जागृत होना:** इसमें कोई संदेह नहीं कि राजू ने अपने सेवा कार्यों से आंध्र प्रदेश के पहाड़ी रेड्डीयों व कोयाओं का दिल जीत लिया था तथा उनमें अपने अधिकारों के प्रति चेतना जागृत की।

2 **सरकार द्वारा जन–जातियों की दशा के सुधारों की आवश्यकता का अनुभव:** ब्रिटिश अधिकारियों ने यह माना कि एजेंसी व्यवस्था जन–जातियों के विकास के कार्यो में असफल रही है यह भी अनुभव किया गया कि प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार के साथ–साथ उनको विशेष संरक्षता देने की भी आवश्यकता है।

3 **जन–जातियों के प्रशासन और कानून बनाने की जिम्मेवारी प्रांतो को सुपुर्द:** भारत सरकार ने जनजातियों की भलाई और विकास सम्बन्धी विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्रांतों को दे दिया गया। अपनी–अपनी आवश्यकताओं के अनुसार प्रान्त इस सम्बन्ध में कानून बना सकते थे।

लेकिन इससे भी स्थिति मे विशेष सुधार नहीं हुआ। कुछ समय बाद आंध्र प्रदेश के जन–जाति क्षेत्रों में नक्सलवादियों का प्रभाव बढ़ गया। 1968–70 ईस्वी में उनके नेतृत्व में फिर एक आन्दोलन हुआ।

17.10 आन्दोलन की असफलता के कारण

जगदीश चन्द्र झा ने अपने शोध ग्रन्थ भूमिज रिवोल्ट, 1832 –33 में लिखा है कि यह संघर्ष एक ऐसी शक्ति के साथ हुआ था जिसको परास्त करना एक जन–जाति के लिए संभव नहीं था। इसी मत को हम राजू के विद्रोह के संदर्भ में दोहरा सकते है। ब्रिटिश सरकार के पास अपार सैनिक शक्ति थी जिसका मुकाबला वनवासियों के लिये करना संभव नहीं था। राघवैया के अनुसार वास्तव में आधे भूखे रहने वाले कोया व पहाड़ी रेड्डीयों के लिये लम्बे समय तक ब्रिटिश सरकार की सेना व पुलिस के साथ संघर्ष को जारी रखना संभव नहीं था।

17.11 विद्रोह का स्वरूप

1 **काफी संख्या में वनवासियों द्वारा विद्रोह में भाग लेना:** 1855–56 ईस्वी के संथाल विद्रोह तथा 1895–1900 ईस्वी के मुंडा विद्रोह के समान राजू के आन्दोलन में भी वनवासियों ने काफी संख्या में भाग लिया।

2 **जन–जाति आन्दोलन का एक गैर जन–जाति पुरुष द्वारा नेतृत्व**– ब्रिटिश काल में जन–जातियों के विद्रोह के अधिकांश नेता जन–जाति के सदस्य थे। जैसे संथाल विद्रोह के नेता कान्हू व सिद्धू, मुंडा आन्दोलन का नेता बिरसा। लेकिन राजू एक क्षत्रिय था। उसके पहले दक्षिण–पश्चिमी राजस्थान में गोविन्द गिर जो कि एक बनजारा था, ने 1912–13 ईस्वी में भीलों के सुधार आन्दोलन का नेतृत्व किया था। राजू के समकालीन मोतीलाल तेजावत ने भी भील किसानों की माँगों समर्थन में 1922 ईस्वी से आन्दोलन आरम्भ किया था।!

3 **राजू के पहले के पहाड़ी रेड्डीयों के आन्दोलनों तथा राजू विद्रोह में भिन्नता :** राजू के पहले के आन्दोलनों का नेतृत्व पहाड़ी रेड्डी जाति के ने ही किया था। उनके आन्दोलनों में पहाड़ी रेड्डीयों की समस्याओं को भली–भाँति पेश नहीं किया गया था। लेकिन राजू ने इन समस्याओं को स्पष्ट रूप से पेश किया। पहले के विद्रोहों में संगठन का अभाव था किन्तु राजू ने विद्रोहों की अवधि में संगठन शक्ति का परिचय दिया।

4 **विद्रोह में केवल ब्रिटिश अधिकारियों के विरूद्ध के आदेश :** राजू ने अपने अनुयायियों को आदेश दिया था कि वे केवल ब्रिटिश को अपना निशाना बनायें तथा भारतीय अधिकारियों को तंग न करें। इसके पहले जन–जाति विद्रोहों में भी ब्रिटिश अधिकारियों को निशाना बनाया गया था लेकिन इनके साथ अधीनस्थ भारतीय कर्मचारी, साहूकार, व्यापारी, बाहर से आकर बसने वाले निवासी आदि भी उनके कोप का शिकार हुए थे। वस्तुत: राजू ने जन–जातियों की समस्याओं के लिये औपनिवेशिक व्यवस्था को जिम्मेवार ठहराते हुए केवल अंग्रेज अधिकारियों के विरूद्ध कार्यवाही करने का निर्देश दिया।

5 **राजू के विद्रोह में जन–जाति के प्राचीन गौरव की पुन: स्थापना की भावना (Revivalistic tendencies) का अभाव :** इसके पहले कि अनेक जन–जाति विद्रोहों में इस प्रकार की

भावना दिखाई देती है। बिरसा मुंडा कुछ अन्य नेताओं ने उस समय की स्थिति को पुन : स्थापित करने पर जोर दिया जबकि उनकी जाति का स्वर्ण युग था लेकिन राजू के आन्दोलन में ऐसी भावनाओं का अभाव दिखाई देता है।

6 **अंहिसा का प्रयोग :** महात्मा गाँधी की विचारधारा से प्रभावित होकर राजू ने अपने अनुयायियों को हिंसा का सहारा न लेने की सलाह दी थी। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है उसके अनुयायियों ने हिंसात्मक कार्य किये थे।

हैदराबाद के वेंकट रमैया गुरू के मत में राजू का अहिंसा में भी विश्वास नहीं था। लेकिन वे भी यह मानते है कि राजू ने स्वयं कभी शस्त्र धारण नहीं किया। अगर यह मान भी लिया जाये कि उसने बाद में शस्त्र धारण किये यह कहा जा सकता है कि ऐसा उसने आत्म रक्षा के लिये किया होगा। वस्तुत : अपने अनुयायियों को नियन्त्रण में नहीं रख सका तथा वह उन्हें हिंसा के मार्ग जाने से रोक नहीं सका। महात्मा गाँधी ने मोतीलाल तेजावत को भेजे गये एक संदेश में लिखा था कि ऐसे आन्दोलनों में हिंसा का समावेश होना स्वाभाविक है। राजू द्वारा संचालित आन्दोलन में ऐसा ही हुआ।

7 **राजू के चमत्कारिक व्यक्ति होने के बारे मे उसके अनुयायियों का विश्वास :** आरम्भ में राजू की सफलताओं को देख कर उसके अनुयायियों का यह विश्वास दृढ़ हो गया कि उसे चमत्कारिक व अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त है। पुलिस स्टेशनों पर आक्रमणों के समय पुलिस के सिपाही भी बिना किसी विरोध के अपनी चौकियों को छोड़ देते थे। लेकिन बिरसा मुंडा व अन्य की भांति राजू ने यह कभी दावा नहीं किया कि उसे अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त है।

8 राजू में नेतृत्व के गुण :

राजू के नेतृत्व के गुणों की प्रशंसा समकालीन ब्रिटिश अधिकारियों ने भी की है। उसने अनेक स्थानों पर गुप्तचर तथा कार्यकर्ता नियुक्त किये। उन्होंने यह भी माना है कि उसके हमले सुनियोजित थे तथा उसकी गतिविधियों के बारे में सही समाचार नहीं मिलते थे। वह बड़ी सावधानी से अपने ठहरने के स्थान चुनता था जिससे कि वह संकट आने पर आसानी से भाग सकें। इस प्रकार वह अपने से पहले के जन–जाति आन्दोलन के नेताओं के मुकाबले राजू में नेतृत्व की क्षमता अधिक थी।

17.12 सारांश

इस इकाई में आपने औपनिवेशिक शासकों की जन–जाति समुदायों के प्रति अपनाई गई नीतियों तथा उनसे जन–जातियों में व्याप्त असंतोष का अध्ययन किया है। आंध्र प्रदेश में श्री राम राजू के नेतृत्व में 1922–24 में पहाड़ी रेड्डी व कोया नामक जनजातियों ने विद्रोह किया था, ब्रिटिश काल में रहने वाली जन–जातियों की दशा के बारे में जानकारी प्राप्त की है। 1922 के पहले पहाड़ी रेड्डीयों व कोयाओं द्वारा किये गये विद्रोहों के संक्षिप्त विवरण का अध्ययन भी किया है। इसके पश्चात् राजू के नेतृत्व में हुए विद्रोह के कारणों के बारे में जानकारी प्राप्त की है। विद्रोह की घटनाओं के अध्ययन के बाद आन्दोलन की असफलता के कारणों, उसके प्रभाव तथा स्वरूप का अध्ययन भी किया गया है।

17. 13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 आंध्र प्रदेश में पहाड़ी रेड्डी व कोया जन जातियों के प्रथम तीन विद्रोहों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

2 श्री राम राजू के विद्रोह (1922–24) के कारणों का विश्लेषण कीजिए। उसके आन्दोलन के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

17.14 संदर्भ ग्रन्थ

1	वीं. राघवैया	:	ट्राइबल रिवोल्टस, जिल्द 2, अध्याय तीन, अनरेस्ट इन आंध्र प्रदेश।
2	के. सुरेश सिंह	:	ट्राइबल मूवमेन्टस इन इंडिया, जिल्द 2
3	पी. कमला मनोहर राव और आर. एल. प्रसाद राव	:	ट्राइबल मूवमेन्टस इन आंध्र प्रदेश
4	मेन इन इंडिया, रिबेलियन नम्बर क्रिस्टोफर वॉन फयूरर हेमनडोर्फ	:	एब्रोजिनल रिबेलियनंस इन डेकन।
5	के. सुरेश सिंह	:	ट्राइबल सोसाइटी इन इंडिया

इकाई –18

मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में आदिवासी आन्दोलन (1920–1924)

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 आन्दोलन के समय आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दशा
18.3 तात्कालिक परिस्थितियाँ और कुछ भील आन्दोलन
18.4 मोतीलाल तेजावत का आदिवासी कृषक आन्दोलन
18.5 सारांश
18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
18.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

18.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप यह अध्ययन करेंगे कि –

(1) वे कौन सी परिस्थितियां थी जिनमें मोतीलाल तेजावत एक आदिवासी नेता के रूप में उभरे?

(2) मोतीलाल तेजावत के जीवन परिचय का संक्षिप्त ब्योरा, ताकि उनके नेतृत्व के गुणों का आंकलन किया जा सके।

(3) मोतीलाल तेजावत ने आदिवासी आन्दोलन का संचालन किस प्रकार किया? आदिवासियों को अपने अधिकारों के प्रति किस प्रकार चैतन्य किया?

(4) इनके द्वारा संचालित आन्दोलन किस वैचारिकी पर आधारित था? इस आन्दोलन की प्रकृति कैसी थी?

(5) मोतीलाल तेजावत के आन्दोलन की प्रमुख घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करना।

(6) इस आन्दोलन से आदिवासियों का जीवन स्तर कितना प्रभावित हुआ?

18.1 प्रस्तावना

कोई भी आन्दोलन एकाएक उत्पन्न नहीं हो जाता है। उसके पीछे कोई न कोई ऐसी पृष्ठ भूमि विद्यमान होती है, जिससे व्यक्ति पीड़ित होकर आन्दोलन, उपद्रव या विद्रोह कर बैठते है। मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में भी जो आन्दोलन उभरा है उसके पीछे सामन्ती शोषण, अत्याचार एवं अन्याय का इतिहास है। इस संदर्भ में विलियम हंटर ने आदिवासी भीलों के साथ मराठों द्वारा किये जाने वाले निर्दयी व्यवहार के बारे में लिखा है कि "18वीं शताब्दी में भीलों के साथ राजद्रोहियों का सा बर्ताव किया गया था। अधिकारियों को यह आदेश थे कि वे बिना किसी प्रकार की जाँच पड़ताल के भीलों के प्राण तक ले सकते है। देश के अशांतिपूर्ण

वातावरण में जो कोई भी भील मिल जाता उसकी हंटरों से पिटाई की जाती और जरूरत समझी जाती तो फाँसी पर भी लटका दिया जाता था। भीलों को कई तरह के कष्ट दिये जाते थे। नाक चीरकर और कान फाड़कर ये लोग कड़ी धूप में तपाये जाते थे। तपे हुए लोहे के पाटों पर सांकलों से बाँधे जाते थे, और कई भीलों को तो पहाड़ों से लुढ़का दिया जाता था। गिरोह के गिरोह, जिनको रिहा करने का आश्वासन दिया जाता था, कत्ल कर दिये गये। इन भीलों की औरतों के अंग भंग कर दिये गये। धुएँ में गले घोंट दिये गये और बच्चे पत्थर पर पछाड़ दियें गये।" इस प्रकार मराठों ने भीलों पर जो निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया वह वास्तव में बर्बरतापूर्ण था। इसके अतिरिक्त इन आदिवासी भीलों से बेगार ली जाती थी एवं इन पर अत्याचार भी किया जाता था जिनका उल्लेख अनेक इतिहासकारों ने किया है। बेगार प्रथा के बहुत से स्वरूप थे जिनके बारे में राव घनश्याम जी ने अपने एक लेख में बताया है :

(1) आदिवासियों से रात का पहरा दिलाया जाता था।

(2) इन्हें संदेश सम्प्रेषण का माध्यम बनाया जाता था।

(3) इनसे ऊँटों के लिये वृक्षों के पत्तों के भारे मँगवाये जाते थे।

(4) सरकारी अफसरों को रास्ता बताने के लिये भीलों को साथ जाना पड़ता था।

(5) इन्हें ठकुरानियों को लाने ले जाने के लिये साथ जाना पड़ता था।

(6) शिकार में मारे हुए जानवरों को उठाना व पहुँचाना पड़ता था।

(7) सरकारी मुलाजिमों के सामान व बिस्तर सिर पर उठाकर इधर–उधर पहुँचाना पड़ता था।

(8) सरदारों, उमरावों, अंग्रेज अफसरों, रियासत के उच्च अधिकारियों को शिकार कराने के लिये जंगल के जानवरों को लेकर, जिस मोर्चे पर वे बैठे हों लाना पड़ता था। इस काम में अनेक भीलों को शेरों ने मार डाला। भील समूह द्वारा विरोध प्रकट करने पर 60 रुपये मुआवजा दे दिया जाता था।

इस प्रकार आदिवासी भीलों से अनेक प्रकार की बेगार ली जाती थी।

18.2 आन्दोलन के समय आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दशा

मोतीलाल तेजावत का यह आन्दोलन सन 1921 में वर्तमान मेवाड़ जिले के झाड़ोल, कोटड़ा, मादड़ी, सिरोही, गुजरात के दाँता, पालनपुर, ईडर, विजयनगर इत्यादि स्थानों पर प्रारम्भ हुआ। इस काल में सामन्तवाद व जागीरदारी व्यवस्था विद्यमान थी। उन्हीं इलाकों में प्रमुख रूप से फैला जहाँ पर आदिवासी व्यवस्थित रूप से कृषि करते साथ ही यह आन्दोलन जंगल पर आधारित समस्याओं के साथ भी जुड़ा हुआ था। क्योंकि ये आदिवासी कृषि के साथ वनों पर भी अपनी आजीविका के लिये आश्रित थे। फिर भी आदिवासी आन्दोलन अपने मूल रूप में भू–राजस्व व्यवस्था के खिलाफ था। इसी भू–राजस्व व्यवस्था का लाभ उठाकर गैर आदिवासी इनका शोषण करते थे। पहले "झूम खेती" (स्थानान्तरण कृषि) के द्वारा आदिवासी अपना जीवन यापन करते थे बाद में आदिवासियों को स्थायी कृषि हेतु भूमि प्रदान कर दी गयी। इससे

आदिवासी निरन्तर भू–राजस्व शासकों को करते थे। अब इसी व्यवस्था को समझने का प्रयास करेंगे।

भू–राजस्व व्यवस्था :

इस काल में राज्य का शासक ही सम्पूर्ण भूमि का स्वामी हुआ करता था। जो राजा या सामन्त का सहयोग करता था उसे जागीर देकर पुरस्कृत किया जाता था। ये ठाकुर या जागीरदार कहे जाते थे। इन देशी रियासतों में मुख्य रूप से दो प्रकार की भू–राजस्व व्यवस्था थी – (1) खालसा (2) जागीर

1 खालसा प्रशासन:

इस व्यवस्था के अन्तर्गत भूमि सीधे राजा के अधिकार में होती थी। यहाँ का भू–राजस्व सीधे राजा के कोष में जमा होता था। इस व्यवस्था के मुख्य रूप से तीन के थे –

(अ) **बापी –** यह जमीन व्यक्ति को पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिलती है। ऐसी जमीन को बापी के नाम से जाना जाता था और ऐसे खेतीहर बापीदार के नाम से जाने जाते थे। ये बापीदार अपनी जमीन पर अधिकार कायम रखने के लिये दूसरों से अधिक भू–राजस्व लेते थे। इन्हें लगभग 20 प्रतिशत का लाभ प्राप्त होता था। इसके अतिरिक्त इन्हें प्रतिष्ठा एवं कुछ सुविधाएँ भी प्राप्त थी जैसे अगर उनके खेत में लकड़ी व घास पैदा होती थी तो उससे लगान असिंचित जमीन की दर से वसूल किया जाता था।

(ब) **गैरबापी –** यह जमीन राजा की इच्छा पर निर्भर करती थी। इस जमीन पर कृषक का कोई वंशानुगत अधिकार नहीं था। ऐसी जमीन को गैर बापीदार कहा जाता था। ऐसी जमीन कृषि के लिये किसानों को एक–दो वर्ष के लिये दे दी जाती थी और किसान अपने शासक को निश्चित भू–राजस्व प्रदान करता था।

(स) **माफी –** इस श्रेणी के अन्तर्गत भूमि ब्राह्मण, चारण, ठाकुर व राजा के सम्बन्धियों और धार्मिक संस्थाओं को राजा के द्वारा दान दे दी जाती थी। ऐसे भू–मालिकों को भू–राजस्व अदा नहीं करना पड़ता था।

2 जागीर:

इस व्यवस्था के अन्तर्गत जो जमीन ठाकुरों व जागीरदारों के अधिकारों में होती थी तो उसे ठिकाना या जागीर कहा जाता था। इस व्यवस्था में राजा अपनी भूमि का कुछ भाग जागीरदारों व ठाकुरों को दे देता था। जागीर को जागीरदार बेच नहीं सकता था और न ही किसी को हस्तान्तरित कर सकता था। किन्तु विशेष परिस्थितियों में राजा की अनुमति से वह जमीन बेच सकता था। जिनके पास अधिक भूमि होती थी उसे ठाकुर कहा जाता था और वह अपनी जागीर में महल बनाकर रह सकता था। ठाकुर व जागीरदार अपनी जागीर में शासन करने की सम्पूर्ण शक्ति रखता था। वही न्याय करता था। जागीरदार अपनी जागीर में मनमाना कर व लगान वसूल करता था।

इस प्रकार इन क्षेत्रों में खालसा व जागीरदारी व्यवस्था विद्यमान थी। भूमि बन्दोबस्ती के नियम से पहले राजस्थान में भू–राजस्व अनाज के द्वारा वसूल किया जाता था। राजा व जागीरदार द्वारा भू–राजस्व हासिल व उत्पादन चुंगी के द्वारा वसूल किया जाता था। प्राय: यह भू–राजस्व बहुत अधिक वसूल किया जाता था, इस कारण आदिवासियों की स्थिति बहुत ही दयनीय थी।

आदिवासियों की स्थिति को और अधिक दयनीय करने के लिये तत्कालीन शासकों द्वारा कुछ गैर–वाजिब कर भी वसूल किये जाते जिन्हें उस समय "बराड़" कहा जाता था। वे निम्नलिखित है –

(अ) **झूपी बराड़** – गाँव में घर में रहने का कर,

(ब) **धुआँ बराड़** – मकान में चूल्हा जलाने का कर,

(स) **बाई बराड़** – बाई जी की शादी कराने का कर, और

(द) **फौज बराड़** – नगर रक्षा कर।

इस प्रकार 18वीं, 19वीं व 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल तक अत्याचार, अन्याय व शोषण की प्रक्रिया निरन्तर चलती रही। इन्हीं परिस्थितियों ने आदिवासियों को आन्दोलन व विद्रोह करने के लिये प्रेरित किया।

18.3 तात्कालिक परिस्थितियाँ और कुछ भील आन्दोलन

जैसा कि हमने ऊपर विवेचित किया है कि कुछ ऐसी आर्थिक व राजनैतिक परिस्थितियाँ आदिवासियों के सामने उत्पन्न हो गयीं थी, जिनकी वजह से उन्होंने विद्रोह व आन्दोलन किये। मोतीलाल तेजावत से पूर्व हुए कुछ आन्दोलनों को जानना आवश्यक है। 1804 से 1817 तक मराठों के अन्याय के साथ–साथ पिण्डारियों ने भीलों में बड़ी लूटमार मचाई। उन्होंने भीलों के कई गाँव बर्बाद कर दिये, उनकी हत्याएं की। इन घटनाओं से बचने के लिये इनके पास केवल दो ही उपाय थे – (अ) पिण्डारियों का साथ देना (ब) घर व खेत छोड़कर जंगलों में भाग जाना। अत: भीलों ने पिण्डारियों का साथ दिया तथा अपने हितों के प्रति जागरूक हुए सन 1818 में ब्रिटिश राज्य की नीति से व्यथित हो राजपूताना व मालवा में भीलों ने उपद्रव व विद्रोह किये। इन उपद्रवों को शांत करने के लिये 1841 में मेवाड़ भील कोर्प्स की स्थापना की गयी। इससे भीलों को शांत रखने में मदद मिली। सन 1857 के गदर में भीलों ने ब्रिटिश अधिकारियों का साथ दिया और भीलों को भीलों के द्वारा ही शांत किया गया।

इसके बाद कुछ परिस्थितियाँ ऐसी उत्पन्न हुई कि डूंगरपुर, बाराहपाल व कुछ अन्य स्थानों पर विद्रोह हुए गोरीशँकर हीराचन्द ओझा ने अपनी पुस्तक द हिस्ट्री ऑफ राखपूताना में डूंगरपुर में हुए भील विद्रोह पर कारणात्मक व्याख्या को प्रस्तुत किया है। इनका कहना है कि डूंगरपुर में जब महारावल दौरे पर था, तब भीलों ने विद्रोह किया। तब माण्डव के भीलों ने उसके लश्कर का सामान लूट लिया तथा इन्होंने राजनीतिक दूत के शिविर पर भी आक्रमण कर उसका सामान लूट लिया। 1867 ई. में देवल के पाल के भीलों मे राज्य की आज्ञा का उल्लंघन

किया और विद्रोह करके डूंगरपुर से खेरवाड़ा जाने वाले मार्ग को अवरूद्ध कर दिया तथा देवल के थानेदार की हत्या कर दी। इस विद्रोह के प्रमुख कारण निम्नांकित है –

(1) भील "बराड़" (कर या जमीन का महसूल) आसानी से नही देते थे और प्रतिवर्ष उस कर को वसूल करने में कठिनाई आती थी। जब "बराड़' वसूली का समय आता था तो प्रतिवर्ष अरब, मकरानी व सिन्धियों का एक जत्था कर वसूली के लिये भेजना पड़ता था। इस वर्ष जब यह जत्था कर वसूली के लिये आया तो भीलों ने उस पर हमला कर दिया जिसमें जत्थे के 14 सिपाही मारे गये।

(2) डूंगरपुर के महारावल ने ठाकुर रघुनाथ को सेना देकर भीलों के विरूद्ध भेजा। उसने भीलों के मुखिया को बुलाकर मरवा डाला।

इन कारणों से भीलों में महारावल के प्रति अविश्वास की भावना पैदा हुई और वे अधिक उपद्रव करने लगे। अन्त में "मेवाड़ भील कोर्प्स" की सहायता से भीलों को दबाया गया तथा उपद्रव शांत करने के लिये भीलों के मुखिया को गिरफ्तार कर दंडित किया गया।

इन परिस्थितियों के अतिरिक्त कुछ कारण ऐसे भी थे, जिनसे इस उपद्रव को प्रोत्साहन मिला –

(अ) महारावल अपने राज्य की दीवानी व फौजदारी व्यवस्था का उचित प्रबन्ध करना चाहता था जिससे सरदारों को अपने अधिकार कम हो जाने का भय था।

(ब) सरदारों ने मनमानी करनी प्रारम्भ कर दी थी। वे अपने पट्टे का तथा प्रजा के दीवानी व फौजदारी मामलों का फैसला स्वयं करने लगे एवम् अपने अधिकारों का दुरूपयोग करने लगे थे, तब महारावल ने इनके कार्यों पर अंकुश लगाने की कोशिश की।

(स) महारावल ने सरदारों के अधिकारों को लेने का प्रयास किया जिससे सरदारों में असंतोष व्याप्त हो गया। इस प्रकार सरदारों ने भील उपद्रव में अपना सहयोग दिया।

श्यामलदास ने अपने ग्रंथ वीर विनोद के द्वितीय खण्ड में 1881 के बारहपाल में भील उपद्रव का उल्लेख किया है। इनका कहना था कि ब्रिटिश सरकार द्वारा भीलों में अनेक सुधारों को लागू किया गया, लेकिन भीलों ने इन सुधारों को अपने अधिकारों का हनन समझा व राज्य अधिकारियों के आदेशों की अवहेलना की। सन् 1881 में कुछ सुधार लागू किये गये जिनमें मुख्य थे

(1) भीलों की जनगणना किया जाना,

(2) मद्यपान पर नियंत्रण लगाना

(3) भील क्षेत्र में पुलिस व चुंगी चौकी की व्यवस्था करना, और

(4) अंध विश्वासों पर नियंत्रण लगाना।

इन सुधारों को भीलों ने अपनी परम्पराओं का उल्लंघन समझा तथा इन सुधारों का विपरीत अर्थ लिया और सन् 1881 में भीलों ने विद्रोह कर दिया तब भीलों ने ब्रिटिश सरकार के सामने एक माँग पत्र रखा जिसके अनुसार –

(1) यदि किसी स्त्री पर डायन होने का संदेह हो तो उसे बिना जाँच पड़ताल के तुरन्त मार देने की आज्ञा दी जाये

(2) भील क्षेत्र में पुलिस चौकी की स्थापना नहीं की जाये,

(3) भीलों के आपसी झगड़ों में मेवाड़ महाराणा हस्तक्षेप न करें, तथा

(4) भविष्य में जनगणना नहीं की जाये।

19 अप्रैल 1881 को मेवाड़ के महाराणा के साथ उनका समझौता हो गया, लेकिन इसके बावजूद भील क्षेत्र में शांति व व्यवस्था कायम नहीं हो पायी। 13 जून, 1881 को भीलों ने कुछ मकरानियों को मार डाला, लेकिन सेना द्वारा भीलों को दबा दिया गया। जिससे भीलों ने आत्मसमर्पण कर दिया। अन्त में 28 फरवरी 1883 को समझौता हुआ जिसके अनुसार–

(1) भील किसी भी स्त्री को डायन समझकर मारेंगे नहीं,

(2) वे शपथ लेंगे कि समझौते का पालन करेंगे,

(3) 2100 रुपये जुर्माना भील महाराणा मेवाड़ को देंगे,

इस प्रकार बहुत से विद्रोह व आन्दोलन भीलों ने किये। इससे यह स्पष्ट होता है कि भील कभी भी अपनी परम्पराओं व सामाजिक व्यवस्था में हस्तक्षेप सहन नहीं कर सके, अत: जब भी किसी ने हस्तक्षेप करने का प्रयास किया, भीलों में विद्रोह के स्वर मुखर हुए।

आदिवासी आन्दोलन के इसी क्रम में कुछ सुधारवादी आन्दोलन हुए, जिनमें सुरमालदास व गोविन्द गिर के आन्दोलन भी प्रमुख थे। ये सभी सुधारवादी आन्दोलन उच्च जातियों के सम्पर्क के कारण हुए। इन नेताओं ने सबसे पहले इस बात पर बल दिया कि आदिवासियों में व्याप्त सामाजिक बुराइयों को पहले पहल समाप्त किया जाय।

सूरमालदास ने आदिवासियों को कहा कि भोजन नहा धोकर करना चाहिये, ईश्वर उपासना करना एवं जीव हिंसा के रोकथाम पर जोर दिया। इनके भक्त गले में जनेऊ लगे। वे पीला साफा बॉधने लगे और सफेद कपड़े पहनने लगे। ये लोग जब आपस में मिलते थे तो "जय सीताराम" कहकर एक दूसरे का अभिवादन करते थे।

सुधारवादी आन्दोलन की इसी कडी में गोविन्द गिर ने भी 20वीं शताब्दी के प्रथम व द्वितीय दशक में सुधारवादी आन्दोलन प्रारम्भ किया जिसे 'भगत आन्दोलन' नाम से भी जाना जाता था। गोविन्द गिर ने ईसाई मिशनरियों के विरूद्ध आवाज, जिसका उद्देश्य धर्म परिवर्तन को रोकना था एवम् आदिवासियों को हिन्दु धर्म से जुड़े को अपनाने पर बल देना था ताकि वे वृहद समाज के अनुकूल अपने जीवन स्तर को उन्नत कर सकें। इन्होंने व्यक्ति को शाकाहारी जीवन अपनाने के लिये प्रेरित किया तथा मानव मात्र व पशु पर दया करने के उपदेश दिये। साथ ही स्वच्छ जीवन अपनाने पर जोर दिया। आगे चलकर गोविन्द गिर ने 'भील राज्य' की स्थापना की माँग भी की। यह आन्दोलन आदिवासियों में सुधारों के माध्यम से राजनैतिक सत्ता प्राप्ति की तरफ अग्रसर हुआ था।

18.4 मोतीलाल तेजावत का आदिवासी कृषक आन्दोलन

सन् 1921–22 में मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में हुआ भील आन्दोलन अपनी व्यापकता, रचनात्मकता और अहिंसा की दृष्टि से बेमिसाल था। मोतीलाल तेजावत साहसिक कार्य से मेवाड़ और अन्य रियासतों के आदिवासी क्षेत्रों के लोगों में जागृति आयी। तेजावत ने जागीरदारों, सामन्तों व अंग्रेजों को परेशान कर दिया था। इसी काल में एशिया महाद्वीप के प्रमुख देश चीन व जापान में भी परिवर्तन परिलक्षित हो रहे थे। नये वैज्ञानिक आविष्कारों ने जनता के विचारों व मूल्यों को नई दिशाऐं प्रदान की। इन सबसे अंधविश्वासों व सामाजिक रूढ़ियों में कमी आने लगी। प्रथम विश्व युद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों ने भी रियासती जनता की जागृति में योगदान दिया।

राजस्थान में मेवाड़ और अन्य रियासतों के किसान और आदिवासी, जो सदियों से उत्पीड़न, शोषण और उपेक्षा के शिकार हो रहे थे, में चेतना का संचार हुआ। उनमें चेतना जागृत करने का श्रेय मोती लाल तेजावत को जाता है। उन्होंने इस उत्पीडित शोषित व प्रताड़ित जनजाति को जागृत करने के दायित्व में अपना सब कुछ गवाँ देने पर भी इस बीड़े को अपने कंधों पर उठा लिया था। इस आन्दोलन को समझने से पहले मोतीलाल के जीवन परिचय का ज्ञान होना भी आवश्यक है इससे हमें ज्ञात हो जायेगा कि पृष्ठ भूमि से निकलकर उन्होंने आदिवासियों का नेतृत्व किया।

मोतीलाल तेजावत का जीवन परिचय :

मोतीलाल तेजावत का जन्म उदयपुर जिले के गाँव झाड़ोल के पास कोल्यारी में हुआ था। ये ओसवाल महाजन थे। इन्होंने अपने गाँव में ही सामान्य शिक्षा प्राप्त की थी। बाद में इन्होंने झाड़ोल के ठिकानेदार के यहाँ कामदार के रूप में नौकरी प्रारम्भ की। लेकिन उनकी यह नौकरी अधिक समय तक नहीं चल सकी क्योंकि झाड़ोल के राव बहुत शराब पीते थे और प्रजा से मनमाना कर वसूल करते थे। एक दिन राव ने मोतीलाल तेजावत को अपने महल में बुलाया और 200/–(दो सौ रुपये) देने को कहा, तेजावत के मना करने पर उन्हें झाड़ोल दरवाजे पर कैद कर दिया और जूतों से पीटा। इसी प्रकार के अत्याचार से उनके सारे परिवारजन पीड़ित थे। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में रहने वाले आदिवासी भील भी इन अत्याचारों के शिकार थे।

इसी समय सामन्ती शोषण व उत्पीड़न के विरूद्ध किसानों में असंतोष की आग भी धधक रही थी। बिजोलिया व बेगूं के इलाकों में किसान आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया था। किसानों ने राज्य एवं जागीरदारी प्रशासन का बहिष्कार कर दिया था।

तेजावत ने अपनी ठिकाने की नौकरी त्याग दी और उदयपुर में एक सेठ के यहाँ मुनीम का कार्य प्रारम्भ किया जिससे वे आदिवासियों के निकट सम्पर्क में आये तथा भीलों की दुर्दशा व बेबसी को जाना। तब तेजावत ने भीलों को संगठित कर एक आन्दोलन चलाने का प्रण किया ताकि आदिवासियों को अत्याचारों व शोषण से मुक्ति मिल सके। इस हेतु इन्होंने "एकी" आन्दोलन चलाया।

"एकी" आन्दोलन की शुरुआत: प्रथम चरण नवम्बर, 1921 से मार्च, 1922 तक:

मोतीलाल तेजावत ने इसी पृष्ठभूमि से ऊपर उठकर आदिवासियों व किसानों को नेतृत्व प्रदान किया। इसी समय सन् 1921 में चित्तौड़गढ़ जिले के मातृकुण्डिया तीर्थ स्थान पर एक धार्मिक मेले का आयोजन हुआ। इस मेले में लगभग एक लाख आदिवासी व किसान एकत्रित हुए। इन किसानों ने लाग–बाग बैढ–बेगार, तथा विभिन्न लागतों व करों के विरूद्ध विचार विमर्श कर आन्दोलन करने का निश्चय किया। यह भी तय किया गया कि जब तक हम महाराणा मेवाड़ से मिलकर अपनी समस्याओं का समाधान नहीं कर पाते तब तक हम कोई लगान नहीं भरेंगे। अगर कोई लगान भरेगा, तो उसके खिलाफ कार्यवाही की जायगी। इन विचारों को विभिन्न पर्चों से जगह–जगह पहुँचाया गया जिससे आसपास के इलाके के हजारों आदिवासी व किसान प्रभावित हुए व तेजावत को अपना समर्थन दिया। बाद में झाड़ोल गाँव के पास फलासिया में आदिवासी व किसानों की एक बैठक सम्पन्न हुई जिसमें तेजावत ने सारी स्थिति से लोगों को अवगत कराया व उनमें "एकी" हो गयी। "एकी" से अभिप्राय एकता से है जिसमें सभी लोगों को यह शपथ दिलायी गयी कि वे इस आन्दोलन का साथ देंगे। इसी वर्ष दूसरी बैठक बरदाणा गाँव में आयोजित की गयी, जिसमें भी करीब 700 भील व किसान एकत्रित हुए जिसमें तेजावत को भरपूर समर्थन देने का आश्वासन दिया गया। आगे चलकर तेजावत व उसके समर्थकों ने पूरे क्षेत्र का दौरा किया। लोगों को उनकी स्थिति समझाई और वे झाड़ोल से अलसीगढ गये। यहाँ के भीलों ने भी 'एकी' आन्दोलन में सहयोग देने का निश्चय किया। फिर तेजावत उदयपुर होते हुए चित्तौड़ के पास पाण्डोली गाँव गये। वही के नेता गोकुल पटेल से मिले। पाण्डोली के पास ही केसर खेड़ी में बैठक हुई, उसमें मेवाड़ मगरे की "एकी" की बात भी तय की गयी। इसी में यह तय किया गया कि मेवाड़ क्षेत्र के सभी लोग उदयपुर एकत्रित होकर महाराणा से उनके साथ हो रहे अत्याचारों व अन्याय की शिकायत करेगे। यह निश्चय तेजावत माकतला, घासा, एकलिंग जी आदि गाँवों में सभाऐं करते हुए उदयपुर पहुँचे और सभी लोग अन्य क्षेत्रों से भी उदयपुर आ गये। यहीं सभी लोगों ने आपसी विचार विमर्श कर अपने–अपने दुख, अन्याय व शोषण प्रकट किये। इन सारी शिकायतों को तेजावत ने लिपिबद्ध कर "मेवाड़ की पुकार" नामक पुस्तक तैयार की। लेकिन काफी प्रयासों के बाद भी महाराणा से सम्पर्क नहीं हो पाया तब तेजावत ने ब्रिटिश रेजीडेन्ट मिलकर सारी शिकायतें उन्हें बताने का निश्चय किया। जब यह बात महाराणा को ज्ञात हुई तो मोतीलाल तेजावत को महल में बुलाया। तेजावत ने "मेवाड़ को पुकार" लिखित सारी शिकायतें महाराणा को बतायी। इस पर निम्न निर्णय लिये गये–

(1) बेगार पर प्रतिबन्ध लगाया जायेगा।

(2) अनुचित कर एवं लागतें नहीं ली जायेंगी।।

लेकिन महाराणा ने जंगल से बेरोक टोक लकड़ी काटने, बीड़ों से घास तथा फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले सुअरों को मारने की स्वीकृति नहीं दी।

इस समझौते के बाद तेजावत व अन्य पंचों ने मिलकर यह घोषणा की महाराणा ने उनकी 21 माँगों में से 18 माँगे स्वीकार कर ली है और शेष तीन माँगों मेवाड़ के पंच छोड़ रहे है। इसके बाद सभी एकत्रित आदिवासीयों व किसान अपने घरों को लौट गये।

मोतीलाल तेजावत आन्दोलन का द्वितीय चरण 1922–1923 :

इस आन्दोलन का द्वितीय चरण सिरोही व बम्बई प्रेसीडेन्सी के कुछ इलाकों में केन्द्रित था। आन्दोलन के प्रथम चरण में काफी सफलता मिलने के बाद मोतीलाल तेजावत ने 29 दिसम्बर 1921 को एक विशाल रैली का आयोजन किया, जिसमें बहुत से आदिवासी थे। इसमें सिरोही के गरासिया जनजाति के काफी लोगों ने भी भाग लिया। इस रैली में डूंगरपुर, माही काँठा और दाँता के आदिवासी भी थे। इन लोगों ने भी "एकी" के माध्यम से अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया। सिरोही आकर गरासिया लोग संगठित हुए और यह निश्चय किया कि हम भू–राजस्व व लगान नहीं देंगे, बेगार नहीं करेंगे। ये निर्णय सामन्तों व राजाओं के लिये एक चुनौती थी। तेजावत ने इस आन्दोलन को भी अपना नेतृत्व प्रदान किया। राजस्थान के गरासिये, माही काँठा, बनास काँठा, रेवाकाँठा, खेड़ व पालनपुर के गरासियों से भी सम्बन्ध रखते थे।

उस समय सिरोही राज्य में गरासिया वन सम्पदा का उपयोग करते थे। इसके अतिरिक्त उनके पास जीवन निर्वाह का कोई अन्य साधन नहीं था। भूमि का स्वामित्व सिरोही के महाराव का था। वे अपने निकट के रिश्तेदारों, पुत्रों, सेवा करने वाले अधिकारियों को जागीर प्रदान करते थे। कुछ जागीरें मंदिरों, ब्राह्मणों, चारणों और धार्मिक संस्थाओं को भी दी जाती थी। ये सभी जागीरदार "नजराना" देने के लिये बाध्य नहीं थे। जो आदिवासी कृषि के साथ जुड़े हुए थे उनसे लगान कम लिया जाता था। इसका कारण यह था कि सभी आदिवासी कृषि से जुड़ जाऐ। भू–राजस्व वस्तु व नकद दोनों ही रूपों में जमा किया जाता था। बाढ़ व सूखे की अवस्था में आदिवासियों के साथ कुछ रियायत भी प्रदान की जाती थी। गरासिया जनजाति के लोग पहले "झूमखेती" करते थे। इससे उन्हें बहुत कम उत्पादन प्राप्त होता था। अत: आदिवासियों की स्थिति वस्तुत: काफी दयनीय थी। सिरोही के महाराव ने आदिवासियों की दशा सुधारने के कोई प्रयास नहीं किये। इसके अतिरिक्त बम्बई प्रेसीडेन्सी के गवर्नर जनरल के एजेन्ट ने आदिवासियों पर अनेकों अनुचित कर लगवा दिये जैसे – वन सम्पदा के उपयोग पर नियंत्रण लगाना, शिकार करने पर प्रतिबंध लगाना, आदिवासी पंचायत के परम्परागत अधिकारों को समाप्त कर दिया गया, शराब बनाने पर रोक लगाना, नमक की कीमत में वृद्धि करना आदि। इन प्रतिबन्धों से आदिवासियों की दशा और भी अधिक दयनीय हो गयी। जिसने आदिवासियों को आन्दोलन करने को प्रेरित किया।

मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में आदिवासियों ने 1922 में सिरोही के गाँव बालोलिया व भूला में असंतोष व्यक्त किया। महाराव के द्वारा लागू नये कानून व व्यवस्थाओं को नकारने का प्रयास किया। रियासती प्रशासन ने भील व गरासिया लोगों को लगान व बकाया भुगतान करने एवं "एकी" तोड़ने के लिये बाध्य किया। और यह भी चेतावनी दी कि यदि राज्यादेश का

उल्लंघन किया तो सैनिक कार्यवाही की जायेगी, किन्तु आदिवासी किसी भी धमकी से घबराये नहीं। एकाएक 6 मई, 1922 को सिरोही दरबार की सैनिक टुकड़ी ने रोहेड़ा तहसील (सिरोही) के बालोलिया एवं भूला गाँवों को घेर कर गोलियाँ चलानी शुरू कर दी व दोनों गाँवों में आग लगा दी। गाँव जलकर नष्ट हो गये, अनेक आदिवासी हताहत हो गये। इस प्रकार जान–माल की काफी क्षति हुई। घर–बार, पशु, अनाज व घास आदि जलकर नष्ट हो गये।

जब राजस्थान सेवा संघ, अजमेर को इस घटना की सूचना मिली तो सेवा संघ ने काण्ड की जाँच करना अत्यन्त आवश्यक समझा। इस जाँच हेतु सेवा संघ ने "भविष्य" पत्रिका के संयुक्त सम्पादक श्री सत्य भक्त व श्री रामनारायण चौधरी को भेजा। इन्होंने 15 मई को बालोलिया के पंचों का बयान लिया जिसके अनुसार "राज्य ने हमें नष्ट कर दिया और हमारे परिवारों को कुछ दिन जीवन निर्वाह करने के साधनों से भी वंचित कर दिया। हमें धमकी दी गई है कि 'एकी' की धार्मिक शपथ न तोड़ने पर मार डाले जायेंगे। हमारा राज्य पर से विश्वास उठ गया है। हम पहाड़ियों में रहना ठीक समझते है, क्योंकि हमें डर है कि यदि हमने दुबारा मकान बनाये तो वे फिर जला दिये जायेंगे। बड़े साहब के प्रति हमारे दिल में रत्ती भर भी विश्वास नहीं रहा। उनकी ही आज्ञा से सरकारी सेना ने हमें नष्ट किया है। केवल परमात्मा ही हमारा रक्षक है।"

बालोलिया से जाँच दल भूला गाँव आया। वहाँ के आदिवासी मुखिया व अन्य आदिवासियों से मिलकर बातचीत की। जिसके अनुसार उनके प्रति जो निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया गया उसे देखते हुए वे करों का भुगतान नहीं करेंगे। इस प्रकार इस जाँच दल ने इन गाँवों में हुए नुकसान का विवरण प्रस्तुत किया जिसका निम्न सारणी से अनुमान लगाया जा सकता है –

सारणी

बालोलिया व भूला गाँवों मे हुए जन–धन की हानि का विवरण

क्र.स.	जलाये गये गाँव	परिवारों की संख्या	मकानों की संख्या	मारे गये व्यक्तियों की संख्या	अन्न की क्षति	घास की क्षति	पशुओं की क्षति	अन्य वस्तुओं के मूल्य जो लूटे व जलाये गये
1.	भूला	210	315	1150	4560 मन	400 बैलगाड़ी	**25**	7,000/–
2.	बालोलिया	115	325	650	2525 मन	200 बैलगाड़ी	**83**	3,000/–

इसके पश्चात् ब्रिटिश सरकार व सिरोही दरबार की सेनाओं ने आन्दोलन को दबाने का प्रयास किया। अन्त में गरासियों व सरकार के बीच एक हुआ जिसके अनुसार –

(1) भीलों व गरासियों के साथ में अधिकारियों द्वारा सम्मानपूर्ण व्यवहार किया जायेगा

(2) लगानों में छूट प्रदान की जायेगी।

(3) दशहरे की लागत के रूप में हर गाँव से एक बकरा लिया जाएगा।

(4) बिजवा लागत को समाप्त किया जाएगा।

(5) आदिवासियों को निर्माण कार्य के लिये लकड़ी ठिकानेदार व नाकेदार दी जायेगी।

(6) गरासिया जनजाति के लोग राज्य के लिये कुछ बेगार देंगे लेकिन अधिकारियों के लिये बेगार नहीं करेंगे।

(7) आदिवासियों की परम्परागत पंचायत को पुन: अधिकार दिए जायेंगे वे अपने आपसी झगड़े सुलझा सकेंगे।

इस प्रकार मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में जो आदिवासी आन्दोलन हुआ, वह जून, 1922 में समाप्त हो गया और सिरोही दरबार ने आदिवासियों की समस्याओं को सुलझाने के लिये एक समिति गठित कर दी। निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता कि गरासिया आन्दोलन आदिवासी कृषकों का आन्दोलन था। राजपूत, ब्राह्मण व अन्य उच्च जातियों ने इसमें भाग नहीं लिया। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप आदिवासियों को बेगार व लगान में छूट प्रदान की गयी। वैचारिक आधार पर मोतीलाल तेजावत द्वारा मेवाड़ में आन्दोलन, इस आन्दोलन से भिन्न था। गरासियों व भीलों के द्वारा चलाये गये में आन्दोलन में किसी प्रकार की हिंसा नहीं की गयी लेकिन सरकारी सेना ने गरीब आदिवासियों पर अत्याचार किये। आदिवासी अपने आप को बचाने के लिये जंगलों में चले गये। विशाल स्तर पर आदिवासियों ने "एकी" को प्रस्तुत किया। सरकार ने आदिवासियों में फूट डालने का भी प्रयास किया लेकिन वे संगठित रहे। इसी प्रकार पूर्व राज्य जैसे पालनपुर, ईडर, दाँता, खेड़, बनासकाँठा, रेवाकँठा और माहीकाँठा के गरासियों की समस्याऐं भी समान थी, इसलिये 5 फरवरी, 1922 को ईडर में मोतीलाल तेजावत ने एक विशाल आदिवासियों की रैली का आयोजन किया तब ईडर दरबार ने कहा कि "भीलों की यह अवैध है।" मोतीलाल तेजावत ने कहा कि "देशी रियासतों के द्वारा भू–राजस्व वसूल करने के अलग–अलग तरीके पूर्ण रूपेण समाप्त होने चाहिये।" इन्होंने यह भी कहा कि भू–राजस्व व्यवस्था गुजरात व राजस्थान के आदिवासियों के लिये समान होनी चाहिये। ईडर दरबार ने मोतीलाल तेजावत की माँग को अस्वीकार कर दिया और उसे गिरफ्तार करने की योजना बनाई। यह घोषणा की गयी कि जो भी तेजावत को गिरफ्तार करेगा उसे ईडर व मेवाड़ सरकार द्वारा क्रमश: 200/– व 500/– रुपये पुरस्कार स्वरूप प्रदान किये जायेंगे। जब मोतीलाल तेजावत दाँता व ईडर के आदिवासियों को सम्बोधित कर रहे थे तब देशी रियासतों की सेना द्वारा उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया लेकिन बाद में वे भागकर भूमिगत हो गये। तेजावत 8 वर्ष तक भूमिगत रहे और अन्त में सन् 1929 में उन्हें ईडर दरबार ने गिरफ्तार कर लिया। बाद में तेजावत को उदयपुर के केन्द्रीय कारागृह में 7 वर्ष तक रखा गया। उन्हें सन् 1936 में जेल से रिहा कर दिया गया। पर उदयपुर में नजरबन्द कर दिया गया। सन् 1942 में उन्हें भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान पुन: जेल में बन्द कर दिया गया। सन् 1945 में उन्हें जेल से रिहा किया गया, पर फिर उनके उदयपुर से बाहर जाने पर पाबन्दी लगा दी गयी जो देश के आजाद होने तक लागू रही। बाद में उन्होंने वहीं पर शेष जीवन सामाजिक सेवाओं में गुजारा। उनका देहान्त 5 दिसम्बर, 1963 को हुआ।

18.5 सारांश

मोतीलाल तेजावत का आन्दोलन कृषि और वन की समस्याओं से सम्बन्धित था। उस समय आदिवासी भू–राजस्व व्यवस्था और नवींन वन कानूनों से पीड़ित थे। इसके अतिरिक्त सामन्ती शासन को समाप्त करने के लिये यह आन्दोलन चला था। देशी रियासतों के शासक आदिवासियों को कृषि–कार्य में व्यस्त रखना चाहते थे, ताकि उनसे अधिक भू–राजस्व वसूल किया जा सके, उनसे बेगार ली जा सके। इन्हीं व्यवस्थाओं के कारण आदिवासी आन्दोलन के लिये प्रेरित हुए।

अंग्रेजी राज आने के बाद आदिवासी व्यवस्थित रूप से कृषि गाँवों में बस गये। अंग्रेजी राज की नीति आदिवासियों को जंगलों व पहाड़ों में यानी पृथक्करण (Isolation) में रखने की थी। टॉड ने कहा है कि "अंग्रेजी राज में आदिवासी संतुष्ट हो गये। उन्होंने परिस्थितियों के साथ समझौता कर लिया।" ब्रिटिश राज की आदिवासियों के सम्बन्ध में दो उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण थीं –

(1) नकद अर्थव्यवस्था को लागू करना, तथा

(2) आदिवासियों को कृषकों की तरह स्थायी जीवन देना।

अंग्रेज यह भली प्रकार जानते थे कि भील चोट खाये नाग के समान है। उनसे राजपूतों ने उनकी हुकूम्त ले ली है। यदि उन्हें जंगलों और पहाड़ों से निकलकर बाहर आने का मौका दिया गया तो वे विद्रोह करने में देर नहीं करेंगे। अत: ब्रिटिश व देशी राजाओं की नीति यह थी कि उनका सभ्यता से पृथक्करण कर दिया जाये। उस प्रकार मोतीलाल तेजावत का आन्दोलन आदिवासियों की दशा में सुधार करने का महत्वपूर्ण आन्दोलन था।

यह आन्दोलन स्वतन्त्रता व समानता की वैचारिकी पर आधारित था। साथ ही साथ यह आन्दोलन अहिंसक भी था। मोतीलाल तेजावत का यह आन्दोलन उस समय शिखर पर था जब महात्मा गाँधी असहयोग आन्दोलन चला रहे थे। देश में विदेशी शासन के प्रति अहिंसक आक्रोश व्यक्त किया जा रहा था। “एकी” आन्दोलन ने इस मर्यादा का पालन किया।

एक महत्वपूर्ण बात इस आन्दोलन की यह भी थी कि तेजावत एक समय तक भूमिगत (8 वर्षों तक) रहे। इस अवस्था में भीलों व गरासियों ने उनका दिया।

इस प्रकार तेजावत का आन्दोलन निश्चय ही राष्ट्रीय विचारधारा के था।

18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 मोतीलाल तेजावत आन्दोलन के संदर्भ में भीलों की तत्कालीन, आर्थिक व राजनैतिक दशा बताइये।

प्रश्न 2 तेजावत के आदिवासी कृषक आन्दोलन की प्रमुख समस्याऐं. सुलझाने संदर्भ में "एकी" आन्दोलन की भूमिका की व्याख्या कीजिए।

18.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 मोतीलाल तेजावत की हस्तलिखित डायरी, अप्रकाशित।

2	जैन, पीसी	ट्राइबल एग्रेरियन मूवमेन्ट, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर 1989.
3	कांकरिया, प्रेमसिंह	भील क्रांति के प्रणेता मोतीलाल तेजावत, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर 1985
4	डॉ. पेमाराम	एग्रेरियन मूवमेंटस इन राजस्थान, जयपुर
5	शर्मा, डॉ. बृज किशोर	पीजेन्ट मूवमेंटस इन राजस्थान
6	शर्मा, डॉ. बृज किशोर	ट्राइबल रिवोल्टस।

इकाई – 19

अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना और भारत के किसान आंदोलन में 1951 तक उसकी भूमिका

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 किसानों के स्थानीय संगठनों का निर्माण तथा उनके संघर्ष

19.2.1 पंजाब

19.2.2 चम्पारण

19.2.3 खेड़ा

19.2.4 अकाली मोर्चा

19.2.5 मोपला विद्रोह

19.2.6 उत्तर प्रदेश

19.2.7 बारदोली

19.3 अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना: विस्तार, संविधान तथा कार्यक्रम

19.3.1 स्थापना सम्मेलन के प्रमुख प्रस्ताव

19.3.2 फैजपुर किसान कांग्रेस

19.3.3 संगठन के संविधान तथा झंडे का निर्णय

19.4 किसान सभा के सम्मेलन (1936–1951) तथा पारित प्रमुख प्रस्ताव

19.4.1 कौमिल्ला अधिवेशन

19.4.2 गया सम्मेलन

19.4.3 पलासा सम्मेलन

19.4.4 बिहटा सम्मेलन

19.4.5 भखना सम्मेलन

19.4.6 बेजवाड़ा सम्मेलन

19.4.7 नेत्रकोना सम्मेलन

19.4.8 सिकन्दरा राउ सम्मेलन

19.5 किसान सभा के तत्वावधान में हुये प्रमुख आंदोलन।

19.5.1 बकाश्त आंदोलन

19.5.2 तेभागा आंदोलन

19.5.3 पुन्नप्रा–बायलर आंदोलन

19.5.4 तेलंगाना आंदोलन

19.6 सारांश
19.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
19.8 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

19.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमें अध्ययन करना है –

- कृषि प्रधान देश में स्थापित कुटीर उद्योगों की एक लम्बी परम्परा थी। भारत का वस्त्र उद्योग एक निर्यातोन्मुख विकसित उद्योग था जिसके उत्पादों की माँग यूरोप के अभिजात वर्ग में थी।
- "अंग्रेजी राज" की कृपा से हुये अनौद्योगीकरण के कारण कुटीर उद्योगों का विनाश और जनसंख्या का बोझ कृषि पर बढ़ने के कारण और भी गरीबी तथा बदहाली।
- उत्पीड़क राजस्व प्रणालियों के कारण किसान को उसके उत्पादन का कम भाग और उसकी खराब हालत।
- किसानों के उत्पीड़न के विरूद्ध उनका विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय संगठन और छुटपुट आन्दोलन।
- स्थानीय संगठनों को मिला कर अखिल भारतीय संगठन का निर्माण जिसमें कांग्रेस के वामपंथी नेताओं, कार्यकर्ताओं की प्रमुख भूमिका।
- अखिल भारतीय किसान सभा के नेतृत्व में किसानों के जुझारू संघर्ष तथा उनका मूल्यांकन।

19.1 प्रस्तावना

शताब्दियों से भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है जिसकी जनसंख्या का बहुसंख्य जीवन निर्वाह के लिए कृषि उत्पादन पर निर्भर था और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति अच्छी तरह होती थी। इसके अतिरिक्त देश में कुटीर उद्योगों की एक विकसित परम्परा थी जिसमें वस्त्र उद्योग सबसे प्रमुख था जिसके उत्पाद एशिया तथा यूरोप तक निर्यात होते थे। भारत के वस्त्र उद्योग का प्रमुख उत्पाद "ढाका की मलमल" यूरोप के अभिजात परिवार की महिलाओं का चहेता परिधान बन गया था। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति तथा वस्त्र उद्योग के अभूतपूर्व विकास के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी जो अब तक भारत में निर्मित कपड़े यूरोप के बाजारों में भेज कर लाभ कमाती थी और वह उसकी व्यापारिक गतिविधियों में सबसे प्रमुख थी अब अपने देश की मिलों में निर्मित कपड़ों के लिये भारत में बाजार की तलाश में थी। इसके लिये आवश्यक था भारत के वस्त्र उद्योग की अवनति और विनाश, अन्यथा इंग्लैंड की मिलों के बने कपड़े भारत में बिक पाने सम्भव नहीं थे। कम्पनी जिसका बंगाल में राजनैतिक प्रभाव स्थापित हो चुका था और जो पहले भी जुलाहों से यूरोप में निर्यात हेतु अपनी शर्तों पर कपड़े बनवाने लगी थी अब सचेतन रूप से भारतीय वस्त्र उद्योग के विनाश के लिये प्रयासरत थी जिसमें वह बड़ी सीमा तक सफल भी रही।

भारतीय कुटीर उद्योग के विनाश तथा "अनौद्योगीकरण" और "आर्थिक दोहन" के कारण एक ओर जहाँ देश का धन इंग्लैंड जाकर भारत के लिये अनुत्पादक बनता जा रहा था वहीं जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा जो अब तक जीवन निर्वाह के लिये कुटीर उद्योगों पर

निर्भर था कृषि पर निर्भर हो गया। पहले से जनसंख्या के बोझ से लदी कृषि की बदहाली और बढ़ने लगी। बंगाल की दीवानी के अधिकार प्राप्त होने तथा कालान्तर में लगभग सम्पूर्ण भारत में राजनैतिक प्रभुत्व की स्थापना के बाद कम्पनी का जोर अधिक से अधिक राजस्व वसूल करने पर था। यही कारण था कि भारत में जितने प्रकार की सजल प्रणालियाँ – स्थायी, रैयूयतवाड़ी, महलवाड़ी, तालुकेदारी इत्यादि प्रचलित थी वह सभी किसानों के लिये उत्पीड़क सिद्ध हो रही थी। सरकार का राजस्व अदा करने और विपिन करों की अदायगी के बाद जो बचता था वह उसके तथा परिवार के जीवन निर्वाह के लिये भी पर्याप्त नहीं होता था। अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति तथा सामाजिक कार्यों के लिये उसे महाजनों से ऊँची ब्याज दर पर कर्ज लेना पड़ता था। भारतीय किसान ऋणों जाल में फंसा हुआ था और वह कर्ज का बोझ लिये पैदा होता था और उसे चुकाये अपनी सन्तान के लिये छोड़कर मर जाता था। ग्रामीण ऋणों के बारे में 1925 में एम.एल. डार्लिंग ने 625 करोड़, 1929 में केन्द्रीय बैकिंग कमेटी ने 900 करोड़ तथा 1937 में कृषि ऋण विभाग ने 1800 करोड़ रुपये का अनुमान लगाया था। परिणामस्वरूप किसानों की जमीन सूदखोर महाजनों और ऋणदाता जमींदारों के हाथ में सिमटती जा रही थी। या तो भूमिहीन होते जा रहे थे या जमीन छोटी और अलाभकर जोतों में बंटती जा रही थी। उत्तर प्रदेश में यह प्रति काश्तकार 2.5 एकड़, बंगाल में 3.1 एकड़ तथा पंजाब में 9.2 एकड़ थी। 1882 में जहाँ भूमिहीन मजदूरों की संख्या खेती पर निर्भर जनसंख्या का 1/5 या 20 प्रतिशत थी वही 1931 की जनगणना में कृषि पर निर्भर जनसंख्या का 1/3 या 33 प्रतिशत हो गयी।

भूमि पर अधिकार छिनते जाने, शासन द्वारा किसान विरोधी भूमि राजस्व व्यवस्था लागू करने, ग्रामीण ऋण ग्रस्तता और भूमि पर बढ़ते जनसंख्या दबाव के किसानों में असंतोष लगातार बढ़ता जा रहा था। किसान साल के 6 से 9 महीने बेकार। रहने को अभिशप्त था तथा उसके श्रम का और कोई सार्थक उपयोग संभव नही था।

19.2 किसानों के स्थानीय संगठनों का निर्माण तथा संघर्ष

किसानों में बढ़ रहे असन्तोष का कोई सार्थक विस्फोट इसलिये सम्भव नही हो पा रहा था कि वे गरीब तथा असंगठित थे परन्तु स्थानीय स्तर पर वे संगठित भी हो रहे थे और अपने शोषकों तथा उनके सहायक प्रशासन के विरूद्ध संघर्ष भी रहे थे। इस प्रकार के स्थानीय किसान संघर्षों का क्रम 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही हो गया था। 1857 के विद्रोह के बाद हुये इस प्रकार के स्थानीय किसान संघर्षों में 1859–60 का नील आंदोलन, 1873–76 का पाबना विद्रोह और 1875 का भारत का किसान विद्रोह प्रमुख है। विद्रोह के पूर्व हुये संथाल विद्रोह, तथा बिरसामुंडा का विद्रोह भी स्थानीय किसान संघर्षों की कोटि में आते है।

20वीं शताब्दी में कृषि की बदहाली और अकालों की निरन्तरता वृद्धि के कारण किसानों का असंतोष विस्फोटक बिन्दु तक पहुँचता जा रहा था। के प्रारम्भ से ही स्थानीय स्तर पर किसान संगठित हो रहे थे और अपने शोषकों तथा प्रशासन के विरूद्ध संघर्ष के लिये लामबंद हो रहे थे। इस प्रकार के कुछ स्थानीय किसान संघर्षों का वर्णन हम आगे करेंगे।

19.2.1 पंजाब।

शताब्दी की शुरूआत में ही पंजाब के किसान विभिन्न कारणों से उत्तेजित थे। पिछले 13 वर्षों से फसलों की खराबी के कारण उनकी आर्थिक स्थिति दयनीय होती जा रही थी और सरकार द्वारा 1906 के अन्त में भूमि कर और सिंचाई की दरों में वृद्धि ने न केवल किसानों वरन् भूस्वामियों को भी उत्तेजित किया। पंजाब के क्रान्तिकारी नेता तथा शहीद भगत सिंह के चाचा अजीत सिंह ने फरवरी 1907 में "भारतीय देशभक्त एसोसिएशन" नामक संस्था का गठन कर किसानों को संगठित किया तथा किसानों के व्यापक असंतोष को अभिव्यक्ति देने के लिये बड़ी–बड़ी सभाये आयोजित की गयी। 7 अप्रैल, 1907 को बारी दोआब के सिंचाई कर में वृद्धि के विरूद्ध लाहौर जिले में 12 हजार किसानों की विशाल सभा आयोजित की गयी। इस सभा में किसान स्वाभिमान को जागृत करने के उद्देश्य से पढ़ी गयी कविता "पगड़ी सम्भाल जट्टा पगड़ी सम्भाल ओये" किसानों में बहुत लोकप्रिय हुई और किसान आंदोलन का प्रतीक बन गयी। सभा के वक्ताओं को पुलिस द्वारा आतंकित करने के प्रयास से शहर में तनाव पैदा हो गया तथा 3 हजार लोगों ने सडकों पर प्रदर्शन किया। रेलवे वर्कशाप के मजदूरों ने अपने औजार रखकर उनका समर्थन किया तथा 2 मई को निकले 7 हजार के जुलूस को भंग करने के लिए सेना बुलानी पड़ी। आधिकारिक सूत्रों के अनुसार अप्रैल तथा मई, 1907 में पंजाब के विभिन्न भागों में किसानों की 28 सभाये आयोजित की गयी। सेना के पंजाबी सैनिकों में भी असंतोष के चिन्ह होने की खबर सरकारी गुप्तचरों द्वारा दी गयी। अंतत : आन्दोलन के प्रमुख नेता अजित सिंह तथा लाला लाजपत राय को गिरफ्तार कर बर्मा निष्कासित कर दिया गया जिसके विरोध में स्थान–स्थान पर हड़तालें तथा विरोध प्रदर्शन आयोजित किये गये।

19.2.2 चम्पारण

दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने के बाद मोहन दास करमचन्द गाँधी ने अपनी निष्क्रिय प्रतिरोध तथा सत्याग्रह की जिस तकनीक का परीक्षण स्थानीय स्तर पर किया उसमें चम्पारण तथा खेड़ा के किसान आंदोलन प्रमुख थे। चम्पारण के नील उत्पादक किसानों पर यूरोपीय मालिकों के अत्याचार, जबर्दस्ती और शोषण के विरूद्ध वहाँ के किसान नेता राजकुमार शुक्ल संघर्ष का प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में गाँधी से मिलकर उनसे किसानों के पक्ष में हस्तक्षेप का आग्रह किया। गाँधी ने किसानों से मिलकर उनका पक्ष सुना और चम्पारण से वापस जाने के सरकारी आदेश को मानने से इन्कार किया। अन्ततः सरकार द्वारा गठित एक समिति जिसमें वे भी एक सदस्य थे, ने किसानों के पक्ष को उचित ठहराया और तीनकठिया प्रथा के बदले बढ़ी हुई लगान का 25 प्रतिशत किसानों को वापस कराने का निर्णय किया। यह किसानों की सीमित सही परन्तु निर्णायक विजय थी।

19.2.3 खेड़ा

इस संघर्ष में किसान फसलों की खराबी के कारण राजस्व वसूली स्थगित करनें की माँग कर रहे थे परन्तु सरकार इस पर राजी नहीं थी। गाँधी और विट्ठभाई पटेल ने पूरी छान–बीन के बाद कहा कि फसल साधारण फसल की एक चौथाई से भी कम हुई है। अत: "राजस्व संहिता' के प्रावधानों के अन्तर्गत पूरा राजस्व माफ होना किसानों का हक है। गाँधी की अध्यक्षता वाली गुजरात सभा ने सरकार के सामने किसानों के पक्ष में याचिका प्रस्तुत की तथा विट्ठभाई पटेल ने बम्बई कौंसिल में सरकार से अपने प्रावधानों को ईमानदारी से लागू करने का निवेदन किया परन्तु सरकार पर इसका कोई प्रभाव नही पड़ा गाँधी ने उन किसानों से भी जो लगान देने में समर्थ थे उसे न चुकाने का आग्रह किया। सरकार की ओर से दमनकारी उपायों से राजस्व वसूल किया जा रहा था और जानवर तथा जमीन कुर्क किये जा रहे थे। अंतत: सरकार तथा किसान प्रतिनिधियों के बीच बातचीत में इस बात पर सहमति हो गयी कि धनी पाटीदार (पटेल) किसान जो लगान चुकाने में समर्थ है अपना लगान अदा कर देंगे परन्तु गरीब किसानों को इससे छूट मिल जायेगी।

19.2.4 अकाली मोर्चा।

यह धार्मिक भावना लिये एक किसान आंदोलन था जिसमें मुख्यत: सिख किसानों की भागीदारी थी। गुरूद्वारों के पास बहुत जमीन थी जो सम्पूर्ण सिक्ख समाज मानी जाती थी परन्तु कालान्तर में सरकार के समर्थन से गुरूद्वारों के महन्त जमींदार बन और इसका इस्तेमाल अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति की तरह करने लगे। अकाली आंदोलन प्रवृत्ति के विरूद्ध लड़ने के लिये पैदा हुआ था जिसमें कांग्रेस, क्रान्तिकारी तथा विचार के लोग भी जुड़ गये थे। अकाली गुरूद्वारों की सामाजिक भूमि पर कब्जा करने के लिए आगे बढ़े और महन्तों ने अपने किराये के गुण्डों से उन्हें रोकने का प्रयत्न किया। फरवरी, 1921 में उन्होंने लाहौर के ननकाना में लगभग 200 निहत्थे सिक्खों की हत्या करवा दी। 1922 में अमृतसर से 10 किलोमीटर दूर "गुरू का बाग" में अकालियों तथा महन्तों के गुण्डों के बीच हुये संघर्ष में पुलिस ने महन्तों के पक्ष में निशस्त्र आंदोलनकारियों पर चलाई जिसमें कई लोग घायल हुए तथा सैकड़ों लोगों को गिरफ्तार किया गया। 1923 के प्रारम्भ में ही आंदोलन के नेतृत्व में मतभेद पैदा हो जाने के कारण यह बिना किसी सार्थक उपलब्धि के समाप्त हो गया।

19.2.5 मोपला विद्रोह

यह मूलत: एक किसान आंदोलन था जिसे अपने साम्राज्यवाद तथा विरोधी चरित्र के बावजूद साम्प्रदायिक संघर्ष समझा गया। यहाँ तक कि गाँधी ने भी इसे "मोपला पागलपन" की संज्ञा दी क्योंकि मालाबार (वर्तमान केरल) में शोषक जमींदार अधिसंख्य हिन्दू थे और किसान बहुसंख्यक मुसलमान। अप्रैल 1920 में मंजेरी में आयोजित मलाबार जिला कांग्रेस सम्मेलन में खिलाफत आंदोलन का समर्थन किया गया तथा जमींदार किसान सम्बन्धों का निर्धारण करने और किसानों का शोषण रोकने के लिए कानून बनाने की माँग की गई। खिलाफत तथा किसान

आन्दोलन के लगातार जोर पकड़ने से अंग्रेजी सरकार बौखला सी गई थी। मौलाना आजाद ने इस क्षेत्र का दौरा कर आंदोलन का समर्थन किया। 18 फरवरी, 1921 को खिलाफत आंदोलन तथा कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता याकूब हसन, मोइनुद्दीन कोया, गोपाल मेनन और माधवन नायर गिरफ्तार कर लिये गये जिससे आन्दोलन का नेतृत्व स्थानीय मोपला नेताओं के हाथ में चला गया जिसमें तिरूरंगाड़ी मस्जिद के इमाम अली मुसलियार प्रमुख थे। जब उनकी गिरफ्तारी के लिये मस्जिद पर छापा मारा गया तथा उनके न मिलने पर तीन कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। यह अफवाह फैलने पर कि मस्जिद को अपवित्र किया गया है भोपाल तिरूरंगाड़ी में इकट्ठा होने लगा तथा विरोध प्रदर्शन प्रारम्भ कर दिया। इस निहत्थी भीड़ पर पुलिस द्वारा गोली चलाने पर, जिसमें कई लोग मारे गये, के बाद हिंसात्मक संघर्ष शुरू हो गया। सरकारी दफ्तरों रबड़ बागान के विदेशी मालिकों तथा जमींदारों पर हमले प्रारम्भ हो गये। कुछ विद्रोही नेता जिनमें कुनमुहम्मद हाजी प्रमुख थे इस बात का ध्यान रखा कि अकारण किसी हिन्दू जमींदार पर हमला या उसकी संपत्ति का विनाश न किया जाये। यदि कोई विद्रोही ऐसा करता तो उसे दण्ड दिया जाता और सरकार समर्थक मोपला जमींदारों को भी सजा दी गई। सरकार के दमन और साम्प्रदायिक भावना भड़काने के कारण अधिसंख्या हिंदू आंदोलन के विरोधी तथा सरकार के समर्थक बन गये। मोपला विद्रोह के नेता भी साम्प्रदायिक भावना से ग्रस्त होते गये और हिन्दुओं पर अकारण हमले तथा हत्या की घटनायें बड़ी संख्या में होने लगी जिससे आंदोलन का जन समर्थन घटने लगा और उसकी साम्प्रदायिकता ने उसे अलग–थलग कर दिया। दिसम्बर 1921 तक आंदोलन का पूरी तरह दमन कर दिया गया। इसमें सरकारी आकड़ों के अनुसार 2337 विद्रोही मारे गये तथा 1652 घायल हुए परन्तु गैर सरकारी अनुमानों के अनुसार 10 हजार से अधिक लोगों की मृत्यु हुई। 45404 विद्रोही या तो पकडे गये या आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार घोर दमन के बीच यह किसान आंदोलन जिसे भ्रमवश गाँधी ने साम्प्रदायिक संघर्ष समझा था समाप्त हो गया और मोपला बाद के किसान आंदोलन में भी शामिल नही हुये।

19.2.6 उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र में होमरूल लीग के कार्यकर्ताओं ने किसानों के एक संगठन किसान सभा का गठन किया। फरवरी 1918 में गौरी शंकर मिश्र, इन्द्र नारायण द्विवेदी तथा मदन मोहन मालवींय के प्रयास से उत्तर प्रदेश किसान सभा का गठन हुआ तथा द्विवेदी ने नई संवैधानिक व्यवस्था में किसान हितों का ध्यान रखने के लिये सरकार को एक याचिका प्रस्तुत की। जून, 1919 तक प्रदेश की 173 तहसीलों में किसान सभा की 450 शाखाएं गठित की गयी। किसान प्रतिनिधियों ने 1918 के दिल्ली तथा 1919 के अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन में बड़ी संख्या में भाग लिया।

1919 के अन्तिम दिनों में किसानों का संगठित विद्रोह प्रतापगढ़, फैजाबाद, रायबरेली आदि जिलों में प्रारम्भ हो गया जिसका नेतृत्व बाबा रामचन्द्र (महाराष्ट्र के ब्राह्मण सन्यासी), जानकीदास, दुर्गपाल सिंह तथा झिंगुरी सिंह आदि कर रहे थे। बाबा रामचन्द्र में संगठन की

अपार क्षमता थी और रामचरित मानस की चौपाइयों के माध्यम से उन्होंने किसानों को अन्याय तथा अत्याचार का प्रतिकार करने के लिये प्रेरित किया। जून, 1920 में उन्होंने जौनपुर तथा प्रतापगढ़ के किसानों के जत्थे के साथ इलाहाबाद में जवाहरलाल नेहरू से भेंट की तथा किसानों की हालत देखने का अनुरोध किया। जून तथा–अगस्त के बीच नेहरू ने कई बार अवध के ग्रामीण इलाकों का दौरा कर किसान सभा के स्थानीय कार्यकर्ताओं से सम्पर्क स्थापित किया। किसान नेता बाबा रामचन्द्र की झूठे आरोप में गिरफ्तारी के बाद किसानों ने प्रतापगढ़ जेल को घेर लिया और सरकार को उन्हें छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा। जनवरी 1921 में संघर्ष ने हिंसात्मक रूख ग्रहण कर लिया। जमींदारों, तालुकेदारों के घरों तथा गोदामों पर हमला कर उन्हें लूट लिया गया। इस संघर्ष में रायबरेली जेल में बंद किसान नेताओं जानकीदास तथा रामचन्द्र को छुड़ाने के लिए इकट्ठा किसानों की उग्र तथा हिंसात्मक भीड़ पर पुलिस ने गोली चलाई जिसमें कई किसान मारे गये। इसका वर्णन करते हुए अपनी आत्मकथा में जवाहर लाल नेहरू ने लिखा – "जैसे ही मैं नदी के पुल के पास पहुँचा। मैने गोली चलने की आवाजें सुनी। मुझे सेना ने पुल पर रोक दिया। वहाँ बहुत से किसान गोली चलने से मारे गये। उन्होंने उन लोगों की आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया जिनका वे विश्वास नहीं करते थे।" नेताओं की गिरफ्तारी तथा घोर दमन के बीच यह आदालन धीरे–धीरे समाप्त हो गया। 1921 के अन्त तथा 1922 के प्रारम्भ में सुल्तानपुर, बहराइच, हरदोई तथा सीतापुर में किसानों के अन्य संगठन 'एका' संघ का गठन हुआ जिसके नेता छोटी जातियों के किसान शाहरेब और मदारी पासी थे। यह आंदोलन अधिक संगठित, जुझारू और हिंसात्मक था जिसे सरकार ने डकैतों की कार्यवाही बताया तथा घोर दमन किया ।

19.2.7 बारदोली

सूरत (गुजरात) के बारदोली तालुके में 1928 में लगान बन्दी का आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। 1926 में बम्बई सरकार ने राजस्व में 30 प्रतिशत की वृद्धि कर दी थी। कांग्रेस की जाँच समिति ने इस वृद्धि को अनुचित तथा उत्पीड़क बताया तथा ''यंग इंडिया'', "नवजीवन", "बॉम्बे क्रानिकल", "देशबन्धु", ''मराठा'' आदि समाचार पत्रों ने भी इसके विरूद्ध लेख तथा सम्पादकीय प्रकाशित किये। संवैधानिक संघर्ष में आस्था रखने लोगों ने विधान परिषद में यह मामला उठाया तथा जुलाई, 1927 में सरकार ने वृद्धि 30 प्रतिशत के स्थान पर लगभग 22 प्रतिशत करने की घोषणा की जिससे कोई भी संतुष्ट नहीं हुआ। उन्होंने किसानों से उतना ही लगान देने का आग्रह किया जितना वे पहले से दे रहे थे। कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने किसानों से लगान देना बन्द करने का अनुरोध किया बल्लभ भाई पटेल ने गाँधी की अनुमति से 60 गाँवों के किसान प्रतिनिधियों की बैठक आयोजित की तथा 5 फरवरी, 1928 को, जिस दिन से बढ़ा लगान देय था, बारदोली मे एक बैठक बुलाकर किसानों को प्रस्तावित आन्दोलन के खतरों से परिचित कराया। 12 फरवरी को किसानों ने ईश्वर और खुदा के नाम पर लगान न अदा करने की शपथ ली सरकार इस आंदोलन के दमन में सारी सीमाओं का अतिक्रमण कर रही थी परन्तु

किसान इसके बीच भी अविचलित रहे। ढुलमुल किसानों का सामाजिक बहिष्कार किया गया। बम्बई विधान परिषद के कई सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिया। अंत में सरकार ने इस समस्या पर विचार करने के लिए न्यायिक अधिकारी ब्रुमफील्ड तथा राजस्व अधिकारी मैक्सवेल की एक समिति गठित की जिसने समस्या के सभी पहलुओं का अध्ययन कर अप्रैल, 1929 में प्रस्तुत अपनी रपट में 30 प्रतिशत के स्थान पर राजस्व में 6.03 प्रतिशत की वृद्धि का प्रस्ताव किया। पूरे देश में बारदोली के किसानों की विजय से एकजुटता व्यक्त करने के लिए बारदोली दिवस मनाया गया तथा सभाये आयोजित की गयी।

19.3 अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना: विस्तार, संविधान तथा कार्यक्रम

20वीं शताब्दी के दूसरे तथा तीसरे दशक में स्थानीय किसान संगठनों के निर्माण और उनके नेतृत्व में हुए संघर्षों की स्थानीय प्रकृति तथा घोर सरकारी दमन के कारण उन्हें बहुत सफलता प्राप्त नहीं हो सकी थी। देश की राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थिति विषम थी। बहुवर्गीय संगठन होने के कारण कांग्रेस संगठन के रूप में किसानों के किसी वर्गीय आंदोलन का नेतृत्व नहीं करना चाहती थी क्योंकि इससे उसके जमींदार समर्थकों तथा सदस्यों के नाराज होने का डर था। 1929 की विश्वव्यापी मन्दी के दौर में कृषि उत्पादों का मूल्य निरंतर कम होता जा रहा था और किसान जीवनोपयोगी सामग्री खरीदने में भी असमर्थ होते जा रहे थे। उत्तर प्रदेश में किसान सभा, मालाबार में कृषक संघम, पंजाब में कीर्ति किसान पार्टी, बंगाल में मुजफ्फर अहमद के नेतृत्व में किसान संगठन, आंध्र में एन.जी. रंगा की भारतीय किसान परिषद और आन्ध्र जमीन रैयूयत एसोसिएशन आदि किसानों को संगठित करने और उनकी स्थानीय समस्याओं पर संघर्ष करने का काम कर रहे थे।

देश के राजनैतिक परिदृश्य पर बहुत से नये तथा सार्थक परिवर्तन हो रहे थे। अक्टूबर, 1934 में बम्बई में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन हो चुका था जिसमें आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण, डॉ. राम मनोहर लोहिया, ई.एम.एस न्म्बूदरीपाद, पी. सुंदरैया, अच्युत पटवर्धन, एन.जी. रंगा, मीनू मसानी आदि शामिल थे। यह पार्टी कांग्रेस के समानान्तर नहीं उसके सहयोगी संगठन के रूप में कांग्रेस की परिधि में ही काम कर रही थी. परन्तु उसका आर्थिक दृष्टिकोण कांग्रेस के स्थापित दृष्टिकोण से अलग था। वह वर्गीय संगठनों के निर्माण तथा वर्गीय आंदोलनों का नेतृत्व करने और कांग्रेस का आर्थिक दृष्टिकोण बदलने की पक्षधर थी। 16 जनवरी, 1936 को कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के प्रमुख नेताओं की मेरठ में हुई बैठक में जिसमें वामपंथी विचारों के अन्य नेताओं ने भाग लिया था, किसानों की समस्याओं और उनकी बदहाली पर व्यापक विचार विमर्श के बाद किसानों के एक अखिल भारतीय संगठन के निर्माण की अनिवार्यता को रेखांकित किया गया तथा प्रो. एन. जी. रंगा और जय प्रकाश नारायण को विभिन्न प्रांतों के किसान संगठनकर्ताओं से बातचीत कर अखिल भारतीय किसान कांग्रेस का सम्मेलन आयोजित करने का दायित्व सौंपा गया।

इस निर्णय के अनुरूप अप्रैल, 1936 में लखनऊ में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के अवसर पर विभिन्न प्रांतों के किसान प्रतिनिधियों का सम्मेलन आयोजित किया गया। सम्मेलन में भाग लेने वालों में स्वामी सहजानन्द सरस्वती (बिहार), एन.जी. रंगा (आंध्र), इंदुलाल याज्ञिक (गुजरात), मोहन लाल गौतम (उत्तर प्रदेश), के.एम. अशरफ (उत्तर प्रदेश), सोहन सिंह जोश तथा अहमद दीन (पंजाब), कमल सरकार और सुधीन प्रामाणिक (बंगाल) तथा जय प्रकाश नारायण एवं डॉ. राममनोहर लोहिया (कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी संगठन) प्रमुख थे। इस प्रकार हम देखते है कि स्थापना सम्मेलन में ही भारत के लगभग सभी प्रमुख भागों के किसान नेता और संगठनकर्ता उपस्थित थे। 11 अप्रैल 1936 के प्रारम्भ हुये सम्मेलन में मोहनलाल गौतम ने स्वागत समिति के अध्यक्ष के रूप में आगत प्रतिनिधियों का स्वागत किया। कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू ने किसान कांग्रेस की स्थापना का स्वागत किया और सबसे उत्पीड़ित किसानों के संघर्ष के साथ एकजुटता व्यक्त की। सम्मेलन के अध्यक्ष स्वामी सहजानन्द ने भारत में किसानों की दुर्दशा पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए वर्तमान भूमि राजस्व प्रणाली की कटु आलोचना की। उन्होंने कहा कि जमींदारी प्रथा समस्त बुराइयों की जड़ है, किसान सब कुछ पैदा करता है परन्तु अपने उपयोग के लिये कुछ भी नहीं बचा पाता। डॉ. लोहिया ने कहा कि जमींदार किसानों से वास्तविक राजस्व का कई गुना वसूल कर रहे है। उन्होंने बंगाल का उदाहरण देकर बताया कि जमींदार किसानों से 18 करोड़ राजस्व वसूल करते है, परन्तु सरकार को केवल 3 करोड़ ही अदा करते है। सोहन सिंह जोश ने जमींदारी प्रथा की समाप्ति और साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष तेज करने का आह्वान किया।

19.3.1 स्थापना सम्मेलन के प्रमुख प्रस्ताव

सम्मेलन में पारित प्रमुख प्रस्तावों में निम्नलिखित बातें कही गयी –

(क) किसान कांग्रेस का उद्देश्य किसानों, मजदूरों और अन्य शोषित वर्गो, को पूर्ण आर्थिक तथा राजनैतिक स्वतंत्रता दिलाना है। उसका मुख्य कार्य तात्कालिक राजनैतिक तथा आर्थिक माँगों के लिये लड़ने वाले संगठन का निर्माण करना होगा जिससे उत्पीड़न का विरोध करने वालों की राष्ट्रीय आंदोलन में हिस्सेदारी सुनिश्चित की जा सके और भारत की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त की जा सके)

(ख) विभिन्न प्रांतों में लागू अलग–अलग तरह की राजस्व प्रणालियाँ जैसे जमींदारी (उड़ीसा, बंगाल, बिहार, मद्रास और असम) तालुकेदारी (उत्तर प्रदेश तथा गुजरात) मालगुजारी (मध्य प्रान्त) जेन्मी (मालाबार) ब्रिटिश सरकार द्वारा संरक्षित और समर्थित है तथा– किसानों के लिये अनैतिक, शोषक और उत्पीड़क है। ऐसे सभी प्रकार के भूमि स्वामित्व समाप्त कर भूमि के समस्त अधिकार किसानों के पास होने चाहिए।

(ग) रैयूयतवाड़ी क्षेत्रों में जहाँ किसान सीधे सरकार को राजस्व अदा करते है लगान बहुत अधिक है जो किसानों की बढ़ती निर्धनता का कारण है। इसे समाप्त कर टैक्सेशन कमेटी की संस्तुतियों के आधार पर 500 या उससे अधिक आमदनी पर क्रमश: वृद्धिवाला भूमि राजस्व निर्धारित किया जाना चाहिए।

सम्मेलन ने किसान घोषणापत्र का बुनियादी प्रारूप तैयार किया जिसे अंतिम रूप देकर अखिल भारतीय किसान समिति की बम्बई बैठक में अगस्त 1936 में पारित गया। सम्मेलन ने समय–समय पर "किसान बुलेटिन" प्रकाशित करने का निश्चय किया जिसके सम्पादन के दायित्व गुजरात के किसान नेता इंदूलाल याज्ञिक को सौंपा गया।

स्थापना सम्मेलन में स्वामी सहजानन्द सरस्वती को अध्यक्ष तथा प्रो. एन.जी. रंगा को महासचिव चुना गया। अखिल भारतीय किसान समिति की बैठक अगस्त 1936 में बम्बई में हुई। जिसमें किसान घोषणापत्र को अन्तिम रूप देकर प्रकाशित किया गया। इसकी मूल माँगों में लखनऊ सम्मेलन में पारित तीनों प्रस्तावों के अतिरिक्त ग्रामीण ऋण की समस्या को जमींदारों साहूकारों के हाथ में किसानों के शोषण का प्रमुख हथियार बताया गया तथा सरकार से सभी पुराने कर्जों को रद्द कर एक ऐसे तंत्र का निर्माण करने को कहा गया जो किसानों के लिए आसान शर्तों पर ऋण की व्यवस्था करें। समिति ने भूमिहीन तथा 5 एकड़ से कम जोत वाले किसानों को सहकारी आधार पर कृषि के लिए ऐसी जमींदारी की जमीने (लगभग एक तिहाई) देने की माँग की जिस पर कृषि कार्य नहीं हो पाता और वह अनुपयोगी और अनुत्पादक रह जाती है। स्थापना सम्मेलन में ही संगठन के लिये एक संविधान निर्माण समिति गठित की गयी। किसान समिति की बम्बई बैठक के बाद 16 अगस्त 1936 को अध्यक्ष स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने पत्रकार वार्ता में सभी किसानों तथा किसान कार्यकर्ताओं से 1 सितम्बर को पूरे देश में किसान दिवस मनाने का आह्वान किया जिसमें सभाओं में लखनऊ सम्मेलन और बम्बई बैठक के प्रस्तावों के सम्बन्ध में किसानों में चेतना जागृत की जा सके।

19.3.2 फैजपुर किसान कांग्रेस

किसान कांग्रेस का ढाँचा तो तैयार हो गया था लेकिन इसका कोई निश्चित स्वरूप तथा संगठन नहीं बन सका था। दिसम्बर 1936 के अन्तिम दिनों में महाराष्ट्र फैजपुर में कांग्रेस का दूसरा सम्मेलन 25–26 दिसम्बर को सम्पन्न हुआ जिसकी अध्यक्षता नव निर्वाचित अध्यक्ष प्रो. एन.जी. रंगा ने की। करीब 500 किसानों ने 200 मील दूर मनमाड से 1 दिसम्बर को बी.एम. भुसकुटे तथा जे. बुखारी के नेतृत्व में मार्च प्रारम्भ किया और रास्ते के गाँवों में सभा करते और संगठन के उद्देश्यों के बारे में चेतना जगाते 25 दिसम्बर को फैजपुर पहुँचे जहाँ कांग्रेस अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू, एम.एन. राय, आचार्य नरेन्द्र देव, स्वामी सहजानन्द, रंगा, जे.पी, डाँगे तथा मीनू मसानी आदि नेताओं ने उसका स्वागत किया।

किसान कांग्रेस के सम्मेलन में 1935 के भारत सरकार अधिनियम को साम्राज्यवादियों का हितरक्षक बताकर उसका विरोध किया गया। स्पेन के फासिस्ट विरोधी संघर्ष का समर्थन करते हुए उसमें लड़ रहे किसान मजदूरों और बुद्धिजीवियों के संघर्ष से एकजुटता व्यक्त की गयी। बम्बई बैठक में पारित किसान घोषणा पत्र पर आधारित "कांग्रेस के कृषि कार्यक्रम" (फैजपुर एग्रेरियन प्रोग्राम) जो 1937 के चुनावों में कांग्रेस के घोषणा पत्र के प्रमुख भाग के रूप

में प्रचारित हुआ, को प्रगतिशील कार्यक्रम मानते हुये उसका समर्थन किया गया। इस कार्यक्रम के अनुसार–

1 वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार लगान तथा राजस्व निर्धारित कर कम से कम 50 प्रतिशत की कमी की जाए।

2 अनुत्पादक जोतों को लगान तथा राजस्व से मुक्त रखा जाए।

3 कृषि की आमदनी का हिसाब लगाकर एक सीमा से अधिक आय पर आयकर तथा मृत्यु कर लगाया जाए।

4 नहरों से सिंचाई की दर में काफी कमी की जाए।

5 सभी प्रकार के सामन्ती करों, नजराना, बेगार पर तत्काल रोक लगाई जाए और लगान से अधिक राजस्व माँगना अवैधानिक घोषित किया जाए।

6 भूमि पर किसानों का स्वामित्व स्थायी बनाया जाए।

7 सभी खेतों को एकत्रित कर चकबन्दी करायी जाय और सहकारी कृषि के लिए प्रयास किये जाए।

8 ग्रामीण ऋणों का सिर तोड़ बोझ समाप्त किया जाए। इसकी जाँच के लिए विशेष आयोग बनाये जायें तथा किसानों की अदा करने की सामर्थ्य से बाहर ऋण को समाप्त किया जाए। ऋणों की वसूली तुरंत रोक दी जाए तथा सस्ते ब्याज पर ऋण सुविधायें उपलब्ध करायी जाये।

9 सभी प्रकार का बकाया लगान समाप्त किया जाये।

10 गाँवों में सार्वजनिक चारागाहों की व्यवस्था की जाये। तालाबों, कुँओं और जंगलों पर जन अधिकारों को मान्यता देकर उनका अतिक्रमण करने वालों को दण्डित किया जाये।

11 किसानों की बेदखली संबंधी नियमों में परिवर्तन किया जाये और बकाया लगान उसी प्रकार वसूल की जाये जैसे सरकार जमींदारों से मालगुजारी का बकाया वसूल करती है अर्थात् चल सम्पत्ति को बेचकर तथा जमीन अस्थायी रूप से दूसरे को लीज पर देकर।

12 किसानों के मकान बनाने तथा पेड़ लगाने के अधिकार को मान्यता दी जाये उन्हें अपने बनाये मकानों तथा लगाये पेड़ों का पूर्ण स्वामी स्वीकार किया जाये।

13 किसानों और कृषि मजदूरों की जीवन निर्वाह योग्य मजदूरी तथा काम करने योग्य उचित स्थितियों की रक्षा हेतु प्रावधान किये जायें।

14 किसान संघों को उत्साहित किया जाये और उनको मान्यता दी जाये।

इस प्रकार रंगा को अध्यक्ष चुनने के अतिरिक्त स्वामी सहजानन्द को महासचिव तथा इन्दुलाल याज्ञिक, बंकिम मुखर्जी तथा बी.पी.एल. बेदी को संयुक्त सचिव चुना गया।

19.3.3 संगठन के संविधान तथा झंडे का निर्णय

अखिल भारतीय किसान कमेटी की बैठक 14 जुलाई, 1937 को गया (बिहार) के नियामतपुर में हुई। संविधान निर्माण हेतु गठित उपसमिति ने इस बैठक में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत

की। इसमें संगठन का नाम अखिल भारतीय किसान कांग्रेस के स्थान पर अखिल भारतीय किसान सभा रखने की संस्तुति की गयी जिसे कमेटी ने स्वीकार किया।

संविधान के सम्बन्ध में निर्णय किया गया कि यह किसानों का संगठन होगा जो विभिन्न स्तरों, प्रदेशों, जिलों, तहसीलों इत्यादि में इसी नाम से काम करेगा। इसकी कौंसिल तथा समितियाँ विभिन्न स्तरों पर निर्वाचित संस्थायें होगी जिसका चुनाव प्रतिनिधि सम्मेलनों में सामान्य सदस्य करेंगे। नियामतपुर बैठक में संगठन के आधिकारिक झंडे के रूप में लाल झंडे के प्रयोग पर विचार किया गया जिसका प्रयोग कई प्रांतीय संगठन अब तक कर रहे थे परन्तु इस सम्बन्ध में कोई औपचारिक निर्णय नहीं किया जा सका। किसान कमेटी की अगली बैठक 27–28 अक्टूबर, 1937 को कलकत्ता में हुई जिसमें झंडे के बारे में औपचारिक फैसला किया गया। झंडा लाल कपड़े का आयताकार कपड़ा था। जिस पर हंसिया और हथौड़ा का निशान अंकित था बाद में नवम्बर 1957 में हथौड़े को इससे हटा दिया गया ।

अखिल भारतीय किसान कांग्रेस के गठन के बाद ही सभी प्रांतीय संगठनकर्ताओं तथा प्रमुख कार्यकर्ताओं को यह निर्देश दिया गया था कि वे अपने स्थानीय संगठनों को इस अखिल भारतीय संगठन से सम्बद्ध कर दें। अधिकतर प्रदेशीय संगठनों ने अपने संगठनों को इस अखिल भारतीय संगठन से सम्बद्ध कर दिया था। उत्तर प्रदेश के प्रांतीय संगठन ने 1938 में (सबसे देर से) अपने को अखिल भारतीय किसान सभा में सम्बद्ध किया।

19.4 किसान सभा के सम्मेलन (1936–1951) तथा पारित प्रमुख प्रस्ताव

अखिल भारतीय किसान सभा के अप्रैल 1936 में हुए स्थापना सम्मेलन और दिसंबर 1936 में हुए फैजपुर सम्मेलन की चर्चा हम पीछे कर चुके है।

19.4.1 कौमिल्ला अधिवेशन

फैजपुर सम्मेलन के बाद अखिल भारतीय किसान सभा का अगला राष्ट्रीय सम्मेलन त्रिपुरा जिले (तत्कालीन बंगाल प्रदेश) के कौमिल्ला नामक स्थान में 11 से 14 मई 1938 तक हुआ जिसकी अध्यक्षता नव निर्वाचित अध्यक्ष स्वामी सहजानन्द सरस्वती (वर्तमान महामंत्री) ने की। यह किसान सभा के सदस्यों द्वारा विधिवत् निर्वाचित प्रतिनिधियों का पहला राष्ट्रीय सम्मेलन था जो 5.46 लाख सदस्यों का प्रतिनिधित्व करता था। ये सदस्य बिहार, पंजाब, बंगाल, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, सुरमा घाटी (असम), मध्यप्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात तथा महाराष्ट्र का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

सम्मेलन के प्रारम्भ में वर्तमान महामंत्री स्वामी सहजानन्द ने विभिन्न प्रदेशों में संगठन की स्थिति, उसका विस्तार तथा किसान गतिविधियों और संघर्षों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जिसमें बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, मध्य प्रांत, गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश की प्रदेश किसान सभा की गतिविधियों, प्रांतीय सम्मेलनों आदि का ब्यौरा दिया गया। उन्होंने प्रदेशों की कांग्रेस सरकारों के किसान विरोधी रवैये

की आलोचना की क्योंकि कांग्रेस ने किसानों की माँगों को ही अपने घोषणापत्र का आधार बनाकर सत्ता प्राप्त की थी। स्वामी जी ने किसान सभा को किसानों की आर्थिक तथा राजनैतिक माँगों के साथ ही उसे साम्राज्य विरोधी संघर्ष का एक जुझारू उपकरण बनाने पर बल दिया और खेत मजदूरों की बदहाली के विरूद्ध किसानों को संघर्ष के लिये प्रेरित किया।

अध्यक्ष के रूप में अपने संबोधन में उन्होंने किसान सभा और कांग्रेस के संगठनात्मक अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा कि जिस प्रकार कांग्रेस के सदस्यों के बहुसंख्यक हिन्दू होने पर भी उसे हिंदू संगठन नहीं कहा जा सकता उसी प्रकार कांग्रेस के सदस्यों में किसानों के बहुमत के बावजूद उसे किसान संगठन नहीं कहा जा सकता। किसानों के शोषण और उन पर अत्याचार की उपेक्षा के लिए उन्होंने कांग्रेस के नेताओं की आलोचना की और कहा कि इससे वे किसानों का विश्वास खो देंगे तथा कांग्रेस की प्रतिष्ठा भी कम होगी। सम्मेलन में कुल 32 प्रस्ताव पारित किये गये जिनमें किसानों की वर्गीय, आर्थिक तथा राजनैतिक माँगों के अतिरिक्त संविधान सभा के निर्माण की माँग प्रमुख थी। किसान सभा के संविधान, उद्देश्य और झंडे को भी सम्मेलन ने अपनी स्वीकृति दी तथा स्पष्ट किया कि 18 वर्ष से अधिक. उम्र का कोई व्यक्ति जो संगठन के उद्देश्यों से सहमत हो और इसके लिये काम करना चाहता हो एक आना सदस्यता शुल्क देकर किसान सभा का सदस्य बन सकता है।

14 मई को हुई अखिल भारतीय किसान कौंसिल की बैठक में अध्यक्ष के अतिरिक्त अन्य पदाधिकारियों का चुनाव किया गया जिसमें एन.जी. रंगा महासचिव, याज्ञिक, बंकिम मुखर्जी, बेदी तथा अवधेश्वर प्रसाद सिन्हा (बिहार) संयुक्त सचिव और मियाँ इफितिखारूद्दीन (पंजाब) कोषाध्यक्ष चुने गये। स्वामी जी ने किसान बुलेटिन के पाक्षिक प्रकाशन पर संतोष व्यक्त करते हुए इसके सम्पादक इंदुलाल याज्ञिक की सराहना की।

19.4.2 गया सम्मेलन

अखिल भारतीय किसान सभा का चौथा अधिवेशन 9–10 अप्रैल, 1939 को गया (बिहार) में सम्पन्न हुआ। इसके पूर्व 7–8 अप्रैल को विषय समिति की बैठक नव निर्वाचित अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में हुई। इसमें गुजरात, बरार, सिंध, आन्ध्र, असम, उ प्र., मध्य प्रांत, बिहार, बंगाल के प्रतिनिधियों ने भाग लिया परन्तु महाराष्ट्र, उड़ीसा, मालाबार, तमिलनाडु, पंजाब तथा सीमा प्रीत के किसी प्रतिनिधि ने भाग नही लिया। महासचिव रंगा ने किसान सभा की पिछले वर्ष की गतिविधियों तथा सभा के नेतृत्व में हुए किसान संघर्षों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। सम्मेलन द्वारा पारित राजनैतिक प्रस्ताव में प्रान्तीय स्वायत्ता के खोखलेपन और निर्वाचित सरकारों की कमजोर इच्छाशक्ति तथा अधिकारहीनता को स्पष्ट किया गया। तथा एक स्वतंत्र जनतांत्रिक, राज्य की अनिवार्यता को रेखांकित किया गया। प्रस्तुत प्रस्ताव में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर विचार करते हुये निकट भविष्य में विश्वव्यापी युद्ध की आशंका व्यक्त की गयी तथा किसानों और मजदूरों का एक संयुक्त मोर्चा कायम करने की जरूरत पर जोर दिया गया। किसान सभा के भविष्य के कार्यो को रेखांकित करते हुए प्रस्ताव में कांग्रेस, किसान सभा, अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस तथा अन्य साम्राज्य विरोधी संगठनों

की एकता और संयुक्त कार्यवाही पर जोर दिया गया। जन संघर्षों के माध्यम से राजनैतिक परिदृश्य में कार्यरत साम्प्रदायिक शक्तियों के मंसूबों को विफल करने की आवश्यकता अनुभव की गयी। सम्मेलन में पारित अन्य प्रस्तावों में जमींदारी की समाप्ति पर जोर दिया गया तथा छोटे जमींदारों को किसान सभा की ओर करने का प्रयास करने पर बल दिया गया। एक प्रस्ताव में किसान सभा ने अपनी तात्कालिक माँगों की सूची प्रस्तुत की जो इस प्रकार है –

1 सभी कृषि उत्पादन तथा किसान के घर, खड़ी फसल, पशु तथा बर्तन किसी भी परिस्थिति में जब्त नहीं किया जाना चाहिए।

2 किसानों को अधिकतम 6 प्रतिशत ब्याज दर पर ऋण की सुविधा उपलब्ध करायी जाये।

3 कर्ज की डिक्री में किसानों को जेल न भेजा जाये।

4 लगान, राजस्व या ऋण की अदायगी न होने पर किसानों की जमीन नीलाम न की जाये तथा 12 वर्ष से अधिक समय से बंधक भूमि को मुक्त माना जाये।

5 भूमिहीन कृषि मजदूरों की हालत सुधारने, उनके ऋणों की वसूली स्थगित करने की माँग की गयी। प्रदेश की निर्वाचित कांग्रेस सरकारों से अपेक्षा गयी कि वह इन माँगों को सहानुभूतिपूर्वक पूरा करने का प्रयत्न करेगी।

11 अप्रैल को हुई किसान कमेटी की बैठक में नये पदाधिकारियों का चुनाव किया गया। अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्र देव के अतिरिक्त रंगा और मुजफ्फर अहमद उपाध्यक्ष, स्वामी सहजानन्द सरस्वती को महासचिव, याज्ञिक, दामोदर स्वरूप, बुखारी वासुदेव राव को संयुक्त सचिव और जमुना कारजी को कोषाध्यक्ष चुना गया। केन्द्रीय किसान कौसिल के सदस्यों के रूप में जय प्रकाश नारायण, अवधेश्वर प्रसाद सिन्हा, यदुनन्दन शर्मा (बिहार) मोहन लाल गौतम, योगेश चटर्जी (उत्तर प्रदेश) के.एस.एन. मूर्ति (पंजाब) पी.डी. भराठे (मध्यप्राँत) मालती चौधरी (उड़ीसा) शिव नाथ बनर्जी, बंकिम मुखर्जी, नीहारेन्नु दत्त मजूमदार तथा एम अब्दुल्ला रसूल (बंगाल) को निर्वाचित किया गया। किसान सभा का स्वयं सेवक दल गठित करने पर विशेष जोर दिया गया।

19.4.3 पलासा सम्मेलन

द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने के बाद प्रान्तों की कांग्रेस सरकार ने त्यागपत्र दे दिया सभा ने भी भारत को युद्ध में बिना उसकी इच्छा के शामिल करने का विरोध किया। घोर दमन तथा सरकारी अवरोध के वातावरण में किसान सभा का पाँचवा सम्मेलन आन्ध्र के पलासा मे 24–26 मार्च, 1940 को सम्पन हुआ। अध्यक्ष राहुल जी की अनुपस्थिति में पंजाब के किसान नेता बाबा सोहन सिंह भखना ने सम्मेलन की अध्यक्षता की परन्तु राहुल जी का अध्यक्षीय भाषण उनकी अनुपस्थिति में पढ़ा गया। सम्मेलन ने किसानों तथा कृषि समस्याओं के प्रति सरकार के रूख की आलोचना की और युद्ध के कारण किसानों की बढ़ती हुई कठिनाइयों के लिए सरकार को जिम्मेदार ठहराया। एक प्रस्ताव में भारत के राष्ट्रीय संग्राम में किसानों और मजदूरों की नेतृत्वकारी भूमिका को रेखांकित किया गया। सरकार के विरोधी रूख के कारण भाग

लेने वाले प्रतिनिधियों की संख्या केवल 100 थी क्योंकि बहुत से प्रमुख कार्यकर्ता अपनी गिरफ्तारी के भय से भूमिगत हो गये थे।

27 मार्च को हुई किसान कमेटी की बैठक में अध्यक्ष राहुल जी के अतिरिक्त निम्नलिखित पदाधिकारी निर्वाचित किये गये प्रो. एन.जी. रंगा तथा मोहन लाल गौतम–उपाध्यक्ष, स्वामी सहजानन्द सरस्वती–महासचिव, याज्ञिक, एम.ए. रसूल, भाग सिंह और वीं. शिवलिंग प्रसाद संयुक्त सचिव।

सम्मेलन की समाप्ति के कुछ दिनों बाद स्वामी जी की गिरफ्तारी के कारण इन्दुलाल याज्ञिक ने महासचिव का पद सम्भाला तथा उनके भी गिरफ्तार हो जाने पर एम. अब्दुल्ला रसूल ने इस पद का दायित्व ग्रहण किया।

19.4.4 बिहटा सम्मेलन

लगभग दो वर्षो का अघोषित प्रतिबन्ध झेलने के बाद 1942 के प्रारम्भ में किसान सभा ने फिर पूरे उत्साह से अपनी गतिविधियाँ प्रारम्भ की। कई प्रमुख नेता जेल से रिहा कर दिये गये और अपनी संगठनात्मक गतिविधियाँ प्रारम्भ करने में समर्थ हो गये यद्यपि अभी भी कई प्रमुख नेता तथा कार्यकर्ता या तो जेल में थे या भूमिगत जीवन बिता रहे थे ।

अखिल भारतीय किसान सभा का छठवाँ सम्मेलन 29–31 मई, 1942 को बिहार के बिहटा में सम्पन हुआ जिसकी अध्यक्षता इन्दुलाल याज्ञिक ने की। इस समय तक किसान सभा की सदस्यता काफी घटकर 2.25 लाख रह गयी थी क्योंकि वह सरकार के दमन का बड़ा शिकार बनी हुई थी। स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने किसान सभा की गतिविधियों की रिपोर्ट प्रस्तुत की तथा किसानों और किसान सभा के कार्यकर्ताओं पर सरकारी जुल्म का विवरण दिया। इस सम्मेलन में युद्ध की बदली परिस्थितियों पर विचार करते हुये फासिस्ट ताकतों के प्रतिकार के लिये राष्ट्रीय एकता की जरूरत पर बल दिया गया सम्मेलन में किसानों से अधिक अन्न उत्पादन की अपील की गयी तथा सरकार से लगान और करों की वसूली छूट की अपील की गयी तथा किसानों को उनके उत्पादन का लाभकारी मूल्य दिलाने का अनुरोध किया गया। अखिल भारतीय किसान कमेटी की बैठक में स्वामी जी को महासचिव चुना गया तथा पिछले वर्ष के पदाधिकारियों को पुनर्निर्वाचित कर लिया गया।

इस सम्मेलन की समाप्ति के बाद क्रिप्स मिशन भारत आया परन्तु असफल होकर वापस चला गया। इसके बाद कांग्रेस के नेतृत्व में भारत छोड़ो आंदोलन प्रारम्भ हो गया जिसका सरकार ने घोर दमन किया। 24–27 सितम्बर, 1942 को बम्बई में हुई केन्द्रीय किसान कौसिल की बैठक में सरकार के दमन और उसके किसानों पर प्रभाव का आकलन किया गया तथा दमन की निन्दा की गयी। इस समय किसान सभा को संस्थापक तथा पूर्व अध्यक्ष तथा पूर्व महामंत्री प्रो. रंगा को खोना पड़ा जिन्होंने बिना कोई कारण बताये सभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया।

19.4.5 भखना सम्मेलन

1942 में युद्ध भारत के दरवाजे तक पहुँच चुका था बर्मा का जापान के हाथों पतन हो चुका था और भारत के कई प्रमुख शहरों पर बमबारी का खतरा मंडरा रहा था। ऐसी परिस्थितियों में पंजाब के अमृतसर जिले के भखना कला गाँव में अखिल भारतीय किसान सभा का सातवाँ सम्मेलन 2–4 अप्रैल, 1943 को आयोजित किया गया जिसमें 14 प्रांतों के 231 प्रतिनिधियों ने भाग लिया।।

सम्मेलन में पारित प्रस्तावों में राष्ट्रीय एकता की अनिवार्यता को रेखांकित करते हुए कांग्रेस के संघर्ष का समर्थन किया गया। एक प्रस्ताव में ब्रिटेन तथा अमेरीका की प्रगतिशील शक्तियों से भारत के न्यायपूर्ण संघर्ष का समर्थन करने और चर्चिल और, उनके सहयोगियों की प्रतिक्रियावादी नीतियों का विरोध करने की अपील की गयी। सम्मेलन में पारित प्रस्तावों में खाद्य संकट, काश्तकारी कानूनों, राजनैतिक बंदियों की मुक्ति, सरकारी ,दमन रोकने आदि की चर्चा की गयी। 1943 में किसान सभा के एक अन्य प्रमुख नेता तथा उपाध्यक्ष (पूर्व अध्यक्ष भी) इन्दुलाल याज्ञिक ने सभा पर कम्यूनिस्ट वर्चस्व का आरोप लगाकर त्यागपत्र दे दिया।.

19.4.6 बेजवाडा सम्मेलन।

अखिल भारतीय किसान सभा का आठवाँ सम्मेलन आंध्र के बेजवाड़ा (विजयवाड़ा) में अध्यक्ष स्वामी सहजानन्द सरस्वती की अध्यक्षता में 14–15 मार्च, 1944 को आयोजित किया गया। सभा की सदस्यता बढ़कर अब तक 5.53 लाख हो गयी थी और सम्मेलन में 297 प्रतिनिधियों ने जो 15 प्रान्तों से आये थे, भाग लिया। इन प्रतिनिधियों में 1940 के सम्मेलन के निर्वाचित अध्यक्ष राहुल सांकृत्यायन भी शामिल थे। सम्मेलन की समाप्ति से पूर्व हुई रैली में लगभग एक लाख किसानों ने भाग लिया। भखना सम्मेलन से अब तक किसानों को बहुत कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी थी और बंगाल, केरल, बिहार, आन्ध्र में भयानक अकाल पड़ा जिसका सर्वाधिक बुरा प्रभाव बंगाल तथा असम की सुरमा घाटी पर पड़ा। अकेले बंगाल में 15 लाख से अधिक लोगों की मृत्यु हुई। सम्मेलन में कुल 22 प्रस्ताव पारित किये गये जिसमें कांग्रेस नेताओं की रिहाई, अकाल प्रभावित क्षेत्रों में राहत का प्रभावीं प्रबन्ध करने, अधिक अन्न उत्पादन, अन्त संग्रहण की व्यवस्था करने किसानों का भूमि स्वामित्व कम होने तथा उनके भूमिहीन होने के विरूद्ध तथा उनकी भूमि उनको वापस देने संबंधी, खेत मजदूरों की मजदूरी तय करने और नगदी फसलों का लाभकारी मूल्य तय करने से सम्बन्धित प्रस्ताव प्रमुख थे।

प्रतिनिधि सम्मेलन की समाप्ति के बाद 16 मार्च को किसान कमेटी की बैठक में नये पदाधिकारियों का चुनाव किया गया तथा कार्यानन्द शर्मा और अचर सिंह को उपाध्यक्ष बंकिम मुखर्जी को महासचिव, एम.ए. नम्बूदरीपाद, एम.ए. रसूल, यदुनन्दन तथा जगजीत सिंह को संयुक्त सचिव और एस.वीं. पारूलेकर को कोषाध्यक्ष चुना गया। इस सम्मेलन के बाद किसान सभा का मुख्यालय बिहटा से हटाकर बम्बई कर दिया गया। कलकला में हुई केन्द्रीय किसान कौसिल की 30 नवम्बर – 3 दिसम्बर की बैठक में संविधान में कुछ संशोधन. किया गया और

नये प्रारम्भिक किसान संगठनों को सीधे किसान सभा से सम्बद्ध' होने की सुविधा देने और राजनैतिक प्रस्ताव को तीन चौथाई बहुमत से पारित करने की बात स्वीकार की गयी।

19.4.7 नेत्रकोना सम्मेलन

अखिल भारतीय किसान सभा का नवाँ सम्मेलन वर्तमान बांग्लादेश (तत्कालीन बंगाल) के मैमन सिंह जिले के नेत्रकोना कस्बे में 5–9 अप्रैल, 1945 तक आयोजित किया गया। इसमें 16 प्रांतों से आये 642 प्रतिनिधियों ने भाग लिया जो 8.29 लाख सदस्यों का प्रतिनिधित्व करते थे। सम्मेलन की अध्यक्षता बंगाल के प्रसिद्ध किसान नेता मुजफ्फर अहमद ने की। इस सम्मेलन में स्वामी सहजानन्द सरस्वती तथा बिहार के प्रतिनिधियों ने संगठन से अपने मतभेदों के कारण भाग नहीं लिया। महासचिव बंकिम मुखर्जी ने पिछले सम्मेलन से अब तक की संगठन की गतिविधियों तथा उसके नेतृत्व में हुये किसान संघर्षों का विस्तृत विवरण अपनी रिपोर्ट में प्रस्तुत किया। अपने अध्यक्षीय संबोधन में मुजफ्फर अहमद ने कहा कि किसान सभा का संगठन जमींदारों, साहूकारों तथा सरकार के शोषण के विरूद्ध संघर्ष का अकेला सार्थक उपकरण है। उन्होंने कम्यूनिस्ट कार्यकर्ताओं को किसान सभा में सभी गैर कम्यूनिस्ट कार्यकर्ताओं को साथ लेकर चलने का आवहान किया तथा पार्टी और किसान सभा के जनसंगठन में अन्तर करने पर बल दिया अन्यथा पार्टी तथा जनसंगठन दोनों को हानि उठानी होगी। उन्होंने किसान सभा के सदस्यों से अन्न की कालाबाजारी रोकने तथा उसके विरूद्ध संघर्ष का आह्वान किया।

सम्मेलन में केन्द्रीय किसान कौंसिल द्वारा दिसम्बर 1944 में पारित किसान सभा के संविधान में संशोधन के प्रस्ताव को औपचारिक रूप से स्वीकृति दी गयी तथा पूर्व अध्यक्ष स्वामी सहजानन्द सरस्वती द्वारा दिये गये सभी 'सुझावों को इसमें शामिल कर लिया गया। सम्मेलन में पारित राजनैतिक प्रस्ताव से राष्ट्रीय एकता पर आधारित केन्द्र में अंतरिम सरकार और प्रदेशों में लोकप्रिय सरकारों के गठन पर जोर दिया गया। इसमें भूलाभाई देसाई (कांग्रेस) तथा लियाकत अली खाँ (मुस्लिम लीग) के बीच सभी राजनैतिक दलों की मिली–जुली सरकार गठन के समझौते का स्वागत किया गया। सम्मेलन में पारित अन्य प्रस्तावों में सरकारी नियंत्रण में जीवनोपयोगी वस्तुओं, कपड़े, मिट्टी के तेल, नमक, चीनी आदि के वितरण पर असंतोष व्यक्त करते हुए उसमें सुधार की मॉग की गयी। एक अन्य प्रस्ताव में कृषि जनित अधिक आमदनी पर आयकर लगाये जाने की अपनी माँग पुन: दोहराई। स्वामी सहजानन्द सरस्वती को मनाकर उन्हें किसान सभा में बनाये रखने का प्रयत्न करने का निश्चय किया गया। बंगाल में अकाल पीड़ितों को राहत देने के प्रलयों में बंगाल किसान सभा की भूमिका की प्रशंसा की गयी। सम्मेलन की समाप्ति पर हुई किसान कमेटी की बैठक में नये पदाधिकारियों का चुनाव किया गया तथा अध्यक्ष के अतिरिक्त उपाध्यक्ष – कार्यानन्द शर्मा तथा तेजा सिंह स्वतंत्र, महासचिव – बंकिम मुखर्जी, संयुक्त सचिव – एम.ए. रसूल, ई.एम.एस. नम्बूदरीपाद, पी. सुंदरैया तथा डॉ. भाग सिंह, कोषाध्यक्ष - एस.वीं. पारूलेकर निर्वाचित किये गये। सम्मेलन

सभा का मुख्यालय 1 अगस्त, 1946 से बम्बई के स्थान पर कलकत्ता करने का निश्चय किया गया।

19.4.8 सिकन्दरा राउ सम्मेलन

1946 में किसान सभा का कोई सम्मेलन सम्भव नहीं हो सका। इसका दसवाँ अधिवेशन उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले के सिकन्दरा राउ नामक स्थान पर आयोजित किया गया। 22 – 26 मई, 1947 तक आयोजित इस सम्मेलन की अध्यक्षता बिहार के किसान नेता कार्यानन्द शर्मा ने की तथा स्वागत समिति के अध्यक्ष डॉ, जेड.ए. अहमद ने सम्मेलन में आये 367 प्रतिनिधियों तथा 80 किसान कौसिल के सदस्यों का स्वागत किया। महासचिव बंकिम मुखर्जी ने अपनी रिपोर्ट में किसान सभा के विस्तार पर संतोष व्यक्त करते हुये संगठन की आन्तरिक कमजोरियों पर भी प्रकाश डाला। सम्मेलन में पारित प्रस्तावों में राजनैतिक बन्दियों की रिहाई, जमींदारी की समाप्ति, रियासतों में जनता के संघर्षो तथा किसान संघर्षों के समर्थन तथा राजनैतिक स्थिति पर संगठन के स्टैड आदि की बातें प्रमुख थी। अपने राजनैतिक प्रस्ताव में सभा में तत्काल सत्ता हस्तान्तरण और ब्रिटिश सेना की तुरंत वापसी, ब्रिटिश उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने पर जोर दिया। एक अन्य प्रस्ताव में देश की आर्थिक दुर्व्यवस्था पर चिंता व्यक्त की गयी और कृषि के अतिरिक्त उत्पादन पर आयकर लगाने पर बल दिया गया। छोटे जमीदारों के हितों की रक्षा के लिए भी सरकार से अपील की गयी। नयी अखिल भारतीय किसान कमेटी की बैठक 27 मई 1947 को हुई जिसमें नये पदाधिकारियों का चुनाव किया गया तथा अध्यक्ष के अतिरिक्त बाबा गुरूमुख सिंह तथा पारूलेकर उपाध्यक्ष, एम.ए. रसूल महासचिव, पी. सुन्दरैया, जेड.ए. अहमद, ई.एम.एस. नम्बूदरीपाद तथा जगजीत सिंह संयुक्त सचिव और मुजफ्फर अहमद कोषाध्यक्ष चुने गये।

इस सम्मेलन के बाद का कालखँड देश के विभाजन तथा उससे उत्पन्न साम्प्रदायिक उन्माद और दंगों का काल था जिसने किसान सभा की गतिविधियों को भी प्रभावित किया तथा 1948 में उसका पुनर्गठन किया गया परन्तु अगले 6 वर्षों तक उसका कोई राष्ट्रीय सम्मेलन सम्भव नहीं हो सका। अखिल भारतीय किसान सभा का अगला अधिवेशन 24–26 अप्रैल, 1953 को केरल (तत्कालीन मालाबार) के कन्नानौर शहर में सम्पन्न हुआ जिसकी अध्यक्षता फिर से किसान सभा में लौटे गुजरात के किसान नेता इन्दुलाल याज्ञिक ने की।

19.5 किसान सभा के तत्वावधान में हुये प्रमुख आंदोलन

अखिल भारतीय किसान सभा के संगठन के बाद विभिन्न राज्यों में न केवल संगठनात्मक गतिविधियों का विस्तार हुआ वरन् किसानों ने अपने संगठन के नेतृत्व में अपने शोषकों के विरूद्ध गौरवशाली संघर्ष भी चलाये। यद्यपि इनमें से अधिसंख्या संघर्षो की प्रकृति आमतौर पर स्थानीय थी परन्तु किसान सभा के नेतृत्व में कुछ ऐसे संघर्ष भी हुये जिनका क्षेत्र व्यापक था और जो किसान संघर्षों के इतिहास में मील के पत्थर साबित हुए। कुछ ऐसे ही किसान संघर्षो का वर्णन हम यहाँ करेंगे।

19.5.1 बकाश्त आंदोलन

किसान सभा की स्थापना के बाद हुआ बिहार का आंदोलन जिसमें किसानों ने बकाश्त जमीनों की वापसी के लिये सभा के नेतृत्व में जमींदारों तथा सरकार के विरुद संघर्ष किया। बकाश्त भूमि उसे कहते थे जिसे आर्थिक मंदी के कारण लगान अदायगी में असमर्थता के कारण किसानों ने जमींदारों को दे दिया। यद्यपि यह जमीनें अभी भी किसानों के पास थी परन्तु इस पर वे बटाईदार की हैसियत से खेती कर रहे थे। बिहार के कांग्रेस मंत्रिमंडल ने विधायिका व जमींदार सहमति से एक कानून बनाया जिसके अनुसार बकाश्त जमीन का एक भाग इस शर्त के साथ किसानों को मिल सकता था यदि वे जमीन के नीलामी मूल्य (जो जमींदार तथा सरकारी अधिकारियों द्वारा निर्धारित होता था) के आधे मूल्य का भुगतान करें। किसान सभा इस पर सहमत नहीं थी तथा उसने इसके विरूद्ध 26 नवम्बर 1937 को पटना में 1 लाख किसानों का प्रदर्शन आयोजित किया। बकाश्त भूमि से संबंधित कानून के विरूद्ध कार्यानन्द शर्मा के नेतृत्व में मुंगेर जिले के बडहिया ताल में आंदोलन प्रारम्भ किया जिस पर जमींदारों ने अपने गुंडों से हमला करवाया जिन्हें सरकारी अधिकारियों की शह हासिल थी। हजारों किसान पुरुष स्त्रियाँ और बच्चे अपना घर छोड़कर भागने को बाध्य हुये परन्तु दमन से आंदोलन दबाया नहीं जा सका। गया जिले के रेवड़ में यदुनंदन शर्मा के नेतृत्व में किसानों ने सफल आंदोलन किया और अपनी गिरफ्तारी से पूर्व शर्मा जिला मजिस्ट्रेट से यह घोषणा करवाने में सफल हुये कि विवादित 1 हजार बीघा जमीन में से 850 बीघा जमीन किसानों को लौटा दी जायेगी। किसानों के आंदोलन के दबाव में कांग्रेस सरकार यदुनन्दन शर्मा को रिहा करने के लिये बाध्य हुई। बकाश्त आंदोलन दरभंगा जिले के राघवपुर, देकुलीधाम तथा पंडौल, शाहाबाद जिले के मुरियार तथा सारन और अम्बवारी में भी फूट पड़ा। किसान नेता जमुना कारजी ने सारन में तथा किसान सभा के पूर्व अध्यक्ष राहुल सांकृत्यायन ने अम्बवारी में संघर्ष के नेतृत्व किया इन संघर्षो के विरूद्ध जमींदारों ने अपने लठैतों तथा गुंडों का प्रयोग किया और राहुल जी गम्भीर रूप से घायल हुये। पुलिस ने जमींदारों के पक्ष में किसानों पर अत्याचार किये और किसान सभा के कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया। 1939 तक यह आन्दोलन अपने चरम पर पहुँच चुका था। इस बीच सरकार और किसान सभा के बीच समझौते के प्रयत्न जारी थे और दमन के कारण आंदोलन थमता जा रहा था। अगस्त 1939 में सरकार द्वारा घोषित कई सुविधाओं, नये कानूनों और किसान सभा के 600 कार्यकर्ताओं की रिहाई के बाद आंदोलन समाप्त हो गया।

19.5.2 तेभागा आंदोलन

बंगाल में किसान सभा द्वारा संचालित यह आंदोलन स्वतंत्रता के लगभग एक वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था। त्रिपुरा जिले के हसनाबाद के बटाईदार किसानों ने बंगाल भू–राजस्व आयोग (फ्लाइड आयोग) की सिफारिशों से उत्साहित होकर तय किया कि वे अपने श्रम से उत्पन्न फसल का दो तिहाई भाग स्वयं लेंगे तथा केवल एकतिहाई जमींदार को देंगे। इसी अनुपात के कारण इस आंदोलन को तेभागा का नाम दिया गया। नवम्बर, 1946 के कटाई के मौसम में इस आंदोलन का व्यापक विस्तार हुआ तथा यह दीनाजपुर, रंगपुर, जलपाईगुड़ी, मैमन सिंह,

मिदनापुर, खुलना और 24 परगना जिलों में फैल गया जिसका नेतृत्व प्रमुख किसान नेताओं भवानी सेन, मोनी सिंह, अनंत सिंह, विभूतिगुहा, सुनील सेन, कृष्ण विनोद राय आदि ने किया। बटाईदार किसानों का प्रमुख नारा था "निज कमारे धान तोलो"। प्रारम्भ में इस आंदोलन में आदिवासी हाजोंग और राजवंशी क्षत्रिय किसानों ने भाग लिया परन्तु बाद में जाति और धर्म की यह दीवारें टूट गई और हिन्दू तथा मुसलमान किसानों ने पूरी एकजुटता से इसमें भाग लिया। मुस्लिम किसान नेताओं हाजी मु. धनेश तथा कुछ मौलवियों ने कुरान से उद्धरण देकर जोतदारों के जुल्मों की निन्दा की परन्तु दक्षिण पूर्व बंगाल के मुस्लिम बहुल इलाकों में इस आंदोलन का बहुत प्रभाव नहीं पड़ा। बटाईदार किसानों ने लाठियों सहित किसान सभा के नेतृत्व में जुलूस निकाला। तेभागा आंदोलन में जनवरी 1947 में काफी उभार आया जब सुहरावर्दी के मुस्लीमलीग मंत्रिमंडल मे 22 जनवरी 1947 को कलकत्ता गजट में बंगाल वर्गादार अस्थायी नियमन विधेयक प्रकाशित किया। किसानों को अनुभव हुआ कि तेभागा की उनकी माँग गैर कानूनी नहीं है और उत्साहित होकर जमींदारों के खलिहान से 2/3 अनाज अपने घर ले जाने की कोशिश की जिसमें व्यापक हिंसा हुई। जोतदारों ने सरकार और पुलिस की मदद से किसान आंदोलन के दमन का प्रयत्न किया और हिंसात्मक संघर्ष में 49 किसान मारे गये जिसमें 20 केवल खानपुर में मारे गये। फरवरी तथा मार्च, 1947 में आंदोलन ठहराव का शिकार हो गया। मुस्लिम लीग मंत्रिमण्डल ने वर्गादार विधेयक को विधान सभा में पारित कराने में कोई रूचि नही ली परन्तु 1950 में कांग्रेस सरकार ने जो वर्गादार विधेयक पारित किया उसमें तेभागा आंदोलन की अधिसंख्या माँगे समाहित कर ली गयी।

19.5.3 पुन्नप्रा–बायलार आंदोलन

यह सामंती जुल्म और त्रावनकोर रियासत के दीवान सर सी.पी. रामा स्वामी अयया के अमरीकी पद्धति के प्रशासन के विरूद्ध हुआ किसानों तथा मजदूरों का संयुक्त संघर्ष था। इस संघर्ष में भाग लेने वालों में प्रमुख थे किसान खेतिहर मजदूर और नारियल की रस्सी बनाने वाले कारखाने में काम करने वाले मजदूर। यह आंदोलन त्रावनकोर रियासत (वर्तमान केरल) के अलेप्पी जिले के अंबालापुंझा और शेरतल्लई तालुकों में अक्टूबर, 1946 में प्रारम्भ हुआ जो शीघ्र ही सामंतों के विरूद्ध सशस्त्र संघर्ष में बदल गया। युद्ध के बाद बेरोजगारी और भुखमरी के दौर में अन्न तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तूयें मिलनी मुश्किल थी। 1944–45 मे किसानों तथा मजदूरों ने वार्ड कमेटियाँ संगठित की तथा 1946 के जुलाई अगस्त में अलेप्पी, शेरतल्लई और मुहम्मा के नारियल जटा मजदूरों के साथ जरूरी चीजों की आपूर्ति के लिए आम हड़ताल आयोजित की। त्रावनकोर रियासत और अंग्रेजी प्रशासन ने इसके विरूद्ध दमन का रास्ता अपनाया तथा कई जगहों पर रियासत की सेना और रिजर्व पुलिस तैनात की दी। जुलूसों और हड़तालों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया तथा बिना अनुमति समाचार छापने पर अखबारों पर रोक लगा दी। इसका मुकाबला करने के लिये त्रावनकोर ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने अपनी सुरक्षा के लिए सशस्त्र दस्ते संगठित किये और उन्हें कामचलाऊ सैनिक शिक्षा दी गयी। 24 अक्टूबर 1946 को' पुन्नप्रा पुलिस थाने पर अंशत : सफल हमला किया गया तथा पुलिस से 9 राइफल छीन

ली गयी। 25 अक्टूबर को मार्शल ला लगा दिया गया और 27 अक्टूबर, 1946 को आंदोलन के प्रमुख केन्द्र बायलार के शिविर पर सेना ने भीषण सशस्त्र आक्रमण किया और रक्तपात के बाद शिविर पर अधिकार कर लिया। इस संक्षिप्त खूनी संघर्ष में कम से कम 800 लोगों के मारे जाने का अनुमान लगाया गया था।

19.5.4 तेलंगाना आंदोलन

यह दक्षिण भारत के वर्तमान आन्ध्र प्रदेश की तत्कालीन हैदराबाद रियासत में अखिल भारतीय किसान सभा और भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी के संयुक्त नेतृत्व में तेलंगाना क्षेत्र में सितम्बर, 1946 से 21 अक्टूबर, 1951 तक चलाया गया। तेलंगाना क्षेत्र में हैदराबाद रियासत का लगभग 3/4 क्षेत्र था जिसकी जनसंख्या लगभग 80 लाख थी। इस क्षेत्र के तेलुगु भाषी किसानों का शोषक जमींदारों तथा उनके सहायक निजाम के विरूद्ध संघर्ष दूसरे विश्वयुद्ध के अन्तिम दिनों में प्रारम्भ हुआ था। जब उनसे सैनिक उपयोग के लिये कम कीमत पर जबरन अन्न वसूला जा रहा था। सितम्बर, 1946 में किसानों के विद्रोह का तात्कालिक कारण पुलिस तथा निजाम के अर्द्धसैनिक स्वयं सेवक संगठन रजाकारों द्वारा किसान सभा के नेता कमरैया की हत्या थी। उसके शव के साथ निकाले गये विशाल जुलूस पर रजाकारों और पुलिस ने आक्रमण किया। किसानों के जवाबी आक्रमण के बाद निजाम के गुंडें तथा पुलिस जवान जमींदारों के घर में जा छिपे तथा किसानों के सशस्त्र दस्तों ने सूर्यपेट तालुके के कई गाँवों पर अधिकार कर लिया। प्रारम्भ में यह एक स्वयंस्फूर्त आन्दोलन था परन्तु बाद में आन्ध्र महासभा, किसान सभा और कम्यूनिस्ट पार्टी ने इसका समन्वय और नेतृत्व सम्भाल लिया। सी. राजेश्वर राव, पी. सुन्दरैया तथा प्रसिद्ध साम्यवादी शायर मखदूम मोहिउद्दीन आदि ने आत्म रक्षा के लिए सशस्त्र दस्ते "दलम" संगठित किये और पुलिस तथा रजाकारों का प्रतिरोध किया। उन्होंने जमींदारों को भगा दिया तथा उनकी जमीन भूमिहीन किसानों और खेत मजदूरों में बाँट दी। सूर्यपेट से प्रारम्भ यह किसान विद्रोह शीघ्र लगभग पूरे तेलंगाना क्षेत्र में फैल गया तथा विद्रोही किसानों ने मुक्त किये गये क्षेत्रों में प्रशासन के लिए पंचायतों का गठन किया। 1947 में यह आंदोलन और व्यापक हो गया और वर्गीय माँगों के साथ ही हैदराबाद के भारतीय संघ में विलय की माँग की गयी। हैदराबाद की विलय के बाद भी शोषक जमींदारों के विरूद्ध यह आन्दोलन घोर दमन के बावजूद समाप्त नहीं हुआ और 21 अक्टूबर, 1951 को इसे वापस ले लिया गया।

19.6 सारांश

इस कृषि प्रधान देश में कृषि समस्याओं के विरूद्ध किसानों के संघर्षो की लम्बी परम्परा रही है। इन संघर्षों की प्रकृति आम तौर पर स्थानीय रही और वे सीमित क्षेत्र को प्रभावित करते रहे है। 1857 के विद्रोह के बाद ऐसे कई प्रमुख आन्दोलन हुये तथा बीसवीं शताब्दी के दूसरे तथा तीसरे दशक में विभिन्न क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत जनाधार वाले किसान संगठनों का निर्माण हुआ तथा कई क्षेत्रों में जुझारू संघर्ष भी हुए 1936 की अप्रैल में इन स्थानीय संगठनों को समन्वित कर अखिल भारतीय किसान कांग्रेस का गठन किया गया जिसका नाम

बदल कर बाद में अखिल भारतीय किसान सभा कर दिया। इस संगठन के नेतृत्व में कई प्रदेश व्यापी संघर्ष हुये तथा किसानों में संघर्ष चेतना पैदा हुई।

19.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 अखिल भारतीय किसान सभा के गठन के पूर्व हुए प्रमुख किसान आन्दोलनों की समीक्षा करिए।

2 अखिल भारतीय किसान सभा के गठन की परिस्थितियों तथा गठन का विवरण दीजिए।

3 किसान सभा के नेतृत्व में हुए प्रमुख किसान आन्दोलनों का मूल्यांकन करिए।

19.8 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1 विपिन चन्द्र तथा अन्य	:	भारत का स्वतंत्रता संघर्ष
2 माजिद हसन सिद्दीकी	:	एग्रेरियन अनरेस्ट इन नार्दन इंडिया – द यूनाईटेड प्राविन्स (1918–22)
3 कपिल कुमार	:	पीजेन्ट्स इन रिवोल्ट, टीनेन्टस, कांग्रेस, लैडलाईस एण्ड द राज इन अवध (1886–1922)
4 ई.एम.एस. नम्बूदरीपाद	:	केरल, यस्टर्डे, द्वे एण्ड टूमारो
5 सी. गोपालन नायर	:	मोपला रिवोलियन
6 पी. सुन्दरैया	:	तेलंगाना पीपुल्स स्ट्रगल एण्ड इट्स लेसन्स
7 सुनील सेन	:	एग्रेरियन स्ट्रगल इन बंगाल
8 एम.ए. रसूल	:	ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ आल इंडिया किसान सभा।
9 अयोध्या सिंह	:	भारत का मुक्ति संग्राम
10 महेन्द्र प्रताप	:	उत्तर प्रदेश में किसान आंदोलन (1936–47)

इकाई – 20

तेलंगाना में कृषकों का विद्रोह (1946 ई. से 1951 ई.)

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 भारत में कृषक आन्दोलनों का स्वरूप (1818 ई. से 1946 ई.)

20.3 तेलंगाना के कृषक विद्रोह की प्रकृति

20.4 तेलंगाना के कृषक विद्रोह के कारण

20.5 आन्दोलन का उत्कर्ष एवं विकास

20.6 तेलंगाना के कृषक विद्रोह के परिणाम

20.7 तेलंगाना के कृषक विद्रोह की असफलता के कारण

20.8 आन्दोलन के प्रति सरकार की नीति

20.9 सारांश

20.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

20.11 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

20.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे कि –

- भारतीय अर्थ व्यवस्था में कृषक आन्दोलनों का प्राचीन ऐतिहासिक स्वरूप रहा है। सभ्यता के विकास के साथ कृषि का विकास, उसकी समस्यायें, कृषकों में असन्तोष एवं उनके आन्दोलन आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था का अंग रहे है।
- भारत में कृषकों के आन्दोलनों का प्रादुर्भाव। विभिन्न क्षेत्रों में एवं भिन्न–भिन्न वर्गो से संबंधित कृषकों के आन्दोलन। इनमें सन्थाल विद्रोह, नील विद्रोह, पूर्वी बंगाल का विद्रोह, मराठा कृषकों का विद्रोह, मोपला कृषक आन्दोलन, असम में विद्रोह, पंजाब के किसानों का विद्रोह, दक्षिण भारत के आन्दोलन, चम्पारन का सत्याग्रह, खेड़ा, मोपला, उत्तर प्रदेश के कृषक आन्दोलन, बारदोली, तेभागा,तेलंगाना, बर्ली के आन्दोलन उल्लेखनीय है।
- तेलंगाना में जो विद्रोह 1946 ई. में हुआ उसको प्रोत्साहित करने वाली विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक परिस्थितियों का ऐतिहासिक विवेचनात्मक विश्लेषण करेंगे।
- तेलंगाना के विद्रोह के स्वरूप एवं प्रकृति के संबंध में विस्तृत अध्ययन करेंगे।
- इस इकाई में आप इस विचारधारा का अवलोकन करेंगे कि तेलंगाना में कृषक आन्दोलन का क्या प्रभाव हुआ एवं भारतीय इतिहास तथा अर्थ व्यवस्था में इसका क्या महत्व रहा।
- इस अध्याय में आप कृषक आन्दोलन के पतन और उसकी असफलता के कारणों के संबंध में अध्ययन करेंगे।

- इकाई के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि स्वतंत्रता प्राप्ति से रु एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् तेलंगाना के कृषक विद्रोह का दमन करने हेतु सरकार द्वारा क्या नीति अपनायी गई तथा आन्दोलनों को नियंत्रित करने के उद्देश्य से क्या उपाय किए गए ।

20.1 प्रस्तावना

भारत कृषि प्रधान देश है, जहाँ अधिकांश लोग कृषि कार्य पर निर्भर है। भारतीय अर्थव्यवस्था का भी कृषि मुख्य आधार रहा है। आदिकाल से भारत का बहुसंख्यक वर्ग किसान है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह तथ्यपूर्ण माना जाता है कि अंग्रेजी शासन काल में अंग्रेजों की भूराजस्व नीति, व्यापारिक नीति और भारतीय उद्योगों के प्रति उपेक्षा एवं विनाश के प्रति उदासीनता की नीति के परिणामस्वरूप कृषकों की संख्या में वृद्धि हुई थी। इस संबंध में यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकार ने समय–समय में भूराजस्व की वसूली एवं उसकी पद्धति में काफी परिवर्तन किए थे। भारत में भूराजस्व से उत्पन्न होने वाली विभिन्न कठिनाईयों व दोषों से बचने के उद्देश्य से अंग्रेजी सरकार के द्वारा सर्वप्रथम 1793 ई. में स्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था के माध्यम से जमींदारों को किसानों के भूराजस्व वसूल करने से संबंधित अत्याधिक अधिकार प्रदान कर दिए थे। ब्रिटिश सरकार के द्वारा कुछ क्षेत्रों में रैयूयतवाड़ी पद्धति को भूराजस्व व्यवस्था के क्षेत्र में लागू किया गया था। इसी भांति कुछ क्षेत्रों में महलवारी भूराजस्व व्यवस्था को स्थापित किया गया था। लगान व भूमि से संबंधित इन पद्धतियों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि स्थायी बन्दोबस्त प्रणाली अर्थात जमींदारी प्रथा त्रिस्तरीय पद्धति थी, जिसमें ब्रिटिश सरकार कृषकों से लगान की वसूली करती थी। रैयूयतवाड़ी पद्धति द्विस्तरीय प्रणाली थी, जिसमें ब्रिटिश सरकार रैयूयत से प्रत्यक्ष रूप में भू–राजस्व वसूल करती थी। इन प्रणालियों के परिणामस्वरूप भूमि व्यवस्था अर्थात भूराजस्व व्यवस्था के क्षेत्र में मध्यस्थों की श्रेणियां विकसित हो गई। भूराजस्व संबंधी व्यवस्थाओं के लगान की निरन्तर रूप में वृद्धि होती चली गयी, परिणामस्वरूप कृषक उधार लेने के लिए बाध्य हुए जिसके कारण साहूकारों के वर्ग का उदय हुआ। इस स्थिति में किसान आमदनी न होने के कारण लगान का भुगतान करने में असमर्थ रहते थे, तो उन्हें भूमि से बेदखल कर दिया जाता था। इससे बचने के उद्देश्य से किसानों ने साहूकारों से रुपए उधार लेकर लगान का भुगतान करना प्रारम्भ किया। लेकिन साहूकारों ने भी कृषकों को तंग करना प्रारम्भ किया। साहूकार किसानों को जो रुपया उधार दिया करते थे उस पर अत्याधिक ब्याज की धनराशि वसूल करते थे। इसी प्रकार धोखे से ज्यादा रकम लिखा लेते थे। साहूकार कृषकों द्वारा उत्पादित पैदावार और उनके मवेशियों को जबरदस्ती ले जाते थे। सरकार के कानून एवं कचहरियाँ भी साहूकारों के पक्ष में थे। इसके अतिरिक्त जमींदार, तालुकेदार, साहूकार विभिन्न प्रकार के गैरकानूनी कर कृषकों से वसूल करते थे। ये गैर कानूनी कर अनेक प्रकार के थे, जैसे– पथकर, मेला खर्च, पर्वकर, जमींदार के परिवार में कोई विवाह होने पर कर, डाक खर्च, दाखिल खर्च, टोलव्यय इत्यादि। कृषकों द्वारा इन करों का समय पर भुगतान नहीं किए जाने पर उन्हें घोर उत्पीड़न का सामना करना पड़ता था।

भारत में कृषकों को बेदखल करने का स्वरूप इस आधार पर भी देखने को मिलता है कि ब्रिटिश शासन काल में बागों के अंग्रेज मालिकों ने चाय, रबड़, काँफी और नील के बाग

लगाए। इस दृष्टि से किसानों को जबरदस्ती अपनी जमीनें मामूली कीमत पर बेचनी पडी थी। इन क्षेत्रों में किसान दिहाड़ी पर काम करने वाले श्रमिक बन गये जिनकी स्थिति बंधुआ मजदूरी जैसी थी। इन सब परिस्थितियों के फलस्वरूप किसानों ने विद्रोह किए लेकिन उन्हें निर्दयतापूर्वक कुचल दिया गया।

इस प्रकार भारत में समय–समय पर विभिन्न कृषक आन्दोलन हुए, उनमें तेलंगाना का कृषक आन्दोलन आधुनिक भारतीय इतिहास एवं अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में हुए कृषक आन्दोलनों की श्रेणी में उल्लेखनीय आन्दोलन माना जाता है।

20.2 भारत में कृषक आन्दोलनों का स्वरूप (1818 ई. से 1946 ई.)

भारत के विभिन्न प्रान्तों में 1818 ई. से 1946 ई. के मध्य कृषक आन्दोलन हुए, जिनका उल्लेखनीय ऐतिहासिक स्वरूप रहा है। तेलंगाना का प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्रोह 1946 ई. से 1951 ई. के काल में हुआ उससे पूर्व होने वाले कृषक आन्दोलनों का स्वरूप एवं उसके इतिहास की यहाँ संक्षेप में विवेचना करना तथ्यपूर्ण हो जाता है।

कृषक आन्दोलनों के अन्तर्गत 1855–56 ई. में सन्थाल विद्रोह का प्रादुर्भाव हुआ। संथाल लोग शांतिप्रिय आदिवासी थे, जो कि हजारीबाग, मिदनापुर, बाकुड़ा और वींरभूमि क्षेत्रों में कृषि के कार्य में लगे हुए थे। इस क्षेत्र में 1793 ई. की स्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था के फलस्वरूप जमींदार इन इलाकों के स्वामी बन गए थे। कृषकों ने अपने कठोर परिश्रम के द्वारा पथरीली और जंगलों से ढकी भूमि को कृषि योग्य बना लिया था। लेकिन जमींदारों ने इस भूमि के भी स्वामित्व की माँग की और जबरदस्ती उनसे रुपए बटोरने प्रारम्भ कर दिये थे।

साहूकारों ने भी अपनी सूदखोरी द्वारा इन लोगों को और निर्धन बना दिया था। पुलिस, न्यायालयों आदि ने भी साहूकारों और जमींदारों को सहायता दी। परिणामस्वरूप संथाल लोग इन अत्याचारों को सहन नहीं कर सके और सिद्ध व कान्नू बन्धुओं के नेतृत्व में उन्होंने विद्रोह कर दिया। उन्होंने भागलपुर और राजमहल के बीच तार व रेल व्यवस्थाओं को भंग कर दिया। मेजर बरों के अधीन अंग्रेज सेना को अपमानजनक पराजय का सामना करना पड़ा। लेकिन 1856 ई. में संथालों के नेता बन्दी बना लिए गए और विद्रोह को कठोरता पूर्वक दबा दिया गया। सरकार ने एक जाँच समिति की नियुक्ति की जिसके आधार पर बंगाल काश्तकारी अधिनियम पारित किया गया, जिसने खोए हुए भू–धारण अधिकार और सामन्तों द्वारा लगान के रूप में एवं निश्चित राशि वसूल करने की प्रथा को फिर से स्थापित किया गया।

1857 ई. में स्वतंत्रता का जो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, उसमें अवध और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कृषकों ने जमींदारों की कठोरता को भुलाकर ब्रिटिश शासन को समाप्त करने का प्रयास किया था। इस समय ब्रिटिश सरकार ने भूराजस्व व्यवस्था अवध के ताल्लुकदारों से की और उनकी अधिकतर भूमि उन्हें लौटा दी गयी। कुछ क्षेत्रों के कृषकों को अधिक भूराजस्व कर का भुगतान करने हेतु बाध्य किया गया, क्योंकि उन्होंने 1857 ई. में विद्रोह में भाग लिया था।

1859–60 ई. में नील विद्रोह को प्रोत्साहन मिला था। इसका कारण यह था कि अंग्रेजी कम्पनी के कुछ अवकाश प्राप्त यूरोपीय अधिकारियों और नए धनी लोगों ने बंगाल और

बिहार के जमींदारों से भूमि प्राप्त करके उस पर नील की खेती करने लगे। ये लोग कृषकों पर अत्याचार किया करते थे। कृषकों को यह वर्ग अपने आर्थिक लाभ के उद्देश्य से नील उगाने के लिए बाध्य करते थे, जो कि साधारण कृषकों के लिए लाभदायक नहीं थी। उनके साथ मारपीट, दुर्व्यवहार, नजरबंद, अत्याचार जैसे कृत्य किए जाते थे परिणामस्वरूप इन कृषकों ने हड़ताल कर दी व नील बोने से इन्कार कर दिया। यह विद्रोह पाबना, नदिया जिला, जैसौर, खुलना, राजशाही ढाका, दीनाजपुर, मालदा इत्यादि प्रदेशों में फैल गया। विद्रोह से तंग आकर अंग्रेजी सरकार ने नील आयोग की नियुक्ति की, जिसके द्वारा किसानों की कठिनाईयों का निराकरण किया गया।

इसी प्रकार 1872 ई. एवं 1876 ई. के बीच पूर्वी बंगाल के किसानों द्वारा जमींदारों के विरूद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किए गये थे क्योंकि ये जमींदार कृषकों से अत्याधिक भूराजस्व की वसूली करते थे। उनके प्रति अत्याचार व शोषण की नीति विद्यमान थी। वे उनकी पैदावार व मवेशियों को ले जाते थे। इन विद्रोहों का सरकार ने दमन किया एवं ऐसे क़ानून पारित करने पड़े, जिनसे किसानों की कठिनाईयों को दूर किया गया।

1875 ई. में मराठा कृषकों द्वारा आन्दोलन किया गया। ये कृषक ऋणों के भार से काफी दबे हुए थे। गुजराती और मारवाड़ी साहूकार कृषकों द्वारा लिए गए ऋणों की अपने खातों में हेराफेरी कर देते थे। इस हादसे से पूना और अहमदाबाद के किसानों ने साहूकारों का बहिष्कार कर दिया। अत्याचार करने वाले लोगों का वध कर दिया। कृषकों ने ऋणदाताओं के कब्जे से अपने इकरारनामें डिक्रियाँ व अन्य कानूनी दस्तावेज आदि नष्ट करने व उन्हें प्राप्त करने का प्रयास किया। सरकार ने सेना की सहायता से इस विद्रोह को दबाया। अन्त में सरकार ने दक्खन रियोट्स कमीशन की नियुक्ति की। जिसकी सिफारिश पर दक्खन एग्रीकल्चरिस्ट रिलीफ एक्ट 1879 ई. पारित किया गया।

इसी भांति 1836 ई. से 1880 ई. के मध्य मोपला कृषक आन्दोलनों का प्रादुर्भाव हुआ था। जमींदारों के अत्याचारों व शोषण से तंग आकर मालाबार के किसानों ने 1836 ई. और 1856 ई. के दौरान बाइस विद्रोह एवं 1873 ई. से 1880 ई. के बीच पाँच बडे विद्रोह किए थे।

1893–94 ई. असम के कृषकों ने विद्रोह किए थे। जहाँ कि किसानों ने बढ़ाया हुआ लगान देने से मना कर दिया था। जमींदारों, साहूकारों एवं अन्य अधिकारियों ने जब कृषकों की भूमि पर कब्जा किया तो उन्होंने विद्रोह द्वारा विरोध किया। ब्रिटिश सरकार ने पुलिस और फौज भेजकर विद्रोह को दबाया।

पंजाब में भी कृषक आन्दोलन का स्वरूप बना रहा। पंजाब में कृषकों का साहूकारों व जमींदारों द्वारा शोषण एवं अत्याचार किए गए जिससे तंग आकर कृषकों ने विद्रोह किए। इस क्षेत्र में 1920–21 ई. में सिक्ख किसानों ने आन्दोलन किया। इस आन्दोलन ने अकाली मोर्चे का रूप धारण कर लिया। इन विद्रोहों का दमन करने के लिए किसानों पर सख्ती की गयी लेकिन किसानों को सफलता मिली। सिक्ख गुरूद्वारों के पास बहुत सा धन और जमीन आ गई।

दक्षिण भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भी कृषक आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ। इस दृष्टि से कृष्णा, गोदावरी नदी के डेल्टा क्षेत्रों और कर्नाटक रायल सीमा के किसानों ने भूराजस्व व्यवस्था की दोष पूर्ण प्रणाली के विरूद्ध आन्दोलन किया। दक्षिण भारतीय किसानों ने लक्ष्मी नरसू चेट्टी के नेतृत्व में "मद्रास उत्पीड़न अधिनियम" के विरूद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया और उसे निरस्त कराने में सफल हुए।

1917 ई. में उत्तरी बिहार के चम्पारन प्रान्त के कृषकों ने भी जमींदारों, साहूकारों के शोषण, अत्याचार, बेदखली, अत्याधिक भूराजस्व की वसूली के विरूद्ध आन्दोलन किए। 1919 ई. में गांधीजी के नेतृत्व में खेड़ा सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ था। यह आन्दोलन खेड़ा के कृषकों का बम्बई की अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध था।

इसी भांति मालाबार के मोपला मुसलमान कृषकों के द्वारा भी साहूकारों व जमींदारों के विरूद्ध आन्दोलन किए गए थे। कृषकों ने पुलिस स्टेशनों को जला दिया। कचहरियों के रिकार्ड जला दिए। साहूकारों के इकरारनामें और डिक्रियाँ जला दी। इस इलाके में मोपलों का शासन स्थापित हो गया।

उत्तर प्रदेश के विभिन्न प्रान्तों के किसानों के द्वारा भी आन्दोलन किए गए। इस घटना से फैजाबाद, रायबरेली, सुल्तानपुर, इलाहाबाद आदि प्रान्तों में कृषक आन्दोलन का स्वरूप बना रहा। क्योंकि इन क्षेत्रों के जमींदार व साहूकार किसानों पर अत्याचार करते थे। सरकार की दमनकारी नीति के बावजूद कृषकों को सफलता प्राप्त हुई।

महात्मा गांधी के निर्देशन पर सरदार वल्लभभाई पटेल ने बारदोली के (1929–30 ई.) कृषकों के सत्याग्रह का आयोजन किया था। इसी प्रकार भारतीय रियासतों मे पटियाला, नामा, मैसूर, ट्रावनकोर, उड़ीसा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, जयपुर, ग्वालियर और उदयपुर के किसानों ने भी ठाकुरों व जमींदारों के विरूद्ध सत्याग्रह आन्दोलन किया था। इसके अतिरिक्त तेभागा का आन्दोलन भी कृषकों के द्वारा किया गया जो कि 1946 ई. से प्रारम्भ होकर मार्च, 1947 ई. तक चला।

इस प्रकार भारत में तेलंगाना कृषक आन्दोलन के प्रादुर्भाव से पूर्व उपर्युक्त कृषक आन्दोलनों का उदय हुआ था। जिनका कृषक आन्दोलन के संदर्भ में ऐतिहासिक महत्व माना जाता है।

20.3 तेलंगाना के कृषक विद्रोह की प्रकृति

भारत के विभिन्न प्रान्तों में हुए कृषक आन्दोलनों की श्रेणी में तेलंगाना के कृषक विद्रोह का महत्वपूर्ण स्वरूप रहा है। यद्यपि यह विद्रोह कृषकों का विद्रोह था, जो कि उनके प्रति साहूकारों व जमींदारों के अत्याचार और शोषण की नीति का परिणाम था, तथापि इस विद्रोह के स्वरूप एवं प्रकृति के संबंध में विभिन्न विचार एवं धारणाएं देखने को मिलती है।

तेलंगाना के कृषक आन्दोलन का महत्वपूर्ण स्वरूप इस धारणा पर आधारित है कि यह आन्दोलन दक्षिण भारत के प्रमुख राज्य हैदराबाद के प्रान्त तेलंगाना, में प्रारम्भ हुआ था। यहाँ के कृषक आन्दोलन की यह भी विशेषता रही कि प्रारम्भ में यहाँ आन्दोलन कृषक आन्दोलन

था, क्योंकि तेलंगाना के कृषकों ने यह आन्दोलन जमींदारों व साहूकारों के विरूद्ध किया था इस आन्दोलन का प्रमुख कारण जमींदारों व साहूकारों के द्वारा किसानों की जमीनों को जबरदस्ती हड़पना, कृषकों का शोषण करना, उन्हें अनावश्यक तंग करना, अधिक से अधिक लगान प्राप्त करना था, जिससे असन्तुष्ट होकर कृषकों ने आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन का तात्कालिक कारण भी कृषक से संबंधित रहा। तेलंगाना के कृषकों ने नेता कामरेड कमरयया के नेतृत्व में जब विद्रोह प्रारम्भ किया, उस समय उसका वध हो गया था। उसके शव को लेकर किसानों ने जुलूस निकाला तो पुलिस ने निहत्थे किसानों पर आक्रमण कर दिया। परिणाम स्वरूप कृषकों का आन्दोलन उग्र रूप में प्रारम्भ हुआ। यद्यपि तेलंगाना का विद्रोह पूर्णतया कृषकों के आन्दोलन का स्वरूप रहा तथापि आशिक रूप में इस आन्दोलन मे तेलंगाना के कम्यूनिस्टों व कांग्रेस संगठन का भी सहयोग मिला।

तेलंगाना का कृषक विद्रोह 1946 ई. के मध्य में प्रारम्भ हुआ और इसकी समाप्ति अक्टूबर, 1951 ई. में हुई। इस प्रकार यह लगभग पाँच वर्ष तक चला।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह तथ्य पूर्ण है कि तेलंगाना हैदराबाद राज्य महत्वपूर्ण प्रान्त है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व हैदराबाद भारत में एक बड़ी रियासत के रूप में थी। मध्यकालीन मुस्लिम युग से यहाँ का राजनैतिक संगठन इस रियासत के 1948 ई. मे भारतीय संघ के साथ सम्मिलित होने तक प्रतिष्ठा एवं गौरवपूर्ण बना रहा। रियासत का निजाम निरंकुश एवं धनवान शासक था। 1857 ई. की क्रांति के संकट पूर्ण दिनों में और दो विश्व युद्धों के मध्य हैदराबाद के निजाम ने अंग्रेजी सरकार को समर्थन दिया था। इस वफादारी के लिए अंग्रेजी सरकार ने समय–समय पर निजाम को पदवियों और सम्मान से सम्मानित किया था।

भारतीय प्रायद्वीप में हैदराबाद की रियासत दक्षिण पठार का एक भाग रहा है। इसका कुछ क्षेत्रफल 82 ,000 वर्गमील का रहा। 1901 ई. में इस रियासत की जनसंख्या 11.1 मिलियन थी जो कि 1951 ई. में बढ़कर 18.6 मिलियन हो गयी थी। हैदराबाद के तीन महत्वपूर्ण भाषायी क्षेत्र थे–तेलंगाना – जिसमें तेलगू भाषा बोलने वाले निवासियों के 9 जिले थे। मराठावाड़ा – जिसमें मराठी भाषा बोलने वाले लोगों के 5 जिले थे। इसके अलावा तीन कन्नड जिले थे जिनमें कन्नड भाषा बोली जाती थी।

हैदराबाद के इन जिलों में दो प्रकार की भूमि व्यवस्था थी। प्रथम प्रणाली खालसा अथवा दीवानी प्रथा थी जिसे भारत के कुछ भागों में रैयूयतवाड़ी प्रथा कहा जाता था जिसमें कृषकों के स्वामित्व को महत्व दिया जाता था। 1941 ई. में लगभग 60 प्रतिशत कुल भूमि का भाग खालसा के पास होता था। भूस्वामियों को मालिक अथवा स्वामी नहीं कहा जाता था, बल्कि पट्टेदार को सिकमिदार कहा जाता था। प्रत्येक पट्टेदार को सिकमिदार कहा जाता था जिन्हें कि भूमि पर पूर्ण अधिकार होता था लेकिन पंजीकृत नहीं होते थे। जैसे–जैसे भूमि पर दबाव बढ़ा सिकमिदारों ने अपने अधीनस्थ लोगों "आसामी सिंकमिस" को भूमि लीज पर देना प्रारम्भ किया। इस वर्ग से संबंधित लोग वास्तविक रूप में खेती किया करते थे। कालान्तर में इन लोगों

के भूमि पर न तो कानूनी अधिकार होते थे और न ही किसी प्रकार का उन्हें कोई न्यायालय से संरक्षण प्राप्त होता था।

इसी प्रकार भूराजस्व व्यवस्था का अन्य स्वरूप जागीर के रूप में विद्यमान था। इस प्रणाली के अनुसार स्वयं निजाम "क्राउन भूमि" का मालिक होता था, जिसे (सर्फ–ए–खास) कहा जाता था। निजाम की यह भूमि सम्पूर्ण राज्य में फैली हुई होती थी। यह भूमि 8,109 वर्गमील (1961 गाँवों) के क्षेत्र में फैली हुई थी। इन भूमियों की कुल राजस्व 20 मिलियन रुपए होती थी। इस राजस्व आय में से निजाम के घर का खर्चा, अन्य खर्च व सेना का खर्चा वहन किया जाता था।

हैदराबाद के राजनैतिक संगठन एवं अर्थव्यवस्था में जागीरदारी प्रथा एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। निजाम अपने विश्वास के व्यक्तियों को जो कि योग्य भी होते थे भूमि प्रदान किया करता था इसके बदले में वे सेनाओं का संगठन करते थे, भूराजस्व एकत्रित करते थे एवं आवश्यकता पड़ने पर निजाम को सैनिक सहायता दिया करते थे। इस प्रकार यह जागीर सामन्त प्रणाली का स्वरूप बन गया था। यह प्रथा हैदराबाद के विभिन्न क्षेत्रों में लगभग 40 ,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विद्यमान थी। 1949 ई में निजाम के शासन के अन्तर्गत 1167 जागीरदार थे। दीवानी न्यायालयों को जागीर पर कोई क्षेत्राधिकार प्राप्त नही था। यह प्रथा जब 1949 ई. में समाप्त हुई तब तक उक्त स्थिति बनी रही।

खालसा भूमि प्रणाली के अन्तर्गत ''देशमुख" और "देशपाण्डे'' गाँवों की भूमि का भूराजस्व एकत्रित करने के अधिकारी होते थे। इन अधिकारियों को वेतन के रूप में भूमि प्रदान की जाती थी। इसका आधार पिछले भूराजस्व के प्रतिशत पर किया गया था। देशमुख जो कि भूस्वामी होता था उन्होंने अपने प्रभाव से कृषकों भूमि को हड़पने व उनका शोषण करके अत्याधिक भूराजस्व की वसूली करने का किया। यह शोषण तेलंगाना जिले में अत्यधिक मात्रा में विद्यमान था।

तेलंगाना में ये जागीरदार एवं देशमुख दुर्रा (डोरा) कहलाते थे तात्पर्य श्रीमान (सर) मालिक (मास्टर), गाँव का मुखिया (लार्ड ऑफ दि विलेज) था। दुर्रा वर्ग में जमींदार, भू–मालिक, साहूकार और गॉव के अधिकारी सम्मिलित थे। तेलंगाना में भूराजस्व व्यवस्था के अन्तर्गत "वेत्ती" प्रणाली का भी प्रचलन था। इस प्रणाली के अधीन भूस्वामी अथवा देशमुख ऐसे परिवारों को जो कि लोग होते थे, को खेती करने, अपने घरेलू व कृषि संबंधी या अन्य कार्यों को कराने बाध्य कर सकता था। इस प्रकार "वेत्ती" तेलंगाना में भू मालिकों के प्रभुत्व का परिचालक था। ये कृषक अधिकांशत : निम्न वर्ण या अछूत वर्ग से होते थे, जो कि ''मल्लास" और "मादिगाज" से संबंधित होते थे।

तेलंगाना जिले में भूस्वामी एवं पट्टेदार के रूप में ब्राह्मण वर्ग के लोगों का भी प्रभुत्व रहा। लेकिन कालान्तर में कृषि एवं भूमि के क्षेत्र में उनका पतन हुआ। कोमरिस जो कि व्यापारियों का वर्ग होता था और साहूकार होते थे, उनका क्षेत्र में प्रभाव बढ़ा। तेलंगाना के ग्रामीण क्षेत्र में मारवाड़ी साहूकारों की घुसपैठ हुई। जिन्होंने साहूकार के रूप में अपने आपको

स्थापित किया। तथापि कोमरिस साहूकार भी इस क्षेत्र में बना रहा जो कि दुकानदार और व्यापारी के रूप में कार्यरत रहा।

तेलंगाना की कृषक अर्थव्यवस्था में सिंचाई सुविधाओं व व्यापारिक फसलों का भी विशेष महत्व था। यहाँ की व्यापारिक फसलों में मूंगफली, तम्बाकू आदि नालगोडा, मेहबूबनगर, करीमनगर आदि इलाकों में बोए जाते थे। लेकिन आवागमन आदान–प्रदान की सुविधाओं की कमी थी। कृषकों को शहरी साहूकारों, व्यापारियों और व्यवसायियों पर निर्भर करना पड़ता था। जिनका कि तेलंगाना के बाजारों में प्रभुत्व विद्यमान था।

तेलंगाना में कम्यूनिस्ट्स वर्ग का आगमन द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान हुआ था। यह वर्ग तेलंगाना में सक्रिय था। जिन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन और हैदराबाद के सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया था। तेलंगाना में आर्थिक मंदी और विश्व युद्ध के परिणाम स्वरूप कृषकों की स्थिति काफी शोचनीय हो गयी थी। भू–मालिकों के अत्याचार, अनुचित राजस्व, न्याय व प्रशासन के कारण कृषक वर्ग की स्थिति शोचनीय एवं गरीबी की स्थिति में पहुँच गयी थी। इस क्षेत्र में "आन्ध्र कान्फ्रेन्स यंग कम्युनिस्ट" संस्था ने कृषकों की समस्याओं, कठिनाईयों व कष्टों के संबंध में आवाज उठायी। उन्होंने तेलंगाना में भू–मालिकों के एकाधिकार "वेत्ती" प्रणाली को समाप्त करने की माँग की। 1940 ई. से "आन्ध्र कान्फ्रेंस" ने तेलंगाना के कृषकों की समस्याओं को दूर करने के लिए कोई कार्य नहीं किया था। लेकिन इसके पश्चात् उनकी सक्रिय गतिविधियाँ रही। इस प्रकार 1940 ई. से 1946 ई. तक तेलंगाना में कम्युनिस्ट की गतिविधियाँ प्रभावशाली रही जिससे कृषक आन्दोलन संगठित एवं शक्तिशाली रूप धारण कर सका परिणाम स्वरूप 1946 ई. से 1955 ई. के बीच तेलंगाना के कृषक आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

20.4 तेलंगाना के कृषक विद्रोह के कारण

1946 ई. से 1951 ई. के मध्य तेलंगाना में जो कृषक आन्दोलन हुआ, उसे निम्नांकित कारणों ने प्रोत्साहित किया:

(1) कृषकों की दयनीय स्थिति:

तेलंगाना के कृषक विद्रोह का महत्वपूर्ण कारण कृषकों की दयनीय स्थिति होना था। अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत कृषि का विशेष महत्व माना जाता है एवं कृषि उनका महत्वपूर्ण अंग है। कृषि कार्य कृषकों के द्वारा किया जाता था अत : वास्तविक रूप में कृषकों को भूस्वामी माना जाना चाहिए था लेकिन तेलंगाना में देशमुख, जमींदार भूमि के वास्तविक मालिक एवं स्वामी होते थे। इनका भूमि पर प्रभुत्व विद्यमान था। देशमुख कृषकों से अपनी इच्छा व लाभ के उद्देश्य से कृषि संबंधी कार्य करवाया करते थे। उन्हें कड़ी मेहनत करनी होती थी। उन्हें परिश्रम अधिक व पारिश्रमिक कम प्राप्त होता था। उन्हें किसी प्रकार की सुविधाएं जैसे निवास, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, खाद, बीज, उपकरण लेने आदि प्राप्त नहीं थी। परिणाम स्वरूप उनकी स्थिति दयनीय हो चुकी थी। इस स्थिति के कारण उनमें असन्तोष व विद्रोह की भावना जागृत हुई जिसके कारण उन्होंने विद्रोह प्रारम्भ किया।

(2) देशमुखों द्वारा भूमि पर कब्जा व अधिकार किया जाना:

देशमुख जो कि तेलंगाना की कृषि अर्थ व्यवस्था के क्षेत्र में भूमि का स्वामी होता था उसने किसानों की अधिकांश भूमि पर अपना कब्जा व अधिकार कर लिया था। इस दृष्टि से तेलंगाना क्षेत्र में पटेल और पटवारियों की सहायता से देशमुखों ने उपजाऊ एवं अच्छी भूमि पर कब्जा कर लिया था। इस भूमि को उन्होंने अधिक से अधिक लगान पर उठाना शुरू कर दिया था। देशमुखों ने किसानों के विरूद्ध कई प्रकार के झूठे आरोप लगाए, जैसे – अवैध करों का भुगतान नहीं करना, गाँव के कुछ विवादों के संबंध में किए गए जुर्मानों को न भरना इत्यादि। इन आरोपों के आधार पर राज्य की पुलिस और राजस्व अधिकारियों की सहायता से किसानों की भूमि पर जबरदस्ती कब्जा कर लिया गया। देशमुखों के पास 40 हजार से एक लाख एकड़ तक भूमि हो गयी। इन देशमुखों को निजाम की सरकार का भी संरक्षण प्राप्त था। इस स्थिति से असन्तुष्ट होकर कृषकों ने तेलंगाना में विद्रोह को प्रारम्भ किया।

(3) कृषकों का शोषण:

कृषकों का अत्याधिक शोषण भी विद्रोह का अन्य महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुआ। तेलंगाना में कृषि व्यवस्था के क्षेत्र में किसान का कई रूपों में आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक शोषण होता था। कृषकों से अधिक से अधिक श्रम करवाकर कृषि की उपज का उत्पादन करवाया जाता था। इसका आर्थिक लाभ देशमुख और जमींदार को होता था जबकि कृषकों को बहुत कम पारिश्रमिक दिया जाता था। किसानों को भूमि से बेदखल करना, उनकी भूमि को किसी न किसी प्रकार के आरोप लगाकर हड़पना, उनसे कृषि कार्य के अलावा अन्य कार्यों को भी करवाना, कृषक जो ऋण साहूकारों से लेते थे उन्हें बढ़ा–चढ़ाकर लिखना, उनकी कठोरता से वसूली करना, अधिक ब्याज दर पर पैसे की वसूली करना अत्याधिक भूमि का लगान व भूराजस्व प्राप्त करना किसानों की शोषण पूर्ण स्थिति को प्रोत्साहित करना था। इस क्षेत्र में सरकार, न्यायालय और पुलिस भी देशमुखों एवं जमींदारों को राजनीतिक सरंक्षण प्रदान करती थी एवं कृषकों का शोषण करती थी। इस स्थिति से तंग आकर किसानों ने आन्दोलन का मार्ग अपनाया।

(4) अत्याधिक लगान की वसूली:

कृषकों से जमींदारों के द्वारा जो भूराजस्व प्राप्त किया जाता था वह उनकी उपज व आमदनी के अनुप्रात से अधिक होता था। इसके अतिरिक्त उनसे लगान की वसूली जबरदस्ती एवं अत्याधिक मात्रा में की जाती थी जिससे किसानों का शोषण था। इस स्थिति से परेशान होकर भी कृषकों ने आन्दोलन को प्रोत्साहित किया। तेलंगाना में कृषकों की एक ओर आर्थिक स्थिति के दयनीय होने, उसके गरीब होने व कम उत्पादन होने की स्थिति में वह भूराजस्व का भुगतान करने में असमर्थ था। दूसरी ओर इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उसे साहूकारों पर निर्भर होना पड़ता था। वह साहूकारों से ऊँची ब्याजदर पर ऋण प्राप्त कर लगान का भुगतान किया करता था। इस स्थिति के भी किसानों में जमींदारों व प्रचलित पद्धति के विरूद्ध असन्तोष एवं विरोध विद्यमान था उन्होंने आन्दोलन को प्रारम्भ किया।

(5) विभिन्न प्रकार के करों की वसूली एवं आर्थिक भार:

तेलंगाना में कृषकों को केवल भूराजस्व का ही भुगतान नहीं करना पड़ता था बल्कि अन्य प्रकार के करों का भी भुगतान करना पड़ता था, जिससे उन पर बोझ बना हुआ था। वे अपनी दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण परेशान थे। जमींदार किसानों से गैर 'कानूनी कर जैसे – पथकर, पर्व एवं त्योहार कर, मेला खर्च, जमींदार के परिवार में विवाह होने पर कर, डाक व्यय, धार्मिक कर, दाखिल खर्च, जन्म, मृत्यु कर आदि विभिन्न प्रकार के करों को वसूल करता था। इससे उनकी आर्थिक स्थिति पर अत्याधिक करों का भार बढ़ गया था। कृषक यदि इन करों को निश्चित समय पर जमा नहीं थे तो उन्हें सजाएं दी जाती थी। इस स्थिति से भी कृषक तंग आ चुके थे और वे कठिनाईयों से मुक्त होना चाहते थे अत : आर्थिक भार से स्वतंत्र होने के उद्देश्य कृषकों ने आन्दोलन प्रारम्भ किया।

(6) निजाम सरकार व देशमुखों की उपेक्षा की नीति:

तेलंगाना में निजाम सरकार का देशमुखों के द्वारा भी भूमि व्यवस्था, कृषि आदि के प्रति उपेक्षा के दृष्टिकोण को अपनाया गया था। इस क्षेत्र में उनके द्वारा कृषि के विकास हेतु कोई विशेष कार्यक्रम, विकास के कदम, कृषि संबंधी कठिनाईयों दूर करने हेतु उपाय नहीं किए गए थे। कृषकों को कृषि उपकरण, खाद बीज सिंचाई, आवागमन के साधनों आदि की व्यवस्था नहीं दी गयी थी। किसानों के निवास उनकी सामाजिक सुरक्षा, बीमा, स्वास्थ्य, चिकित्सा हेतु भी प्रबंध नहीं किए गये थे। इन परिस्थितियों के कारण किसानों की स्थिति दिन प्रतिदिन कमजोर होती गयी। इससे असन्तुष्ट होकर किसानों ने अपने अधिकार को प्राप्त करने के वशीभूत होकर आन्दोलन के मार्ग को अपनाया।

(7) सरकारी तंत्रों, पुलिस व न्यायालयों का जमींदारों को संरक्षण:

कृषकों के द्वारा आन्दोलन प्रारम्भ करने हेतु अन्य परिस्थिति इस कारणवश भी संभव हुई कि किसानों को जो संरक्षण, सुरक्षा एवं सहायता सरकार, पुलिस व न्यायालयों द्वारा प्राप्त होनी चाहिए थी वह उन्हें प्राप्त नहीं हो सकी बल्कि उनका समर्थन कृषकों के विरूद्ध जमींदारों और देशमुखों को प्राप्त हुआ। परिणाम स्वरूप किसानों की स्थिति ओर कमजोर हो गयी। और देशमुख व जमींदार अधिक शक्तिशाली व प्रभुत्वशील बन गए। इस स्थिति में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से भी कृषकों ने तेलंगाना की सरकार के विरूद्ध आन्दोलन की शुरूआत की।

(8) आवागमन व संचार सुविधाओं का अभाव:

तेलंगाना में आवागमन व संचार साधनों का पूर्ण अभाव था। इस ओर सरकार के द्वारा सुधारपूर्ण कार्य नहीं किए गए थे। सरकार एवं जमींदारों के द्वारा इस संबंध में किसी प्रकार की सुविधा उपलब्ध नहीं करवायी थी। परिणाम स्वरूप कृषकों को उत्पादित माल एक स्थान से दूसरे स्थान भेजने, किसानों का एक स्थान से अन्य स्थानों की ओर जाने हेतु आवागमन के साधनों का अभाव था। इसी प्रकार समाचार भेजने, सूचनाएँ प्राप्त करने में भी कठिनाईयाँ उत्पन्न होती थी। इस क्षेत्र में तेलंगाना की सरकार के द्वारा कोई कार्य एवं सुधार नहीं किए गए थे, परिणाम स्वरूप कृषकों ने इस सुविधा को प्राप्त करने के उद्देश्य से आन्दोलन किया।

(9) राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव:

भारत में अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध जो राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था। उसकी प्रेरणा एवं प्रभाव स्वरूप भी तेलंगाना के कृषक आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला था अंग्रेजी सरकार की भारतीयों के प्रति शोषण, प्रशासनिक सुधार न करने, स्वतंत्रता, मताधिकार का अधिकार प्राप्त न होने की स्थिति में भारतीय महात्मा गांधी, तिलक, नेहरू आदि के नेतृत्व में स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु राष्ट्रीय आन्दोलन कर रहे थे। इस आन्दोलन का प्रभाव तेलंगाना पर भी पड़ा। परिणामस्वरूप यही के कृषकों ने अपनी दुर्दशा, परतंत्रता, शोषण, अत्याचार पूर्ण स्थिति से मुक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य स्वरूप आन्दोलन प्रारम्भ किया।

(10) भारत के अन्य प्रान्तों के कृषक आन्दोलन का प्रभाव:

तेलंगाना के कृषक विद्रोह के प्रारम्भ होने से पूर्व भारत के अधिकांश प्रान्तों में भी कृषक आन्दोलन हुए। उन कृषक आन्दोलनों का प्रभाव तेलंगाना के कृषकों पर पड़ा, जिससे प्रेरित होकर तेलंगाना के कृषकों के द्वारा कृषक आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। ये कृषक आन्दोलन संथाल लोगों का, नील विद्रोह पूर्वी बंगाल, मोपला, असम, पंजाब, दक्षिण भारत, चम्पारन, खेड़ा, मोपला, बारदोली, तेभागा कृषक आन्दोलन हुए। इन आन्दोलनों की प्रकृति भी तेलंगाना के विद्रोह के समान थी। ये सभी कृषकों के द्वारा भूमालिकों, जागीरदारों व सरकार के विरूद्ध किए गए थे। उनके भी कष्ट, कठिनाईयाँ एवं समस्याएँ वे ही थी जो कि तेलंगाना के कृषकों की थी। अत: तेलंगाना के कृषकों ने प्रारम्भिक कृषक आन्दोलनों से प्रेरणा प्राप्त करके विद्रोह करने का उद्देश्य बनाया था, जिसके फलस्वरूप तेलंगाना में भी कृषक आन्दोलन हुआ।

(11) नए नेतृत्व का प्रादुर्भाव:

तेलंगाना में नए नेतृत्व के उदय के कारण भी कृषक को सक्रिय एवं वास्तविक गतिशीलता प्राप्त हुई थी। इस आन्दोलन को जब नेताओं व आन्दोलन कर्ताओं का सहयोग मिला, उस स्थिति में कृषक आन्दोलन ने जमींदारों व देशमुखों के विरूद्ध आन्दोलन को तीव्रता प्रदान की। इस दृष्टि से कम्यूनिस्टों का सक्रिय योगदान मिला। इन कम्यूनिस्टों में रविनारायण रेड्डी, डी. वेंकटेश्वर राव, डॉ. राजबहादुर गोड, मुकद्दम मोहिउद्दीन के नाम उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त कांग्रेस दल ने भी तेलंगाना के कृषकों को नेतृत्व व दिशा निर्देश प्रदान किया। परिणामस्वरूप यह आन्दोलन प्रभावशाली हो गया। कृषकों में संगठन, एकता तथा जोश का प्रादुर्भाव हुआ।

कम्युनिस्ट दल के लोगों ने तेलंगाना के कृषकों में उमंग व क्रांति करने की भावना जागृत की। इस दल ने कृषकों की समस्याओं व कठिनाईयों को दूर और तेलंगाना में भूमालिकों के एकाधिकार "वेत्ती" प्रणाली को समाप्त करने हेतु माँग की एवं विद्रोह करने के लिए कृषकों को उकसाया जिसके परिणामस्वरूप कृषक को प्रोत्साहन मिला।

(12) खाद्यान्नों की कमी एवं मूल्यों में वृद्धि:

तेलंगाना में 1946 ई. में खाद्यान्नों की कमी हो गयी क्योंकि व्यापारिक फसलों का उत्पादन अत्याधिक रूप में किया गया। इसकी तुलना में खाद्यान्न फसलों को कम बोया गया। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भी सरकार के इस क्षेत्र में कोई प्रयास नहीं किए

गए। इसके परिणाम स्वरूप खाद्यान्न की काफी कमी हो गयी भुखमरी का वातावरण बन गया। जो कुछ भी खाद्य सामग्री उपलब्ध थी उसके मूल्य आसमान छूने लगे। सरकार ने इस समस्या का निराकरण राशनिंग पद्धति को लागू करके करने का निश्चय किया। इससे अव्यवस्था घूस और जमाखोरी की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला। कृषकों व जन साधारण वर्ग के लोगों को कठिनाई का सामना करना पड़ा। इससे विद्रोह की स्थिति को प्रोत्साहन मिला। इस समय विभिन्न भूस्वामियों व देशमुखों ने खाद्यन्न सामग्री का संग्रह किया, बढ़े हुए मूल्य से कालाबाजारी करके बहुत आर्थिक लाभ कमाया। इस स्थिति में गरीब किसानों और भूमिहीन मजदूरों की स्थिति शोचनीय हो गयी। ,किसानों से उनके पास संग्रहित खाद्यान्न कम मूल्य पर सरकार द्वारा प्राप्त कर उसे उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से बेचा जाने लगा, जिससे किसानों को आर्थिक हानि व देशमुखों व सरकार को अत्यधिक लाभ हुआ। इस असंतोषपूर्ण स्थिति में किसानों ने आन्दोलन किया।

(13) तात्कालिक कारण:

यद्यपि तेलंगाना कृषक आन्दोलन को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से उक्त विभिन्न कारण विद्यमान थे, और विरोध व विद्रोह स्वरूप 1946 ई. तक आन्दोलन गतिविधियाँ भी प्रारम्भ हो चुकी थी, तथापि कृषक आन्दोलन को वास्तविक एवं उसमें तीव्रता लाने हेतु चिंगारी की आवश्यकता थी जो कि जुलाई, 1946 ई. में कृषक नेता डोडी कमरयूया की हत्या के परिणाम स्वरूप तात्कालिक कारण के रूप में प्रारम्भ हुई। इस घटना के पश्चात् तेलंगाना में कृषकों के आन्दोलन ने वास्तविक एवं सक्रिय रूप धारण कर लिया। इस समय सहस्त्रों कृषकों ने लाठियों, हथियारों से लैस होकर जुलूस निकाला। जमींदारों ने बदमाशों को किराए पर रखा जिन्होंने जुलूस पर गोलियां चलायी। इस घटना के परिणाम स्वरूप किसानों का नेता कमरयूया मृत्यु को प्राप्त हुआ एवं कई लोग घायल हुए। परिणाम स्वरूप जुलूस हिंसा व उग्रता में परिवर्तित हो गया। जो कि जमींदार के निवास पर पहुँचा। कमरयूया के शव को लेकर. किसानों ने जुलूस निकाला। उस स्थिति में पुलिस ने किसानों पर आक्रमण कर दिया। इस स्थिति के फलस्वरूप तेलंगाना में आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ।

20.5 आन्दोलन का उत्कर्ष एवं विकास

कम्यूनिस्टों के द्वारा कृषक आन्दोलन के क्षेत्र में जो सक्रिय गतिविधियाँ की जा रही थी उसके परिणाम स्वरूप कृषक आन्दोलन के विकास को प्रोत्साहन मिला 1946 ई. में तेलंगाना के उन क्षेत्रों में जहाँ कम्यूनिस्टों का प्रभाव स्थापित हो चुका था, उन क्षेत्रों में अधिकारी एवं भूस्वामी जाने से डरते थे। इन भूस्वामियों के पास विशाल सम्पत्ति थी सहस्त्रों एकड़ भूमि पर उनका स्वामित्व था, उन क्षेत्रों में कम्युनिज्म का प्रभाव बढ़ गया था।

1946 ई. में आंध्र कांफ्रेंस (संद्यम) उचित पारिश्रमिक दिये जाने, वेत्ती के विरूद्ध, खाद्य पदार्थों की लेवीं को लागू करने के विरूद्ध ग्राम स्तर का संघर्ष प्रारम्भ किया गया। यह आन्दोलन प्रमुख रूप में देशमुख की उन सम्पत्तियों के विरुद्ध जो कि नलगोण्डा जिले में स्थित थी, प्रारम्भ किया गया था। इस समय या तो भूस्वामी (देशमुख) भाग गए और सुरक्षा के

स्थानों में चले गए या उन्होंने अपने असामाजिक तत्व से संबंधित लोगों को कृषकों के विरूद्ध कर दिया अथवा पुलिस की सहायता ली गयी। जुलाई 1946 ई. तक नलगोण्डा, वारंगल और खम्भम जिलों के लगभग 300–400 गाँवों के देशमुखों, भूस्वामियों और गाँवों के अधिकारियों के विरूद्ध विद्रोही कृषकों की गतिविधियाँ सक्रिय हो गयी थी।

जुलाई 1946 ई. में कृषक विद्रोह के समय महत्वपूर्ण घटना घटित हुई। हजारों विद्रोही कृषकों ने लाठियों व सरियों से लैस होकर गाँवों में जुलूस निकाला इस समय जब कृषक विद्रोह विश्नुर देशमुख की भूमि पर पहुँचा उस समय देशमुख ने किराए पर गुण्डे (असामाजिक तत्व) व्यवस्थित किए, उन्होंने जुलूस पर गोली चलाई जिसमें संद्यम नेता डोडीजी कमरयूया मारा गया तथा कुछ लोग घायल हुए। परिणाम स्वरूप जुलूस क्रोधित भीड़ में परिवर्तित हो गया। यह जुलूस देशमुख के निवास पर पहुँचा। विद्रोहियों के द्वारा देशमुख के घर को जलाने वाले ही थे कि वहाँ पुलिस पहुँच गयी और क्रोधित भीड़ को खदेड़ दिया गया। इस घटना के साथ ही तेलंगाना के विद्रोह की शुरूआत हुई।

अक्टूबर, 1946 ई. में निजाम की सरकार के द्वारा आंध्र कांफ्रेंस पर पाबंदी लगा दी गयी। इस समय काफी संख्या में कम्युनिस्ट कार्यकर्ता बंदी बना लिए गए और विद्रोह पूर्ण क्षेत्रों में पुलिस की सहायता बढ़ा दी गयी। लेकिन विद्रोहियों का जोश इस स्थिति में था कि भूस्वामी एवं देशमुख के लिए गाँवों में वेत्ती व्यवस्था को कायम रखना मुश्किल हो रहा था।

कृषक आन्दोलन जो कि तेलंगाना की सरकार के विरूद्ध था उसमें अधिकांशत: कृषकों ने भाग लिया। यद्यपि 1946 ई. तक कम्यूनिस्टों ने निजाम के राजतंत्रात्मक शासन के विरूद्ध किसी प्रकार की आवाज नहीं उठायी और हैदराबाद के कृषक भी इस ओर उदासीन थे, लेकिन फरवरी 1947 ई. से उनमें राष्ट्रीयता की भावना एवं विद्रोह की विचारधारा सक्रिय हुई। इस समय जब ब्रिटिश सरकार ने भारतीय रियासतों को यह विकल्प दिया था कि या तो वे स्वायत्ता की स्थिति में रहें अथवा भारत या पाकिस्तान में सम्मिलित हो जायें। स्वतंत्रता के समय केवल हैदराबाद, जूनागढ़ व काश्मीर के अलावा सभी रियासतों ने अपनी ऐच्छिक शक्ति का प्रयोग किया था। हैदराबाद में निजाम मुस्लिम सरदारों और मजलिस–ए–ऐतिहाद ने रियासत के स्वायत्ता को कायम रखने की इच्छा जाहिर की थी। वहाँ जो हिन्दू निवास करते थे उनका यह विचार था कि भारत के साथ हैदराबाद की रियासत सम्मिलित हो जाये जिससे कि वे राजनीतिक स्वतंत्रता का, उपभोग कर सकें और स्थानीय सरकार की प्रक्रिया एवं व्यवस्थाओं में भाग ले सकें। हैदराबाद रियासत में इस परिस्थिति में निश्चितता और राजनैतिक अस्थिरता का वातावरण हुआ था। इस समय मजलिस–ए–एतिहाद की साम्प्रदायिक गतिविधियों के परिणामस्वरूप हैदराबाद में कानून एवं व्यवस्था की स्थिति शोचनीय बन गयी थी। अगस्त, 1947 ई. में जब हैदराबाद और भारत सरकार के द्वारा समझौते पर हस्ताक्षर किये गए उस में परिस्थितियों ने राजनीतिक मोड़ ले लिया था। इस समय हैदराबाद में वैधानिक शक्ति एतिहाद संगठन के नेताओं के हाथों में आ गयी थी।

उपर्युक्त राजनैतिक परिवर्तन पूर्ण विकास क्रम में कम्युनिस्ट जिनमें निजाम विरोधी, समर्थक व कांग्रेस सम्मिलित थी, हैदराबाद में राष्ट्रीय मत का संगठन बन गया था। इस समय तेलंगाना में कृषकों का आन्दोलन सक्रिय हो गया था। इस समय मजलिस–ए–एतिहाद संघ के नेता कासिम रज्वी ने रजाकारों के सैनिक शक्ति का संगठन किया। जनवरी, 1948 ई. में 30,000 रजाकार पंजीकृत हुए जिसकी संख्या बढ़ाकर अगस्त, 1948 ई. में निजाम की सरकार ने रजाकारों को श्रृंखलाओं में ग्रामीण तेलंगाना प्रान्त में भेजा। रजाकारों की कार्यवाहियों को नियंत्रित करने के उद्देश्य से निजाम के अधिकार नाम मात्र के थे। उन्होंने गावों में लूटमार की तथा संदेहपूर्ण लोगों को गिरफ्तार कर। जो कृषक कम्युनिस्ट प्रभाव में थे उन्हें बंदी बना लिया गया। इस समय तेलंगाना में अराजकता एवं विद्रोह का वातावरण बन गया था।

तेलंगाना में सरकारी तंत्र की कमजोरी व अव्यवस्था पूर्ण स्थिति के परिणामस्वरूप कम्यूनिस्टों को कृषकों के आन्दोलन को प्रभावशाली बनाने में सहयोग मिला। इस समय स्वयं सेवकों, जिन्हें "दालम" कहा गया, के संगठन का निर्माण , हुआ। जब रजाकर और पुलिस ने छापा मार गतिविधियाँ की उसका सामना इन दालम वर्ग ने किया। कृषकों ने दालम संगठन में सम्मिलित होने का निर्णय लिया था। कृषकों ने दालम और रजाकारों की दमनकारी नीति का डटकर मुकाबला किया। विद्रोही कृषकों ने,विभिन्न स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया उन क्षेत्रों में निजाम का प्रशासन समाप्त हो गया। जमींदारों को भगा दिया गया। भूमि को किसानों और खेतीहर मजदूरों में बाँट दिया। जुलाई, 1948 ई. तक गुरिल्लाओं और कम्यूनिस्टों के प्रभाव में 'लगभग पच्चीस हजार गाँव आ चुके थे। कृषक आन्दोलन यद्यपि (विकसित स्वरूप में था लेकिन सरकार की दमनकारी नीति के फलस्वरूप इस विद्रोह में लगभग चार हजार कम्युनिस्ट तथा उग्रवादी किसान मारे गये। दस हजार से भी अधिक कम्यूनिस्टों को जेलों में डाल दिया गया अथवा नजरबंद कर दिया गया। काफी कठिनाईयों के फलस्वरूप सरकार की सजा स्थापित की गयी। विनोबा भावे ने भू–दान और ग्रामदान आन्दोलन चलाये तथा कृषकों को जमींदारों की कुछ जमीनें दी गयी। भूमि पर जमींदारों का दमनात्मक प्रभाव और कृषक वर्ग तथा भूमिहीन मजदूर का शोषण यथावत चलता रहा।

20.6 तेलंगाना के कृषक विद्रोह के परिणाम

तेलंगाना में जो कृषक आन्दोलन 1946 ई. में प्रारम्भ हुआ था 1951 ई. में उसका दमन कर दिया गया था, परिणामस्वरूप यह आन्दोलन असफल रहा। इस आन्दोलन के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही परिणाम हुए। यह आन्दोलन कृषकों के द्वारा अपने शोषण और अत्याचार के विरूद्ध किया गया था, उस उद्देश्य की प्राप्ति में यह आन्दोलन असफल रहा, क्योंकि उनकी समस्यायें यथावत बनी रही। सरकार ने पुलिस बल के माध्यम से कृषकों के संगठित आन्दोलन का दमन कर दिया। अधिकांश कृषक व कम्युनिस्ट बंदी बना लिए गए। कम्यूनिस्टों के नेता जब जेल में बंद कर दिए गए और कृषकों के प्रति दमनकारी नीति को अपनाया गया, उस स्थिति में कृषकों का साहस व धैर्य टूट गया। कृषकों को उचित नेतृत्व एवं मार्गदर्शन प्राप्त नहीं हो सका।

कृषक आन्दोलन के असफल हो जाने के बावजूद भी इसके कुछ हितकारी अर्थात कृषकों के उद्देश्यों व हितों के अनुरूप भी प्रभाव हुए। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप सरकार ने अपनी सरकारी नीति के अन्तर्गत कृषकों के उद्देश्यों एवं उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कृषि नीति का निर्माण करने ' का प्रयास किया। इस नीति के अलावा किसानों को भूमि दिलाने, कृषि संबंधी उपकरण व सुविधाएँ उपलब्ध करवाने, उचित लगान निर्धारित करने तथा सामाजिक सुरक्षा व बीमा योजना लागू करने की कार्यवाही की गयी। सरकार के द्वारा यह आवश्यक कदम उठाए गए कि भविष्य में कृषकों के आन्दोलन को प्रोत्साहन न मिले।

कृषक आन्दोलन का यह भी परिणाम हुआ कि जब 1949 ई. में भारतीय सेना ने हैदराबाद के प्रशासन को अपने नियंत्रण में ले लिया तो उन्होंने अगस्त 1949 में जागीर प्रथा को समाप्त करने का प्रस्ताव जारी किया। इसी प्रकार एक "एग्रेरियन इन्क्वायरी कमेटी" नियुक्त की, जिसे श्रम सुधार से संबंधित नियम बनाने व उनकी सिफारिश करने को कहा।

20.7 तेलंगाना के कृषक विद्रोह की असफलता के कारण

तेलंगाना में कृषक विद्रोह सफल नहीं हो सका था। इस क्षेत्र में सरकार की दमनकारी नीति, संगठनों का निर्बल व निष्क्रिय होना, कृषकों की आर्थिक स्थिति का कमजोर होना आदि विभिन्न परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप कृषक आन्दोलन को बल नहीं मिल सका। परिणामस्वरूप तेलंगाना कृषक आन्दोलन 1951 ई में समाप्त हो गया।

इस आन्दोलन की असफलता को निम्न कारणों ने प्रोत्साहित किया :

1 तेलंगाना में निजाम की सेनाओं व पुलिस की सक्रिय एवं दमनकारी नीति के कृषक आन्दोलन कुचल दिया गया। पुलिस व सेनाओं ने आन्दोलनकारियों विपिन प्रकार की यातनाऐं प्रदान की, उन्हें बंदी बनाया गया। विभिन्न आन्दोलनकारियों को मौत के घाट उतार दिया गया। इस नीति के कारण कृषकों के उत्साह, उमंग व जोश को आघात पहुँचा। उनमें आतंक व भय का वातावरण व्याप्त हो गया कारण उन्होंने आन्दोलन को आगे न बढ़ाने का निर्णय लिया। इस क्षेत्र में की गति– विधियों के फलस्वरूप आन्दोलनकारियों के नेता कम्यूनिस्टों को बंदी बना गया, जिनकी संख्या लगभग 25,000 थी। इसी प्रकार 2,000 कृषक मारे गये। इस स्थिति के फलस्वरूप तेलंगाना में भय व घबराहट की स्थिति बन गयी, परिणामस्वरूप कृषक आन्दोलन का दमन कर दिया गया।

2 तेलंगाना में जो कृषकों का विद्रोह प्रारम्भ हुआ वह किसी एक वर्ग से संबंधित आन्दोलन नही था बल्कि इन कृषकों में विभिन्न वर्गों से संबंधित थे। कृषक आन्दोलन का जो वर्ग नेतृत्व कर रहा था, जिनमें कम्यूनिस्ट प्रमुख थे, वे धनवान व अच्छी स्थिति में थे जो कि कम्मा अथवा रेड्डी जाति से संबंधित उच्च वर्ग किसान थे जिन्होंने अपने अधीनस्थ कृषकों जिनके पास थोड़ी भूमि थी, या गरीब किसान थे, मजदूर थे उन लोगों का एक संगठन बनाया और इस कृषक संगठन ने बड़े–बड़े भूस्वामियों, जागीरदारों और देशमुखों के विरूद्ध विद्रोह किया जिसका प्रभाव नहीं हुआ और यह कृषक आन्दोलन असफल हुआ। क्योंकि इन

जागीरदारों व देशमुखों की शक्ति को यह कृषक वर्ग चुनौती देने व उनका सामना में असमर्थ था।

3 तेलंगाना के विद्रोहियों में परस्पर फूट भी आन्दोलन की असफलता का कारण बना क्योंकि जो कृषक धार्मिक वर्ग से संबंधित थे वे भी संगठन से अलग गए। इसी प्रकार कम्युनिस्ट नेताओं में भी आपसी फूट का वातावरण निर्मित हुआ। रविनारायण रेड्डी जो कि विख्यात व लोकप्रिय नेता था, उन्होंने क्रांतिकारी संगठन से आपको अलग कर लिया और तेलंगाना के विरोधी विद्रोहियों के साथ सम्मिलित किया। रेड्डी ने भूमि के अधिग्रहण का विरोध किया तथा इस बात पर जोर दिया विद्रोह को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। परिणामस्वरूप आन्दोलन कर्ताओं के में कमी हुई, और आन्दोलन असफल हुआ।

4 इसी प्रकार जो कृषक व मजदूर वर्ग इस आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे वे अधिकांशत : भ्रमहीन व गरीब किसान थे। इसी प्रकार बहुत से कृषक अछूत जाति मल्ल व मदिगा जाति से संबंधित थे। उनके साथ आर्थिक व सांस्कृतिक तथा सामाजिक दृष्टि से शोषण किया गया। हिन्दू व उच्च जाति से संबधित वर्ग ने सामाजिक दृष्टि से उनके प्रति निम्न स्तर का व्यवहार किया। इसी वर्ग पर वेत्ती कर का प्रत्यक्ष रूप में प्रभाव था। परिणामस्वरूप इस वर्ग में असंतोष एवं हीन भावना की स्थिति विद्यमान थी, जिन्होंने आन्दोलन में सक्रिय रूप में भाग नही लिया।

5 कृषक आन्दोलन से संबंधित नेताओं तथा आन्दोलन कर्ताओं में संगठन का अभाव था। उनमें विचारों व विभिन्न मुद्दों को लेकर परस्पर मतभेद थे। इसी भाँति तेलंगाना में कृषक आन्दोलन प्रारम्भ करने के उद्देश्यों व तरीकों को लेकर भी आपसी मतैक्य तथा मतभेद की स्थिति विद्यमान थी तेलंगाना में रवि एन. रेड्डी, बी. येल्ला रेड्डी और सी. राजेश्वर राव इस मत के समर्थक थे कि आन्दोलन को समाप्त कर दिया जाये जबकि इसके विपरीत पी. सुन्दरैयूया और एम. बास्वामूनियाँ आन्दोलन को निरन्तर बनाए रखने का समर्थन कर रहे थे। इस मतभेद की स्थिति ने कृषक आन्दोलन को कमजोर बना दिया।

6 तेलंगाना में कृषक आन्दोलन की असफलता का अन्य कारण कृषकों की आर्थिक स्थिति का कमजोर होना भी था। उनके पास आय के साधनों की कमी थी, गरीबी की स्थिति के कारण वे अधिक समय तक आन्दोलन को जारी रखने की स्थिति में नहीं थे। आन्दोलन की अवधि में उनकी स्थिति और कमजोर हो गयी थी। इसी प्रकार कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण उनका साहस व उत्साह नैतिकता का पतन होने लगा था। वे इस स्थिति में नहीं थे कि वे आन्दोलन को चला सके। इस समय भुखमरी व बेकारी असन्तोष का वातावरण बन गया था। इस वातावरण ने कृषक आन्दोलन को निर्बल बना दिया एवं कृषकों को इस आन्दोलन के स्थगित किए जाने पर संतोष करना पड़ा।

7 कृषक आन्दोलन में नेतृत्व के अभाव को भी आन्दोलन की असफलता का कारण माना जा सकता है क्योंकि आन्दोलन कर्ताओं के भिन्न–भिन्न स्वार्थ एवं उद्देश्य थे। कोई इस आन्दोलन से अपने व्यक्तिगत कष्टों व शोषण से मुक्ति प्राप्त कर अपने भूमि पर अधिकार प्राप्त करना चाहता था, तो कुछ वर्ग सामूहिक अथवा सम्पूर्ण तेलंगाना के कृषकों

के हितों को ध्यान में रखकर आन्दोलनरत थे। कुछ आन्दोलन कर्ता व राजनीतिक दल इस आन्दोलन में कृषकों का इस उद्देश्य से नेतृत्व कर रहे थे कि वे अपनी राजनीतिक प्रतिष्ठा एवं प्रभाव स्थापित करना चाहते थे। स्वार्थपूर्ण नेतृत्व के कारण भी यह आन्दोलन सफल नहीं हो सका।

20.8 भारत में कृषक आन्दोलन के विरूद्ध सरकार की नीति एवं इस क्षेत्र में किये गये प्रयास

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह ऐतिहासिक दृष्टि से तथ्य पूर्ण है कि तेलंगाना में कृषक आन्दोलन के विरूद्ध सरकार की दमनकारी पूर्ण नीति रही। सरकार ने पुलिस के माध्यम से इस आन्दोलन को असफल बनाने में सफलता प्राप्त की। इस आन्दोलन की पुनरावृति न हो एवं कृषकों के हित तथा उद्देश्यों के आधार पर उनके कल्याण के संबंध में कार्य करने हेतु सरकार अग्रसर हुई। इस क्षेत्र में सरकार के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन संभव हुआ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आम तेलंगाना में जो चुनाव हुए उसमें कम्यूनिस्टों को सफलता मिली थी। उन्होंने श्रम सुधार अधिनियम में परिवर्तन करने का प्रयास किया। परिणाम स्वरूप जागीरदारी प्रथा को समाप्त कर दिया गया। सीलिंग के नियम बनाए गए। भूमि के सीलिंग कानून से बचने के लिए भूस्वामियों ने भूमि का उपविभाजन व भूमि हस्तांतरण करना प्रारम्भ किया जिससे कि उन्हें किसी प्रकार का हानि न हो। इस समय समाजवादी आन्दोलन भी हुए जिसके अन्तर्गत विनोबा भावे ने भूदान आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन में श्रम व ग्रामों का दान किया गया। परिणामस्वरूप तेलंगाना में भी भारत के अन्य प्रान्तों के समान जमींदारों की कुछ भूमि कृषकों को दिलायी गयी लेकिन कृषकों के शोषण में किसी भी प्रकार की कमी नहीं हो सकी एवं सरकार के द्वारा इस संबध में किसी भी प्रकार के प्रयास नहीं किए गए। इसी भांति कृषकों को न्याय दिलाने के क्षेत्र में सरकार की कोई स्पष्ट व सक्रिय नीति नहीं रही।

20.9 सारांश

दक्षिण भारत के प्रमुख राज्य हैदराबाद के महत्वपूर्ण प्रान्त तेलंगाना में 1946 ई से 1951 ई के मध्य जो कृषक आन्दोलन हुआ, वह आधुनिक इतिहास तथा भारत में हुए कृषक आन्दोलनों की श्रेणी में उल्लेखनीय आन्दोलन का अरूप माना जाता है। इस आन्दोलन की प्रकृति एवं स्वरूप का विश्लेषणात्मक विवेचन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह आन्दोलन कृषकों के द्वारा प्रारम्भ किया गया जमींदारों देशमुखों व भूस्वामियों के विरूद्ध आन्दोलन था। यह आन्दोलन तेलंगाना की सरकार विरोधी नीतियों के विरूद्ध कृषक आन्दोलन था। इस आन्दोलन को कम्यूनिस्टों ने विशेष रूप में प्रोत्साहित किया।

कृषक आन्दोलन के उद्भव होने संबंधी विभिन्न कारणों का वर्णन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि कृषकों के प्रति शोषण, कृषकों का भूमिहीन होना, अत्याधिक भूराजस्व की वसूली साहूकारों व ऋणदाताओं द्वारा शोषण आदि प्रमुख रहे, जिन्होंने इस आन्दोलन को प्रमुखत : प्रोत्साहित किया।

तेलंगाना के कृषक आन्दोलन की प्रगति यद्यपि प्रारम्भ में सक्रिय, लेकिन सरकार की दमनकारी नीति व पुलिस की नीति के फलस्वरूप यह आन्दोलन 1951 ई. में समाप्त हो गया। यद्यपि यह आन्दोलन असफल हुआ तथापि इस आन्दोलन परिणामस्वरूप तेलंगाना स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने कृषकों के संबंध में नीति को अपनाया। इस नीति के अन्तर्गत जमींदारी प्रथा को समाप्त कर दिया,। भूमि सीलिंग कानून पारित किया गया तथा कृषकों को भूमि दिलायी गयी। '

तेलंगाना में विद्रोह की समाप्ति के पश्चात् भी कृषकों की स्थिति यथावत. बनी हुई है, उसमें कोई सुधार नहीं हुआ है, क्योंकि कृषकों का शोषण व कृषकों में असन्तोष की स्थिति निरन्तर रूप में बनी हुई है, जिसमें सुधार की आवश्यकता है

20.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न– 1

निम्नांकित प्रश्नों के पाँच पंक्तियों में उत्तर दें : –

1 तेलंगाना का विद्रोह कृषक विद्रोह था, स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2 तेलंगाना में कृषकों की स्थिति (1920–46) का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3 कृषक विद्रोह में कम्यूनिस्टों की भूमिका बताईये।

.....

.....

.....

.....

.....

4 तेलंगाना कृषक आन्दोलन के प्रभावों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

बोध प्रश्न– 2

निम्नलिखित वाक्यों को उसके सम्मुख सही (✓) या गलत (X) का निशान लगाऐं।

1 तेलंगाना का विद्रोह कृषक विद्रोह था। ( )

2 तेलंगाना में कृषकों की स्थिति सन्तोषजनक थी। ( )

3 तेलंगाना कृषक विद्रोह सफल हुआ था। ( )

4 कृषक आन्दोलन को डोडी कमरयूया के वध की घटना ने अत्याधिक रूप में प्रज्ज्वलित किया। ( )

5 कृषक आन्दोलन में कम्यूनिस्टों का सक्रिय योगदान रहा। ( )

6 आन्दोलन की समाप्ति के पश्चात् तेलंगाना में जमींदारी प्रथा को समाप्त कर दिया गया। ( )

7 भूदान आन्दोलन के माध्यम से तेलंगाना के जमींदारों को भूमि दिलाई गयी। ( )

बोध प्रश्न– 3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 100 शब्दों में लिखिए –

1 तेलंगाना के कृषक आन्दोलन के कारणों का वर्णन कीजिए।

2 तेलंगाना के कृषक आन्दोलन की असफलता के कारणों का वर्णन कीजिए।

3 कृषक आन्दोलन के स्वरूप व घटनाओं का विवेचन कीजिए।

20.11 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1 बैरीपेवियर : दि तेलंगाना मूवमेर (1944–51 ई.)

2 एल. नटराजन : पीजेन्ट अपराइजिंग इन इण्डिन

3 पी. सुन्दरैयूया : दि तेलंगाना मूवमेन्ट

4 डी.एन. धनाग्रे : पीजेर मूवमेंट इन इण्डिया

5 थोर्नर : अग्रेरियन प्रोस्पेक्ट्स इन इण्डिया

6 गजट ऑफ इण्डिया : हैदराबाद स्टेट

7 ए.आर देसाई : पीजेन्ट स्टूगल्स इन इण्डिया

8 डी.एन. धनाग्रे : अग्रेरियन मूवमेंट एण्ड गांधीयन पॉलिटिक्स

9 एन.जी. रंगा : पीजेन्टस एण्ड कांग्रेस

10 स्वामी सहजानन्द सरस्वती एण्ड एन. जी. रंगा : हिस्ट्री ऑफ दि किसान

11 एस. सेन : अग्रेरियन रिलेशन्स इन इण्डिया

12 रिपोर्ट ऑफ दि दक्खन रियोट्स कमीशन

13 ए आई. कुरेशी	:	दि इकनोमिक डेवलपमेन्ट आंफ हैदराबाद
14 बी के. नारायण	:	एग्रीकल्चरल डेवेलपमेर इन हैदराबाद स्टेट (1900–1956)
15 ए एम. खुसरो	:	इकॉनोमिक एण्ड सोशल इफेक्टस ऑफ जागीरदारी एबोलीसन एण्ड लैण्ड रिफोर्मस इन हैदराबाद
16 ए. रोथ	:	पीजेन्ट रिपोर्ट इन हैदराबाद
17 पी. सुन्दरैयूया	:	तेलंगाना पीपुल्स स्ट्रगल्स एण्ड इट्स लेसन
18 एस.के. आयंगर	:	इकॉनोमिक इनवेस्टीगेसन्स इन हैदराबाद स्ट्रेट
19 आई बेडफोर्ड	:	दि तेलंगाना इनसरेक्शन
20 एस.आर. तीर्थ	:	मेमोयर्स ऑफ हैदराबाद फ्रीडम स्ट्रगल
21 सी. राजेशवर राव	:	दि हिस्टोरिक तेलंगाना स्ट्रगल
22 गोध	:	पीजेन्ट अपराइजिंग इन इण्डिया
23 अलवी	:	पिजेंट्स एण्ड रिवोल्यूशन्स

ISBN-13/978-81-8496-252-9